डॉ० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद की पी-एच. डी. (हिन्दी) उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध

1995

–: प्रस्तुतकर्ता :–

नरसिंह राव कल्याणी

एम. ए., एम. फिल.

–: निर्देशिका :–

प्रो० शशि मुदीराज डी. लिट्.

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,

हैदराबाद विश्वविद्यालय,

हैदराबाद-500 046 (आं. प्र.)

Name of the research scholar: K. Narsimha Rao

Department/Centre: Hindi

University of Hyderabad

This is to certify that I, **K. Narsimha Rao** have carried out the research embodied in the present thesis for the full period prescribed under the Ph. D. ordinances of the University.

I declare that no part of this thesis was earlier submitted for the award of any research degree or diploma to any university.

Signature

Date: 08/01/1996

8/1/96
Research Supervisor

8/1/96
Head of Department/Centre
Prof. & Head, Dept. of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad
HYDERABAD-500 134

8/1/96
Dean of School
DEAN
SCHOOL OF HUMANITIES
University of Hyderabad,
Hyderabad-500 134.

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

भूमिका - - - - - - - - - - 1 - X

विषय प्रवेश - - - - - - - - - 1 - 48

1. व्यक्तित्व 1

2. कृतित्व 13

2.1. हिंदी ग्रंथ

2.2. मराठी ग्रंथ

2.3. अंग्रेजी ग्रंथ

3. डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों का सार-संक्षेप 23

4. निष्कर्ष 48

अध्याय - एक - - - - - - 49 - 104

समसामयिक यथार्थबोध - एक विवेचन

1. प्रस्तावना 49

2. समसामयिक : अर्थ और स्वरूप 50

2.1 समसामयिकता और आधुनिकता

3. यथार्थवाद की परिभाषा 54

3.1. पाश्चात्य

3.2. भारतीय

4. यथार्थ, यथार्थवाद और यथार्थबोध 69

5. यथार्थवाद के प्रकार 72

5.1 समाजवादी यथार्थवाद

5.2. आलोचनात्मक यथार्थवाद

पृष्ठ संख्या

5·3· प्रकृतवादी यथार्थवाद

5·4· अतियथार्थवाद

5·5· आदर्शोन्मुख यथार्थवाद

5·6· मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद

5·7· ऐतिहासिक यथार्थवाद

6· उपन्यास और यथार्थवाद 94

7· निष्कर्ष 103

अध्याय – दो — — — — — — — 105 - 182

हिंदी उपन्यासों में समकालिक यथार्थबोध का चित्रण

1· प्रस्तावना 105

2· पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध {1850-1915} - 107

3· प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध {1916-1936} - 123

4· प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध {1937-1980} - 140-180

4·1· प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास युग {1937-1960} 140-161

4·1·1· समाजवादी यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार

4·1·2· मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार

4·1·3· ऐतिहासिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार

4·1·4· प्रकृतवाद और प्रमुख उपन्यासकार

4·1·5· अतियथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार

4·1·6· आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार

4·1·7· आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार

पृष्ठ संख्या

4.2. साठोत्तरी उपन्यास युग (1960-1980) 161-180

4.2.1. समाजवादी यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार

4.2.2. मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार

4.2.3. ऐतिहासिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार

5. निष्कर्ष 180

अध्याय - तीन _ _ _ _ _ _ _ 183-284

डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध: वर्गीय पृष्ठभूमि और आर्थिक संदर्भ में.

1. प्रस्तावना 183

2. वर्ग 184

3. वर्ग का उदय 187

3.1. वर्ण

3.2. जाति

3.3. वर्ग

4. वर्ग विभाजन 197

4.1. उच्च वर्ग

4.2. मध्य वर्ग

4.3. निम्न वर्ग

5. डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में वर्ग चेतना 205

5.1. उच्च वर्ग

5.2. मध्य वर्ग

5.3. निम्न वर्ग

6. निष्कर्ष 283

पृष्ठ संख्या

अध्याय - चार — — — — — — 285-350

डॉ0 प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध: औद्योगीकरण और अमानवीयकरण के संदर्भ में

1. प्रस्तावना 285
2. क्रान्ति और औद्योगीकर क्रान्ति 286
3. भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया 290
4. भारतीय समाज पर औद्योगीकरण का प्रभाव 300
 4.1. सामाजिक परिस्थिति 301
  4.1.1. मिल के अंदर बाहर की समस्याएं
  4.1.2. नैतिक मान्यताओं में परिवर्तन
  4.1.3. दुर्व्यसनों व अपराधों में वृद्धि
  4.1.4. नगरों में गंदी बस्तियों का निर्माण
  4.1.5. गांवों का पतन और नगरों के प्रति आकर्षण
  4.1.6. नगरीकरण से उपजा ऊब और अलगाव
 4.2. आर्थिक परिस्थिति 304
 4.3. राजनैतिक परिस्थिति 305
5. डॉ0 प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में औद्योगीकरण और अमानवीकरण का चित्रण 305
 5.1. सामाजिक परिस्थिति पर औद्योगीकरण का प्रभाव 308
 5.2. आर्थिक परिस्थिति पर औद्योगीकरण का प्रभाव 329
 5.3. राजनैतिक परिस्थिति पर औद्योगीकरण का प्रभाव 334
 5.4. औद्योगीकरण और अमानवीकरण 339
6. निष्कर्ष 350

पृष्ठ सं०

अध्याय - पाँच _ _ _ _ _ _ _ _ _ 351-493

डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध:सामाजिक परिदृश्य में

1. प्रस्तावना 351

2. डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण 353

2.1. नारी जीवन का यथार्थ 354

2.1.1. नारी विषयक अवधारणा 356

2.1.2. नारी की असहायता 360

2.1.3. पुरुष प्रधान समाज और नारी 371

2.1.4. समान अधिकार और नारी 380

2.1.5. दहेज समस्या 385

2.1.6. विवाह 389

2.1.7. प्रेम और धोखा 394

2.1.8. परित्यक्ता नारी 398

2.1.9. वेश्या समस्या 402

2.1.10. देवदासी प्रथा 406

2.1.11. सती प्रथा 408

2.1.12. विधवा समस्या 410

2.1.13. तलाक और भरण पोषण 412

2.1.14. प्रताड़ना और बलात्कार 415

2.1.15. कन्याओं की बिक्री 420

पृष्ठ सं०

2.2. रंगभेद बनाम वर्णभेद - पाश्चात्य एवं भारतीय जीवन का यथार्थ 422

2.2.1. रंगभेद समस्या का ऐतिहासिक विवेचन 425

2.2.2. "जो" उपन्यास मे रंगभेद बनाम वर्णभेद का चित्रण 430

2.3. पीढ़ियों का अंतराल और बदलते जीवन मूल्य 443

2.3.1. पुरानी पीढ़ी 446

2.3.2. बीच की पीढ़ी 449

2.3.3. नई पीढ़ी 452

2.4. युवावर्ग : समसामयिक यथार्थ 455

2.4.1. "किशोर" और "लापता" उपन्यासों मे युवा वर्ग का चित्रण 459

2.5. समाज और राजनीति मे फैली अनैतिकता 473

2.5.1. "आंखे मेरी, बाकी उनका" उपन्यास मे समाज और राजनीति मे फैली अनैतिकता का चित्रण 474

3. निष्कर्ष 489

अध्याय - 8: _ _ _ _ _ _ _ _ 494 - 511

उपसंहार

ग्रंथ सूची _ _ _ _ _ _ I - XIV

भूमिका

"डॉ० प्रभाकर माचवे" उस व्यक्तित्व का नाम है जिसके अन्दर न केवल साहित्यिक धारा प्रवाहित होती है, बल्कि संसार के सारे ज्ञान - विज्ञान की अजस्र स्रोतस्विनी भी है । डॉ० माचवे बहुभाषी है और बहुमुखी प्रतिभाशाली हैं । उन्होंने हिंदी, मराठी तथा अंग्रेजी भाषाओं में अनेक ग्रंथों का सृजन किया है । ऐसे, वे गुजराती और बंगला भाषाएं भी अच्छी तरह जानते है । वे आधुनिक हिंदी साहित्य के एक ऐसे मूर्धन्य रचनाकार है जिन्होंने आधुनिक हिंदी साहित्य के लगभग सभी विधाओं में अपनी कलम चलायी है । उन्होंने कविता, उपन्यास, कहानी, एकांकी, व्यंग्य, निबंध रिपोर्ताज, यात्रा वृत्तांत, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, बाल साहित्य और आलोचना के क्षेत्र में आधुनिक हिंदी साहित्य के विकास में अमूल्य योग-दान दिया है । इसके अतिरिक्त साहित्य इतिहास लेखन तथा कोश निर्माण में विदेश की भाषाओं में साहित्य के आदान-प्रदान कराने में उन्होंने अनुवादक के रूप में अभूतपूर्व सहयोग दिया है । डॉ० माचवे न केवल इतिहास, पुरातत्व दर्शन, विज्ञान आदि क्षेत्रों का भी अपार ज्ञान अर्जित किये हुए है । इसी कारण उन्हे डॉ० रामविलास शर्मा ने "ज्ञान का विश्वकोश" कहा तो अज्ञेय और विष्णु प्रभाकर ने "प्रतिभा पुंज" ।

ऐसे तो डॉ० प्रभाकर माचवे जी के साहित्यिक जीवन का आरंभ सन् 1934 से होता है । किन्तु वे बचपन से ही कविता करने में रुचि लेते थे । अत: कह सकते है कि इनका साहित्यिक जीवन कविता लेखन से शुरू हुआ । वे बाद में सुप्रसिद्ध प्रयोगवादी कवि और लेखक बन गये ।

श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन "अज्ञेय" द्वारा संपादित प्रयोगवादी कविता संकलन "प्रथम तारसप्तक" मे प्रकाशित सात कवियों के कविताओं के अंतर्गत इनकी भी कविताओं का प्रकाशन हुआ । प्रथम "तारसप्तक" का प्रकाशन सन 1943 ई0 मे हुआ था । इस कविता संकलन मे माचवे जी की कविताओं के अतिरिक्त अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमीचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह और गिरिराज कुमार माथुर के कविताएं भी छपी थी ।
डा0 माचवे जी ने अपनी प्रयोगवादी दृष्टि को केवल कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त नहीं किया है बल्कि साहित्य के अन्य विधाओं मे भी नये-नये प्रयोग किये है विशेषत: उपन्यास के क्षेत्र मे ।

वस्तुत: साहित्य की अनेक विधाओं मे नये नये प्रयोग करने के बावजूद डा0 माचवे ने कभी भी सामाजिक यथार्थ के प्रति अनदेखी नहीं की । उन्होंने समसामयिक सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों का आकलन अपने उपन्यासों तथा अन्य विधाओं मे अधिक सूक्ष्मता के साथ किया है । इसी कारण इनके उपन्यासों मे हमे प्राय: दो विशेषताएं दिखाई देती है - एक चिंतन प्रधान कथा वस्तु और दो विशिष्ट शैली का प्रयोग ।

डा0 माचवे जी के उपन्यासों मे कथा वस्तु विशिष्ट चिंतन पर आधारित होती है । इनमे समाज मे व्याप्त सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को यथार्थ के साथ देखने की एक विशिष्ट दृष्टि होती है । वे उपन्यासों मे केवल समस्या को प्रस्तुत नहीं करते बल्कि समस्या का सर्वांगिण स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं । दूसरेशब्दों मे कहे तो वे न सिर्फ सामाजिक समस्या को प्रस्तुत करते हैं बल्कि उस समस्या को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे देखते हुए उसके कारणों का पता भी लगाते हैं । इस प्रकार समाज मे जनता को पीड़ित

करनेवाली कोई भी समस्या क्यों न हो, उसका चित्रण संपूर्ण यथार्थ के साथ पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करना इनकी विशेषता है । शायद इसलिए डा0 माचवे जी के उपन्यासों को "विचार प्रधान उपन्यास" कहते हैं । इनके उपन्यासों में न अभूतपूर्व कल्पना कौशल का प्रदर्शन होता है और न ही मन को लुभाने-वाली कोरी आदर्शवादिता का । इनके उपन्यासों में जो कुछ भी होता है यथार्थ से बंधकर होता है उससे परे नहीं । हाँ, यह भी कहा जाता है कि इनके उपन्यासों में अतिबौद्धिकता का अंश कुछ ज्यादा ही रहता है । यह कथन एकाध उपन्यासों के संबंध में आंशिक रूप में सही है ।

डा0 माचवे जी के उपन्यासों में "परन्तु", "एकतारा", "द्वाभा", "दर्द के पैबन्द", "धूत", लक्ष्मीबेन", "दशभुजा", "अनदेखी" आदि में विशेषत: नारी समस्याओं का चित्रण किया गया है । वर्तमान परिस्थितियों में नारी की स्थिति से अवगत कराते हुए माचवेजी कहते हैं कि नारी अपने संपूर्ण जीवन में पुरुषों पर ही निर्भर रहती है । वह पिता-पति और पुत्र की आश्रय के बिना इस समाज में स्वतंत्र रूप से नहीं रह सकती । ऐसे ही अनेक सामाजिक विसंगतियों को अपने इन उपन्यासों में यथार्थ के साथ चित्रित किया है । "तीस चालीस पचास" उपन्यास में लेखक समाज में पीढ़ियों के अन्तराल के कारण उत्पन्न होने वाले समस्याओं का चित्रण तथा मानव मूल्यों का पतन दिखाया गया है । "किशोर" और "लापता" जैसे उपन्यासों में माचवे जी ने युवावर्ग में उत्पन्न होने वाले असंतोष, अलगाव और विद्रोही भावनाओं का मनोवैज्ञानिक यथार्थ के दृष्टि से अध्ययन किया है । समाज में युवाओं का पर्याप्त आदर और स्नेह न मिलने के कारण ही उनमें अजनबीपन और अलगाव की भावनाएं घर कर रही है । इसी के फलस्वरूप अधिक आवेश

में असामाजिक कार्यों में इन भावनाओं का विद्रोही रूप प्रकट होता है । इन उपन्यासों में हीनता ग्रंथि का मनोवैज्ञानिक यथार्थता के साथ विवेचन हुआ है ।

डॉ० माचवे जी का "जो" एक ऐसा उपन्यास है जो अमेरिका में व्याप्त रंगभेद समस्या पर आधारित है । शायद ही इस विषय पर यह हिंदी का पहला उपन्यास है । इस उपन्यासके माध्यम से लेखक ने नीग्रो जाति के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं का चित्रण किया है । और साथ में इस रंगभेद समस्या को भारत की अस्पृश्य समस्या के साथ जोड़ कर देखा है । "किसलिए", "कहाँ से कहाँ" आदि उपन्यासों में विशेषत: मध्यवर्गीय जीवन पद्धति पर प्रकाश डाला गया है । "आँखें मेरी बाकी उनका" उपन्यास में देश में व्याप्त अनैतिकता, बेइमानी और भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया है । कुछ सरकारी संस्थाओं और विभिन्न विचार-धाराओं से संबद्ध राजनैतिक नेताओं तथा धार्मिक प्रतिबद्धता वाले लोगों और उनके सहकर्मी महिला मित्रों का अनैतिक और भ्रष्टाचारी व्यवहार का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए इनमें मूल्यों का किस प्रकार ह्रास हो रहा है दिखाने का प्रयास किया गया है ।

शैली की दृष्टि से भी इनके उपन्यासों में अनेक अद्भुत प्रयोग किये गए हैं । इनके उपन्यास लघु होते हुए भी बीच बीच में कविताएं, महान व्यक्तियों के सूक्तियां और समस्या या घटना का ऐतिहासिक विवेचन के लिए वेद, पुराण आदि से प्रसंग देना तथा अनेक विद्वानों का उस समस्या या घटना के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट करना इनकी विशेषता है । अनेक उपन्यासों में आत्म कथा शैली, पत्र शैली, डायरी शैली आदि का भी प्रयोग हुआ है । कुछ उपन्यासों में कविताएं कथावस्तु के लिए बोझिल हुए हैं, यह बात भी सत्य है । इनके अनेक उपन्यास मनोवैज्ञानिक शैली पर आधारित है । इनका

पहला उपन्यास "परन्तु" अन्त:संज्ञा प्रवाह वाले मनोविश्लेषणवादी विशेषताओं का है । इस प्रकार कह सकते हैं कि माचवे जी ने हिंदी उपन्यास सृजन प्रक्रिया में विचारपरक उपन्यासों का नया प्रयोग आरंभ किया है ।

वस्तुत: "उपन्यास साहित्य में एक ऐसी विधा है जो मनुष्य के जीवन में व्याप्त सभी अनुभवों को अभिव्यक्ति प्रदान करने में सशक्त है । इसी कारण आधुनिक काल में औद्योगीकरण केकारण जीवन में व्याप्त विसंगतियों तथा आधुनिक काल में उपन्यासों की मांग बढ़ने के पीछे कारण यही है । उसमें जीवन का यथार्थ प्रस्तुत होता है । इस प्रकार उपन्यास साहित्य में यथार्थ अहम् भूमिका निभाता है । यथार्थ का चित्रण जितना सशक्त होता है उतना ही उपन्यास उंचे स्तर का होता है । यथार्थ को उपन्यास में प्रस्तुत करने में उपन्यासकार की दृष्टि, विचार और अनुभव का विशेष महत्त्व होता है । उपन्यासकार यथार्थ को जिस दृष्टि से देखता है, उसी प्रकार पाठक को उसका बोध कराता है । लेखक की दृष्टि में स्पष्टता, विचारों में गहनता तथा अपार अनुभव हो तो यथार्थ का बोध अधिक सत्यता के साथ करा सकता है ।

डॉ0 प्रभाकर माचवे में उपर्युक्त तीनों विशेषताओं – दृष्टि, विचार और अनुभवों का भण्डार है ।इसी कारण उन्होंने अपने उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण करते हुए समस्या या घटना का पूर्वापर का ऐतिहासिक विवेचन भी किया है । अर्थात् इनका यथार्थवादी दृष्टि तथ्यों पर आधारित है । यथार्थ का चित्रण करते समय तथ्यों को प्रस्तुत करना उपन्यास को और अधिक जीवन्तता प्रदान करना है । तथ्यों के कारण यथार्थ का चित्रण और अधिक विश्वसनीय बनता है । माचवे जी के उपन्यासों में यही सब कुछ हुआ है ।

माचवे जी ने अपने समसामयिक परिस्थितियों का जिस दृष्टि से देखा है, जिस प्रकार विचार किया है और जिसका स्वयं अनुभव किया है उसी का पाठक को बोध कराते हैं । माचवे जी ने अपने उपन्यासों में नारी औद्योगीकरण आदि तथा आर्थिक और अन्य सामाजिक समस्याओं का पाठक को यथार्थ बोध कराया है ।

डॉ० प्रभाकर माचवे ने अपने उपन्यासों में इन्हीं समस्याओं का यथार्थबोध पाठक को किस प्रकार कराया है इसका अध्ययन तथा विश्लेषण करना प्रस्तुत शोध प्रबंध का एक विनम्र प्रयास है । इस शोध प्रबंध में विषय प्रवेश तथा उपसंहार के अतिरिक्त पांच अध्याय हैं । अन्त में मूल तथा सहायक ग्रंथों की सूची है ।

"विषय प्रवेश" अध्याय का शीर्षक "डॉ० प्रभाकर माचवे: व्यक्तित्व और कृतित्व" है । इसके अंतर्गत डॉ० प्रभाकर माचवे का संक्षिप्त जीवन परिचय तथा उनके सृजन कार्य का उल्लेख किया गया है । कृतित्व में विशेषत: उनके हिंदी उपन्यासों का सार संक्षेप दिया गया है । इस प्रकार इस अध्याय में डॉ० माचवे जी का जीवन परिचय तथा कृतित्व का एक विहंगावलोकन किया गया है ।

अध्याय एक का शीर्षक "समसामयिक यथार्थबोध - एक विवेचन" है । इस अध्याय के अंतर्गत आरंभ में समसामयिकता तथा आधुनिकता पर विचार किया गया है । इसके पश्चात यथार्थवाद की परिभाषा पाश्चात्य और भारतीय दृष्टिकोण से विश्लेषित किया गया है । इसी प्रकार यथार्थ, यथार्थवाद और यथार्थबोध शब्दों का विवेचन किया गया है । यथार्थवाद के प्रकारों का अध्ययन करते हुए समाजवादी यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद प्रकृतवादी यथार्थवाद, अतियथार्थवाद, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद,

मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और ऐतिहासिक यथार्थवाद के बारे में संक्षिप्त रूप से विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में "उपन्यास और यथार्थवाद" पर भी विचार किया गया है।

अध्याय दो का शीर्षक "हिंदी उपन्यासों में समकालिक यथार्थबोध का चित्रण" है। इस अध्याय में हिंदी उपन्यास साहित्य में समकालिक यथार्थबोध का चित्रण किस प्रकार हुआ है, देखा गया है। इस अध्याय में मुख्यतः तीन भाग हैं - पहला पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध दूसरा प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध तथा तीसरा प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध। प्रेमचन्दोत्तर युग को दो खण्डों में विभाजित करके अध्ययन किया गया है - एक प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास (1936-60) और दो साठोत्तरी उपन्यास युग (1960-1980)

"डॉ० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में समकालिक यथार्थबोध : वर्गीय पृष्ठभूमि और आर्थिक संदर्भ में" अध्याय तीन का शीर्षक है। इस अध्याय में वर्ग का उदय, वर्ण, जाति तथा वर्ग का स्वरूप और वर्ग विभाजन के बारे में विवेचन किया गया है। वर्ग विभाजन के अंतर्गत उच्च, मध्य तथा निम्न वर्गों के बारे में संक्षिप्त रूप से उल्लेख किया गया है। डॉ० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में इन वर्गों का चित्रण किस प्रकार हुआ है यह भी देखा गया है।

अध्याय चार जिसका शीर्षक है "डॉ० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में समकालिक यथार्थबोध : औद्योगीकरण और अमानवीकरण के संदर्भ में" में औद्योगिक क्रान्ति तथा भारत में औद्योगिक विकास के संदर्भ में चर्चा की गई है। भारतीय समाज पर औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव पर भी विचार

किया गया है । इसी प्रकार इस अध्याय मे डॉ० माचवे जी के उपन्यासों मे चित्रित औद्योगिक क्रान्ति के कारण उत्पन्न समस्याओं तथा अमानवीकरण के बारे मे विवेचन किया गया है ।

डॉ० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों मे समकालिक यथार्थबोध : सामाजिक परिदृश्य में" शीर्षक अध्याय पांच मे समाज मे व्याप्त अनेक समस्याओं का विवेचन डॉ० माचवे के उपन्यासों मे किस प्रकार हुआ है, देखा गया है । इस अध्याय के अंतर्गत डॉ० माचवे जी के उपन्यासों मे चित्रित नारी समस्या रंगभेद और वर्णभेद समस्या, पीढियों का अंतराल, धर्मान्तरण की समस्या तथा समाज मे व्याप्त अनैतिकता आदि के संदर्भ मे विश्लेषण किया गया है ।

अध्याय- छः "उपसंहार" है जिसके अंतर्गत शोध प्रबंध का सार प्रस्तुत किया गया है ।

इस शोध प्रबंध का कार्य मेरी निर्देशिका तथा अध्यक्ष हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय के आदरणीय प्रो० शशि मुदीराज जी के कुशल निर्देशन मे सम्पन्न हुआ । आपके विद्वत्ता पूर्ण तथा प्रेरणादायक सुझावों तथा मार्गदर्शन के कारण मेरा यह विनम्र प्रयास अधिक सुलभ और सफल रूप से संपन्न हुआ । एतदर्थ मै आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन की औपचारिकता को न निभाते हुए श्रद्धावनत हूँ ।

इस शोध कार्य के संदर्भ मे अपने विभाग के प्रो० विजेन्द्र नारायण सिंह जी, प्रो० वेंकटरमण राव जी, प्रो० नूरजहां बेगम जी, डॉ० सुवासकुमार जी

डॉ० रामकृ जी, डॉ० रविरंजन जी तथा डॉ० कृष्ण जी से समय-समय पर जो प्रेरणादायक तथा सार्थक सुझाव मिले हैं इसके लिए अपने गुरुजनों के प्रति मैं हृदय गहनतल से आभार व्यक्त करता हूँ ।

प्रो० कृष्ण रैणा, अध्यक्ष, हिंदी विभाग हिमाचल विश्वविद्यालय के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ जिनके साथ हुई पत्राचार मेरे शोध कार्य को दिशा देने में सार्थक सिद्ध हुआ ।

सूर्यलक्ष्मी डिग्री कालेज के प्राचार्य श्री सुदर्शन रेड्डी जी को मैं धन्यवाद देता हूँ जिनका सहयोग और प्रोत्साहन मुझे समय समय पर मिलता रहा । उप-प्राचार्य श्री मल्लेश्वर रेड्डी जी के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ।

श्रीमती विजयलक्ष्मी जो हिंदी प्राध्यापिका, सूर्यलक्ष्मी डिग्री कालेज, के प्रति मैं धन्यवाद अर्पित करता हूँ, जिनका शुभकामनाएं हमेशा मेरे साथ है ।

पूज्य माता-पिता के प्रति मैं नतमस्तक हूँ जिनके आशीर्वाद सदा मेरे साथ है । अग्रज श्री अनिलकुमार, श्री रामचन्द्र राव तथा अनुज विनोद, महेश ने जो आत्मिक समर्थन और सहयोग दिया उसे कैसे भूल सकता हूँ ? शब्द सामने होने पर भी मन होता है, उनके प्रति कृतज्ञता को शब्दों में न बांधू ।

प्रकाश, पुरुषोत्तम, दत्तु, अशोक, रवि, सुरेश, श्रीनिवास, आनंद, अनिल, पद्मनाभा राव, नाची मुस्तु, राजु, हेमन्त, मल्लिक आदि मित्रों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने बहुत स्नेह के साथ मुझे सहयोग दिया है ।

हिंदी प्रचार समिति नारायण पेठ तथा अन्य साहित्यकारों, आलोचकों और विद्वानों को भी धन्यवाद देता हूँ जिनका लेखन सामग्री का इस शोध प्रबंध मे उपयोग हुआ है ।

इस शोध प्रबंध को सुंदर तरीके से टंकित करने के कारण श्री मुल्ला जी धन्यवाद के पात्र है ।

इस शोध प्रबंध के सृजन कार्य मे सावधानी के बावजूद कुछ त्रुटियाँ रह गयी होंगी, एतदर्थ मै क्षमा प्रार्थी हूँ ।

नरसिंहराव

नरसिंह राव कल्याणी

शोध कर्ता

हैदराबाद

दिनांक 08/01/1996.

डॉ॰ प्रभाकर माचवे : व्यक्तित्व और कृतित्व

विषय प्रवेश

डॉ० प्रभाकर माचवे : व्यक्तित्व और कृतित्व

1\. व्यक्तित्व

1.1. जन्म

1.2 शिक्षा

1.3 विवाह

1.4 नौकरियाँ

1.5. विद्वानों और साहित्यकारों की दृष्टि में माचवे

1.6. प्राप्त सम्मान

1.7. निधन

2\. कृतित्व

2.1. हिंदी ग्रंथ

2.1.1. उपन्यास

2.1.2. एकांकी

2.1.3. कविता संग्रह

2.1.4. कहानी संग्रह

2.1.5. जीवनी

2.1.6. दर्शन

2.1.7. बाल साहित्य

2.1.8. यात्रा वर्णन

2.1.9. व्यंग्य

2.1.10. शब्द चित्र, रेखाचित्र

2.1.11. सम्पादित ग्रंथ

2.1.12. समीक्षा

2.1.13. अनुवाद

2.1.14. अन्य

2.2. मराठी ग्रंथ

2.3. अंग्रेजी ग्रंथ

3. डा0 प्रभाकर माचवे के उपन्यासों का सार संक्षेप

3.1. परन्तु

3.2. एकतारा

3.3. द्वाभा

3.4. सांचा

3.5. जो

3.6. किशोर

3.7. तीस चालीस पचास

3.8. दर्द के पैबन्द

3.9. किसलिए

3.10. छूत

3.11. लक्ष्मीबेन

3.12. कहाँ से कहाँ

3.13. दशभुजा

3.14. आँखें मेरी बाकी उनका

3.15. लापता

3.16. अनदेखी

4. निष्कर्ष

विषय प्रवेश

डॉ0 प्रभाकर माचवे : व्यक्तित्व और कृतित्व

1. व्यक्तित्व :

डॉ0 प्रभाकर माचवे उन गिने - चुने साहित्यकारों के श्रेणी में आते है जिन्होंने विषय वैविध्य, विधा वैविध्य तथा विलक्षण भाषा वैविध्य से आधुनिक हिंदी साहित्य को परिपुष्ट किया है । डॉ0 माचवे की लेखनी ने साहित्य तथा पत्रकारिता के सभी विधाओं को स्पर्श किया है । कविता कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र, निबंध आदि विधाओं में माचवे जी की लेखनी बहुआयामी कार्य को बड़ी सजगता एवं कुशलता के साथ सम्पन्न की है । विजयेन्द्र स्नातक कहते है -"आधुनिक भारतीय साहित्य के इतिहास में डॉ0 प्रभाकर माचवे का नाम उनके बहुआयामी व्यक्तित्व और वैविध्यपूर्ण कृतित्व के कारण महत्वपूर्ण स्थान रखता है । मुझे भारत की किसी अन्य भाषा में ऐसे व्यक्ति का ज्ञान नहीं जो अपनी मातृभाषा के साथ देश और विदेश की पांच भाषाओं की मौलिक रचना या अनुवाद करने की क्षमता रखता हो । माचवे जी का कृतित्व केवल लेखन तक ही सीमित नहीं था । भाषण प्रवचन, रेखांकन, शब्द चित्र और स्मृतियों के विपुल विराट क्षितिज तक फैला हुआ था उनका कुतूहलपूर्ण कृतित्व ।"1

- -

1. डॉ0 प्रभाकर माचवे - मादुल्ला की डरी-डरी(भूमिका विजयेन्द्र स्नातक) पृ. ।

डॉ० प्रभाकर माचवे बहुमुखी प्रतिभाशाली होने पर भी निजी जीवन में अत्यंत सादा सीधा हुआ करते थे । न गर्व और न घमंड । "लम्बा कद, गेहुंआ रंग, हृष्ट पुष्ट शरीर, चौड़ा ललाट एवं वक्षस्थल और नुकीली नाक, विलक्षण प्रतिभा, गंभीर अध्ययन, साहित्यों की विस्तृत जानकारी तथा देश के अनेक भूभागों के यात्रा अनुभव से सज्जित यह है श्री प्रभाकर माचवे ।"[1]

1.1. जन्म :

डॉ० प्रभाकर माचवे का जन्म नगर ग्वालियर के छत्री बाजार में एक पाटौर (पत्थर की छत वाले) गरीब परिवार में 26 दिसंबर, 1917 को हुआ था । माता का नाम लक्ष्मीबाई तथा पिता का नाम बलवन्त विट्ठल माचवे था । वे मराठी भाषी थे । "तीन पीढ़ियाँ पूर्व इनके पूर्वज वाल्की ग्राम छोड़कर भारत के मध्य प्रदेश में आ बसे थे ।"[2] माचवे जी अपने माता पिता की बारहवीं और अंतिम संतान थे । अन्तिम संतान होने के कारण इनके प्रति माँ का प्यार थोड़ा ज्यादा ही था । पिता बलवन्त विट्ठल माचवे रेलवे में काम करते थे । अपने पिता के बारे में डॉ० माचवे जी कहते हैं - "पिता रिटायर हो चुके थे । पेंशन लेने इंदौर जाते थे । यह तो याद है पर मैं सात आठ बरस का ही था जब उनका स्वर्गवास हुआ । हमारे बड़े भाई जबलपुर के पास नौकरी करते थे । हम वहीं चले गये । x x पिता की याद इतनी है कि वे बड़े क्रोधी थे मारते भी थे । सवेरे उठाकर कसरत करवाते थे । संस्कृत पढ़ाते थे । हमें तभी से

- -

1. सं० कमलकांत बुधकर + विद्या जायसवाल - अक्षर अर्चना: पृ. 18
(लेख-प्रभाकर माचवे:एक बहुरंगी व्यक्तित्व - लेखक श्री जगदीश नारायण बोरा)

2. डॉ० कृष्णा रैणा - प्रभाकर माचवे के हिंदी उपन्यास - पृ. 9

संस्कृत और व्याकरण से नफरत हो गयी । उनके होते हुए हम शैतानी न कर पाते थे । माँ हमें आँचल में छुपाये घूमती थी । सबसे छोटी संतान बड़ी प्रिय होती है ।"[1]

पिता के देहान्त के पश्चात माता लक्ष्मीबाई ने ही इनका पालन पालन पोषण किया । माँ धार्मिक थी । तीर्थ यात्राएं किया करती थी । प्रभाकर माचवे भी अपनी माँ के साथ यात्राओं पर जाते थे । किन्तु इनकी आस्था तब खत्म हो गयी जब इनके माता जी के गहने पुजारी ने छीनने की कोशिश की । प्रभाकर माचवे जी कहते है - "पंढरपुर के विठ्ठल मंदिर में हम दर्शन करने गये । मैं छोटा था, माँ के हाथ में सोने के कड़े थे । पुजारी ने छीनने का प्रयत्न किया । यह देखकर मेरी आस्था खत्म हो गयी ।[2] ऐसे बचपन से ही माचवे जी में धार्मिक नीतियों में विश्वास नहीं था । माचवे जी को अपने बचपन के बारे में "इतना स्मरण है कि उपनयन संस्कार के समय इन्होंने अन्धविश्वासों और धार्मिक कर्मकांड के प्रति विद्रोह किया था और तय कर लिया था कि धर्मग्रंथों में जो लिखा है मैं उसका अन्धानुकरण नहीं करूंगा ।"[3]

1.2. शिक्षा :

माचवे जी की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई । "दरबार हाई स्कूल रतलाम में सीधे पाँचवी कक्षा में भरती हुए । इनके बड़े भाई काशीनाथ जी

---

1. डा० प्रभाकर माचवे : एक उन्मुक्त ठहाके को खोना - डा० माचवे जी से साक्षात्कार पद्मा सचदेव - धर्मयुग - 16-7-1991 - पृ. 31
2. -वही- पृ. 33
3. सुरेश चन्द्र त्यागी (लेख) एक लेखक के संस्करण (लेख) पृ. 56 सं० कमलकांत बुधकर और शिव जायसवाल - व्हार - अर्पण:

वही गणित के अध्यापक थे । तेरह वर्ष की आयु में मैट्रिक करके क्रिश्चियन कालेज इंदौर गए ।"[1] इस प्रकार सन् 1930 ई में वे मैट्रिक उत्तीर्ण हुए । अपनी विद्यार्थी जीवन और विभिन्न भाषाओं के प्रति उत्पन्न आसक्ति के बारे में बताते हुए डॉ० माचवेजी कहते है कि --" एक बार की बात याद आती है, तब हम रतलाम में थे । वहाँ एक फकीर आता था - जैन उपासक । वही मुँह पर पट्टी बाँधने वाले । साधुओं का उपासनागृह था । उनकी लायब्रेरी में जाकर किताबें पढ़ना मेरा नियम हो गया । मैंने गुजराती वहीं पर सीखी । भाषाओं से प्रेम भी यहीं से शुरू हुआ । मैट्रिक मैंने रतलाम से ही किया । तब मेरी आयु तेरह बरस की थी । काफी दब्बू किस्म का था मैं । सब के साथ खाना पकाने में भी मुश्किल पेश आती थी । मैट्रिक के बाद मैं इन्दौर क्रिश्चियन कालिज में गया । वहाँ तब तक आन्दोलन शुरू हो चुका था । हम भी उसमें कूद लिये । वहाँ कालेज के पीछे हरिजनों की झोपड़ियाँ थी । मैं उन्हें पढ़ाने भी लगा । यह प्रेरणा मुझे एक ईसाई प्रोफेसर से मिली थी । वे हरिजन से ईसाई हुए थे । वेकहते थे - पढ़ाई को जिन्दगी से जोड़ो, उसके बगैर ठीक विद्या न आयेगी । सो हम नयी - नयी दुनिया देख रहे थे । रात को लालटेन ले कर उन्हें पढ़ाने जाते । प्यास लगने पर पानी भी पी लेते । तंगनजरी घटती जा रही थी ।"[2] सन् 1934 में बी.ए. उत्तीर्ण हुए । इन्होंने कालेज शिक्षा के समय ही इन्दौर स्कूल आफ आर्टस में छात्र के रूप में भर्ती हुए । इस प्रकार माचवे जी एक चित्रकार भी थे । वे कहते हैं - "पेंटिंग मैंने इंदौर के स्कूल आफ आर्टस में सीखी । हमारे गुरु थे डी.डी.देवलालीकर । बेंद्रे मुझसे एक साल सीनियर थे । हुसेन मेरे साथ के है, पर पेंटिग में खर्चा बहुत आता था, इसलिए छोड़ दिया ।"[3]

---

1. राजेन्द्र उपाध्याय - तार सप्तक का एक और तार टूट गया - पृ.4 आजकल पत्रिका, {अंक.4 अगस्त 1991}
2. पद्मा सचदेव का डॉ० प्रभाकर माचवे से साक्षात्कार : डॉ० प्रभाकर माचवे : एक उन्मुक्त ठहाके को खोना: धर्म युग अंक 16-7-1991 पृ.31
3. -वही- पृ.32

सन 1936 में उन्होंने आगरा कालेज, आगरा से दर्शन शास्त्र विषय लेकर एम॰ए॰प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए । "इससे पहले नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा से "साहित्य रत्न" प्रथम स्थान से उत्तीर्ण किया । नंददुलारे वाजपेयी निबंध परीक्षक थे । "काव्य में रहस्यवाद" निबंध पर वाजपेयी जी ने सर्वाधिक अंक दिए - यह बात निराला जी ने अपने "नंददुलारे वाजपेयी" नामक निबंध में भी लिखी है । प्रभाकर का यह निबंध पांच कापियों में था और यह वर्षों तक हिंदी साहित्य संस्थान, इलाहाबाद में सुरक्षित रहा ।"[1] डा॰ माचवे अपनी एम॰ए॰की पढ़ाई केबारे में कहते हैं - "एम॰ए॰ करने मैं आगरा गया । तब मध्यप्रदेश की किसी भी युनिवर्सिटी में फिलासफी में एम॰ए॰न था । मैं अकेला पढ़ गया । ट्यूशन कर के पढ़ता था । भाई चाहते थे वकील बनूं, पर मुझे लगता यह झूठा धंधा है, इसलिए जानबूझ कर एल॰एल॰बी॰ में फेल कर गया ।"[2]

माचवे ने सन् 1943 में अंग्रेजी में एम॰ए॰किया तथा सन् 1958 में "हिंदी, मराठी निर्गुण सन्त काव्य" पर आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच॰ डी॰ की उपाधि प्राप्त की ।" मध्यभारत तथा आगरा में पहले तथा अखिल भारत में वह दूसरे मराठी भाषी है जिन्हें हिंदी - मराठी निर्गुण संतकाव्य" के शोध ग्रंथ पर हिंदी साहित्य की पी॰एच॰डी॰उपाधि द्वारा सम्मानित किया गया ।"[3]

---

1. राजेन्द्र उपाध्याय - तार सप्तक का एक और तार टूट गया - पृ॰4 आजकल अंक- 4, अगस्त 1991
2. पद्मा सचदेव का डा॰ प्रभाकर माचवे से साक्षात्कार : डा॰ प्रभाकर माचवे : एक उन्मुक्त ठहाके को खोना: धर्मयुग अंक 16-7-91पृ॰ 32
3. जगदीश नारायण बोरा - प्रभाकर माचवे : एक बहुरंगी व्यक्तित्व सं॰ कमलकांत बुधकर एवं शिव जयसवाल -बहार अर्पण - पृ॰ 19

1.3. विवाह :

माचवे जी का विवाह शरद पारनेरकर नामक कन्या के साथ 8 नवम्बर 1940 को संपन्न हुआ । दोनों उस समय महात्मा गांधी की सेवाग्राम आश्रम में रहते थे । माचवे जी अपने विवाह के बारे में डा० राम विलास शर्मा को बताते हैं –"सेवाग्राम की कुटिया । 1939 का वर्ष । यहीं गांधी जी से प्रथम भेंट हुई । मैं वर के रूप में वहाँ ले जाया गया था लड़की के पिता द्वारा जो वहाँ गो– सेवा संघ में थे । गांधी जी ने अपना मौन तोड़कर लड़की से मेरे बारे में चर्चा की, फिर मुझ से कहा कि तुम भी उससे मिल लो और इस प्रकार मेरी शादी सेवाग्राम में तय हो गयी । सेवाग्राम में ही कुटिया के पीछे 8 नवंबर, 1940 को मेरा विवाह संपन्न हो गया । विवाह का कुल खर्च हुआ साढ़े नौ आने । उस दिन सौभाग्य से अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक भी थी, आश्रम में ही । अतः इस अवसर पर खान अब्दुल गफ्फार खाँ, मौलाना आजाद, सरोजिनी नायडू भी उपस्थित थे । कस्तूरबा गांधी और महादेव देसाई तो थे ही ।"[1]

इनके विवाह के शुभावसर पर "कस्तूरबा ने स्वयं अपने हाथ से सूत कातकर एक साड़ी माचवे जी की अर्धांगिनी को भेंट की । भारत में ऐसी केवल दो ही साड़ियाँ हैं । दूसरी श्रीमती इन्दिरा गांधी के पास थी । जो उन्होंने गांधी संग्रहालय को दे दी । बापू ने स्वयं 108 तार कातकर माचवे जी के गले में डाले ।"[2]

- -

1. रामविलास शर्मा – ज्ञान का विश्वकोश (लेख)
सं० मारुतिनन्दन पाठक – डा० प्रभाकर माचवे: सौ दृष्टिकोण – पृ. 226

2. –वही– –वही– पृ. 226

माचवे दम्पति को दो सन्तानें हुई । सन् 1948 में पुत्र असीम का जन्म नागपुर में हुआ । "माचवे जी के पुत्र का नाम – "असीम" राहुल जी का दिया हुआ है ।"[1] सन् 1950 में पुत्री चेतना का जन्म इलाहाबाद में हुआ । "उन्होंने अपने पुत्र और पुत्री को ऊँची शिक्षा दिल्ली और जीवन साथी के चयन के लिए दोनों को स्वतंत्र रखा । पुत्र ने सिन्धी लड़की से विवाह किया और पुत्री ने पंजाबी लड़के से । डा० माचवे ने दोनों में प्रसन्नतापूर्वक सहमति दी और दोनों को स्वीकार किया ।"[2]

<u>1.4. नौकरियाँ</u> :

डा० प्रभाकर माचवे अपने जीवन काल में अनेक क्षेत्रों में सेवारत रहे । पढ़ाई के पश्चात सबसे पहले उन्होंने चालिस रुपये महावार पर सन 1937 में राष्ट्रीय मजदूर संघ, इंदौर के मंत्री बने । सन् 1938 से सन् 1948 तक माधवकालेज, उज्जैन में अंग्रेजी व दर्शन के प्राध्यापक के रूप में काम किया । 1940 में अज्ञेय ने आकाशवाणी, दिल्ली से प्रथम वार्ता कराई । सन् 1948 में उज्जैन की अध्यापकी छोड़कर आकाशवाणी नागपुर में काम करने लगे । उन्होंने सन् 1948 से सन् 1954 तक आकाशवाणी के नागपुर, इलाहाबाद, विदेश प्रसार सेवा दिल्ली में छह वर्ष कार्य के बाद त्यागपत्र दिया । सन् 1954 में केन्द्रीय साहित्य अकादमी, नई दिल्ली में प्रथम सहायक सचिव के रूप में जवाहरलाल नेहरू तथा डा० राधाकृष्णन द्वारा उनकी नियुक्ति हुई । डा० माचवे साहित्य अकादमी की स्थापना तथा उनका वहाँ के कार्य के बारे में बताते है कि – "1954 में साहित्य

---

1. सं० मारुतिनंदन पाठक,भूमिका – डा० प्रभाकर माचवे: सौ दृष्टिकोण पृ. 23
2. -वही- -वही- पृ. 22

अकादमी की स्थापना हुई । नेहरू जी अकादमी के पहले अध्यक्ष थे । उन्होंने कहा - मैं जब भी विदेश जाता हूँ हमारे कवियों, लेखकों के बारे में पूछा जाता है । एक संस्था ऐसी जरूर होनी चाहिए जो साहित्यकारों की संस्था हो । जहाँ साहित्यकार की पहचान हो, सम्मान हो और यह साहित्य अकादमी बनी । इसकी कार्यकारणी में उस समय मामा वरेरकर, जैनेन्द्र, उमाशंकर जोशी व दिनकर जैसे लोग थे । मैं साहित्य अकादमी का पहला असिस्टेंट सेक्रेटरी था । सेक्रेटरी थे आचार्य कृपालानी के भतीजे कृष्ण कृपालानी । वे मौलाना आजाद के प्राइवेट सेक्रेटरी भी थे । सो काम ज्यादा मैं ही देखता था कृष्ण कृपालानी जी के कमरे के आधे हिस्से में अकादमी शुरू हुई । मैं अकादमी का पीर बावर्ची भिश्ती सब कुछ था । वहीं मीटिंग भी होती । खुद साइक्लोस्टाइल करके मैं पर्चे बाँटता बस जो काम उस समय आधे कमरे से शुरू हुआ आज देखिए कहाँ जा पहुँचा है ।[1] उन्होंने सन् 1959 से 1961 तक अमेरिका के दो विश्वविद्यालय - विस्कान्सिन तथा कैलिफोर्निया में अतिथि प्राध्यापक के रूप में काम किया । वहाँ हिन्दी, भारतीय साहित्य, गांधी दर्शन का अध्यापन इनका क्षेत्र रहा । अमेरिका से लौटते समय तीन माहमें 13 देशों की यात्रा इन्होंने की । सन् 1963 में श्रीलंका में दो विश्वविद्यालयों में व्याख्यान देने के लिए यात्रा की । सन् 1964 से सन् 1966 तक संघ लोक सेवा आयोग में विशेष भाषाधिकारी के रूप में लालबहादुर शास्त्री द्वारा नियुक्त हुए । सन् 1969 में पश्चिम जर्मनी की सरकार के निमंत्रण पर डेढ माह यात्रा पर गए । सन 1971 से सन 1975 तक केन्द्रीय साहित्य अकादमी के सचिव

---

1. पद्मा सचदेव का डा0 प्रभाकर माचवे से साक्षात्कार : पृ. 34
डा0 प्रभाकर माचवे : एक उन्मुक्त ठहाके को सोना: धर्म युग अंक- 16-7-1991.

के रूप में कार्यरत थे और 58 वर्ष की आयु में स्वेच्छा से सेवानिवृत्त हो गए। इसी बीच सन् 1973 में बांग्लादेश की यात्रा इन्होंने की। सन् 1976 से 1977 तक भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला में मानद पार्षद के रूप में रहे। सन् 1978 में कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी भाषा विज्ञान संस्थान में इन्होंने तीन मास अतिथि प्राध्यापक के रूप में, पुनः कश्मीर विश्वविद्यालय में तीन मास अतिथि प्राध्यापक के रूप में काम किया। सन 1979 से सन् 1985 तक भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता में निदेशक के रूप में सेवा की।

सन् 1981 क्रान्ति में जापान, हांगकांग, थाईलैण्ड की जापान फाउंडेशन के निमंत्रण पर यात्रा पर गये। सन् 1984 में नेपाल की यात्रा की। सन 1985 में वृन्दावन शोध संस्थान में एक मास संचालक रहे। सन् 1986 में पूर्णतः सेवानिवृत्त हो गए और अपने घर पर ही अध्ययन लेखन में व्यस्त रहने लगे। सन् 1987 ग्रीष्म में मोरीशस सरकार के निमंत्रण पर एक मास यात्रा पर गए। सन् 1988 में 72 वर्ष की आयु में इंदौर के दैनिक "चौथा संसार" के प्रधान संपादक बने।

1.5. विद्वानों और साहित्यकारों की दृष्टि में माचवे :

बहुमुखी प्रतिभाशाली डा० प्रभाकर माचवे को अनेक गणमान्य विद्वानों तथा शीर्षस्थ साहित्यकारों ने अपनी अपनी दृष्टि से देखा है और परखा है। माचवे जी की अद्भुत ज्ञान भण्डार को देखकर "गांधी जी ने उन्हें "मशीन" और शांतिप्रिय द्विवेदी ने "राइटर" नहीं "टाइप राइटर" कहा था। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ज्ञान पिपासु "बहुश्रुत" एवं सरस साहित्यकार, डा० शिवमंगल सिंह "सुमन" ने "मनस्वी एवं संवेदनशील साधक, डा० रणवीर रांग्रा ने विलक्षणताओं का स्वामी तथा विरोधाभासों

का संगम, राहुल सांकृत्यायन ने "चिरयात्री", उमाशंकरदीक्षित ने "एक दुर्लभ ह्यूमर लेखक कहा था तो किसी ने उन्हें पिलग्रिम आफ नालेज" तो किसी ने "कम्प्यूटराइज्ड माइंड" कहा था। अमृतलाल नागर ने उनकी "अथक साहित्य लगन" की तारीफ की है तो किसी ने उनके "सरल स्वभाव कुछ छल नाहीं", की, तो किसी ने उन्हें एक व्यक्ति एक संस्था" कहा है। किसी ने उन्हें "हिंदी का मैक्समूलर" कहा तो किसी ने "एंग्री यंगमैन सत्तर के" और बालकवि बैरागी ने तो उन्हें "ऋषि परंपरा के पुरुष" कहा है। रामविलास शर्मा ने "ज्ञान का विश्वकोश" डा रामदरश मिश्र ने "स्नेह की छांव देने वाला बरगद" तथा विष्णु प्रभाकर ने "प्रतिभा पुंज" कहा है।"[1] अज्ञेय ने भी माचवे को प्रतिभा पुंज कहा था। उनका कहना था कि --"भारतीय भाषाओं में यदि एक एक माचवे होता तो भारत की भाषा समस्या और भारतीयता की सार्वभौम पहचान बनाने के लिए हमें किसी राजनेता का मुख नहीं ताकना पड़ता।"[2]

"आजकल के संपादक श्री सुरेश चन्द्र शर्मा लिखते हैं कि - "साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादकों के लिए तो वे संकट मोचन थे। किसी भी विषय अथवा विधा पर किसी भी समय लिखवाना हो तो माचवे जी जैसा तुरंत लिख कर देने वाला व्यक्ति और कोई दूसरा नहीं था। "आजकल" के साथ तो ऐसा अनेक बार हुआ, जब दूसरे साहित्यकार वचन देकर भी अपने वायदे से मुकर गए या किसी कारण लिखने में आनाकानी करने लगे तो संकट के वक्त माचवे जी ही काम आए। यह उनकी अध्ययनशीलता और

---

1. राजेन्द्र उपाध्याय - तार सप्तक का एक और तार टूट गया (लेख) पृ.4
आजकल पत्रिका - अंक 4 अगस्त 1991
2. विजयेन्द्र - स्नातक - भूमिका
डा0 प्रभाकर माचवे - साद्दुल्ला की खरी खरी पृ. ।

अद्भुत स्मरणशक्ति का ही कमाल था कि किसी भी विषय पर वह आनन फानन में लेख तैयार कर देते थे। किसी भी पत्रिका अथवा संपादक को उन्होंने लेख आदि के लिए शायद ही कभी निराश किया हो।"[1] इसी प्रकार विष्णु खरे लिखते हैं -- "वे लिखने के किसी निमंत्रण को अस्वीकार नहीं करते थे। 1968 की एक शाम करीब सवा पाँच बजे वे दफ्तर से लौटे। चिट्ठियाँ खोलीं। एक पत्र अंग्रेजी पत्रिका "समीक्षा" के संपादक एम गोविंदन का था जिन्होंने अविलम्ब गुजराती साहित्य पर एक लेख माँगा था। माचवे जी तत्काल उसे लिखना शुरू कर दिया। साढ़े छह बजे डाक बक्से में डालकर भी आ गए।"[2]

इसी प्रकार अनेक विद्वान तथा साहित्यकार डा0 माचवे के संबंध में अनेक संस्मरण, लेख आदि लिखे है जिनमें डा0 माचवे के प्रति उन्होंने सौहार्द भावना व्यक्त किया है। विशेषत: डा0 माचवे जी की षष्ठि पूर्ति के समय "अक्षर अर्पण" ग्रंथ तथा सत्तरवे जन्म दिन के शुभवसर पर डा0 प्रभाकर माचवे : सौ दृष्टिकोण" ग्रंथ प्रकाशित किये गये हैं। "डा0 प्रभाकर माचवे : सौ दृष्टिकोण" ग्रंथ मे अमृतलाल नागर, डा0 अमृता प्रीतम द्रोणवीर कोहली, बालकवि बैरागी, रामविलास शर्मा, राजेन्द्र अवस्थी डा0 रामदरश मिश्र, प्रो विजयेन्द्र स्नातक, विष्णु प्रभाकर, हिमांशु जोशी, त्रिलोचन शास्त्री आदि लगभग सौ विद्वानों के लेख छपे हैं। अक्षर अर्पण में भी अनेक साहित्यकारों के लेख है।

---

1. सं0 सुरेश चन्द्र शर्मा - संपादकीय - पृ0 3
   "आजकल" पत्रिका अंक -4 [illegible] 1991
2. विष्णु खरे - भारतीय साहित्यों का सेतु - पृ0 6
   नवभारत टाइम्स (दैनिक हिंदी) 23-6-1991

फिर भी उन्हें एक शिकायत विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों से है। वे कहते हैं कि "मैं 1934 से हिंदी में लिख रहा हूं। चालीस साल बीत गये। अभी तक मैंने अपने 40 से अधिक ग्रंथों जिनमें आठ उपन्यास भी हैं - की कोई ऐसी समीक्षा नहीं पढ़ी जिससे मैं कुछ सीख सकूं। अधिकतर एकदम सतही समीक्षाएं होती हैं - या तो केवल प्रशंसा या पूर्वाग्रह युक्त निंदा। इसलिए मेरा विश्वास विश्व विद्यालयी समीक्षकों पर से उठ गया है। वे किताबें विशेषत: हम जैसे "नवतावादी" लेखकों की न सहानुभूति से, न गहराई से पढ़ते हैं, न उनके बारेमें जानते हैं - चूंकि वे उनके "कोर्स" में नहीं होती, न पाठ्य पुस्तकों में। यह वृत्ति ठीक नहीं है। इससे मेरी बात छोड़िये, चूंकि मैं किसी की ज्यादा परवाह भी नहीं करता - अपना मार्ग स्वयंभू बनाता हूं - पर अन्य कई अधिक संवेदनशील श्रेष्ठ लेखकों के साथ बहुत अन्याय होता रहा है। विशेषत: गये दो दशकों में विश्व विद्यालयीन स्तर की आलोचना, आधुनिक साहित्येतिहास - लेखन और मूल्यांकन में।"[1]

1.6. "प्राप्त" सम्मान :

डा० प्रभाकर माचवे को अपने जीवन काल में अपने भाषा एवं साहित्यिक सेवाओं के प्रति आदर व्यक्त करते हुए अनेक "सम्मान" प्राप्त हुए जो निम्न प्रकार हैं -

1. सन 1972 में सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार
2. सन् 1983 हिंदी साहित्य सम्मेलन, कुरुक्षेत्र अधिवेशन में "साहित्य वाचस्पति" उपाधि से विभूषित।

- -

1. डा० प्रभाकर माचवे - जो : संस्मरण [प्रकाशन काल 1960]
   सं० भीष्म सहानी व अन्य - आधुनिक हिंदी उपन्यास - पृ. 234

3. सन् 1985 उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का सम्मान - पुरस्कार श्री राजीव गांधी द्वारा

4. सन् 1985 मित्र परिषद कलकत्ता द्वारा सम्मान

5. सन् 1987 दिल्ली हिंदी अकादमी का साहित्यकार सम्मान

6. सन 1989 केन्द्रीय हिंदी संस्थान द्वारा सम्मान

7. सन् 1990 मारिशस "अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन" का सम्मान

1.7. निधन :

दिनांक 17 जून, 1991 को दोपहर डेढ़ बजे दिल का दौरा पड़ने से डा० प्रभाकर माचवे की मृत्यु हो गई। इस प्रकार डा० माचवे जी अपने चौहत्तर वर्ष, छ पांच मास, बाईस दिन के जीवन में साहित्य, संस्कृति, राष्ट्रनीति और भाषिक क्षेत्र में जो कार्य किया उसका आकलन करना कष्ट साध्य कार्य है।

2. कृतित्व :

डा० प्रभाकर माचवे जीका साहित्य जीवन सन 1934 से शुरू हुआ। वैसे वे विद्यार्थी जीवन से ही कविताएं लिखते थे। एक साक्षात्कार में माचवे जी अपने आरंभिक लेखन के बारे में बताते हुए कहते है कि -"बड़े भाई शार्दूल विक्रीडित छंद में विवाह के मंगलाष्टक रचते थे जिसमें वधू-वर के नाम गूंथ दिये जाते, जो एक शब्द पहेली की तरह लगता था। हमने भी आठ बरस की उम्र में वैसा पद्य रचा। यह कविता कम शब्द क्रीडा अधिक थी। फिर 17 बरस की उम्र में मेरी एक मराठी कविता जलगांव के "काव्य रत्नाकर" में और एक हिंदी खण्डवा से छपते "कर्मवीर" में,

बाद में इन्दौर की "वीणा" में छपी । उन आरंभिक रचनाओं में "कुशन का माध्यम" और "सन्तुष्टि" जैसे शब्द और बहुत ज्यादा सोचना, बूंद में समुद्र के दर्शन करने के बराबर है । हाँ, इसी समय गद्य लिखना भी शुरू हो गया था । अंग्रेजी में निबंध, हिंदी में रेखाचित्र, लघुकथा, गद्य काव्य आदि भी गद्य या पद्य जैसी कोई बाध्यता या पर्यायवाची विचार मनमें नहीं थे । सारा लेखन जिस विधा में हो - एकरस लगता था । हाँ, पढ़ता कविता अधिक था क्योंकि वे समय कम लेतीं थीं, चुनौती सी देती थीं । कविता के लिये ही, रवीन्द्रनाथ पढ़ने के लिये बंगला और कलापी पढ़ने के लिये गुजराती आदि भाषाएं सीखीं ।"[1]

इस प्रकार सन 1934 में खंडवा में माखनलाल चतुर्वेदी के संपर्क में आने के कारण पहली कविता "कर्मवीर" में छपी । सन 1935 में प्रेमचन्द ने इनकी पहली कहानी "हंस" में छापी । सन 1936 में निराला ने "सुधा" में पहला निबंध "नाटक में मनोविज्ञान" छापा । 1936 में ही "माधुरी" में "वह विक्षिप्त दार्शनिक" छापा । सन् 1937 में महादेवी ने एक कहानी "चाँद" में छापी । इसी वर्ष माचवे द्वारा संपादित "जैनेन्द्र के विचार" प्रकाशित हुई । सन् 1938 में अज्ञेय ने "विशाल भारत" में दो "इम्प्रेशनिस्ट" कविताएं छपीं ।

सन् 1934 में बम्बई में कांग्रेस के पचासवें अधिवेशन में भाग लेकर अध्यक्ष डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के भाषण का हिंदी अनुवाद किया । इसके बारे में बताते हुए माचवे कहते हैं कि - 1934 में बंबई की कांग्रेस हुई तो

---

1. कमलाकान्त बुधकर का डॉ० प्रभाकर माचवे से साक्षात्कार : आइने के सामने - माचवे-2. बहिर अर्पण - पृ. 68

तो मैं उसमें भी गया । राजेन्द्रबाबू का भाषण अंग्रेजी में था । सारी रात लालटेन जला कर उसे हिंदी में किया ।"[1]

सन् 1943 में अज्ञेय के संपादन में प्रथम "तारसप्तक" का प्रकाशन हुआ । इसमें प्रयोगवादी सात कवियों के कविताएं छपी थीं । ये कवि थे -अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, रामविलास शर्मा और गिरिजा कुमार माथुर ।

इन्होंने सन् 1946 में महापंडित राहुल सांकृत्यायन के साथ मिलकर 16000 शब्दों के अंग्रेजी हिंदी शासन शब्द कोश का संपादन किया । "तदर्थ भारत के आठ प्रांतों में घूम कर भाषा शास्त्रियों तथा कोशकारों से मिले और हिंदी के मिशनरी की भांति हिंदी साहित्य सम्मेलन के लिये यह कार्य किया । इस कोश के लिए माचवे ने एक पैसा पारिश्रमिक नहीं लिया । आज यह कोश उपलब्ध नहीं है ।"[2]

इनका पहला उपन्यास "परन्तु" का प्रकाशन सन् 1951 में हुआ ।

डॉ० प्रभाकर माचवे ने हिंदी, मराठी तथा अंग्रेजी भाषा में उपन्यास, कहानी, एकांकी, कविता, जीवनी, दर्शन, बाल साहित्य, यात्रा वर्णन, व्यंग्य निबंध, शब्द चित्र, रेखा-चित्र, समीक्षाएं, सम्पादित ग्रंथ और अनुवाद आदि का लेखन किया है । उनके द्वारा लिखे गए ग्रंथों की सूची इस प्रकार है -

- -

1. पद्मा सचदेव का डॉ० प्रभाकर माचवे से साक्षात्कार - डॉ० प्रभाकर माचवे : एक उन्मुक्त ठहाके का खोना - धर्म युग अंक 16-7-1991 पृ: 32
2. जगदीश नारायण बोर - प्रभाकर माचवे : एक बहुरंगी व्यक्तित्व(लेख) आकार अर्पण - पृ: 20

डा0 प्रभाकर माचवे के प्रकाशित ग्रंथों की सूची

2·1· हिंदी ग्रंथ

2·1·1· उपन्यास :

1· परन्तु : प्रगति प्रकाशन : 1951
2· एकतारा : चेतना प्रकाश हैदराबाद 1951 हिंदी प्रचारक वाराणसी
कल्पना कार्यालय हैदराबाद, 1958
3· द्वाभा : हिंदी भवन, इलाहाबाद – 1952
4· सांचा : हिंदी प्रचारक वाराणसी, 1964
पुन: साहित्य निधि 1987
5· जो : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली: 1965
6· किशोर : कृष्ण प्रकाशन, अजमेर, 1969
7· तीस चालीस पचास : राजपाल, दिल्ली, 1973
8· दर्द के पैबन्द : हिंदी भवन, इलाहाबाद 1974
9· किसलिए : राजपाल, दिल्ली, 1975
10· छूत : राजपाल दिल्ली 1976
11· लक्ष्मीबेन : राजपाल दिल्ली, 1976
12· कहाँ से कहाँ : पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1978
13· दरवाजा : विभूति प्रकाशन, दिल्ली, 1981
14· आधि मेरी बाकी उनका – विभूति प्रकाशन, दिल्ली 1983
15· लापता : राजपाल, दिल्ली, 1984
16· अनदेखी : राजपाल, दिल्ली 1988

2·1·2· एकांकी :

1· गली के मोड़ पर : दत्त ब्रदर्स, अजमेर, 1960
(पुन:) किताब घर 1988

2·1·3· कविता संग्रह :

1· तार सप्तक - 1 : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली- 1943
(अन्य कवियों के साथ कविताएँ) : पुनर्मुद्रण - 1968
2· स्वप्न- भंग (सानेट) : हिंदी भवन, इलाहाबाद- 1955
3· अनुक्षण : भारतीय ज्ञानपीठ - 1958
4· मेघल : भारतीय ज्ञानपीठ - 1963
5· विश्वकर्मा (खंड काव्य) : भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ- 1988

2·1·4· कहानी संग्रह :

1· कीनों का साया : इंदौर: 1943 (अप्राप्य)

2·1·5· जीवनी :

1· छत्रपति शिवाजी : सोमैया पब्लिकेशन प्रा·लि· बम्बई: 1975

2·1·6· दर्शन :

1· विभिन्न धर्मों में ईश्वर कल्पना : बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी पटना, 1974
2· आधुनिक भारतीय विचारक : बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी पटना 1976·

2·1·7· बाल साहित्य :

1· असम : 1957
2· केरल : 1957
3· महाराष्ट्र: 1957
4· आदिवासी बच्चे : राजपाल, दिल्ली

2·1·8· यात्रा वर्णन :

1· गोरी नजरों में हम : राजकमल पाकेट बुक्स, पटना : 1964
2· रूस में : हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी : 1976

2·1·9· व्यंग्य :

1· खरगोश के सींग : नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद : 1950
2· बेरंग : नव साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली : 1956
3· तेल की पकौड़ियाँ - भारतीय ज्ञानपीठ : नई दिल्ली : 1963
4· विसंगति : भारती भंडार, इलाहाबाद : 1984
5· खबरनामा : कृष्ण ब्रदर्स अजमेर·

2·1·10· शब्द चित्र, रेखाचित्र :

1· शब्द - सेवा : विभूति प्रकाशन, दिल्ली - 1980

2·1·11 : सम्पादित ग्रंथ :

1· जैनेन्द्र के विचार : पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली - 1937
2· शासन साहित्य कोश - हिंदी साहित्य सम्मेलन - 1948
3· गांधी शतदल : प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली : 1969
4· बारह कदम (कहानी संग्रह) : मैकमिलन, नई दिल्ली - 1971
5· आदर्श पद्य संग्रह: अल्फ्रेड, नई दिल्ली, 1971
6· आदर्श गद्य रचना (कहानी संग्रह) : अल्फ्रेड, नई दिल्ली : 1971
7· रेती के रात दिन : राजस्थान शासन, शिक्षा मंत्रालय, जयपुर 1984
8· शतदल (कविता संकलन) : भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता - 1980
9· भारतीय संस्कृति (दो खंड) : भारतीय संस्कृति संसद कलकत्ता 1984

10. भारतीय उपन्यास कथासार (दो खंड) भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता : 1983
11. वाद और स्थिति : मित्र परिषद, 1983
12. मैत्री और सेवा, मित्र परिषद, 1985
13. भारतीय : 2001 : मित्र परिषद कलकत्ता, 1987
14. राहुल स्मृति : पी पी एच , दिल्ली 1987
15. धर्म, दर्शन, संस्कृति : भारतीय संस्कृति संसद कलकत्ता

2.1.12. समीक्षा ग्रंथ :

1. नाट्य चर्चा: हिंदी विद्यापीठ, देवघर - 1951
2. हिंदी गद्य की प्रवृत्तियाँ : राजकमल, नई दिल्ली, 1952
3. हिंदी पद्य की प्रवृत्तियाँ : राजकमल, नई दिल्ली, 1952
4. हिंदी निबंध : राजकमल, नई दिल्ली. 1952
5. व्यक्ति और वाङ्मय : साहनी प्रकाशन, 1952
6. समीक्षा की समीक्षा : सहनी प्रकाशन, 1952
7. मराठी और उसका साहित्य : साहित्य सहकार, नई दिल्ली 1954.
8. हिंदी साहित्य की कहानी: ओरियंटल बुक डिपो, नई दिल्ली, 1954
9. सन्तुलन : आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 1954
10. कबीर : साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1954
11. वेमासुत : साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1958
12. भारत और एशिया का साहित्य : कृष्ण प्रकाशन, अजमेर, 1969
13. हिंदी ही क्यों तथा अन्य निबंध : पारिजात प्रकाशन, पटना 1981
14. मराठी साहित्य का इतिहास : उ.प्र. हिंदी संस्थान, लखनऊ

15. राहुल सांकृत्यायन : साहित्य अकादेमी, 1980
16. मैथिलीशरण गुप्त : राजपाल एंड संस, 1987
17. बालकृष्ण शर्मा "नवीन" : राजपाल एंड संस, 1987
18. राहुल सांकृत्यायन, राजपाल, 1987
19. माखनलाल चतुर्वेदी : राजपाल, दिल्ली

2.1.13. अनुवाद :

1. क्या हम भूखों मरें ? : गांधी आश्रम, पटना, 1944
2. उल्का (वि.के.खांडेकर का मराठी से) रा.ज.देशमुख कोल्हापुर 1950
3. शांति के लिए अणु (सोवियत रूस के लिए) 1956
4. बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष : प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 1956
5. भग्नमूर्ति (मराठी से) साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1958
6. आज का भारतीय साहित्य : साहित्य अकादमी, राजपाल दिल्ली, 1958
7. लद्दाख की छाया में (भवानी भट्टाचार्य का उपन्यास अंग्रेजी से) राजपाल, दिल्ली, 1966
8. सात यूगोस्लाव कहानियाँ : साहित्य अकादमी, नई दिल्ली 1958
9. खुली नौका और अन्य कहानियाँ (अमेरिका के लिए)
10. पुण्यकोटि गौ की कहानी (कन्नड़ से) कृष्ण प्रकाशन : 1969
11. टॉल्स्टाय और भारत : साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1969
12. अश्लोकिता (मराठी से) भारतीय ज्ञान पीठ, 1971
13. नामदेव (मराठी से) साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1970

14· रान्हे [मराठी से] प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 1971

15· ब्राह्मण कन्या [मराठी से] नेशनलबुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1971

16· अस्तित्ववाद: म·प्र·ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1974

17· सहयात्रा और "लिंकन" : राजपाल एंड सन्स, 1987

18· आजादी [चमन लाल का उपन्यास अंग्रेजी से] 1988

2·1·14· अन्य :

1· सौ सवाल एक जवाब : राजपाल, दिल्ली: 1969

2· मराठी लोक कथाएं : आत्माराम संस, दिल्ली, 1969

3· सीखिए पढ़िए 15 भाषाएं : स्टार पाकेट बुक दिल्ली, 1976

4· नमक आन्दोलन : प्रकाशन विभाग, 1986

5· गांधी के आश्रम में - एन सी ई आर टी·

6· गांधी जी और भारतीय साहित्य

2·2· मराठी ग्रंथ :

1· मालविका [कविता] 1934

2· मराठी सुनीत [कविता] 1936

3· हिंडोकातील विश्रब [कहानी] 1938

4· चरित्र आत्मचरित्र आणि टीका [समीक्षा] 1939

5· त्याग पत्र [भूमिका] 1939

6· कल्कि [अनुवाद] 1958

7· तव चरणी ही अंजली [कविता] 1970

8· हिंदी कथा [अनुवाद] 1973 [एन बी टी]

9. पंजाबी कथा [अनुवाद] 1973 [एन बी टी.

10 चिदंबरा [सुमित्रानंद पंत की कविताओं का अनुवाद] भारतीय ज्ञानपीठ, 1969

11. जगजीवन राम : व्यक्ति और विचार [मूल्यांकन] 1973

12. सुब्रह्मण्य भारतीच्या कविता [अनुवाद] तमिल संगम, कलकत्ता 1983

13. मरुभूमिचा मेघ [अनुवाद] कलकत्ता : 1987

2.3. अंग्रेजी ग्रंथ :

1. वेदान्त सूत्र - साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1967

2. कबीर: साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1968

3. नामदेव : लाइफ एण्ड पोएट्री: पंजाबी यूनि. 1969 [पंजाबी में अनुवादित]

4. हिंदी शार्ट स्टोरीज : जयको : 1973 [संपादित]

5. ईस्ट बेसेस वेस्ट इन फिलासाफी एण्ड लाइफ: पुना यूनि. 1974 [रानडे लेक्चर्स]

6. फोर डिकेड्स आफ इण्डियन लिटरेचर : चेतना पब्लिकेशन, नई दिल्ली 1976 [संपादन]

7. बुद्धिज्म इन इंडिया एण्ड सीलोन : चेतना पब्लिकेशन, नई दिल्ली 1976 [संपादन]

8. माडर्न इण्डियन पोएट्री [अनुवाद] आई सी सी आर 1976

9. प्राब्लेम्स आफ इण्डियन लिटरेचर : स्टेटिस्टिकल इन्स्टीट्यूट कलकत्ता: 1976

10. एकात्मक पोएम्स : पुनाइटेड राइटर्स, कलकत्ता: 1976

11. हिन्दुइज्म - इट्स कंट्रीब्यूशन टू साईंस एण्ड सिविलाइजेशन: विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1979

12. मानिंग फ्लॉवर्स: मराठी से काव्यानुवाद : 1979

13. लिटरेरी स्टडीज एंड स्केचेस : युनाइटेड राइटर्स, कलकत्ता: 1979

14. माडर्निटी एण्ड कंटेम्परेरी इण्डियन लिटरेचर : चेतना पब्लिकेशन नई दिल्ली, 1977

15. रिनैसांस इन इण्डियन लिटरेचर : युनाइटेड राइटर्स : कलकत्ता 1979

16. फ्राम सेल्फ टू सेल्फ (आत्मकथा) : विकास पब्लिकेशन: 1976 (अप्राप्य)

17. राहुल सांकृत्यायन : साहित्य अकादेमी : 1981

(इनके अतिरिक्त अनेक ग्रंथ और रचनाएं देशी - विदेशी अनेक भाषाओं में अनुवादित हुए हैं)

"माचवे और दस हजार पृष्ठों का विविध प्रकार का लेखन पत्र - पत्रिकाओं में बिखरा पड़ा है।"[1]

3. डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों का सार संक्षेप :

3.1. परन्तु :

"परन्तु" माचवे जी का प्रथम एवं अत्यंत लघु उपन्यास है । इस में मात्र 51 पृष्ठ हैं । "हेमवती" विधवा के माध्यम से नारी पर होने

- -

1. मार्कंडेय पाठक (भूमिका) डा प्रभाकर माचवे : और दृष्टिकोण पृ. (11)

वाले अत्याचारों का वर्णन किया गया है । उसके विवाह के एक साल बाद ही वह विधवा हो जाती है । हेम में उसका पड़ोसी अविनाश दिलचस्पी लेता है । हेम अपने मामा के साथ कलकत्ता चली जाती है । उसे हमेशा अपने [redacted] की बात सताती रहती है । अविनाश भी पढ़ाई के लिए कलकत्ते में ही रहता था । उसकी याद उसे आती है और वह सोचने लगती है कि इस कलकत्ता महानगर में उसे कहाँ ढूंढे और कैसे पता लगाया जाए ? इसी बीच उस महानगर में वह अबोध विधवा सेठ लक्ष्मीचन्द से ठगी जाती है । हेम नौकरी की आशा से उस सेठ को अपना सब कुछ अर्पित कर देती है । लक्ष्मीचन्द हेमवती को नौकरानी के रूप में पाकर जितने पैसे देता है उससे अधिक का तो काम ले लेता है और उसके नारीत्व से खिलवाड़ मुनाफे में करता है । हेम रोजी चले जाने के डर से इस घृणित और इच्छा विरुद्ध अत्याचार को भी अस्वीकार करने में असमर्थ रहती है । हेम को अन्तत: अविनाश का पता मिल जाता है और वह अपनी दु:खभरी कहानी उसे सुनाती है । अविनाश के मन में सेठ लक्ष्मीचन्द के प्रति प्रतिहिंसा की भावना जाग उठती है । अविनाश सेठ की हत्या करने का निश्चय करता है परन्तु डर के मारे वह भाग जाता है । यह ट्रेजडी मात्र अविनाश की नहीं बल्कि सारे समाज के गतिरोध की समस्या है ।

इस उपन्यास में अमिय और अनीता की कथा भी है । अमिय मूलत: सुविधाभोगी जीव है । अनीता कीर्तिकार है । अनीता के नृत्य गीत देखकर अमिय उसका दास हो जाता है किन्तु अनीता का आकर्षण अमिय के प्रति केवल बौद्धिक स्तर का जैसे एक कलाकार दूसरे कलाकार का आदर करता है, होने के कारण अनीता ने दशरथ मित्र नामक कलाकार से विवाह किया ।

इस उपन्यास में नारी के प्रति लेखक ने भिन्न दृष्टिकोण अपनाया है। उसने नारी के कला, रवीन्द्रनाथ की उर्वशी, विश्वकन्या, कुलवधू, परिवार का निर्वाह करने वाली कर्त्तव्यपरायणी कहा है । कुल मिलाकर इस उपन्यास में "हेम" के माध्यम से नारी जीवन की दर्दभरी कहानी प्रस्तुत की गयी है ।

3·2· एकतारा :

यह माचवे द्वारा लिखा गया दूसरा उपन्यास है जिसमें सन 1942 के आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में नारी की दुःखिक कथा है । इस उपन्यास की केन्द्र बिन्दु तारा नामक नायिका है । तारा एक बड़े सेठ की पुत्री है । उसकी माता का देहान्त हुआ है और विमाता उसको हमेशा कोसती रहती है । उसके पास भौतिक सुख सभी हों पर भी मानसिक आनन्द नहीं है । इस उपन्यास में "तारा" आकाश में चमकने वाले तारे के समान अकेली है । सन 42 के आन्दोलन में वह क्रान्तिकारी दल के प्रति आकर्षित होती है और घर छोड़ कर चली जाती है । क्रांतिकारी दल के नेता जयंत को वह बहुत मानती थी । किन्तु जब तारा को संदेह की दृष्टि से देखता है । तारा घर से इसलिए निकलकर आयी थी कि वहाँ उसकी स्वतंत्रता का हनन हो रहा था । किसी पुरुष के साथ घूमने नहीं दिया जा रहा था । देर रात बाहर से घर आने नहीं दिया जा रहा था । किन्तु तारा को अब मालूम हुआ कि बाहर भी जयन्त जैसे समाजवादी उसे संदेह की दृष्टि से देख रहा है अतः भारत जैसे देश में स्त्री की स्वतंत्रता का कल्पना भी नहीं की जा सकती । परिस्थितियों के कारण वह जेल जाती है, वहाँ पर मिलने सौमेन्द्र नामक गायक के सिवाय और कोई नहीं

जाता । वह सोचने लगती है कि क्या नारीका जीवन पिता, पति और पुत्र के आधार पर ही निर्भर रहता है ? क्या उसका स्वतंत्र जीवन नहीं है ? वह यह भी विचार करती है कि विवाह स्त्रीके लिए बंधन है । इसलिए उसने निर्णय लिया कि राष्ट्र सेवा के लिए अविवाहित ही कामकरें । किन्तु जैसे ही जेल से छूट गयी वह नौकरी ढूंढने लग ी किन्तु उसके आन्दोलनों केकारण कहीं पर भीनौकरी नहीं मिली ।

अन्ततः हेमेन्द्र के थियेटर ग्रुप में भर्ती हो गई और हेमेन्द्र के साथ रजिस्टर्ड पद्धति से विवाह किया । परिस्थितियों के दबाव के कारण थियेटर कंपनी ठीक नहीं चल रही थी । साथ ही सांसारिक जीवन में बच्चे भी हो गये है ।आर्थिक अभाव जीवन को दु:खी बना रहा था । पति ने तलाक दिया था । तब तारा को मालूम हुआ कि आदमी और आदमी के बीच के रिश्ते आर्थिक ही है ।

इस प्रकार माचवे जी ने इस लघु उपन्यास में "तारा" के माध्यम से अकेली नारी के जीवन संघर्ष का मनोवैज्ञानिक ढंग से यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है ।

3.3. आभा :

इस उपन्यास में स्त्री जीवन की दर्दभरी कहानी तथा पुरुष की उच्छृंखलता का चित्रण किया गया है । "आभा" की नायिका "आभा" है जो परित्यक्ता है । आभा सलाम नामक युवक से घनिष्ठता बढ़ाती है किन्तु आभा के पिता उसका विख्यात कलाकार "श्री" के साथ विवाह कर देता है । आभा की पति के प्रति विमुखता बढ़ती गई और एकदिन श्री ने एक कन्या देकर उसे छोड़ दिया । आभा अपना जीवन

कालेज में पढ़ाने में लगा देती है । उसके अन्दर पुरुषों के प्रति द्वेष भावना उत्पन्न होती है । आभा सत्यकाम नामक पुरुष से आत्मीयता बढ़ाती है उसके साथ दिल्ली जाती है । उसे याद आता है कि एकबार श्री के साथ भी दिल्ली आयी थी । इसी दिल्ली में श्री श्यामा के साथ रहता था । श्री श्यामा की एक पुस्तक से सत्यकाम का दिया हुआ एक उपहार और एक चित्र देखता है । श्री को याद आता है कि एक बार श्यामा को सत्यकाम के घर पर देखा था । उसमें श्यामा के प्रति द्वेष उत्पन्न होता है । वह सोचने लगता है कि इस स्त्री के जीवन में और कितने पुरुष होंगे । किन्तु श्री के जीवन में भी अमिता, आभा, श्याम, सुचित्रा कई अन्य भी आई है । इस उपन्यास में एक और पात्र है केको जिसका पति हमेशा व्यापार में व्यस्त रहता है तो वह अल्ताफ के साथ घूमती है । इस प्रकार लेखक ने सभी पात्रों का अपने अपने समस्याओं का मनोवैज्ञानिक रूप का चित्रण किया है ।

जीवन की दौड़ धूप में अनेक अनुभवों को झेलते हुए आभा टी॰वी की प्रेसीडेन्ट हो जाती है । आभा के जीवन में श्री एक पुत्री को देकर चला गया और सत्यकाम एक लड़के को देकर चला गया किन्तु वह लड़का भी जीवित नहीं रहा । अंततः आभा श्री को एक पत्र लिखती है कि क्या मेरी जैसी नारी का समाज में कोई स्थान नहीं है ? क्यों नारी को निरा खिलौना समझते है ? और वह पापिनी कहलाती है ? और पत्र में आगे लिखती है – "मुझे एक वचन दो – अपने जीवन में अब तक तुमने जो कुछ किया, पर आगे अब मेरी शपथ है, किसी भी नारी का अपमान न करोगे, नारी का अपमान आधी सृष्टि का अपमान है और मनुष्य सृष्टि की मूल उस शक्ति को ठुकराकर कहां जाएगा ।"[1] श्री पत्र पाकर

1॰ आभा – पृ॰ 106 – 107

स्पेशल कार में अस्पताल के पास आता है जहाँ पर आभा थी किन्तु गेट के पास ब्रेक फेल होकर कार की दुर्घटना होती है उसी में श्री समाप्त हो जाता है । उधर अस्पताल में आभा ने श्री की राह देखते-देखते आँखें बन्द कर दी । इस प्रकार दोनों इस संसार को छोड़ जाते हैं ।

इस उपन्यास में माचवे जी ने जीवन, जन्म, मृत्यु आदि का दार्शनिक व्याख्याएं भी प्रस्तुत की है । नारी जीवन में आनेवाली समस्याओं का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है ।

3.4. साँचा :

"साँचा" माचवे जी का चौथा उपन्यास है जिसमें औद्योगीक सभ्यता के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर मानवीय दृष्टि से विचार विमर्श किया गया है । इस उपन्यास में तीन मुख्य कहानियाँ हैं - एक केशो और मंगीराम की, दो मनोहर, लिसा और फादर डिक्सन की और तीन शरण और कामिनी की ।

केशो ग्रामीण किसान है वह अपने मित्र मंगीराम के कहने पर उसके साथ शहर में मजदूरी करने निकल पड़ता है । केशो भोला है और और मंगी राम बहुत चालक । दोनों शहर उज्जैन जा कर किसी कपड़े के मिल में काम करने लगते हैं । किन्तु उस काम से केशो तुरन्त ऊब जाता है । वहाँ की परिस्थिति भी उसे अच्छी नहीं लगती । वह गाँव जाना चाह रहा था । मिल का वास्तविक स्वरूप तब पता उसे लगा जब उसे टी बी हो गयी और उसके इलाज के लिए वहाँ की कोई भी यूनियन सहायता नहीं करती ।कम्युनिस्ट यूनियन कहती है कि वह गांधीवादी यूनियन वालों से मिलता जुलता है वहीं जाकर मदद माँगे । आई एन टी यु सी कहती है कि वह कम्युनिस्ट है वहाँ से ही आप मदद लीजिए ।

इसी चक्कर में एक दिन मुफ्त वार्ड से केशो का शव उसकी पत्नी के हवाले कर दिया गया - शायद मुर्दा फूंकने लायक पैसा मिल वालों ने दे दिया था ।

मनोहर की कहानी उपन्यास का दूसरा पुरुष है । वह दर्शन शास्त्र में एम.ए. है और समाज सेवा करने के लिए उत्सुक है । इस कारण मिशनरी पादरी डिक्सन तथा उसकी पुत्री लिज़ा से मिलते रहते हैं । वह लिज़ा पर आसक्त होता है किन्तु पादर डिक्सन की बातों से पता चलता है कि लिज़ा की शादी उसके साथ नहीं हो सकती तो वह इन्दौर जाकर मजदूर यूनियन की सेवा करने में भर्ती हो गया । वह उस नौकरी से ऊब गया और उसे छोड़कर दूसरी नौकरी के लिए निकल पड़ा, अहमदाबाद गया । वहाँ पर हड़तालें और साम्प्रदायिक दंगे हुए । मनोहर को पुलिस पकड़ ले गयी। वह सोचने लगा यह संसार कैसा है जिस तरह से मनुष्य को अपने साँचे में फिट करना चाहता है । उसने मन ही मन सोचा - "चाहे टूट जाऊँगा, साँचा नहीं बनूँगा, शरण नहीं जाऊँगा ।"[1]

इस उपन्यास में तीसरी कहानी है मनोहर के मित्र शरण की । यह अर्थशास्त्र शास्त्र में बी.एस.सी किया था और मनोहर को यूनियन में नौकरी दिलवाया था । वह कामिनी के प्रति आकृष्ट होता है । बाद में शरण किसी प्रदेश के सरकारी उपमंत्री बना । इस प्रकार अब शरण राजनीति में उतर पड़ा । उन्हें कामिनी मिल जाने के कारण वह फिल्म कंपनी भी चलाना चाहता है । इसी प्रकार इन का भी जीवन एक विशिष्ट साँचे का हो गया ।

- -

1. साँचा - पृ. 125

इन तीन कहानियों के आधार पर उपन्यासकार ने संश्लिष्ट जीवन का और औद्योगिक सभ्यता का खुलासा दिया है । मशीन के कारण आदमी का व्यक्तित्व नष्ट होता है और वे आंकड़े मात्र हो जाते है । इस प्रकार औद्योगिक विकास के कारण उत्पन्न होने वाली सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं का यथार्थ के साथ चित्रण किया है ।

3.5. जो :

"जो" अमरीकी रंगभेद समस्या के आधार पर लिखा गया हिंदी का शायद पहला उपन्यास है । रंगभेद पर आधारित शोषण व्यवस्था इस उपन्यास में यथार्थ चित्रण हुआ है । अमरीकी नीग्रो समस्या को उपन्यासकार ने भारत की अछूत समस्या से तुलना करके देखने का सफल प्रयास किया है । माचवे जी ने अपने अमरीकी प्रवास में वहाँ अनेक अश्वेत लोगों से मिला उनके समस्याओं का नजदीकी से अनुभव किया । इसी कारण नीग्रो जाति के सामाजिक - सांस्कृतिक और राजनैतिक समस्याओं का चित्रण करते हुए इन सबके मूल में आर्थिक विषमता मूल कारण बताया है ।

इस उपन्यास में कथा तीन भागों में विभाजित है " - एक बेसी और जेम्स, दूसरा डोरा और स्टीवन तथा तीसरा रामन और मुस्तान । कथा के मुख्य नायक अधेड़ उम्र का "जो" है जो नीग्रो संगीतज्ञ है । वह एक गोरी वेश्या की लड़की से प्यार करता है किन्तु वह लड़की "जो" को छोड़ कर किसी और के साथ केन्डा चली जाती है । जिसके कारण "जो" में हमेशा प्रेम आदि के संदर्भ में घृणा रहती है । विशेषत: गोरे लोगों के प्रति उन्हें द्वेष है । बेसी "जो" की बहन की लड़की है वह गोरे

लड़के जेम्स से प्रेम करती है और उसे बच्चा होने वाला है । इस कारण जो बेसी को पीटता है और होने वाले बच्चे के भविष्य के बारे में चिंता व्यक्त करता है । बेसी "जो" को छोड़ कर चली जाती है । बेसी को लड़का पैदा होता है और उसके बाद वह नीग्रो मुक्ति आन्दोलन में कूद गई, जेल गई और छूटने पर जेम्स ने उसका स्वागत किया । दोनों स्नेहपूर्वक रहने लगे । बेसी को लगता है कि अच्छे और बुरे आदमी काले और गोरे दोनों में भी होते हैं ।

डोरा स्टीवन से प्रेम करती है । स्टीवन युद्धोन्मादी है । और वह नीग्रो जाति के विरुद्ध है । वह डोरा से इसलिए शादी नहीं करता क्योंकि वह सोचता है कि युद्ध में अगर वह मर जाए या अपाहिज हो जाए तो डोरा को सुख नहीं दे पायेगा । किन्तु भारतीय रामन समझता है कि ऐसा समझना गलत है । भारतीय चिंतन में मौत पूर्ण विराम नहीं है, वह एक प्रक्रिया है । रामन के विचारधारा से डोरा प्रभावित होकर वह स्टीवन से समझौता नहीं करती है ।

रामन के रूप में स्वयं उपन्यासकार सामने आता है । रामन को अमेरिका के अनेक प्रान्तों को देखते - देखते भारत की याद आने लगती है । रंगभेद की समस्या को लेकर अपने हरिजन मित्र मुरुगन की याद आती है तथा भारतीय समाज में फैली अस्पृश्यता की समस्या की याद आ जाता है ।

इस प्रकार डॉ० माचवे द्वारा विकसित अमेरीका जैसे देश में व्याप्त रंगभेद समस्या पर लिखा गया यह उपन्यास नीग्रो जाति के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं को पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करता है ।

3.6. किशोर :

माचवे द्वारा युवा वर्ग की समस्याओं के आधार पर लिखा गया उपन्यास "किशोर" है । इस उपन्यास के अन्तर्गत समाज में उत्पन्न होने वाले असामाजिक तथा विध्वंसकारियों के कारण देश की शिक्षा संस्थाओं में फैलने वाली अशांति का चित्रण किया गया है । इसी प्रकार "किशोर" नामक छात्र के माध्यम से छात्रों की मानसिक स्थितियों का अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ विवेचन किया गया है । युवकों में घर कर लेने वाले असंतोष, अकेलपन और हीनता की भावनाओं का भी इस उपन्यास में चित्रण हुआ है ।

किशोर एक निम्न जाति का विद्यार्थी है । इसके पिता क्लर्क है और घर में सौतेली माँ और उसके बच्चे है । सौतेली माँ घर में हमेशा डाँटते फटकारते रहती है और अनेक काम करने का कहती है। वह काम करके ऊब जाता है। घर के बाहर समाज मे उसे कम जात और अछूतभाव के कारण द्वेष और घृणा की दृष्टि से सभी लोग देखते हैं । इस कारण उसमें असंतोष और अलगावपन विद्रोह का रूप लेते है और कोई उकसाने के कारण छात्रान्दोलन में बस जलाता है । बस जलाते समय रंग हाथों पुलिस पकड़ लेती है । तब मित्र और छात्र नेताओं में से कोई भी उसे छुड़ाने हवालात के पास नहीं आता । अंततः उसके पिता ही जमानत का प्रबंध करके छुड़ा लेते हैं ।

परिस्थितियों के बदलाव में किशोर को दो लाख रुपये की लाटरी निकलती है और उसकी नियति बदल डालती है । जो लोग पहले दूर - दूर हो रहे थे वे सभी किशोर के पास आने लगे । जिन लोगों

ने किशोर के साहित्यिक लेखों को प्रकाशित नहीं किया था वे अपनी पत्रिका में हिस्सा देने आये । किशोर के घर के पास "दया" नाम की लड़की रहती थी उसके पिता जी किशोर कम जात का होने पर भी उससे उसकी शादी करने को तैयार हो गया परन्तु किशोर ने प्रस्ताव को टाल दिया । बहुत सोच विचार करने के बाद बस जलाने का प्रायश्चित करने हेतु उसने बस फंड में बस के लिए पैसे जमा किया । छात्रों के द्वारा छात्रों के लिए और छात्रों की ही बस । सहकारी बस सर्विस आरंभ हो गई ।

अन्त में उपन्यासकार कहते है कि "ऐसा आदर्श क्या यथार्थ में जल्दी ही मूर्त होगा ?"[1]

3.7. तीस चालीस पचास :

इस उपन्यास के माध्यम से पीढ़ियों के अंतराल की समस्या को उपन्यासकार ने उभारने का प्रयास किया है । उनका कहना है कि चाहे तीस चालीस पचास हो या पचास साठ सत्तर हो यह अन्तराल हमेशा बना रहता है । उपन्यास में दो खण्ड है काल और दिक् जिसे हाइफन से जोड़ा है । काल के अंतर्गत आचार्य वसुदेव, मोहन अनिरुद्ध, सरला, सुजाता और उषा की कहानी है । दिक के अंतर्गत संसार के विभिन्न स्थलों को समायित किया गया है । सेन्फ्रांसिस्को, सोफिया, सुवर्ण श्री और सेवापुरी के द्वारा उपन्यासकार ने विभिन्न देशों के महानगरीय जीवन बोध को उजागर किया है ।

- -

1. किशोर - पृ. 104

आचार्य वसुदेव और सरला पुरानी पीढ़ी के है और अनिरुद्ध तथा उषा नयी पीढ़ी के है। इन दो पीढ़ियों के बीच मोहन और रुखसाना है। वसुदेव का जन्म सन 1900 में हुआ है। उसका विवाह बचपन में ही धार्मिक और कमपढ़ी लिखी सरला के साथ हुआ है। वसुदेव गांधी-वादी था और अपनी विचार धारा पर ही चलने के लिए बेटे मोहन को भी कहता है मगर मोहन अपने पिता जी के विचारों को रूढ़िग्रस्त पुराने विचार समझता है। वसुदेव को मोहन में विद्रोह के स्वर नजर आते है। मोहन मुस्लिम रुखसाना से विवाह करता है। वह एक वैज्ञानिक बन जाता है। वह सन् 1930 की पीढ़ी का है। वह साम्यवाद को फैशन के रूप में स्वीकारकरता है। किन्तु समाज ने उसके प्रति बुरा व्यवहार किया है वह मुस्लिम स्त्री से विवाह कर लेने केकारण "एक्सिपनेट- होने लगा। साम्यवादी पार्टी से सम्बद्ध तो उन्होंने भी एनार्किस्ट करहकर निकाल दिया। उसने प्रतिकार के रूप में मार्क्सवाद विरोधी साहित्य पढ़ने लगा। मोहन की अगली पीढ़ी के प्रतीक उसका बेटा है अनिरुद्ध। अनिरुद्ध क्षणवाद में ~~[illegible]~~ विश्वास रखनेवाला युवक है। वह अपने साथियों के साथ कहीं सेलर में या फिर किसी चंडूखाने में रात और दिन गुजारते रहताहै। वह कभी साहित्य, कभी दर्शन और कभी राजनीति पढ़ता है तो कभी अंग्रेजी कविताएं करता है। वह समस्याओं और चिंताओं से दूर होने के लिए गोली खाता है। उसके लिए दिन रात और नहाना-न नहाना बराबर है। वह पीढ़ी असामाजिक है। उसके लिए श्लील और अश्लील की परिभाषा मिट चुकी है। खतरनाक और जब्त की हुई विदेशी पुस्तकें पढ़ती है।

अनिरुद्ध उसका प्रतिनिधि है। वह विदेशी युवती उर्जा जिसे उषा कहा जाता है से शादी कर लेता है।

इस प्रकार तीन पीढ़ियों के बीच में आपसी संघर्ष से उत्पन्न अनेक समस्याओं का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है । पुरानी पीढ़ी में आदर्शवाद और नयी पीढ़ी में अराजकतावाद है । इन दोनों के बीच में किधर भी न रहने वाली बीच की पीढ़ी है जो हमेशा निर्णय लेने में विफल होती रहती है । उपन्यासकार ने इन सभी पात्रों को संसार के भिन्न भिन्न प्रान्तों में देखा है और हर प्रान्त के सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला है । अन्त में उपन्यासकार "भारत के कल्पित ग्राम सेवापुरी में विचरता है जो दूर से गंदगी और जातिवाद के पंक से सना हुआ है जो अलग-अलग परतों, हिस्सों गुटों और समूहों में विभाजित है । यहाँ के सत्तर प्रतिशत लोग निरक्षर तथा भूत प्रेत और झाड़ फूँक में विश्वास करने वाले हैं । सबकी दृष्टि नगर की ओर लगी है । गाँव की नारी अभी परदे में है, अनपढ़ है । यहाँ के लिए रास्ते बंद दिखते हैं परन्तु यह दृष्टि दोष है । कोयले में भी रत्न क्या छिपे रहते हैं ।"[1]

इस प्रकार इस उपन्यास में "पीढ़ियों का अन्तराल" समस्याओं को प्रमुख मुद्दे के रूप में विचार करते हुए देश विदेश के अनेक प्रान्तों का भी विवरण दिया गया है ।

3.8. दर्द के पैबन्द :

इस उपन्यास में "रीटा और ऋता दो नारी पात्रों के माध्यम से पूर्व और पश्चिम की टकराहट लेकर नारीजीवन के अन्तर्द्वंद्व और विवशता की कहानी है ।"[2] ऋता एक गरीब लड़की है जिसका बाप शराबी है ।

---

1. डा० कृष्णा रेणा - प्रभाकर माचवे के हिंदी उपन्यास - पृ. 56
2. -वही- -वही- पृ. 58

उसने बचपन से पहाड़ी प्रान्तों के लड़कियों की बिक्री को देखा है । नारी का समाज में क्या स्थान है तभी उसे मालूम हुआ । वह कालेज में रमेश नामक छात्र स प्रेम करती है परन्तु वहदूसरी लड़की से शादी कर लेता है । ऋता संस्कृत में कमजोर होने के कारण वसुबंधु से संस्कृत सीखने जाती है । समाज के प्रति उसके विचारों से वह प्रभावित होती है । ऋता नौकरी खोजने लगती है । संयोग वश उस को इटली के डा० रोबर्टो को हिंदी पढ़ाने का काम मिल जाता है । धीरे धीरे वह विदेशी डा० रोबर्टो से प्यार करने लगती है और डा० रोबर्टो भी ऋता के प्रति आसक्त होता है । दोनों का विवाह "हिन्दू पद्धति" से सम्पन्न होता है । ऋता को एक बच्चा होता है किन्तु एक दिन डा० रोबर्टो ऋता के पुत्र को लेकर भागजाता है । इस प्रकार ऋता ठुकराई, उपेक्षित और परित्यक्ता नारी बन जाती है । ऋता अपने पुत्र आनन्द की खोज करने मे इटली जाती है । वहाँ वह अपने पुत्र को एक अनाथालय में देखती है और फूट-फूट कर रोती है । वह इतनी विवश है कि अपने पुत्र से बात भी नहीं कर पाती ।

उपन्यास के दूसरे खण्ड में आस्ट्रेलिया से भारतआई रीटा की कहानी है । यह भी अकेली है । नर्सिंग ट्रेनिंग करके वह भारत में मिशनरी में काम करने आयी है । रीटा आस्ट्रेलिया मे आदिवासी समस्या से जुड़ी है उसे उसी समस्या से भारत में भी जूझना पड़ता है । रीटा सेवा कार्य करते हुए राज नामक अध्यापक के प्रभाव में आ जाती है और राज की माता की प्रेरणा से उससे विवाह कर लेती है । इसी प्रकार वसुबन्धु राज की बहन प्रतिमा के साथ विवाह करता है ।

इस प्रकार उपन्यास में ऋता और रीटा के जीवन संघर्ष की ही कथावस्तु है । "एक नारी भारत से जाकर यूरोप की आत्मा की

खोज में ग्रीस, रोम, जेरूसलम के खण्डहरों में भटक रही थी और दूसरी गोरी बस्तियों से पाश्चात्य संस्कारों से लैस होकर भारत के आधुनिक मनीषियों की लीलाभूमि में आत्मा को खोजना चाहती है ।"[1]

3.9. किसलिए :

"किसलिए" मध्यवित्त वर्ग में फैली बुराइयाँ, पनपने वाले भ्रष्टाचार, किसी भी मूल्य पर सुविधाओं को जुटाने की प्रवृत्तियाँ, जीवन का दैहिक सुखवादी दृष्टिकोण कथ्य का प्रमुख अंश है ।"[2] यह उपन्यास दिल्ली के एक उपनगर के ऐसे बड़े चालनुमा घर की कल्पना पर आधारित है जिसमें पाँच हिस्से है और सब में मध्यवर्गीय आय वाले विभिन्न पेशों से संबंधित परिवार रहते है । इस प्रकार यह छोटा सा घर मध्यवर्गीय समाज का प्रतीक सा लगता है जिसमें अलग अलग स्वभाव के लोग रहते है । वे एक समूह भी है और अलग अलग इकाई भी है । लेखक ने इस उपन्यास में अधर्म, अ-नर्थ और अ-काम के रूप में कथा को तीन खण्डों में विभाजित किया है । उपन्यासकार माचवे धर्म, अर्थ, काम के आगे "अ" उपसर्ग लगा कर यही कहना चाहता है कि ये तीन पुरुषार्थ अपना सही अर्थ खो गए है । इस उपन्यास में मध्यवर्गीय कतिपय चित्रों को माचवे जी ने प्रस्तुत किया है । इसमें नव धनाढ्य वर्ग है, जिन्दगी में केरियर बनाने वाले लोग है, और दूसरों को फँसाने वाले स्वार्थी लोग भी है । इसके अतिरिक्त अछूत जाति की समस्याएं है, आर्तिपीडित वर्ग की अपनी आत्मकेंद्रित जिन्दगी है और पुरुष द्वारा शोषित नारियों की गाथा है ।

- -

1. डॉ० कृष्णा रेखा - प्रभाकर माचवे के हिंदी उपन्यास - पृ. 62
2. चंद्रकांत बांदिवडेकर - आधुनिक हिंदी उपन्यास : सृजन और आलोचना - पृ. 24

कुल मिलाकर इतना कहा जा सकता है कि इस उपन्यास में मध्यवर्गीय परिवारों की समस्याओं को नगरबोध के परिप्रेक्ष्य में दिखाने का प्रयास किया गया है । इसलिए नगरीय जीवन का यथार्थ के साथ चित्रण किया गया है । उपन्यास की कथा वस्तु ऐसा है कि अन्त तक पढ़ने के बाद भी हम वहीं रह जाते है जहाँ से शुरू करते है। लेकिन जानकारी का एक विशाल भण्डार हमें मिलता है ।

<u>3·10 जुआ</u> :

इस उपन्यास में माचवे जी पौराणिक गाथाओं कोप्रतीक के रूप में लेकर मानव जीवन की परिभाषा दी है । उनके अनुसार जीवन एक जुआ है, खेलने वाले खुद पासे है, खुद ही गोटियाँ है, हार जीत का निर्णय न खिलाड़ियों के हाथ में है न ही गोटियों के । जीत भी कितनी जीत है और कितनी हार तथा हार भी कितनी हार है और कितनी जीत । इसका निर्णय भी अपने आप में एक जुआ है । उपन्यास कामुख्य कथ्य इस प्रकार है - बाढ़ग्रस्त गाँव में सहायता कार्य करने धर्मराज नामक युवक तथा द्रौपदी नामक युवती आते है । धर्मराज दक्षिणपंथी विचारधारा वाला है और द्रौपदी वामपंथी विचारधारा वाली । ये दोनों गाँव में मद्य विक्रेता दादा से, नीच जातिवाली, देवदासी की संतान कलिया से मिलते है और ग्राम सुधार के बारे में सोचते है । सेठ का पुत्र कलिया के लोकनृत्यों की फिल्में बनाकर उसकी प्रचार करना चाहता है । किन्तु यह सब कुछ छोड़ कर वह अमेरिका चला जाता है । वह वहाँ के जीवन को एक बहुत बड़े और विशाल जुआ खाने के रूप में देखता है । वहाँ की सारी अर्थ व्यवस्था केवल जुएबाजी पर टिकी है । वह भारत लौट आता है । इधर गाँव में सुधार होरहा है । इसके लिए सरकारी

मदद भी मिल रही है । तभी गाँव के पास लोह अयस्क की खाने मिल जाती है । कुछ ही वर्षों में वह गाँव इस्पात नगरी के रूप में परिवर्तित होता है । यहाँ पर लेखक ने एक कल्पितऔद्योगिक सभ्यता का रूप दिया है ।जिसमें मन की भावनाएँ, भाषा, कलाएँ, साहित्य, धर्म संगीत, शिक्षा सभी कुछ इस्पातमय हो उठते है । प्रजनन कार्य रोक दिया जाता है । पूर्ण शहरीकरण, औद्योगीकरण एवं समृद्धिकरण हो जाता है ।वहाँ पर बसने वाली जनता अपने से एक पीढ़ी पुराने इतिहास को घृणा और उपहास की दृष्टि से देखती है । इस प्रकार इस उपन्यास के माध्यम से माचवे ने औद्योगीकरण से होने वाले मानवीय गुणों की क्षति के बारे में अवगत कराया है ।

<u>३•११• लक्ष्मीबेन</u> :

इस उपन्यास में विभिन्न क्षेत्रों में नारी के प्रति उत्पन्न होने वाले विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया गया है । उपन्यासकार ने लक्ष्मीबेन को केन्द्र में रखकर उसके आस पास उत्पन्न होने वाले समस्याओं का चित्रण किया है । सबसे पहले वह परित्यक्ता नारी है उसका एक पुत्र है विनोद और वह किसी कालेज में इतिहास के प्रोफेसर के रूप में काम करती है । उसका नाम लेखक गुप्ता है । वह पढ़ाने में ऊब जाती है । इस कारण प्रोफेसरी छोड़ कर "लक्ष्मीबेन" नाम से समाज सेविका बनती है । वह समाज सेविका बनने के बाद समाज में व्याप्त अशिक्षा, निर्धनता और अवैध कार्यों को नजदीक से देखती है । फिर वह अपना रूप बदलती है। अब वह नेता कृष्णा देवी बनी परन्तु शान्ति उसे यहाँ भी नहीं मिली । राजनीति में इनका खुलकर विरोध होने लगा । इनके विरोधी अनेक लांछन लगाये और आरोप करने लगे । इस कारण इस

रूप को भी उसने त्याग दिया । वह शांति प्राप्त करने के लिए अध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो गई । अब इनका नाम योगिनी अलक्षिता हो गया । जब परात्पर आश्रम मे अलक्षिता रहने लगी थी तब उन्हें पता चला कि अपना पुत्र विनोद नदी में कूदकर आत्महत्या कर ली तो माँ का हृदय इस वेदना को सहन नहीं कर सका और उसने आश्रम छोड़ दिया । वह अन्त में लेखिका बनी । इनका नाम था लेखिका "ल." । इसके मन में अन्तर्द्वंद्व व्याप्त था । यहाँ पर भी वह शांति से रह न पायी थी । प्रकाशकों की व्यापार नीति से वह असंतुष्ट थी। इस प्रकार वह पाँचों रूपों में भी कहीं शांति को नहीं प्राप्त कर सकी । नारी के लिए प्रत्येक क्षेत्र बाधा गया मार्ग ही है । ऐसा लेखक ने कुछ क्षेत्रों को उद्धृत करते हुए दिखाने का प्रयास किया है ।

कुल मिलाकर संपूर्ण उपन्यास में नारी जीवन में उत्पन्न होने वाली विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया गया है ।

3.12. कहाँ से कहाँ :

माचवे जी ने इस उपन्यास के माध्यम से भारतीय सामाजिक परिदृश्य का चित्रण किया है । उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त जाति भेद, धर्म भेद तथा क्षेत्र भेद आदि को तत्कालीन जर्मनी के परिप्रेक्ष्य में देखा है । भारत में स्वतंत्रता से पहले भविष्य का सुन्दर स्वप्न देखा जा रहा था किन्तु स्वतंत्रता आने के पश्चात वह सुन्दर स्वप्न टूट चुका और अनेक अलगाव पूर्ण समस्याएं उत्पन्न हो गये । इसी का चित्रण माचवे जी ने इस उपन्यास में किया है । "विभा" विज्ञान और उच्च शिक्षा की पढ़ाई के लिए जर्मनी जाती है । वहाँ पर जर्मन युवक बिल के साथ उसका परिचय होता है । दोनों विवाह कर लेना चाहते हैं किन्तु बिल की माँ विभा को ईसाई धर्म स्वीकारने को कहती है। विभा बिल से कहती है

कि यदि अपनी माँ से अपनी विवाह के संबंध में कहे तो वह शायद रजिस्टर्ड ढंग से विवाह कर लेने को कहती क्योंकि लौटते समय कोई समस्या उत्पन्न नहीं होगी । जर्मन में ही किमा को भारतीय युवक भास्कर से परिचय होता है । किमा भास्कर को भी परखती है और वह प्रभाकर के प्रति अनिच्छा व्यक्त करती है । किमा भारत लौट आती है और दिल्ली के पास ही एक गाँव में डाक्टरी करते हुए समाज सुधार कार्य में लग जाती है । जिस गाँव में किमा काम करती है उसी गाँव में जितेन्द्र नामक गांधीवादी, मेधावी, समाज सुधारक युवक रहता है, दोनों के बीच में परिचय होता है और दोनों मिलकर ग्राम सुधार का कार्य करने लगते है । किमा निर्णय करती है कि वह जितेन्द्र से शादी कर लें और किमा और जितेन्द्र एक हो जाते है ।

भास्कर जर्मन लड़की फ्रेडा से विवाह कर लेता है किन्तु फ्रेडा भारत नहीं आना चाहती । इस कारण दोनों के बीच विवाह संबंध टूट जाता है । भास्कर भारत लौट आता है । जब किमा जर्मनी से भारत आ रही थी तब भास्कर एक पूर्वी बंगाल की मुसलमान लड़की नजमा को किमा के साथ भेज देता है । उस लड़की के साथ भास्कर भारत आने के बाद विवाह कर लेता है । दोनों कई जगहों पर काम करते है । किन्तु दोनों के मत भिन्न होने के कारण नजमा भास्कर को छोड़ कर अमेरिका चली जाती है ।

इस प्रकार इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने जर्मन का विभाजन बर्लिन दीवार, भारत विभाजन, बंगला शरणार्थी, भारत में फैली जातिवाद बेरोजगारी, अनैतिकता और हिप्पीवाद का भी उल्लेख किया है । लेखक ने स्वतंत्रता के बाद की देश की स्थिति पर चिंता व्यक्त किया है ।

3·13· दशभुजा :

"दशभुजा" उपन्यास में माचवे जी ने नारी की सामाजिक स्थिति के बारे में चित्रण किया है । माचवे जी कहते हैं - भारतमें नारी देवी है, शक्तिहै, भारत "माता" है । x x x उस आधी शक्ति का हमने क्या कर डाला है । आधी दुनिया रसोईघर, जच्चा-बच्चा और जर्जर अन्ध-रूढ़ियों में जकड़ी पड़ी है । स्त्रियों की साक्षरता, स्वतंत्रता के तैंतीस वर्ष बाद और एक दशक के ऊपर, एक महिला प्रधान मंत्री के होते हुए, अभी भी नारी दयनीय और शोचनीय अवस्था में है । यह उपन्यास उसी आक्रोश का एक चित्र है, एक असहाय स्त्री की दृष्टिसे ।"[1]

इस उपन्यास की नायिका अदिति है जो सोमनाथ चटर्जी नामक व्यक्ति की पत्नी है । सोमनाथ औरअदिति कलकत्ता देखने आते हैं । वे एक दिन काली मंदिर जाते हैं । वहीं सोमनाथ अपनी पत्नी को छोड़ कर चले जाता है । अदिति मंदिर के चारों ओर अपने के लिए ढूंढती है किन्तु वह कहीं पर भी नहीं मिलता । आखिर वह उस लॉज में भी खोजती है, जहाँ पर वे ठहरे हुए थे । किन्तु लाज के मैनेजर ने बताया कि उसका पति सामान लेकर, कमरा खाली कर के चले गया है । अदिति अकेली और उपेक्षित नारी उस नये महानगर में परेशानी के साथ सोच रही थी कि कहाँ जाए ? इसी समय उसे याद आ गया कि उसकी बचपन की सहेली महिमा इसी नगर में रहती है । और उसने उसका घर खोज निकाला । घर में महिमा थी । अदिति ने अपनी कहानी सुना दी । महिमा ने उसे बच्चों को संगीत सिखाने का और नालिकान्त नामक एक बौद्धिक के पास सेक्रेटरी कम टाईपिस्ट का काम दिला दिया । जिसके कारण अदिति का गुजारा उस महा नगर में होता था । इसी प्रकार

1· डा० प्रभाकर माचवे : (भूमिका) दशभुजा - पृ० 5

महिमा के सहयोग से उसे ग्रामीण कला की प्रदर्शनी में स्वयंसेविका कार्य कार्य तथा साहित्यिक पत्रकार सुकांति से अनुवाद का कार्य भी मिला । इसी बीच दीपक दास गुप्ता नामक कला समीक्षक से अदिति का परिचय हुआ । दोनों मिलकर गरीब बस्ती को सुधारने का कार्य करने लगे । इस तरह से अदिति ने समाज के उच्च मध्य और निम्न वर्ग के लोगों की जिन्दगी को परख लिया । एक दिन समय के खाली रहने के कारण वह काली मंदिर गई । वहा उसने अचानक अपने पति सोमनाथ को एक दूसरी स्त्री के साथ देखा । वे कहाँ पर ठहरे हुए है उसका पता अदिति ने पता लगाया और वहाँ पर गई । उस समय पति नहीं था । केवल वह स्त्री थी जो सोमनाथ के साथ मंदिर आई हुई थी । उसका नाम श्यामा था । उसने बताया कि वहसोमनाथ की पत्नी है । अदिति न अपना किस्सा सुनाया । अदिति बहुत दुःखित होती है । और वह अपने पति के विरोध में कुछ कर नहीं पाती । समय काटने के लिए नाटकों में अभिनय करने लगती है । वह रंगमंच की प्रसिद्ध अभिनेत्री बन जाती है औरआर्थिक स्थिति से भी काफी सुधर जाती है । एक दिन अचानक उसके घर पर उसका पति सोमनाथ मैले कपड़ों में भूखा आ जाता है । अदिति के पूछने पर कहता है कि उसका पुलिस पीछा कर रही है । और उस पर आरोप है कि वह गुप्त क्रान्तिकारियों से संबंध रखता है । अदिति तो पहले उसे देख कर घृणा करती है किन्तु उसकी मजबूरी पर तरस खाकर उसे किसी दूसरे अभिनय करने वाले व्यक्ति के पास दूसरे देश में भेज देती है । इस प्रकार अदिति अपने पति जो स्वयं को मंदिर में छोड़ कर चला गया था की रक्षा करती है । ऐसेही एक दिन अचानक वह विदेश चली जाती है । कुछ दिन बाद उसका पत्र थियेटर कंपनी के मैनेजर को आता है जिसमें वह लिखती है कि यदि अपने पति को आर्थिक मदद की आवश्यकता हो तो उन्हें मदद कीजिए । इस पत्र के साथ चेक भेज रही हूं ।

इस उपन्यास के माध्यम से माचवे जी ने पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को कितने यातनाएं दी जाती है तथा स्त्री संघर्ष के साथ अपने जीवन को किस प्रकार आगे बढ़ाती है, स्पष्ट किया है और अंत में स्त्री को दया, करुणा, का सागर के रूप में सार्थक सिद्ध किया है । इस उपन्यास में कलकत्ता महानगर की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का अद्भुत चित्रण हुआ है ।

3.14. बचि मेरी बाकी उनका :

इस उपन्यास में देश के सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों का सर्वेक्षण एक ऐसे पात्र के माध्यम से कराया गया है कि जो अपने त्रिकालदर्शी ज्योतिषी के अनुसार आगामी चार वर्ष के बाद मरने वाला है । इस पात्र का नाम दास है और इनके साथ देश के विभिन्न क्षेत्रों तथा विभिन्न राजनैतिक विचारधाराओं के लोगों का साक्षात्कार करने के लिए राजा (यमराज) भी रहते हैं ।

दास और राजा के माध्यम से लेखक ने देश के अवैध संतान की स्थिति, धर्मांतरण का मामला, प्राथमिक पाठशालाएँ तथा कालेजों की वर्तमान स्थिति, अस्पताल में फैली भ्रष्टाचार और डाक कार्यालयों में अनुशासनहीनता लापरवाही आदि का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है । इसी प्रकार इन दोनों के माध्यम से देश के विभिन्न विचारधाराओं के राजनेताओं की स्वार्थपरता और अनैतिकता का पर्दाफाश किया गया है । इन नेताओं में सर्वोदायी, साम्यवादी, समाजवादी कांग्रेस, दक्षिणपंथी मुस्लिम तथा पारसी विचारधारों के समर्थकों तथा उनके महिला सहकर्मियों का भी चरित्र चित्रण किया गया है ।

यह उपन्यास एक प्रकार से कोलाज है । जिसमें सामाजिक परिस्थितियों के टुकड़ों को और जीवन के छोटे - छोटे अनुभवों का पुंज है । इस प्रकार देश की वर्तमान सामाजिक - राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ संवेदन इसके अन्तर्गत हुआ है और इसमें यह भी स्पष्ट किया गया है कि सारे क्षेत्रों में भ्रष्टाचार, बेईमानी और अनैतिकता अधिक हो गई है ।

3.15. लापता :

इस उपन्यास में डॉ० प्रभाकर माचवे ने एक ऐसे युवक का चरित्र चित्रण मनोवैज्ञानिक धरातल पर किया है जिसके मन में असंतोष और अलगाव की भावना सींचते और वह घर छोड़कर भाग गया है । अरविंद मलहोत्रा उस युवक का नाम है और वह दिल्ली में रहता है । घर में सौतेली माँ की डाँट से वह पूरी तरह ऊब जाता है और उसे घर में स्नेह और ममता न मिलने के कारण असंतोष की भावना घेर लेती है । इस कारण उसमें प्रतिकार लेने की भावना जागृत हो उठती है इस कारण वह घर छोड़ कर भाग जाता है । वह अपना पहचान मिटाना चाहता है । इसलिए उसने देवी सेन सदानंद बालकवकर, महादेव शर्मा और शिवलाल बनकर देश और विदेश घूमा किन्तु उसे अकेलेपन की भावना सताती है । अंततः वह घर पहुँचता है । घर के सभी सदस्य आनंदित होते हैं ।

इस उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार माचवे जी यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि युवकों को घर में स्नेह और आदर देना चाहिए ।

यदि यही नहीं मिले तो युवक के मानस पटल पर कुंठा की हीन ग्रंथि उत्पन्न हो जाती है । जिसके कारण अलगाव की भावना मन में पैदा होती है । यह भयंकर रूप धारण करने पर पूरा समाज खोखला होते जायेगा ।

उपन्यास में केरल, गोवा, ओड़िया, कलकत्ता तथा हिमालय के पहाड़ी प्रदेशों का सुन्दर चित्रण हुआ है ।

3.6. अनदेखी :

इस उपन्यास में नारी जीवन की त्रासदी का चित्रण हुआ है । इस उपन्यास की नायिका "दामिनी" निम्न मध्यवर्ग की गरीब, अकेली, उपेक्षित और विश्वासघात की शिकार बनी साधारण नारी है जिसकी मनोव्यथा का चित्रण उपन्यासकार ने किया है । यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है । दामिनी के जीवन में तीन पुरुष आए और तीनों तीन प्रकार के लोग थे । वह समझती थी कि वे महान है पर सब के सब कमीने निकले । दामिनी के जीवन में सब से पहले आया रत्नाकर जो संस्कृत पढ़ाने के खातिर । पर उसकी दृष्टि दामिनी पर थी । इस कारण संस्कृत ट्यूशन बन्द कर देना पड़ा । फिर दामिनी के जीवन में वामपंथी का मुखौटा पहने आनंद आया । उसके तथाकथित साम्यवादी बयानों से वह ऊब गई थी । आनंद को व्यक्तिवादी स्वार्थपरता देख चुकी थी । इस कारण उससे अपना संबंध दामिनी ने तोड़ दिया । जिस तीसरे आदमी से दामिनी मिली थी उसका नाम विनोद था और वह संघ आश्रम में काम करता था । उससे प्रभावित होकर दामिनी ने भी उस संघआश्रम में काम करने लगी । विनोद की बढ़ती हुई लोकप्रियता को

देखकर उस संस्था के प्रबंधकों ने झूठा इल्जाम लगा कर निकाल दिया। विनोद के पक्ष में सत्य रहते हुए भी वह उनसे लड़े बिना आश्रम छोड़ कर चला गया। बाद में दर्शना ने भी उस आश्रम को छोड़ कर दुःखी असहाय लोगों की सेवा करने की तत्परता से किसी समाज सेवा केन्द्र में काम करने लगती है। इस संस्था के पाँच हिस्से थे - एक अनाथालय चलता था, एक विधवाओं को स्वावलम्बी बनाने वाला विभाग था, एक में निरक्षरता दूर करके नव साक्षर बनाने का कार्यक्रम था, चौथे में जो गाँव में बेकार युवक बैठे है उन्हें स्वावलम्बी बनाने का, रोजगार दिलाने, छोटे रोजगार शुरू करने के लिए कर्ज देने का विभाग था, पाँचवे विभाग में होम्यापैथी और दूसरी दवाइयाँ मुफ्त बाँटने की एक चिकित्सा शाला थी। दर्शना ने क्रमशः इन सारे विभागों में काम करते हुए अनुभव किया कि समाज में नैतिक का कोई मूल्य नहीं रह गया है और समाज के चारों ओर अनैतिकता, बेइमानी और भ्रष्टाचार फैली हुई है। इसी बीच दर्शना की अंधी होने के कारण नौकरी छूट जाती है। उपन्यासकार माचवे ने अंधी दर्शना के माध्यम से एक अकेली नेत्रहीन नारी का जीवन किस प्रकार दुःखाक्रान्त होता है स्पष्ट किया है। दर्शना की सहायता उसकी मित्र "दृष्टि" करती रहती है। दर्शना "ब्रेल" लिपि सीखती है। कुछ दिनों बाद एक पहाड़ी तिब्बती लड़की के नेत्रदान के कारण दर्शना को फिर से दिखाई देने लगता है। दर्शना को जिन नेत्रों से दृष्टि आती है वे उसी तिब्बती लड़की के थे। जिसको दर्शना के मित्र कहे जाने वाला व्यक्ति प्रेम करके धोखा दिया था। लड़की के मरजाने के बाद उस पहाड़ी प्रदेश के आई बैंक में उसके आँख रखे गये थे जो दर्शना के काम आये। दृष्टि आने के पश्चात दर्शना ने समाज सेवा केन्द्र खोलकर गरीबों, असहाय लोगों की सेवा करने लगी।

कुल मिलाकर माचवे जी ने इस उपन्यास में दर्शना के माध्यम से सामाजिक परिस्थितियों का आकलन प्रस्तुत किया है और नारी विशेषत: अकेली उपेक्षित तथा नेत्रहीन के प्रति सामाजिक रुख का वर्णन किया है ।

4. निष्कर्ष :

डॉ० प्रभाकर माचवे आधुनिक साहित्यकारों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । उन्होंने साहित्य के सभी विधाओं का स्पर्श किया है । उन्होंने विशेषत: अपने विचारों को उपन्यास का रूप दिया है । इसी कारण उनके उपन्यास रोमांचकारी या मनोरंजन कम और चिंतन प्रधान अधिक लगते हैं । उनके उपन्यासों में गहन चिंतन के अलावा संसार के अनेक विशेषताओं की भी जानकारी रहती है । कुल मिलाकर इतना कह सकते हैं कि डॉ० प्रभाकर माचवे सही अर्थों में चलते फिरते ज्ञान कोश हैं और उनका रचना संसार अनंत हैं ।

अध्याय - एक

समसामयिक यथार्थबोध - एक विवेचन

अध्याय - एक

समसामयिक यथार्थबोध - एक विवेचन

1· प्रस्तावना

2· समसामयिक : अर्थ और स्वरूप

2·1· समसामयिकता और आधुनिकता

3· यथार्थवाद की परिभाषा

3·1· पाश्चात्य

3·2· भारतीय

4· यथार्थ, यथार्थवाद और यथार्थबोध

5· यथार्थवाद के प्रकार

5·1· समाजवादी यथार्थवाद

5·2· आलोचनात्मक यथार्थवाद

5·3· प्रकृतवादी यथार्थवाद

5·4· अतियथार्थवाद

5·5· आदर्शोन्मुख यथार्थवाद

5·6· मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद

5·7· ऐतिहासिक यथार्थवाद

6· उपन्यास और यथार्थवाद

7· निष्कर्ष

अध्याय - एक

समसामयिक यथार्थबोध - एक विवेचन

1. प्रस्तावना :

साहित्य और जीवन को एक दूसरे के पूरक के रूप में सिद्ध करने वाली विचारधारा है यथार्थवाद । यथार्थवाद आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रमुख विचारधारा है । हिंदी उपन्यास साहित्य जब कल्पनालोक में विचरण कर रहा था तब प्रेमचन्द जैसे साहित्यकारों ने उपन्यास को यथार्थ से जोड़ने का प्रयास किया । यथार्थ के चित्रण का अर्थ है साहित्य में किसी घटना या समस्या का अत्यंत सूक्ष्म विवेचन करना । इसलिए प्रसाद जी ने यथार्थवाद की परिभाषा देते हुए कहा था कि "लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात ही यथार्थवाद है ।" वैसे तो प्रेमचन्द युग और प्रेमचन्दोत्तर युग में अनेक उपन्यासकारों ने जीवन के अनेक पहलुओं का यथार्थ चित्रण बहुत ही व्यापक पटल पर सफलता पूर्वक चित्रित किया है । किन्तु इनके चित्रण में फैलाव अधिक है गहराई कम है । साठोत्तरी उपन्यासों में जीवन की गहराई का चित्रण अपेक्षाकृत अधिक हुआ है । इसी कारण प्रत्येक रचनाकार की अपनी एक दृष्टि होने के कारण यथार्थ का बोध कराने में वह अपनी सीमा के अन्तर्गत करता है । अर्थात प्रत्येक रचनाकार की यथार्थ के प्रति अपनी एक विशेष दृष्टि होती है ।

साहित्य में यथार्थ के चित्रण के कारण मानव जीवन के अनेक व्यावहारिक पहलुओं का खुलासा पाठकों को होता है । मानव जीवन के यथार्थ पहलुओं का चित्रण साहित्य में करना मानव को अपने जीवन में विकास करने में सहायक होता है । वैसे जीवन के यथार्थ को अन्य कलात्मक क्षेत्रों में भी अभिव्यक्ति दी जा सकती है किन्तु साहित्य इसके लिए सशक्त पक्ष है ।

2· समसामयिक : अर्थ और स्वरूप :

आजकल साहित्य की सभी विधाओं में समसामयिक या समकालीन शब्द का प्रचलन अधिक हो रहा है । समसामयिक का सीधा सादा अर्थ है एक ही काल में मौजूद रहना । वास्तव में हिंदी साहित्य में इस शब्द का प्रयोग अंग्रेजी शब्द कान्टेम्परी के आधार पर हुआ है । कान्टेम्परी शब्द उस व्यक्ति, घटना या स्थिति आदि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है जो लेखक का समकालिक हो ।

किसी रचना को समसामयिक रचना कहकर किस आधार पर घोषित किया जाता है ? इस प्रश्न पर विचार करने पर स्वाभाविक रूप से यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि वह रचना किसकी समसामयिक है ? लेखक की ? या पाठक की ? पाठक की समसामयिकता हो नहीं सकती क्योंकि पाठक सापेक्ष है । रचना की समसामयिकता उसके लेखक से ही हो सकती है क्योंकि लेखक ही अपनी युगीन विशेषताओं को प्रतिपाद्य बनाकर रचनाएं करता है और उन रचनाओं में समकालीन युग का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में दिखाई देता है । स्पष्ट है कि किसी रचना की समकालीनता उसके रचनाकार से ही हो सकती है ।

अतः किसी भी रचना में हम उसके रचनाकार के समसामयिक संदर्भ को ही देख सकते है ।

"समसामयिकता असल में अपने काल की समस्याओं एवं चुनौतियों का मुकाबला करने का ही दूसरा नाम है । समकालीनता के घेरे में आने वाला रचनाकार उन समस्याओं पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करता है जो समस्याएं केन्द्रीय महत्व की होती है । इन्हीं समस्याओं की परख सूझ-बूझ समकालीनता का गुण हुआ करती है ।"[1]

हम किसी रचनाकार को समकालीन या समसामयिक लेखक के रूप में तभी घोषित कर सकते है जब कि उसकी रचनाओं में उस युग के परिवेश का अंकन किया गया हो । लेखक अपने अनुभव, ज्ञान और दृष्टि से समाज में होने वाले परिवर्तनों पर अपना एक नजरिया बना लेता है । इसी नजरिये को अपनी रचनाओं के माध्यम से पाठक तक पहुँचाता है । यही समसामयिकता का बोध है । रचनाकार अपने अनुभव, ज्ञान तथा दृष्टि के आधार पर केवल वर्तमान या अपनी समकालीन स्थिति पर ही नजर नहीं रखता बल्कि भूतकाल का अंकन करते हुए भविष्य की भी कल्पना करता है । इस प्रकार रचनाकार पर न केवल वर्तमान का प्रभाव रहता है बल्कि भूत और भविष्य का भी प्रभाव उस पर होता है ।

"भारतीय समाज की वर्तमान संरचना वैषम्यमूलक, मुद्रापरक उच्चवर्गोन्मुख, अलगाववृत्ति की पक्षधर एवं संघर्षशील है । जनतंत्र का

---

1. डा0 शेखर शर्मा - समकालीन संवेदना और हिन्दी नाटक - पृ.63

अर्थ अल्पतंत्र बना दिया गया है । जो साहित्य इस गलत सामाजिक दृष्टि को तोड़ता है, वही सही समकालीन साहित्य है । अत: जो साहित्य ये कार्य नहीं करता, वह अप्रासंगिक साहित्य ही कहा जाना चाहिए । समकालीन साहित्य यथास्थिति का विरोधी होता है । "यथास्थिति का विरोध" का सम्मिहितार्थ यह है कि जड़ नैतिकता को सामने लाकर उसकी व्यर्थता सिद्ध कर, उसे नकारना, राजनैतिक प्रपंचों को निवारण करना, स्वार्थहित - प्रेरित प्रचार साधनों को नंगा करना ही रचना का अन्तर्निहित मुद्दा हो ।"[1]

समकालीन रचनाओं में उस काल का समग्र चित्रण होता है जिस काल में लेखक रहता है । लेखक अपने परिवेशगत सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं का खुलासा अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है । लेखक को समकालीनता का चित्रण करने के लिए इन शर्तों पर प्रतिबद्ध रहना चाहिए कि स्थितियों, व्यक्तियों एवं शक्तियों का सही विश्लेषण सशक्त रूप में सामने आए । सभी प्रकार के मुखौटों का पर्दाफाश, सही स्थिति का उद्घाटन, मूल्यवान जीवन की पहचान और वैसा जीवन जीने का जीवट जिसकी समाज माँग करता है । यही समसामयिकता की पहचान के मुख्य मुद्दे है ।

2·1· समसामयिकता और आधुनिकता :

आधुनिकता और समसामयिकता दोनों को एक दूसरे के पर्याय समझने का भ्रम होता है किन्तु ऐसा नहीं है । आधुनिकता को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि आधुनिकता एक मानसिक बौद्धिक स्थिति है, जो अपने परिवेश और समाज की समस्याओं से उद्भूत होती

1· डा० शेखर शर्मा - समकालीन संवेदना और हिंदी नाटक-पृ· 63

है तथा समकालीन जीवन को संस्कार देती है । सर्वव्यापी और सर्वजीन होते हुए भी इसका स्वरूप अपनी जातीय विशेषताओं से अलग नहीं होता यद्यपि यह विजातीय गुणों को भी अपने में समाहित करने की शक्ति रखती है ।

यदि हम विवेचनात्मक दृष्टि से आधुनिकता पर विचार करेंगे तो निम्न विशेषताएं हमें दिखाई देंगी•••आधुनिकता भाव को सही धरातल पर विवेचन करके उसे प्रमुखता प्रदान करती है और तब साहित्य में निरूपण करती है । ऐसाकरने से ही जीवन की कठोरताओं का साहित्य में प्रतिबिम्बन होता है । वास्तविक रूप में आधुनिकता वही है जो वर्तमान को भूत और भविष्य से ठीक ठीक जोड़ने में पुल की तरह काम करती है । अंधविश्वासों से पूरी तरह से मुक्त रहती है । आधुनिक वही है जो बुद्धि के धरातल पर परीक्षण करके ही विश्वास करता है । आधुनिकता बोध का जन्म सन्दर्भों के बीच से ही होता है । पिता को पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधि मानकर उसका विरोध करना या विद्रोह के नाम पर विद्रोह करना आधुनिक होने की झूठी शान है । आधुनिकता की एक और विशेषता यह है कि व्यक्ति को स्वनियंत्रित रहना चाहिए ।

"वर्तमान के बहुत से आयाम ऐसे होते है, जो अपने परिवेश में छोटे रहकर भी, अपनी प्रेषणीयता से समूचे जीवन को प्रभावित करते है समसामयिकता का आग्रह है कि इन्हीं आयामों को मानवीय संवेदना और मानवीय अनुभूति दी जाए । किन्तु समसामयिकता को ही आधुनिकता समझ बैठने की भूल नहीं करना चाहिए ।"1

- -

1: डा० सुखबीर सिंह - समीक्षा के नए प्रतिमान - पृ• सं० 70

डा० सुखबीर सिंह आधुनिकता और समसामयिकता में अन्तर स्पष्ट करते हुए कहते है कि -

• "युग विशेष का गुण आधुनिकता है जबकि समसामयिकता स्थिति विशेष का आयाम है । एक स्थिति विशेष के विस्तार तक ही समसामयिकता का बोध होता है, जबकि आधुनिकता में युग विशेष के औसत टेम्परामेंट का ज्ञान निहित रहता है । यह एक देशकाल से सम्बद्ध ऐतिहासिक विश्लेषण है । देशकाल के बोध के साथ जो सक्रिय गतिशीलता जुड़ी रहती है, उसके प्रमाण समसामयिकता से ही मिलते है ।

• आधुनिकता के संदर्भ में ही समसामयिकता की अर्थवत्ता कायम रहती है । शाश्वत मूल्यों और सत्यों को, परिस्थितियों के घात-प्रतिघात द्वारा जड़ता और असफलता से उबारने का कार्य समसामयिकता का ही है ।

• आधुनिकता का कैनवस बड़ा है और समसामयिकता का सीमित । किन्तु दोनों का महत्व एक दूसरे का स्वरूप स्पष्ट करने में ही है ।"[1]

3. यथार्थवाद की परिभाषा :

आधुनिक हिंदी साहित्य विभिन्न वादों की देन है । इस काल में कितने ही वादों का जन्म, विकास और ह्रास हुआ किन्तु यथार्थवाद मात्र ऐसा एक वाद है जो निरन्तर विकास की ओर अग्रसर है । जिसका जन्म हुआ विकास हो रहा है किन्तु दूरगामी भविष्य में भी ह्रास होने की आशंका नहीं है । यथार्थवाद एक ऐसी विचारधारा है जो जीवन को सही मार्ग पर जीने के लिए प्रोत्साहित (प्रेरित) करती है ।

- -

1. डा० सुखबीर सिंह - समीक्षा के नए प्रतिमान - पृ० सं० 70

समकालीन साहित्य में यथार्थ का बहुत ही महत्व है क्योंकि समकालीन साहित्य बिना यथार्थ के रचा ही नहीं जाता । सम-कालीन साहित्य में रचनाकार अपने परिवेश की स्थितियों का यथार्थ चित्रण करता है । जिसके कारण पाठक को रचनाकार के परिवेश को यथार्थ चित्रण का आभास मिलता है ।

यथार्थ का मतलब है "जो है" का चित्रण करना अर्थात अपने समय के परिवेश में जो घटित होता है और जो हम देखते है उसी का चित्रण करना है । इस सीधी सादी परिभाषा से यह भ्रम पैदा होना स्वाभाविक है कि क्या यथार्थ "फोटोग्राफिक" चित्रण मात्र है अर्थात "ज्यों का त्यों" चित्रण । किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है । रचनाकार जो अपने समकालीन परिवेश में घटित होता है उसका चित्रण अपने अनुभव, ज्ञान और दृष्टि के द्वारा करते हुए सृजनात्मक ढंग से उस घटना को प्रस्तुत करता है । यदि फोटोग्राफी की तरह यथातथ्य चित्रण किया जाए तो दैनिक समाचार पत्र और साहित्य में कोई फर्क नहीं रह जाता । इसलिए स्व॰ नित्यानन्द पटेल वेदालंकार ने ठीक ही कहा है कि - "यह मानना पड़ेगा कि जिन उपन्यासों में (अपने शाब्दिक या वास्तविक अर्थ में) यथार्थवाद की प्रधानता होती है, उनमें भी उपन्यासकार के व्यक्तित्व, राग - विराग, भावना कल्पना दृष्टिकोण और जीवन दर्शन आदि का कम या अधिक मात्रा में समावेश होता ही है । अगर इन सबका यत्किंचित समावेश न हो, तो वे उपन्यास दैनिक पत्र, मनोविज्ञान या इतिहास आदि की कोटि में ही गिने जाने के योग्य होंगे । साहित्य के प्रधान तत्वों के समावेश के बिना वे समाज की स्थिति और गतिविधि का कितना ही ज्ञान देते हो, साहित्य की संज्ञा न पा सकेंगे । ज्ञान देना कुछ और बात है, शक्ति - स्फूर्ति एवं प्रेरणा आनंद का स्रोत होना दूसरी बात है ।"[1]

---

1. स्व॰ नित्यानंद पटेल वेदालंकार - प्रेमचन्द के उपन्यास-साहित्य में सांस्कृतिक चेतना - पृ॰ सं॰ 544

अतः स्पष्ट होता है कि यथार्थ के चित्रण में भी सृजनात्मकता की आवश्यकता होती है ।

"यथार्थवाद" मूलतः पाश्चात्य विचारधारा है जो स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों का एक अहम अंग बन चुका है । यथार्थवाद की परिभाषाएं अनेक पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने दी है । यहाँ पर हम पहले पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाओं को तत्पश्चात भारतीय विद्वानों की परिभाषाओं पर दृष्टिपात करेंगे ।

3·1· पाश्चात्य विद्वानों का दृष्टिकोण :

साहित्य में यथार्थवाद ऐसे दृष्टिकोण का परिचय देता है जो हर संभव तरीके से जीवन को चित्रित और प्रकृति को निरूपित करना चाहता है । इस प्रक्रिया में वह यथार्थ पर आदर्श का आवरण नहीं चढ़ाता है । इसी बात को प्रमुख पाश्चात्य विद्वान "क्वामियां" ने और स्पष्ट किया है --"यथार्थवाद यथार्थ का शैलीबद्ध निरूपण या उसे निश्चित सांचे में ढालने की क्रिया है ।"[1] और एक जगह यथार्थवाद के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए क्वामियां कहते है कि "यथार्थवाद साहित्य में एक पद्धति नहीं, बल्कि एक विचार धारा है ।"[2] यथार्थ के नाम अधिकतर लोग इस भ्रम में पड़ जाते है कि यथार्थवाद में वस्तु-तथ्य का यथातथ्य चित्रण होता है अर्थात साहित्य में यह एक अभिव्यक्ति की एक शैली है । किन्तु ऐसा नहीं है क्वामियां ने ठीक कहा है कि यथार्थवाद शैली नहीं बल्कि एक विचारधारा है । समाज में घटित होने

1· शिवकरण सिंह - आलोचना के आधुनिकवाद और नयी समीक्षा से उद्धृत - पृ· 12
2· डा० त्रिभुवन सिंह-हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद से उद्धृत-पृ·44

वाली घटनाओं के आधार पर यथार्थवाद एक वैचारिक आन्दोलन के रूप में उभरता है। यथार्थवाद में एक ऐसी शाखा भी निहित है जो प्रमुखता से शैली के आधार पर ही विकसित हुई है वही प्रकृतवाद है। अजामियाँ विचार धारा को अधिक महत्व देते हुए भी विचार विशेष के अभिव्यक्तिकरण में शैली का सहयोग अपेक्षित समझते है।

स्टीवेन्सन का कहना है कि "यथार्थवाद का प्रश्न साहित्य में मुख्यतः सत्य से अल्पांश भी सम्बन्ध नहीं रखता बल्कि उसका संबंध केवल रचना की कलात्मक शैली से है।"[1] स्टीवेन्सन की यह धारणा कुछ हद तक यथार्थवाद के प्रति नकारात्मक है या फिर वे यथार्थवाद को ठीक तरह से समझने में असफल हो गये है। वास्तव में दर्शन या अन्य कला - विधाओं में जो सत्य है वही साहित्य में यथार्थ के रूप में प्रतिफलित होता है। साहित्य में यथार्थ का चित्रण का अर्थ मात्र किसी वास्तविक घटना, वस्तु या स्थिति का अंकन करना नहीं है। यदि ऐसा किया गया हो तो यह धारणा साहित्य के स्वरूप के साथ सर्वथा असंगत है।

हावर्ड फास्ट के अनुसार यथार्थवाद का अर्थ ज्यों का त्यों चित्रण करना नहीं है। वे लिखते है कि -"साहित्य में सर्जनात्मक प्रक्रिया वस्तुओं का हूबहू चित्रण न होकर संश्लेषणात्मक होती है, वह मात्र उसका वर्णन नहीं करता बल्कि चुनाव भी करता है।"[2] यथार्थवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए वे ठीक कहते है - "यथार्थवाद वह साहित्यिक

- -

1. डा० मदन केवलिया - पाश्चात्य साहित्यशास्त्र की भूमिका-पृ.212
2. डा० त्रिभुवन सिंह-हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद से उद्धृत-पृ. 45

संश्लेषण है जो चुनाव तथा रचना के माध्यम से अपने वास्तविक विचारों को समुन्नत रूप में पाठकों के सामने उपस्थित करता है ।"[1]

इस प्रकार हावर्ड फास्ट का कहना है कि यथार्थ का अर्थ ज्यों का त्यों चित्रण नहीं बल्कि चुनाव और सृजन के माध्यम से यथार्थ का चित्रण होता है । यदि समकालीन सभी परिस्थितियों का चित्रण ज्यों का त्यों किया जाय तो समाचार पत्र और साहित्य में कोई अन्तर नहीं रह जायेगा । शायद इसलिए एक अमेरिकन विद्वान का उद्धरण देते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "अगर अमेरिका को ठीक-ठीक समझना हो, तो उसके किसी लोकप्रिय दैनिक के दो चार अंकों को देख जाइये, अमेरिका, अपने सब गुण - दोषों एवं दुर्बलता के साथ सामने खड़ा हो जायेगा । उसके स्त्री पुरुष क्या खाते है, कैसी बातों में रुचि रखते है, किन रोगों के शिकार है आदि कोई भी बात अप्रकट नहीं रह जायेगी ।"[1] इस प्रकार यदि दैनिक पत्र समाज का यथार्थ चित्रण कर देता है तो साहित्य में यथार्थ का चित्रण करने की आवश्यकता नहीं है । किन्तु ऐसा नहीं होता । साहित्य मानव जीवन का सर्जनात्मक क्रिया है इस में स्थायित्व बना रहता है वे सैकड़ों वर्षों के बाद भी नित्य नवीन बने रहते है इसीलिए साहित्य समाज की स्थिति एवं गतिविधि से अवगत ही नहीं कराते बल्कि उल्लास, आत्म परिष्कार तथा प्रेरणा प्रोत्साहन के अक्षय स्त्रोत भी होते है ।

- -

1. डा० त्रिभुवन सिंह- हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद से उद्धृत - पृ. 46

2. स्व. नित्यानंद पटेल वेदालंकार - प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चेतना - पृ. 542-543

एच लेविन लिखते हैं - "साहित्य में यथार्थवाद उस पद्धति को कहते हैं जिसका उद्देश्य जीवन में सभी वस्तुओं का पूर्ण निष्ठामय चित्रण एवं प्रकृति का पुन: प्रस्तुतीकरण है । यह प्रवृत्ति सौन्दर्य के हेतु वास्तविकता के आदर्शीकरण को अभिव्यंजना के शैलीकरण को और आध्यात्मिक तथा अति प्राकृत विषयवस्तु के निर्वाह को अस्वीकारती है ।"[1] इस प्रकार एच लेविन ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में यथार्थवाद की परिभाषा दी है । उनके अनुसार साहित्य में जीवन के सभी वस्तुओं का तथाप्रकृति का पुन: प्रस्तुतीकरण है साथ में आदर्श अतियथार्थ तथा आध्यात्म का तिरस्कार भी है ।

शिपले भी 'डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेचर' में यथार्थवाद की परिभाषा देते हुए लिखते है - 'साहित्यिक समालोचना में यथार्थवाद शब्द का प्रयोग आदर्शवाद और स्वच्छंदतावाद के विरोध में उन साहित्यिक कृतियों के लिए किया जाता है, जो वास्तविक जीवन की अनुकृति में निर्मित होती है और जो अपनी विषय वस्तु वास्तविक जीवन से ग्रहण करती है । यथार्थवादी लेखक वह होता है जो वस्तुन्मुखी दृष्टिकोण धारण करता है और अपनी रचना में अपनी व्यक्तिगत भावनाओं एवं विचारों को सन्निविष्ट न कर अपनी विषय वस्तु का निर्वाह फोटोग्राफिक और विवरणात्मक शैली में करता है ।"[2]

अर्नेस्ट फिशर का कहना है कि साहित्य में यथार्थवाद की धारणा दुर्भाग्यवश अस्पष्ट है । कुछ लोग इसे एक दृष्टिकोण के रूप में और कुछ

- -

1. डा० मदन केवलिया - पाश्चात्य साहित्य शास्त्र की भूमिका - पृ० 212

2. -वही- -वही- पृ०213

लोग शैली के रूप में देखते है । उनका कहना है कि "यदि हम अपनी वस्तुपरकता में स्थित यथार्थ को ही वास्तविक यथार्थ माने और कला में उसका स्थानापन्न माने तो हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कहीं हम इस यथार्थ बोध को विशुद्ध रूप से बाह्य जगत के यथार्थ तक ही, (जो कि हमारी अपनी ही चेतना अथवा इच्छा-अनिच्छा से परे है) सीमित न कर दें । वस्तुत: हमारी चेतना से स्वतंत्र जो कुछ भी अस्तित्ववान है, वह जड़ पदार्थ है । किन्तु यथार्थ के अंतर्गत वे सारी अनेकरूपा अंत:क्रियाएं सम्मिलित है, जिनका आदमी अनुभव करने एवं परिज्ञान करने के सिलसिले में भागीदार है ।"[1] अर्न्स्ट फिशर का निष्कर्ष है कि "यदि हम यथार्थ को एक पद्धति के रूप में न लेकर एक दृष्टिकोण के रूप में परिभाषित करना चाहें - कला के अन्तर्गत यथार्थ के चित्रण के रूप में, तो हम पायेंगे कि अमूर्त कला या वैसी ही कुछ चीजों को छोड़कर वस्तुत: सारी कला यथार्थ कला है । अतएव अधिक व्यवहारिक तथा उपयोग यह होगा कि हम यथार्थ को चित्रण की एक विशिष्ट पद्धति के रूप में ही स्वीकार करें ।"[2]

एंगिल्स के मतानुसार-"मेरे विचार से "यथार्थवाद" का आशय यह है कि लेखक विवरणों और ब्यौरों के सत्य प्रस्तुतीकरण के अलावा प्रतिनिधि पात्रों को प्रतिनिधि परिस्थितियों में सच्चाई के साथ चित्रित करे ।[3] एंगिल्स की इस परिभाषा पर टिप्पणी करते हुए शिवकुमार मिश्र लिखते है कि "एंगिल्स के उपर्युक्त कथन से जहाँ एक ओर यह निष्कर्ष निकलता है कि यथार्थवादी लेखक को वस्तु स्थिति के एक एक रंग रेशे

- -

1. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ. 2
2. -वही- -वही- पृ. 3
3. -वही- -वही- पृ. 10

को अपनी कृति में चित्रित करनी चाहिए । वही दूसरी और अधिक महत्वपूर्ण बात उन्हें सचाई के साथ चित्रित करने की है । सत्य के प्रति यथार्थवाद का यह आग्रह उसके चरित्र की केन्द्रीय विशेषता है । लेखक को वस्तुगत यथार्थ का निरीक्षण वस्तुपरक दृष्टि से करना चाहिए, अपने निजी विचारों एवं निजी दृष्टि को सक्रिय कर वस्तुगत यथार्थ को इसके गड्डमड्ड नहीं करना चाहिए । सचाई के प्रति "यथार्थवाद" की यह केन्द्रीयता ही उसे सही अर्थों में युग जीवन का प्रतिनिधि दृष्टिकोण सिद्ध करती है । एक तीसरी बात जिसकी ओर एंजिल्स लेखक देकर लोगों का ध्यान आकर्षित किया है । प्रतिनिधि परिस्थितियों में प्रतिनिधि पात्रों के चित्रण से संबंध रखती है.... टाइप (प्रतिनिधि) वह है जिसके अंतर्गत परिस्थिति या पात्र अपने निजी चरित्र के साथ - साथ अपनी सामाजिक अथवा वर्गगत संदर्भता को भी लिए हुए हो । टाइप (प्रतिनिधि) का यह द्वि-आयामी स्वरूप ही उसका वास्तविक स्वरूप है । अपनी संपूर्णता में युग, जीवन या मनुष्य की प्रस्तुति टाइप के माध्यम से ही हो सकती है । हम समझते है कि एंजिल्स के उपर्युक्त कथन में यथार्थवादी दृष्टि और यथार्थवादी कला का जो चारित्र्य निहित है, उसका कुछ आभास इस विवेचन से हो गया होगा ।"[1]

यथार्थवादी विचार धारा के संदर्भ में जार्ज लुकाच की मान्यताएं अधिक महत्वपूर्ण और मान्य हैं । जार्ज लुकाच मनोविश्लेषणवादियों की व्यक्तिपरकता और प्रकृतवादियों की वस्तुपरकता दोनों को मिथ्या घोषित करते हैं । वे यथार्थवाद को इन दोनों से अलग करके समझने पर बल देते हैं । उनका कथन है कि "यथार्थवाद मिथ्या वस्तुपरकता तथा मिथ्या

- -

1. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ. 10 - 11

व्यक्तिपरकता के बीच का कोई मध्यम मार्ग नहीं है, वरन् इसके विपरीत वह हमारे समय की भूल भुलैया में बिना किसी नक्शे के भटकने वाले लोगों के द्वारा गलत रूप में प्रस्तुत किए गए प्रश्नों के फलस्वरूप उत्पन्न समस्त प्रकार के झूठे असमंजसों के विरुद्ध एक सत्य तथा सही समाधानों तक पहुँचने वाला तीसरा रास्ता है ।[1] यही नहीं "वह इस तथ्य की स्वीकृति है कि कोई साहित्यिक कृति न तो किसी निष्प्राण कौशल पर आश्रित हो सकती है (जैसा कि प्रकृतिवादियों का विचार है) और न ही एकदम शून्य में अपने आपको पूर्णतः छूट देने वाले किसी व्यक्तिगत स्थिति पर ।"[2]

लुकाच के अनुसार सच्चे तथा महान यथार्थवादी लेखक समाज में इधर उधर बिखरे हुए अंशों को ही परख कर विश्लेषण नहीं करना चाहता बल्कि वह इनको सम्पूर्णता में ही देखने पर जोर देता है । इस प्रकार "उत्कृष्ट प्रकार का यथार्थवाद मानव एवं समाज को पूर्ण इकाई के रूप में प्रस्तुत करता है । जार्ज लुकाच के विचार से सच्चे यथार्थवादी साहित्य की यह प्रमुख विशेषता है कि लेखक बिना किसी भय अथवा पक्षपात के ईमानदारी के साथ जो कुछ भी अपने आसपास देखता है उसका चित्रण करें ।"[3]

रोडरिक मेकचेसम (Roderick Mchisholm) का मत है कि "यथार्थवाद का प्रमुख गुण अवतारवाद का खण्डन है । वह मानव एवं उसके मस्तिष्क को इस संसृत के क्रियाकलापों एवं व्यवस्थाओं में सम्मिलित करके उन्हें उनका

---

1. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ० 12
2. -वही- -वही- पृ० 12
3. डा० त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ० 45

उचित स्थान प्रदान करता है । यह एक ओर तो भौतिकता को आदर्श-वादी संस्पर्श से मुक्त करता है और दूसरी ओर उन्हें चेतन जीवन का आधार प्रस्तुत करता है । यथार्थवाद मस्तिष्क को एन्द्रजालिक विदग्धताओं से मुक्त करता है और इसके मूल्यों की रक्षा करता है ।"[1]

"बी•आबोगिन्स्न" के अनुसार "यथार्थवादी" कलाओं की विशिष्टता पाठक के विचारों को इस स्पष्टता एवं स्वच्छंदता से प्रेषित करने में निहित है कि सर्वप्रथम आतुर होकर लेखक के हृदय के स्पन्दन का श्रोता बन जाय ।"[2]

Dictionary of world Literature में अन्य विद्वानों के यथार्थवाद के संबंध में परिभाषाएँ इस प्रकार हैं - "हार्वेल" ने सामान्य जीवन के यथार्थ को महत्व देते हुए नैतिक जीवन की अवज्ञा को अनुचित बताया है । फ्लावियर वस्तुगत दृष्टिकोण और जीवन के सामान्य क्षणों के महत्वपूर्ण उद्घाटन को यथार्थवाद की विशिष्टता मानता है । W.L. courtney (डब्ल्यू एल कोर्टनी) ने मानव जीवन के स्पष्ट यथार्थ को महत्व दिया है । पर यथार्थवाद की सचमुच परम सजीव एवं व्यापक उपलब्धि साहित्य के लिए निरन्तर नवीन विषय, परिस्थिति और भाषा की गवेषणा में निहित है ।"[3]

यथार्थवादी लेखक इमरसन के शब्दों में कहा जा सकता है कि "मुझे

---

1. डा० त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद-पृ०47
2. -वही- -वही-
3. -वही- -वही-

महान दूरस्थ और काल्पनिक नहीं चाहिए·····मैं साधारण का आलिंगन करता हूँ मैं सुपरिचित और निम्न के चरणों में बैठता हूँ ।"[1]

3·2· भारतीय विद्वानों का दृष्टिकोण :

यथार्थवादी विचार धारा सम्बन्धी मत भारतीय मनीषियों ने भी प्रकट किया है जो निम्न प्रकार हैं - यथार्थवाद के संबंध में बाबू 'गुलाबराय' का मत है कि "यथार्थ वह है जो नित्य प्रति हमारे सामने घटता है । उसमें पाप - पुण्य, सुख - दुख की धूप छाँह का मिश्रण रहता है । वह सामान्य भाव भूमि के समतल पर रहकर वर्तमान की वास्तविकता से सीमाबद्ध रहता है । स्वर्ग के स्वर्णिम सपने उसके लिए परी देश की वस्तुएं है जो उसकी पहुँच से बाहर है । वह संसार की कलुष कालिमा पर भव्य आवरण नहीं डालना चाहता । वह स्वर्ग को भी मिट्टी के कणों से मिश्रित देखना चाहता है ।"[2]

जयशंकर प्रसाद यथार्थवाद पर अपना अभिप्राय व्यक्त करते हुए कहते है कि "यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधान है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात । उसमें स्वभावत: दु:ख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है । लघुता से मेरा तात्पर्य है, साहित्य के माने हुए सिद्धांत के अनुसार महत्ता के काल्पनिक चित्रण से अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दु:ख और अभावों का वास्तविक उल्लेख ।"[3]

- -

1· स्व·नित्यानन्द पटेल वेदालंकार - प्रेमचन्द के उपन्यास - साहित्य में सांस्कृतिक चेतना - पृ· 540

2· डा० द्वारका प्रसाद मीतल - हिंदी साहित्य के वाद - पृ· 234

3· जयशंकर प्रसाद - काव्य और कला तथा अन्य निबंध - पृ· 120

'पं० नंद दुलारे वाजपेयी' के अनुसार "यथार्थवाद वस्तुओं की पृथक सत्ता का समर्थक है । वह समष्टि की अपेक्षा व्यष्टि की ओर अधिक उन्मुख रहता है । यथार्थवाद का सम्बंध प्रत्यक्ष वस्तुजगत से है ।" वाजपेयी जी की इस परिभाषा में जो पृथक सत्ता के समर्थक होने की बात कही गई है वह सही नहीं लगती क्योंकि यथार्थवाद संपूर्णता का चित्रण बहुत ही विस्तार से करता है जिसके कारण वस्तुओं का वर्णन पृथक लगता है । एक जगह पं० नन्द दुलारे वाजपेयी आदर्शवाद और यथार्थवाद की तुलना करते हुए कहते है कि "यथार्थवाद तथा आदर्शवाद दोनों ही चित्रण शैली के दो स्थूल विभाग मात्र है । दोनों ही शैलियाँ लेखक के दृष्टिकोण पर अवलम्बित रहती है । कला की सौन्दर्य सत्ता की ओर दोनों का झुकाव रहता है । आदर्शवाद में विशेष या इष्ट के आग्रह द्वारा इष्ट ध्वनित होता है । यथार्थवाद में सामान्य व अभीष्ट के चित्रण द्वारा इष्ट की व्यंजना होती है ।"[1]

'शिवदान सिंह चौहान' ने आदर्शवाद को पलायनवाद माना है । वे कहते हैं --"महान साहित्य और कला सदा निर्विकल्प रूप से जीवन की वास्तविकता को ही प्रतिबिम्बित करती है अत: उसकी एक मात्र कसौटी भी उसका यथार्थवाद है ।"[2]

'प्रेमचन्द' यथार्थवाद पर अपना मत व्यक्त करते हुए कहते है कि "यथार्थवादी अनुभव कीबेड़ियों में जकड़ा होता है और चूंकि संसार में बुरे चरित्रों की ही प्रधानता है - यहाँ तक कि उज्ज्वल से उज्ज्वल चरित्र में भी कुछ न कुछ दाग धब्बे रहते है इसलिए यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है और

- -

1. डा० द्वारका प्रसाद मित्तल - हिंदी साहित्य के वाद - पृ० 234
2. डा० त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ० 49

इस तरह यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है, मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है ।"[1]

यथार्थवाद के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए 'डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी' कहते है कि "कला क्षेत्रों में यथार्थवाद ऐसी एक मानसिक प्रवृत्ति है, जो निरन्तर अवस्था के अनुकूल परिवर्तित और स्थापित होती रहती है ।"[2] आगे वे कहते है —"बहुत से लेखक यथार्थवाद के नाम पर समाज की उन गन्दगियों का ही चित्रण करते है, जो समग्र रूप का एक नगण्य अंश मात्र है । यह यथार्थवाद नहीं हो सकता । यथार्थवाद भले की उपेक्षा करके बुरे के चित्रण को नहीं कहा जा सकता, फिर वह चित्रण कितना भी यथार्थ क्यों न हो ।"[3] यथार्थवाद के मूल सिद्धांत पर प्रकाश डालते हुए कहते है कि —"यथार्थवाद शब्द अंग्रेजी के रियलिज्म शब्द के तौल पर गढ़ लिया गया है । यथार्थवाद का मूल सिद्धांत है - वस्तु को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करना ।"[4] कथा साहित्य में यथार्थवाद के महत्व के संबंध में वे कहते हैं - "कविता यथार्थ की उपेक्षा कर सकती है: संगीत यथार्थ को छोड़कर भी जी सकता है, पर उपन्यास और कहानी के लिए "यथार्थ" प्राण है । उसके न रहने से उपन्यास औरकहानी प्राणहीन वस्तु बन जाती है ।"[5]

प्रो· नरेन्द्र कोहली का मत है कि "सामान्यत: यथार्थ चित्रण का अर्थ है किसी वस्तु का वास्तविक यथातथ्य चित्रण । किन्तु यथार्थवाद

- -

1· प्रेमचन्द – साहित्य का उद्देश्य – पृ· 56
2· डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी – विचार और वितर्क – पृ· 95
3· डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी – साहित्य सहचर – पृ· 91
4· डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी – "हिंदी साहित्य" – पृ· 427
5· डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी – विचार और वितर्क" –पृ· 95

पूर्वाग्रह युक्त दृष्टिकोण के कारण सत् या सुन्दर अंश को ग्रहण नहीं करता । वस्तुतः यह अंग्रेजी के रियलिज्म शब्द के समतुल्य व्यवहृत होता है और जीवन के कालिमापूर्ण अंश को ही अधिक अपनाता है ।"[1]

त्रिभुवन सिंह के अनुसार "जो साहित्यकार मानव जीवन एवं समाज का सम्पूर्ण वास्तविक चित्र उपस्थित करता है और अपने साहित्य का वस्तुविषय काल्पनिक संसार से न लेकर वास्तविक संसार लेता है उसे ही हम यथार्थवादी लेखक कह सकते है । यथार्थवादी लेखक अपनी प्रतिभा के बल पर बाह्य पदार्थों का यथातथ्य चित्र उपस्थित करने का भी प्रयत्न करता है, अथवा भौतिक तत्वों का चित्रण करते समय अपनी भावुकता तथा अपनी अनुभूतियों को बाधक नहीं होने देता । यथार्थवादी लेखक का विश्वास है कि साहित्य में सत्य की अभिव्यक्ति तभी संभव है जब उसका मूलाधार शुद्ध बाह्य तथ्य हो । यथार्थवादी साहित्य के अन्दर निर्भयतापूर्वक स्वीकार किया जाता है कि किसी भी साहित्य को यथार्थवादी साहित्य की संज्ञा तभी दी जाती है जब कि उसमें उन निश्चित समस्याओं का समावेश हो जो कि यथार्थवादी साहित्य के लिए आवश्यक है ।"[2]

डा० रवीन्द्रकुमार जैन का कहना है कि "सामान्यतः प्रत्येक साहित्यकार यथार्थवादी कहा जा सकता है, क्योंकि सभी साहित्यकार जीवन के किसी न किसी पक्ष की वास्तविकता को लेकर चलते ही है । यशपाल और इलाचन्द्र जोशी अथवा अंग्रेजी के डेजर और शेक्सपियर उक्त आधार पर यथार्थवादी है । परन्तु, बात ऐसी नहीं है, यथार्थवाद के

- -

1. प्रो० नरेन्द्र कोहली – प्रेमचन्द के साहित्य – पृ० 193
2. त्रिभुवन सिंह – हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद – पृ० 44

के नाम पर किसी भी अस्पष्टता को स्वीकृति देना औचित्यपूर्ण नहीं है । यथार्थवादी साहित्य वही है, जो वस्तुमूलक एवं वर्गहीन जनवादी चेतना से अनुप्राणित हो । कल्पना के निषेध और आदर्श तथा उपदेशात्मकता के बहिष्कार से युक्त वस्तुमूलक जीवन दृष्टि यथार्थवाद है ।"[1]

हिंदी साहित्य कोश में यथार्थवाद के अर्थ को स्पष्ट करते हुए श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है - "साहित्य की एक विशिष्ट चिन्तन पद्धति जिसके अनुसार कलाकार को अपनी कृति में जीवन के यथार्थ रूप का अंकन करना चाहिए ।"[2]

शिवकुमार मिश्र "यथार्थवाद" की परिभाषा देते हुए कहते है कि "यथार्थवाद" निश्चित रूप से सत्य के प्रति उत्कट आग्रह रखता है । वास्तविकता का सत्य चित्रण उसकी आधारभूत विशेषता है । वह तथ्यों का भी आग्रह है । किन्तु सत्य का, वास्तविकता के सत्य चित्रण का तथा तथ्यों के प्रति आग्रह का यह अर्थ कदापि नहीं है कि कृतिके निर्माण में चिंतन तथा कला के धरातल पर यथार्थवादी रचनाकार की अपनी कोई सक्रियता नहीं होती । यथार्थवादी रचनाकार तथ्यों को महत्त्वपूर्ण मानता है, तथ्य संकलन पर विश्वास नहीं रखता । वह समाचार पत्र का संवाददाता नहीं है कि बिना किसी प्रकार के भावात्मक या वैचारिक लगाव के वह तथ्य को ज्यों का त्यों समाचार पत्र में प्रस्तुत कर दे । वह सत्य का जिज्ञासु और शोधकर्ता अवश्य है किन्तु निरपेक्ष और नीरस सत्य का नहीं । सत्य उसके लिए सापेक्ष वस्तु है । वास्तविकता के सत्य चित्रण में उसका जोर इसी बात पर रहता है कि वास्तविकता तथ्यपरक न होकर कला की अपनी आवश्यकता की पूर्ति करते हुए कृति में अभिव्यक्त हो ।"[3]

- -

1. डा० रविन्द्र कुमार जैन - उपन्यास : स्थिति और संरचना - पृ. 43
2. डा० धीरेन्द्र वर्मा - हिंदी साहित्य कोश - संपादक - पृ. 606
3. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ. 141-142

4. यथार्थ, यथार्थवाद और यथार्थबोध :

यथार्थ, यथार्थवाद और यथार्थबोध - ये तीनों शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची जैसे लगने पर भी इन में भिन्नता है । यथार्थ जीवन की सच्ची अनुभूति है । जिसमें हम अपने जीवन में घटित होने वाले राग-विराग सुख - दुख और अन्य भावनाओं का अनुभव करते हैं । अपनी इन्द्रियों के द्वारा समाज में होने वाली सभी प्रकार के क्रियाकलापों का अनुभव करना ही यथार्थ है । इस यथार्थ अनुभूति के कारण लेखक अपने अनुभव, ज्ञान और दृष्टिकोण के द्वारा एक सैद्धांतिक विचारधारा बना लेता है । यही यथार्थवाद है । अर्थात यथार्थ का कलात्मक अभिव्यक्तिकरण यथार्थवाद है । इस प्रकार " यथार्थ यथार्थवाद का अमूर्त स्वरूप है इसका रामेटीरियल (कच्चा माल) है ।"[1] दूसरे शब्दों में कहेंगे तो यथार्थ वह है जो साहित्य में वास्तविकता के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है और यथार्थवाद उसे कहते हैं जो उस यथार्थपरक साहित्य का एक विशिष्ट वैचारिक अर्थ प्रदान करता है ।

वस्तुत: यथार्थ का चित्रण साहित्य में दो रूपों में किया जाता है एक स्थूल रूप में जिसके अन्तर्गत वास्तविकता के बाह्य पक्ष का चित्रण किया जाता है और दूसरा सूक्ष्म जिसमें यथार्थ के आन्तरिक पक्ष का चित्रण किया जाता है । स्थूल चित्रण में अधिकतर रचनाकार यथातथ्य ज्यों का त्यों या फोटोग्राफिक चित्रण करने की होड़ में लगे रहते है जो अतियथार्थ की सीमा में पहुंच जाता है । इस प्रकार के चित्रण में समाज

- -

1. डा० त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ० 44

को नग्न कुरूप, कुत्सित रूप का वर्णन अधिक होता है । इस प्रकार बाह्य यथार्थ का चित्रण करने वाले रचनाकार समाज के एक पक्ष को ही उभारते हैं जिससे ऐसे साहित्य को पढ़ने वाले पाठक में समाज के प्रति घृणा और भय की भावना उत्पन्न होती है । इस प्रकार बाह्य यथार्थ का चित्रण करते समय अक्सर परिस्थितियों और परिवेशों का कुरूपतापरक चित्रण ही होता है । वास्तव में यथार्थवादी लेखक को समाज के दोनों पक्षों - अच्छे और बुरे का चित्रण करना चाहिए ।

यथार्थ का दूसरा रूप सूक्ष्म यथार्थ है । यह लेखक की समझ पर आधारित रहता है । इसमें मात्र यथातथ्य या फोटोग्राफिक चित्रण करना करना नहीं होता बल्कि पात्रों और परिस्थितियों को समकालीन युगीन परिवेश के अनुकूल निर्माण करना पड़ता है । इसके लिए रचनाकार को अनुभव, ज्ञान और दृष्टिकोण के व्यापक स्तर पर आवश्यकता होती है । क्योंकि यह केवल वर्तमान स्थिति या परिवेश पर आधारित नहीं रहता बल्कि उसके पीछे अतीत तथा आगे भविष्य भी उसे प्रभावित करने वाले होते है । अतः रचनाकार को यथार्थ का चित्रण करते समय अपने परिवेश का गहन अध्ययन करना अत्यंत आवश्यक है जिसके कारण उसे युग और परिस्थितियों के प्रति एक दृष्टिकोण का निर्माण करना होता है । यही दृष्टिकोण साहित्य में एक सैद्धांतिक विचार धारा बन जाती है तो वह "वाद" में रूपांतरित हो जाती है । अर्थात यथार्थ यथार्थवाद हो जाता है । साहित्य में "यथार्थ" आत्मा है तो यथार्थवाद उसका शरीर ।

यथार्थबोध उपरोक्त दोनों शब्दों से सन्निहित संबंध रखते हुए भी उनसे कुछ भिन्न है । यथार्थ जीवन की अनुभूति है । उसी का

सैद्धांतिक निरूपण यथार्थवाद है। यथार्थबोध यथार्थ को ग्रहण करने वाले का होता है । स्पष्ट है साहित्य के क्षेत्र में यथार्थ बोध रचनाकार का होता है । अर्थात रचनाकार अपने समसामयिक परिवेश की यथार्थ स्थिति को किस दृष्टि से देखता है वही उसका यथार्थबोध होगा । अतः एक ही काल के विभिन्न रचनाकारों के यथार्थबोध में अन्तर रहना स्वाभाविक है ।

"यथार्थबोध का अर्थ है अहम (अस्मिता) के माध्यम से अन्तः बाह्य जीवन को सक्रिय रूप से जीने की दृष्टि, जो चमत्कार निरपेक्ष होती है और समसामयिक जीवन को पूर्णतः आत्मसात करने में समर्थ होती है ।"[1] "मूलतः यथार्थबोध इतिहास बोध का अंग है और इसी दृष्टि से रचना के क्षेत्र में निरन्तर प्रकट होने वाले नवीन रूपों, संबंधों, भावों और विचारों को पहचाना जा सकता है और उनका सहानुभूति पूर्वक मूल्यांकन किया जा सकता है ।[2]

यथार्थवाद को हम सैद्धांतिक विचार धारा का मानदण्ड मान सकते है और यथार्थबोध को उस मान दण्ड की कसौटी पर खरे उतरने की कोशिश । अर्थात यथार्थवादी सिद्धांत के नियमों तक पहुंचने के लिए रचनाकार को अपने अनुभव ज्ञान और दृष्टि के सहारे अपने परिवेश का यथार्थ का बोध उसी दायरे में कराना है जो यथार्थवाद के सिद्धांत हैं । यथार्थ का बोध कराने वाले "लेखक से अपेक्षा की जाती है कि उसकी संवेदनशीलता देशकालातीत हो । वह बीते हुए कल के यथार्थ से भी संबद्ध

1• डा० सुखबीर सिंह - समीक्षा के नए प्रतिमान - पृ• 77
2• डा० सुखबीर सिंह - समीक्षा के नए प्रतिमान - पृ• 82

और समसामयिक यथार्थ के कच्चे माल से आने वाले कल की संभावनाओं को भी व्यक्त कर सके ।"[1]

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि "यथार्थ बोध से तात्पर्य है समसामयिक परिवेश के बीच वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जीवन को सक्रिय एवं समग्र रूप से जीना ।"[2] और उससे पाठक को परिचित कराना ।

5. यथार्थवाद के प्रकार :

यथार्थवाद साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनने के बाद उपन्यासों में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने लगा । उपन्यासों में सामाजिक व्यवस्था का चित्रण अधिक होने लगा । रचनाकार अपनी - अपनी दृष्टि से यथार्थ का चित्रण करने लगे । रचनाकार कितना भी महान हो वह सामाजिक व्यवस्था को कितनी ही निष्पक्ष दृष्टि से देखता हो किन्तु उसमें उसकी निजी दृष्टि अवश्य समाहित रहती है । इसलिए साहित्य में यथार्थवाद के आधार पर समाज का कितना भी वास्तविक चित्रण क्यों न हो उसमें रचनाकार का अपना यथार्थबोध समाहित रहता है, जिसके पीछे उसकी दृष्टि, ज्ञान और अनुभव कार्य करते है । इस प्रकार रचनाकारों की भिन्न दृष्टियों के कारण यथार्थ के विभिन्न रूप सामने आते है, जो निम्न प्रकार हैं :-

1. समाजवादी यथार्थवाद
2. आलोचनात्मक यथार्थवाद

---

1. डा सुखबीर सिंह - समीक्षा के नए प्रतिमान - पृ 80
2. -वही- -वही- पृ. 83

3· प्रकृतवादी यथार्थवाद

4· अतियथार्थवाद

5· आदर्शोन्मुख यथार्थवाद

6· मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद

7· ऐतिहासिक यथार्थवाद

उपरोक्त यथार्थवाद के रूपों का यहाँ पर क्रम में विवेचन प्रस्तुत है :-

2·1· समाजवादी यथार्थवाद :

समाजवादी यथार्थवाद मार्क्सवादी चिंतन पर आधारित साहित्यिक अभिव्यक्ति है । मार्क्सवादी दर्शन मूलतः द्वंद्वात्मक भौतिकवादी दर्शन है । समाजवादी यथार्थवाद वर्गहीन समाज की स्थापना श्रमिक वर्ग का प्रामुख्य सन्तुलित समाजवादी अर्थ व्यवस्था, परिवर्तन में विश्वास और पूंजीपति वर्ग से निरंतर संघर्ष आदि बातों में विश्वास करता है ।

समाजवादी यथार्थवाद जो मार्क्सवादी चिंतन पर आधारित है, के अनुसार समाज में दो वर्ग रहते है - एक शोषक और दूसरा शोषित । इन दोनों में निरंतर संघर्ष चलने के पश्चात अंततः शोषित वर्ग का विजय होता है और समाजवादी व्यवस्था का निर्माण होता है । सामाजिक व्यवस्था में साहित्यकार भी दो पक्ष के होते है - एक बुर्जुआ वर्ग के समर्थकदूसरे शोषित (सर्वहारा) वर्ग के समर्थक । जो रचनाकार पूंजीपतियों के समर्थन में उनके हित में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लिखता है वह बुर्जुआ लेखक कहा जाता है औरजो सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति रखकर उनके प्रति होने वाले शोषण, अत्याचार, अन्याय और बलात्कार को उजागर करते हुए उनके (शोषितों के) समर्थन में तथा पूंजीपतियों के विरुद्ध में लिखता है वह समाजवादी यथार्थवादी रचनाकार कहलाता है ।

यथार्थवाद की इस प्रमुख धारा का विकास मुख्यतः रूस में हुआ। सोवियत लेखकों की सन् 1934 ई० में हुई प्रथम अधिवेशन में मैक्सिम गोर्की ने सर्वप्रथम समाजवादी यथार्थवाद का नामलिया। इस वाद का मुख्य उद्देश्य था मनुष्य, जीवन, और समाज का संपूर्णता से यथार्थ चित्रण करना। स्पष्ट है कि यह मार्क्सवादी विचार धारा के अनुकूल है। शिव कुमार मिश्र कहते हैं कि - "समाजवादी यथार्थवाद के मूल में मार्क्स, एंजिल्स तथा लेनिन द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक समाजवाद तथा द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की वह विकासमूलक धारणा है जो विरोधी तत्वों के बीच चलने वाले चिरंतन संघर्ष की भूमि पर प्रतिक्षण एक नये परिवर्तन की सूचक बनती है और यह परिवर्तन यांत्रिक भौतिकवादियों के मत के विपरीत सदा ही एक गुणात्मक विकास की योजना करता है। विकास की यह प्रक्रिया निरंतर चला करती है और इस प्रकार सदैव ही एक उन्नयन की भूमिका सामने आती रहती है।"[1]

समाजवादी यथार्थवाद मनुष्य की अन्तर्वृत्तियों और भावात्मक चेतना का निर्माण वस्तुमूलक ठोस चिन्तन पर आधारित है। इसके अनुसार समाज गतिशील तथा द्वंद्वात्मक भौतिकवादी चिन्तन पर आधारित है। समाजवादी यथार्थवादी लेखक को इन्हें समझने की क्षमता होनी चाहिए शल्प फास समाजवादी यथार्थ को चित्रण करने वाले लेखक के लिए कहते हैं कि "उसे निरे वर्णन या आत्मगत विश्लेषण से ही नहीं, बल्कि परिवर्तन से कार्य कारण संबंध से, संकट और द्वंद्व से सरोकार रखना चाहिए।"[2] 'उसकी दृष्टि में इतना पैनापन होना चाहिए कि समाज में चलने वाले

- -

1. शिव कुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ. 115

2. -वही- -वही- पृ. 116

विरोधी शक्तियों के संघर्ष को, उसकी सही भूमिका और परिप्रेक्ष्य में देख सके, उनके मूल असंगतियों तथा उनके भीतर निहित अंतर्विरोधों को पहचान सके, अपने चिंतन की समस्त वस्तुओं के सार को तेजी तथा समझदारी से पकड़ सके ।[1]

समाजवादी यथार्थवाद में समाज प्रथम है और साहित्य द्वितीय । इस के अनुसार समाज के आविर्भाव के बाद ही साहित्य का उदय हुआ है । इसका मानना है कि साहित्य और समाज अन्योन्याश्रित है । सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिवेशों से साहित्य प्रभावित होता है और वैसे ही साहित्य से समाज ।

इस धारा के साहित्य में नायक कोई महापुरुष या सर्वगुण संपन्न व्यक्ति नहीं होता बल्कि सामान्य मनुष्य होता है । "ये नायक उसी "मनुष्य" के प्रतिनिधि है, जो या तो आकांक्षित समाज व्यवस्था की प्राप्ति के लिए संघर्षरत है या उसकी रचना और समृद्धि में लगा हुआ है । यह वह "मनुष्य" है जिसके सामने महत लक्ष्य और महत संभावनाएं है, जो मानव जीवन के उदात्त मूल्यों को हस्तगत करने के लिए ही अपने समूचे अस्तित्व को दांव पर लगाए हुए है । और जानता है कि जीत अंततः उसी की होगी ।[2] इस प्रकार समाजवादी लेखक वही हो सकता है जो सामान्य जीवन के बीच ऐसे चरित्रों को पहचानने और पाने की जरूरत महसूस करता हो । ऐसे लेखकों को उन पात्रों के जीवन में गहराइयों तक जाकर उनके अनुभूतियों को जानना, उनके आशाओं और आकांक्षाओं को समझकर उन्हें पात्रों के चरित्रों में गढ़ना पड़ता है । इस प्रकार रचना को पूरी जीवन्तता से उजागर करना पड़ता है । राल्फ फाक्स कहते हैं -

---

1. शिव कुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ. 116
2. -वही- -वही- पृ. 122

"पुरुषों और स्त्रियों की जगह कठपुतलियों को खड़ा करना, रक्त और मांस की जगह नये बंधे विचारों से काम लेना, संदेहों, पुराने नाते-रिश्तों, रीति-रिवाजों और लगावों से ग्रस्त वास्तविक लोगों की जगह नायकों और खलनायकों की बारात सजाना आसान है, पर ऐसा करना उपन्यास लिखना नहीं है।[1] राल्फ फाक्स का कहना ठीक ही है कि बिना जीवंतता के उपन्यास नहीं लिखा जा सकता। सामाजिक यथार्थवाद का भी आशय यही है कि रचना में जीवंतता हो।

सामाजिक यथार्थवादी रचनाकार का उद्देश्य यही रहता है कि इस वर्गगत समाज में सर्वहारा पर होने वाले अत्याचार, अन्याय, शोषण आदि को दूर करने के लिए उस वर्ग (सर्वहारा) को जागृत करना है और उसमें सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए क्रान्ति करने के लिए प्रेरित करना है। इसके लिए लेखक को दृष्टिकोण जन्य ईमानदारी, आस्था होना आवश्यक है।

5.2. आलोचनात्मक यथार्थवाद :

"यथार्थवाद के उद्भव के साथ 19वीं और 20वीं शताब्दी में, प्रकृतवादी दृष्टिकोण से भिन्न वास्तविक जिन्दगी को उसकी वस्तुपरकता में और सच्चाई के साथ देखने, परखने और चित्रित करने वाले जिस साहित्य का जन्म और विकास हुआ, मार्क्सवादी आलोचकों ने उसे "आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्य" तथा उसमें निहित यथार्थ दृष्टि को "आलोचनात्मक यथार्थ दृष्टि" के नाम से संबोधित किया है।"[2]

- -

1. शिवकुमार - यथार्थवाद - पृ. 124
2. -वही- -वही- पृ. 98

आलोचनात्मक यथार्थवाद साहित्य की अन्य विधाओं से ज्यादा कथा साहित्य में अधिक सशक्त रूप में अर्थजित होता है ।इसका कारण यही है कि उपन्यास के उदय से इसका गहन संबंध है । यह समाजवादी यथार्थवाद से भिन्न है । इसमें समाजवादी विचार धारा की सक्रियता दिखाई नहीं देती । यह युग जीवन तथा समाज की विकृतियों तथा कुरूपताओं के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण रखता है, किन्हीं रचनात्मक संभावनाओं को उजागर नहीं करता । इस प्रकार कह सकते है कि आलोचनात्मक यथार्थवाद समाज का निष्पक्ष रूप से आलोचना करता है । उसके पीछे किसी विचारधारा की उत्प्रेरणा नहीं है ।

"मार्क्सवादी साहित्य चिंतक इस आलोचनात्मक यथार्थवाद को बुर्जुआ यथार्थवाद के नाम से भी पुकारते है ।[1] गोर्की ने बुर्जुआ यथार्थवाद के अंतर्गत दो प्रकार के लेखकों की चर्चा की है --"एक वे लेखक, जो अपने वर्ग चरित्र को न छोड़ सकने के कारण अपने वर्ग हितों से जुड़े रहे हैं और जिन्होंने अपने कृतित्व में अपने वर्ग का गौरवगान किया है । दूसरे प्रकार के बुर्जुआ लेखक वे हैं जिन्होंने अपने वर्ग स्वार्थ तथा वर्ग हितों का अतिक्रमण करते हुए अपने वर्ग की खरी आलोचना की है । ऐसे ही लेखकों को गोर्की आलोचनात्मक यथार्थवाद तथा "क्रान्तिकारी स्वच्छंदतावाद" का स्रष्टा कहा है ।"[2] किन्तु इस स्वीकृति के बावजूद गोर्की ने इस पर आपत्ति व्यक्त की कि इन लेखकों समाजवादी वैयक्तिकता के निर्माण में सहायता नहीं रहा है कारण ये समाज में प्रत्येक वस्तुकी आलोचना किये हैं और कहीं भी कोई वस्तु की प्रतिष्ठा नहीं कर सके हैं ।

- -

1. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ. 100
2. -वही- -वही- पृ. 100

आलोचनात्मक यथार्थवाद में पूँजीवादी सभ्यता का आलोचनात्मक दृष्टि से चित्रण करते हुए उस व्यवस्था के कुरीतियों तथा कुप्रथाओं का चित्रण यथार्थ के धरातल पर किया गया है । आलोचनात्मक यथार्थवाद पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध अकेले अहं का विद्रोह था । और बुर्जुआ वर्ग के प्रति एक विक्षोभ तिरस्कार था ।

कहा जाता है कि आलोचनात्मक यथार्थवादी लेखकों के पास वैज्ञानिक दृष्टि की कमी थी । वे पूँजीवादी समाज व्यवस्था के विकास से परिचित नहीं है । इसी कारण ये सभी लेखक एक जुट होने में असफल रहे और पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध संगठित रूप में कर न सके । हाँ, ये लेखक इतना कर सके हैं कि पूँजीपतियों के सामने अपने घुटने नहीं टेके । वे पूँजीवादी जर्जर समाज का व्यवस्था का चित्रण पूरे ईमानदारी से किये हैं ।

यह ज्ञात होना आवश्यक है कि आलोचनात्मक यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद के बीच में कोई विरोध नहीं है । मात्र भेद विचार धारा का है जो समाजवादी यथार्थवाद में समाजवादी विचार धारा है और आलोचनात्मक यथार्थवाद में इसका अभाव है ।

जार्ज लुकाच बाल्जक की यथार्थवादी दृष्टि पर विचार करते हुए कहते हैं कि "सामान्य प्रतिभा वाले लेखक अवश्य अपनी निजी विचार धारा तथा वस्तुगत यथार्थ के बीच संगति बिठाने में सफल हो जाते हैं परन्तु महान लेखक वस्तुगत यथार्थ के प्रति अपनी ईमानदार आस्था को अपने निजी विचारों की वेदी पर कदापि बलि नहीं होने देते । बाल्जक ही नहीं, आलोचनात्मक यथार्थवाद के दूसरे महान लेखकों का कृतित्व भी इस कथन का साक्ष्य प्रस्तुत करता है । ये वे लेखक हैं जो वस्तुतः

जिन्दगी को उसकी सच्चाइयों में उभारते समय अपने निजी विचारों के प्रति ही सर्वाधिक निर्मम होते हैं ।[1] बाल्जक की आलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टि के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए एंजिल्स ने यहाँ तक कहा कि "उस युग के बारे में जो ज्ञान मुझे बाल्जक के उपन्यासों के माध्यम से प्राप्त हुआ है, वह उस युग के समस्त राजनीतिज्ञ, इतिहासकार, अर्थशास्त्री और सांख्यिकीविद् मुझे मिलकर भी नहीं दे सके ।"[2]

बाल्जक ही नहीं रोमारोला, टालस्टाय के कृतित्व में भी ऐसा ही आलोचनात्मक यथार्थवाद को देखने मिलता है । आलोचनात्मक यथार्थवाद के इन्हीं पुरोधाओं ने उपन्यास को "महाकाव्यात्मक उपन्यास" की संज्ञा दिलाई है । इन लेखकों की मात्र यथार्थ चित्रण के कारण उपन्यास को महाकाव्यात्मक उपन्यास की संज्ञा मिली है ऐसा नहीं है बल्कि इन के उपन्यासों की शैली, भाषा प्रतिनिधि विशेषताओं के साथ पात्रों का सजीव चित्रण और समाज का समग्रता से आकलन करना भी है ।

इस धारा के लेखकों ने अपनी रचनाओं में वस्तुपरकता, संविदनीयता, युग जीवन की प्रामाणिक चित्रण किया है । जिसके कारण इनकी रचनायें महान हो सकी है ।

संक्षेप में आलोचनात्मक यथार्थवाद की विशेषताएँ इस प्रकार है - "सत्य के प्रति अपुतिहत निष्ठा, सूक्ष्म पर्यवेक्षण, समग्र आकलन, वस्तुगत यथार्थ का मार्मिक विश्लेषण, अंतर्भेदी दृष्टि, व्यवस्था जन्य विकृतियों का निर्मम उद्घाटन चित्रण की समग्रता, उसकी पारदर्शी स्वरूप, गहरी

- -

1. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ. 108
2. -वही- -वही- पृ. 110

सामाजिक निष्ठा तथा अकृत्रिम मानवीय संवेदना, याञ्त्रिकता का तिरस्कार सजीव और सप्राण मानव चरित्र चित्रण के अंतर्गत "टाइप" की सृष्टि और उसे दूसरी भूमिका पर उसके वैयक्तिक तथा सामाजिक इतिहास के साथ मूर्त करना, महाकाव्यात्मक औदात्य दृष्टिकोण तथा चित्रण, दोनों धरातलों पर, निष्क्रिय तटस्थता से हटकर युग जीवन की गति-विधियों में इनका लगन और संश्लेष्ट इनवाल्वमेंट कुछ ऐसी खास बातें है, जो "आलोचनात्मक यथार्थवाद" को महनीयता प्रदान करती है, इसे यथार्थवादी कला की धरोहर सिद्ध करती है ।"[1]

5.3. प्रकृतवादी यथार्थवाद :

प्रकृतवादी यथार्थवाद का जन्म 19वीं सदी में फ्रांस में हुआ था । एक प्रकार से इसका जन्म समाजवादी यथार्थवादी के अनेक विकृतियों के कारण हुआ । यह वाद आदर्शवाद, रोमान्सवाद और भावुकता जैसे वादों के भी विरोधी है । इसके प्रबल समर्थ के रूप में प्रख्यात उपन्यास-कार एमिल जोला का नाम लिया जाता हैं । प्रकृतवादी यथार्थवाद साहित्य के कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है - इसमें प्रकृति प्रेम का वर्णन होता है और यह सामान्यतः प्रकृति के साथ प्रत्यक्ष संपर्क रखने की चेष्टा करके यथार्थवाद का रूप स्पष्ट करता है । इस धारा के लेखक मानव को प्रकृति का ही एक अंश मानते हैं । इसलिए वे मनुष्य को प्रकृति के सन्निहित में ही देखने पर बल देते है न कि धार्मिक या मानवीयता के रूप में । इस प्रकारवे मानव और पशु को समान रूप से देखते हैं । इन लेखकों पर डार्विन का विकासवाद का प्रभाव है इसलिए वे मानते है कि मनुष्य कोई असाधारण प्राणी नहीं है, बल्कि वह भीइस प्रकृति का एक विकसित प्राणी मात्र है । इसलिए मनुष्य और पशु के मूल भूत प्रवृत्तियों

- -

1. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ. 112

में साम्य है । वे स्थापित करते हैं कि "मानव शरीर की सभी मांगे महत्वपूर्ण है और काम मूलक मांगे और भी अधिक महत्वपूर्ण है । अतः इन मांगों की पूर्ति अत्यन्त सहजता, पूर्णता और निर्बाधता से होनी चाहिए । शरीर की किसी भी काम मूलक क्रिया अथवा इच्छा को यथावत् चित्रित करके ही समाज में हम उसकी सचाई को प्रकट कर सकते हैं । तथ्य तथ्य है, उसमें न कुछ गर्हित है, न बीभत्स । तथ्य को छिपाने से समाज में उसके प्रति राग, आकर्षण और आक्रोश अधिक बढ़ता है । वास्तविकता को उसके सही और खुले रूप में समझ लेने पर व्यक्ति को अनुभूति का सा तोष आ सकता है । साथ ही किसी प्रकार की अस्पष्टता उसके मन में नहीं रहती ।"[1]

प्रकृतवादी यथार्थवाद के कारण यह मान्यता प्रबल हो गई है कि मनुष्य और पशुओं में समान रूप से स्थित भूख और काम की प्रवृत्तियों का पोषण रुचि के अनुसार होनी चाहिए । इस धारणा के कारण साहित्य में अमंगलकारी कुत्सित, घृणित, विकृत तथा भीभत्स दृश्य प्रकट होने लगे ।

प्रकृतिवादी यथार्थवाद की विशेषता यह है कि वह साहित्य में समाज और जीवन को उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करता है । यह किसी वस्तु तथ्य को गोपनीय रखना पसंद नहीं करता । इस सम्बन्ध में जोला का कथन है कि "लेखक का कर्त्तव्य है कि वह किसी भी वस्तु का जब चित्रण करने बैठे तो उसका विश्वसनीय एवं ठीक ठीक चित्र उपस्थित कर दे, भले ही वे कुरूप तथा जीवन के गन्दे चित्र क्यों न हों । जब वह मनुष्यों की दुर्बलताओं तथा रोगों और नैतिक कमजोरियों का चित्र उपस्थित करने लगे तो उसे चाहिए वह किसी भी अंश का चित्र खींचना

- -

1. रविन्द्रकुमार जैन - उपन्यास : स्थिति और संरचना - पृ. 48

भूल न जाय जिससे कि पाठक को उसकी विश्वसनीयता में सन्देह होने लगे।"[1]

प्रकृतवादी यथार्थवाद के अनुसार कला का वास्तविक अध्ययन प्रकृति का अध्ययन ही है। इसलिए प्रकृति का वास्तविक चित्रण साहित्य में ऐसा होना चाहिए कि जिसमें न कोई अलंकरण हो और न श्रृंगार। इस वाद के अनुसार प्रकृति स्वअस्तित्वात्मक है। यह किसी पर आधारित नहीं है और न ही किसी से परिचालित है इसलिए कलाकार या साहित्यकार का यही कर्त्तव्य है कि अपने मनोवृत्तियों या धार्मिक वृत्तियों को बीच में न लाते हुए प्रवृत्ति को अपने द्वारा और जिस प्रकार से वह देखता है उसका वैसा ही चित्रण करें, चाहे वह कुरूप हो या सुंदर।

प्रकृतवादी यथार्थवादी लेखक प्रकृति का यथातथ्य चित्रण करने में अक्सर व्यक्तिनिष्ठ होता है। वह समाज के प्रति घृणा, क्रोध, द्वेष, आक्रोश व्यक्त करते हुए समाज में स्थित कुत्सित, कुरूप, अप्रिय और नग्न दृश्यों का ही अधिकतर चित्रण करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रकृतवादी यथार्थवाद स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया है। स्वच्छंदवादी जब किसी उपकरण (वस्तु) का ब्योरा देता है तो पाठक या दर्शक की भावुकता को उत्तेजित करने वाले और कल्पना के विकास में सहायक होने वाले होते हैं। इसके ठीक विपरीत प्रकृतवादी यथार्थवादी जान बूझकर उन्हीं वस्तुओं (उपकरणों) का ब्योरा देता है जो घृणित और बीभत्स हो।

---

1. डॉ० त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ० 57

प्रकृतवादी यथार्थवादी मानते हैं कि प्रकृति में कोई अच्छा या बुरा नहीं होता । लेखक को प्रकृति के कार्यों या प्रक्रिया के संबंध में अच्छा या बुरा कहकर निर्णय करने का कोई अधिकार नहीं है । इस प्रकार प्रकृतवादी यथार्थवादी लेखक प्रकृति का यथातथ्य चित्रण करना ही साध्य मानता है न कि साधन ।

5·4· अतियथार्थवाद :

अतियथार्थवाद का जन्म फ्रांस में भौतिकवादी विचारधारा के विरोध में हुआ । यह दादावाद से अधिक प्रभावित हुआ है । दादावाद ने प्रथम विश्व युद्ध के कारण उत्पन्न निराशा, निस्पृहता, असहन और संकट से जन्म लिया है । फ्रेन्च भाषा में दादा (Dada) का अर्थ है लकड़ी का घोड़ा" । व्यवस्था में फैले अन्याय को देखकर व्यवस्था को ही ध्वंस करने की प्रवृत्ति दादावाद का सार है । दादावादियों में प्रमुख ब्रुतसेन केक स्वयं एक मनोवैज्ञानिक है । वे फ्रायड द्वारा विश्लेषित मनोविश्लेषण पर अधिक आश्रित दिखाते थे । यही अतियथार्थवाद के आविर्भाव का कारण बना । यह वाद भी समकालीन समाज पर द्वेष के कारण ही पैदा हुआ है । रचना में स्थित यथार्थ को अलग अलग करके यथार्थ से परे अभिव्यक्ति को प्राप्त करना ही इस वाद का उद्देश्य है । इस वाद के समर्थकों के अनुसार यथार्थ को पारकरने वाला अतियथार्थ ही सच्चा यथार्थ (Absolute reality) है ।

सन् 1918 ई० में अपोलिनेयर ने पहली बार "सुपर रियलिज्म" शब्द का प्रयोग किया था । 1924 में ब्रेतों ने अतियथार्थवाद की स्थापना की । प्रथम अतियथार्थवादी घोषणा पत्र 1924 में और दूसरा सन् 1930 में प्रकाशित हुआ था । प्रथम घोषणा पत्र में लिखा गया था कि – "अतियथार्थवादी का मूल विचार मानसिक स्वयं चालन है । इसी के द्वारा यह

रचना की यथार्थ क्रिया को व्यक्त करता है। यह बुद्धि या सौन्दर्य शास्त्रीय विधान से मुक्त विचार का श्रुतिलेखन है। अतियथार्थवाद अन्यथा समझे जाने वाले विधान अनुबंध के पूर्व स्वरूपों में विशिष्ट कोटि के यथार्थ का आधान मानता है। यह मानसिक कार्य पद्धति के स्थान पर इसी उपयुक्त पद्धति को उसके पूरक रूप में काम में लाता है।"[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि अतियथार्थवाद एक मानसिक स्वयंचालित प्रक्रिया है, यथार्थ को स्थापित करने का कार्य करता है।

वस्तुतः फ्रायड का मनोविश्लेषण सिद्धांत ही अतियथार्थवाद का कारण है। "फ्रायड के अनुसार व्यक्ति के मन में तीन भाग रहते हैं - इद (Id) अहं (ego) और सुपर इगो (super ego) इद मौलिक उद्रेकों से सम्बन्धित रहता है। इन उद्रेकों में लैंगिक उद्रेक प्रमुख है। इसमें अस्वाभाविक लैंगिक इच्छाएं, चोरी करने की प्रवृत्तियां रहते हैं। इन्हें जागृत अवस्था में दमन करके रखने वाला ही अहं। यह हेतुबद्धक होते हुए अवांछित उद्रेकों को जागृत होने नहीं देता इसलिए ही स्वप्न में और बोलते समय गलतियों में दूसरे रूप में ये प्रस्फुटित होते हैं। अवांछनीय भावों को दमन करने की प्रक्रिया में क्षमहीनता के कारण व्यक्ति को "मनोरुग्णता" की सभा होती है। यह सभा सुपर इगो डालता है। हेतुबद्धित अहं के द्वारा इद और सुपर इगो के नियंत्रण करने से ही मानसिक स्वास्थ्य परिपूर्ण रहेगा। अतियथार्थवादियों ने हेतुबद्धित अहं को हटाकर इद को सुपर इगो से मिला दिया। इसलिए इन्हीं भावों को अभिव्यक्त कारण हो जाता है और स्वप्न ही यथार्थ होता है।"[2]

अतियथार्थवाद का प्रभाव साहित्यिक क्षेत्र पर भी पड़ा। इसके कारण साहित्य में स्वप्न, चेतन और अवचेतन मानस की अनुभूतियों को

- -

1. शिवकरण सिंह - आलोचना के आधुनिकवाद और नयी समीक्षा - पृ. 2।
2. सी जी मूर्ति - योजना (तेलुगु पाक्षिक) - तेलुगु संपादक - पृ. 6 अद्देपल्ली राममोहन राव, तेलुगु कवित्वम लो इजालु

अन्वेषित करने की बात गई । इस वाद के कारण वैज्ञानिक तार्किकता की अवज्ञा की गई और व्यक्ति के मनोवृत्ति को स्वतंत्रता मिल गई । इस प्रकार वैज्ञानिक भौतिकवादी दृष्टि का पूरे जोर से विरोध किया गया है । अमेरिकन कालेज कोश की यह परिभाषा इस संदर्भ में द्रष्टव्य है - A recent movement in literature and art (influenced by psychoanalysis) based on the expression of imagination uncontrolled by reason and seeking to suggest the activities of subconscious mind whether in dreams or during walking. (उपन्यास: सिद्धान्त और संरचना से उद्धृत)

अतियथार्थवादी लेखक अवचेतन मन को दबाकर रखना नहीं चाहता बल्कि उसे और भी भड़का कर अनावृत करके अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है । यह रचनाकार की प्रकृतवादी यथार्थवादियों की भांति मनुष्य को पशु के समान ही देखता है । "मनुष्य बहुत सी सुविधाओं के प्रति लोलुप होता है और रति संबंधी सुविधाओं में तो वह पशुओं के समान सुविधाओं को प्राप्त करने या कराने का हामी है ।"[1] इस प्रकार त्रिभुवन सिंह अतियथार्थवाद की परिभाषा देते हुए कहते है - "साहित्य में यथार्थवाद की अभिव्यक्ति जब समाज की मर्यादा एवं परम्परा की सीमाओं का अतिक्रमण करके अत्यन्त ही नग्न रूप धारण कर लेती है तो उसे अति यथार्थवाद (सररियलिज्म) कहते है ।"[2] और वे अतियथार्थवाद और प्रकृतवाद में अंतर स्पष्ट करते हुए कहते हैं -"इसे (अतियथार्थवाद को) हम एक प्रकार से प्रकृतवाद की चरम अभिव्यक्ति कह सकते है । प्रकृतवादी साहित्य की अभिव्यक्ति जिस स्थान पर अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त होती है, अतियथार्थवादी साहित्य उसी स्थान से अपनी अभिव्यक्ति आरम्भ करता

---

1. त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ. 61

2. -वही- -वही- पृ. 60

है, परन्तु प्रकृतवाद और अतियथार्थवाद में मौलिक अंतर है । प्रकृतवाद यथार्थवाद की चरम अभिव्यक्ति है परन्तु सर्रियलिज्म के अन्दर लेखक उन स्वच्छन्द तत्वों का तद्वत चित्र उतारता है जो उसकी कल्पना में आते है । इसका विकास मुख्यत: मूर्तिकला के माध्यम से हुआ है ।"[1]

अतियथार्थवाद अव्यवस्था का स्थिति है । यह अपनी कल्पना के आधार पर मन चाहे विश्व का निर्माण करने के पक्ष में है । यह परम्परागत रूढ़ियों का कड़ा विरोध करता है ।यह मनुष्य की निर्दोषिता में विश्वास करता है और यह मनुष्य के द्वारा की गई बड़ी से बड़ी गलती को भी सामान्य गलती समझता है । अतियथार्थ वादी अपनी वर्तमान स्थिति से असंतुष्ट है "और इस परिवेश में उसे न्याय मिलने की संभावना नहीं है । अतएव वह उसके साथ समझौता नहीं करना चाहता है । मन को न तो इस जीवन में शान्ति मिल पाती है और न उसके बाद । अतएव यह यथार्थवादी उसका हल ढूंढना चाहता है ।अतियथार्थवाद उस मानस की पुकार है जो अपने विरुद्ध होता है ।"[2]

नारी को विलास और आकर्षण की वस्तु समझकर उसके रंग रूप का जो वर्णन साहित्य में परम्परागत रूप से होता था उसके विरोध में अतियथार्थवादियों ने नारी के अंग प्रत्यंग तथा अंत:मन को अनावृत करके यथातत्य चित्रण प्रस्तुत किया ताकि कोई नारी को भोग विलास या आकर्षण की वस्तु न समझे । किन्तु यही अतियथार्थवादी लेखकों को विरोधियों का सामना करना पड़ा क्योंकि विरोधियों का आरोप था कि नारी के अंग प्रत्यंग के यथातथ्य चित्रण के नाम पर उन लेखकों ने अपनी दमित कामवासनाओं को परोक्ष रूप से अभिव्यक्त कर लिया । यह कुछ

---

1. त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ. 60
2. शिवकरण सिंह - आलोचना के आधुनिकवाद और नयी समीक्षा- पृ. 22

हद तक सच है कि ये लेखक नारी के अवयवों के चित्रण में सीमोल्लंघन करते हैं, फिर भी हम यह कहे बिना नहीं रह सकते हैं कि सभ्यता के नाम पर आज वास्तविकता के ऊपर जो पर्दा डाला गया है उसे हटाकर उसके यथार्थ रूप को सामने लाने का प्रयत्न अतियथार्थवादी साहित्य कर रहा है ।

5.5. आदर्शोन्मुख यथार्थवाद :

यथार्थ और आदर्श में समन्वय होने से आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का आविर्भाव हुआ है । साहित्य में "जो हो रहा है" यथार्थ है और "जो होना चाहिए" आदर्श है । समाज में जो घटित हो रहा है उसका ही चित्रण ज्यादातर निराशाजनक चित्रण करें तो साहित्य और अन्य शास्त्रों में कोई भेद नहीं रह जायेगा । कोई भी पाठक अपने दैनिक जीवन के कष्टों से ऊबा रहने पर उसे यदि उसी के कष्टों का ज्यों का त्यों चित्रण करके दिखाये तो वह और भी अधिक निरुत्साहित होगा । साहित्य का मूल उद्देश्य जीवन के स्तर को ऊँचा करना है । इसलिए आदर्शोन्मुख यथार्थवादी लेखक चाहते हैं कि रचनाओं में यथार्थ का चित्रण करते हुए उसकी परिणति आदर्श में हो । हालांकि आदर्श एक कल्पना मात्र होता है । फिर भी वह कल्पना यथार्थ पर टिके रहने के कारण वास्तव में कुछ अंश खरे उतरने की संभावना रहती है । इसलिए आदर्शोन्मुख यथार्थवादी लेखक साहित्य में आदर्श और यथार्थ का समन्वय होना अनिवार्य मानते हैं । प्रेमचन्द उपन्यासों की उत्कृष्टता की कसौटी के संबंध में अपना अभिप्राय स्पष्ट करते हुए कहते हैं - "वे ही उपन्यास उच्च-कोटि के समझे जाते हैं, जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो । उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं । आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए, और अच्छे उपन्यास की

ही आदर्श- यथार्थ का समन्वय, विशेषता है ।"[1] अन्यत्र प्रेमचन्द साहित्य में निरा यथार्थवाद को नकारते हुए यथार्थ के साथ आदर्श के समन्वय के महत्व को मनोवैज्ञानिक ढंग से बताते हुए कहते है कि -"मानव स्वभाव की विशेषता यह भी है कि वह जिस छल, क्षुद्रता और कपट से घिरा हुआ है, उसी की पुनरावृत्ति उसके चित्त को प्रसन्न नहीं कर सकती । वह थोड़ी देर के लिए ऐसे संसार में उड़कर पहुँच जाना चाहता है, जहाँ उसके चित्त को ऐसे कुत्सित भावों से निजात मिले, वह भूल जाय कि मैं चिन्ताओं के बन्धन में पड़ा हुआ हूँ, जहाँ उसे सज्जन सहृदय उदार प्राणियों के दर्शन हों, जहाँ छल कपट, विरोध और वैमनस्य का ऐसा प्राधान्य न हो । उसके दिल में ख्याल होता है कि जब हमें किस्से कहानियों में भी उन्हीं लोगों का साबका है जिनके साथ आठों पहर व्यवहार करना पड़ता है, तो फिर ऐसी पुस्तक पढ़े ही क्यों ?"[2]

आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद की मुख्य विशेषता यही है कि साहित्य में जहाँ यथार्थवाद सजीवता और स्वाभाविकता लाता है, वहाँ आदर्शवाद सुन्दरता, प्रभावोत्पादकता और पथ प्रदर्शकता । इस संदर्भ में दोनों की उपयोगिता और प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए प्रेमचन्द कहते है कि 'यथार्थवाद यदि आँखे खोल देता है तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है ।"[3]

शिवकुमार मिश्र का कहना है कि जो सच्च यथार्थ होता है । उसी में आदर्श समा हुआ रहता है । यथार्थ और आदर्श अलग नहीं रहते । देखते हैं कि यथार्थवाद का विरोध आदर्शवाद से उसकी दार्शनिक चिंतन

- -

1. प्रेमचन्द - साहित्य का उद्देश्य - पृ. 57
2. -वही- -वही - पृ. 57
3. -वही- -वही- पृ. 58

. ह । वह आदर्शवाद का तिरस्कार करता है, आदर्श । वे कहते है कि "यथार्थवाद का "आदर्शवाद" से विरोध उसकी दार्शनिक चिंतना को लेकर है । वह आदर्शवादी दर्शन को अस्वीकार करता है, आदर्श को नहीं । यथार्थवादी रचनाकार और विचारक इस तथ्य से परिचित है कि यथार्थ चित्रण यथार्थ जगत के व्यक्ति के ज्ञान पर निर्भर करता है । यदि यह जगत गतिशील है और व्यक्ति को उस गति की दिशा का ज्ञान है, वह उस दिशा के महत्त्व को समझता है जिसकी ओर वह उसे अग्रसर करना चाहता है तो निश्चित रूप से यह आदर्श उसके "यथार्थवाद" में निहित होगा ।"[1]

संक्षेप में यही कह सकते है कि आदर्शोन्मुख यथार्थवाद एक ऐसी दृष्टि है जिसमें सामाजिक व्यवस्था के कुछ पक्षों का उजागर करते हुए भी पाठक में निराशा उत्पन्न न होने के लिए और पाठक के जीवन को नवीन दिशा देने के लिए आदर्शात्मक अन्त किया जाता है ।

5·6· मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद :

फ्रायड, एडलर, युग जैसे प्रख्यात मनोवैज्ञानिकों के सिद्धांतों के आधार पर विकसित हुई यथार्थवादी धारा को मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद कहते हैं । इस यथार्थवाद का मुख्य प्रतिपादन यही है कि मनुष्य का समग्र अंकन मात्र बाह्य क्रियाकलापों और सामाजिक गतिविधियों के द्वारा नहीं किया जा सकता बल्कि उसके लिए मनुष्य की आन्तरिक मनःस्थिति का भी अंकन करना जरूरी होता है । क्योंकि अक्सर मनुष्य के व्यवहारिक गतिविधियों से उसके मन के भाव स्पष्ट नहीं होते । अतः मानव व्यक्तित्व में निहित सच्ची रुचियों और इच्छाओं को समझने के लिए उसकी स्वतंत्र

- -

1· शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ: 139

विकसित एवं संविग्मूलक कर्मों की क्रियाएं ही सहायक हो सकती है । इस लिए मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का दावा है कि बिना मनुष्य के मनःस्थिति जाने उसका यथार्थ चित्रण नहीं किया जा सकता क्योंकि बाहरी चरित्र से असली मानव दिखाई नहीं देता । इसी बात को त्रिभुवन सिंह इस प्रकार व्यक्त कर रहे है - "जहाँ तक यथार्थ चित्रण का प्रश्न है, उपन्यास - कार यदि मनुष्य के कार्यों का तद्वत् चित्र उतारना चाहेगा तो उसे उसके कार्य व्यापारों की भांति ही उसके विचारों का भी लेखा जोखा लेना ही पड़ेगा कि वे करने के साथ ही साथ सोच क्या रहे है । इस प्रकार उपन्यासकार को बाध्य होकर लोगों के मस्तिष्क से भी संबंध रखना पड़ेगा और उसके भीतर (उपन्यासों में) अधिक पृष्ठों की व्यवस्था उसे केवल मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानसिक क्रियाओं तथा दिवा स्वप्न आदि को चित्रित करने के लिए सुरक्षित रखनी होगी । मानव का क्रियाशील जीवन ही उसका संपूर्ण जीवन नही है, यहाँ तक कि वह सबसे महत्वपूर्ण जीवन भी नहीं है । सबसे अधिक महत्व है विचारों तथा भावनाओं से निर्मित आन्तरिक जीवन का । इसलिए उपन्यासों को यथार्थवादी बनने के लिए उन्हें मनोवैज्ञानिक बनना ही पड़ेगा ।"[1]

मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद की यह विशेषता है कि इसमें समाज का व्यापक फलक पर चित्रण नहीं होता बल्कि सीमित रूप से चित्रण होता है । सीमित रूप से चित्रण होने के कारण स्थितियों का तथा पात्रों का गहनतम रहस्यात्मक विचारों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण किया जाता है । प्रत्येक पात्र का समग्र व्यक्तित्व का अंकन किया जाता है ।

---

1. त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ० 21 एवं 22

मनोवैज्ञानिक यथार्थवादियों का कहना है कि इच्छाओं का दमन और त्याग करके मनोवृत्तियों को संकुट करना ठीक नहीं है । यदि मनुष्य को बन्द कैदी की तरह रखने के बजाय मुक्त रखा जाये तो वह अधिक सुख प्राप्त कर सकता है ।

मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद संबंधी उपन्यास लिखना आसान कार्य नहीं है । "वस्तुगत" यथार्थ पर आधारित उपन्यास लिखे जा सकते है उसका क्रम विवेचन किया जा सकता है किन्तु मनुष्य के मन को जानना पहचानना बहुत कठिन कार्य है और उसका यथार्थ चित्रण करना और भी चुनौती पूर्ण कार्य है । इसलिए अधिकतर इस वर्ग के उपन्यास औसत व्यक्तियों के संबंधों में नहीं होते बल्कि असाधारण व्यक्तियों (एबनारमल और अबनार्मल मैंबण्ड) के संबंध में होते है । इन उपन्यासों में यह अभाव है कि इन के लेखक संपूर्ण व्यक्तित्व का चित्रण नहीं करते बल्कि व्यक्ति के आन्तरिक मनःस्थिति का ही विशेष रूप से चित्रण करते है ।

इस प्रकार जहाँ प्रकृतवादी यथार्थवाद बाह्य स्थिति के चित्रण पर जोर देता है वहीं मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद आन्तरिक पक्ष के चित्रण पर जोर देता है ।

5.7. ऐतिहासिक यथार्थवाद :

यथार्थवाद का यह और एक रूप है । ऐसे तो इस शब्द का कोई विशेष अर्थ नहीं होता । इसका सामान्य अर्थ यही हो सकता है कि बीता हुआ यथार्थ अर्थात जो कल यथार्थ था वह आज-यदि परिस्थितियों में परिवर्तन आ जाए तो - ऐतिहासिक यथार्थ बन जायेगा । इसी तरह आज का यथार्थ भविष्य में ऐतिहासिक यथार्थ बन जाता है । साथ-साथ

शब्दों में कहें तो विगत युग का सामाजिक यथार्थ ही वर्तमान युग का ऐतिहासिक यथार्थ है। ऐतिहासिक यथार्थवाद के संबंध में चर्चा करते हुए मूलतः सामाजिक राष्ट्रीय परिस्थितियों को ही आधार माना जायेगा।

यह भी जान लेना आवश्यक है कि इतिहास और ऐतिहासिक यथार्थ वाद के बीच भेद है। इतिहास घटनाओं तथा तिथियों को विशेष महत्व देता है जब कि ऐतिहासिक यथार्थवाद तिथियों को महत्व नहीं देता बस ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर ही तत्कालीन सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करता है और उस काल के गुण दोषों का अंकन भी करता है।

ऐतिहासिक यथार्थवादी साहित्य का सृजन करते समय लेखकों को यह बात ज्ञात रखना चाहिए कि मात्र प्रमुख राष्ट्रीय घटनाओं या महान राजाओं के कार्यकलापों केआधार पर जय जयकार करते हुए रचनाएं नहीं करना है बल्कि तत्कालिन वास्तविक परिस्थितियों का तथा जन जीवन का चित्रण यथार्थ दृष्टि से करना चाहिए तभी वह रचना ऐतिहासिक यथार्थवादी रचना कहलायेगी।

यह भी भूलना नहीं चाहिए कि जिस युग का यथार्थ चित्रण साहित्यिक कृति में किया जाता है, वह कृति हमेशा के लिए रह जाती है। अतः युग विशेष को चित्रित करते समय किसी एक पक्ष को विशेष रूप से चित्रित न करते हुए संपूर्ण युग का चित्रण यथार्थ के धरातल पर करना चाहिए। जिससे भविष्य के पाठक को ऐतिहासिकता के बारे में कोई संदेह उत्पन्न न हो। यह भी ध्यान रखने की बात है कि ऐतिहासिक यथार्थवादी रचना करते समय पात्रों के मुख से तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल संवाद करवाना चाहिए न कि आधुनिक उद्देश्यों को। ऐतिहासिक

उपन्यासों का सृजन करते समय रचनाकारों को निर्वैयक्तिक दृष्टि को अपनाने की आवश्यकता होती है । यदि निर्वैयक्तिक दृष्टि को न अपनाये जाय तो रचना में विकार आ जाने की अधिक संभावना रहती है । ऐतिहासिक यथार्थवादी रचना को कथा वस्तु के रूप में उसी घटना को लेना चाहिए जो तर्क और संभावनाओं के कसौटी पर खरा उतरता हो ।

किसी भी युग की वास्तविकता को समझ लेना ही सच्चा ऐतिहासिक यथार्थ है । ऐसी रचनाएं करते समय लेखक को तत्कालीन युग की समस्त विशेषताओं - भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि - को समझ लेना अत्यंत आवश्यक है, नहीं तो ऐतिहासिक यथार्थ हंसी की वस्तु बन जायेगा । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ठीक कहते है कि -"किसी ऐतिहासिक उपन्यास में यदि बाबर के सामने हुक्का रखा जायेगा, गुप्त काल में गुलाबी और फिरोजी रंग की साड़ियां, इत्र, मेज पर सजे गुलदस्ते झाड़ - फानूस लाये जायेंगे, सभा के बीच खड़े होकर व्याख्यान दिए जायेंगे और उन पर करतल ध्वनि होगी, बात बात में धन्यवाद, सहानुभूति ऐसे शब्द तथा सार्वजनिक कार्यों में भाग लेना ऐसे फिकरे पायेंगे तो काफी हंसनेवाले और नाक भौं सिकोड़ने वाले मिलेंगे ।"[1] इसलिए ऐतिहासिक यथार्थवाद की रचना करते समय अत्यंत सावधानी बरतनी पड़ती है ।

ऐतिहासिक यथार्थवादी लेखक निष्पक्ष और तटस्थ रहना चाहिए । मुख्यत: वर्ग गत ऐतिहासिक यथार्थ पर आधारित रचनाओं का सृजन करते

- -

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास - पृ. 537-38

समय वह किसी भी वर्ग के पक्षपात करते हुए या सहानुभूति ...
रचना नहीं करनी चाहिए बल्कि संपूर्ण समाज का यथार्थ दृष्टि से आकलन करना चाहिए ।

वस्तुतः ऐतिहासिक यथार्थवादी साहित्य का उद्देश्य महान है । जब कभी वर्तमान समय में निराशा, निस्पृह की वातावरण छा जाती है तो अतीत के वैभव और वीरता के घटनाओं का अवलोकन करने के लिए ऐसा साहित्य रचा जाता है ताकि उससे स्फूर्ति मिले ।

6• उपन्यास और यथार्थवाद :

उपन्यास आधुनिक युग के द्वारा साहित्य को दिया गया उपहार है । इस विधा का आविर्भाव आधुनिक काल के अनेकानेक आविष्कारों तथा बदलते हुए सामाजिक परिस्थितियों के कारण हुआ । वास्तव में उपन्यास का उदय यूरोप के नवजागरण, जिसने गद्य को जन्म दिया है, के कारण हुआ । साहित्य में गद्य का उद्भव एक क्रान्तिकारी परिवर्तन है । जिसके कारण साहित्यिक गतिविधियों पर काफी प्रभाव पड़ा । इस प्रभाव से ही गल्प या आख्यान के स्थान पर उपन्यास आ गया । उपन्यास जल्दी ही एक ऐसे सशक्त माध्यम के रूप में उभरकर सामने आया जिससे मानवीय जीवन के प्रत्येक कोण का सशक्त चित्रण तथा मनोभावों को स्पष्ट रूप से उजागर करने में सफल रहा । पद्य इसके अपेक्षा काफी पीछे रह गया क्योंकि उसमें आधुनिक मानव जीवन के अनुभूतियों का चित्रण करने की क्षमता नहीं थी । इस प्रकार कह सकते हैं कि आधुनिक काल के कारण पद्य का स्थान गद्य ने ले लिया और गल्प तथा आख्यान का स्थान (चाहे आख्यान और उपन्यास का सीधा संबंध न हो) उपन्यास ने ले लिया ।

उपन्यास के उद्भव के संबंध अनेक विचार सामने आते है, किन्तु जिनमें मतैक्य नहीं है । कुछ विद्वानों का यह मानना है कि उपन्यास प्राचीन कथा का स्वाभाविक विकास है । किन्तु इस अभिप्राय पर विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि आधुनिक युग के उपन्यासों से प्राचीन कथाएं या गल्प मात्र दो अंशों में साम्य रखते है वे भी सतही तौर पर-एक कथा का समावेश दूसरा गद्य जैसी भाषा का माध्यम । इसी प्रकार यह भी कह सकते है कि आज के उपन्यासों की कथा वस्तु शिल्प आदि से प्राचीन कथाएं या गल्प पूरी तरह से मेल नहीं रखती । इस लिए अधिकतर विद्वानों उपन्यास को एक नवीन विधा के रूप में मानने के पक्ष में है । उनके कथनानुसार "उपन्यास का प्रारंभ विश्व साहित्य में यूरोपीय पुन: जागरण के पश्चात हुआ । इटली से आरंभ होकर जागरण की यह लहर एक के बाद एक देश में प्रसार पाती गई । इस साहित्य रूप के विकास के लिए औद्योगिक क्रान्ति और उससे सम्भूत [सभ्यता एवं जीवन की] जटिलता ने अनुकूल पीठिका प्रदान की । यों पश्चिम में लोगिनुस, हेलिओदोरस तथा पेत्रोनियस से एवं मध्यकालीन गद्य प्रेमाख्यानों से और हमारे यहाँ संस्कृत के बाण [कादम्बरी] दण्डी [दशकुमारचरित] आदि से उसका संबंध जोड़ने के प्रयत्न हुए है, किन्तु इन प्रयत्नों में वंशागति - अन्वेषण की दृष्टि से कोई अर्थवत्ता नहीं ।"[1] किन्तु ये दोनों धारणाएं आंशिक रूप में ही सत्य लगते है । इनका समन्वय करने पर उपन्यास के उदय का सही समाधान निकलता है । यह सत्य है कि कथा कहना - सुनना प्राचीन काल से आ रही विधा है और यह

---

1. डा० नगेन्द्र - मानविकी पारिभाषिक कोश : साहित्य खण्ड : संपादक - पृ० 180

भी सही है कि कथा को जो शिल्प मिला है, वह नीतान्त आधुनिक है और उसकी शुरूआत यूरोपीय नवजागरण से हुआ है ।

उपन्यास के उद्भव के संबंध में कुछ विद्वानों का मत है कि उपन्यास महाकाव्य का स्थानापन्न है । उनके मतानुसार महाकाव्य सामंती और अभिजात वर्ग की देन है तो उपन्यास पूंजीवादी युग की । महाकाव्य की कथा वस्तु बहुत ही सरल और उदात्त कल्पना से पूर्ण होती है । इसका नायक धीरोदात्त और सभी आदर्श गुणों से परिपूर्ण होता है । महाकाव्यों की रचनाकाल की परिस्थितियाँ भी सरल थी । सामाजिक जीवन विधान में कोई क्लिष्टता नहीं थी । सभी लोगों का जीवन विधान लगभग एक सा था । यदि उसमें कुछ भेद भी होता था तो मात्रा का होता था, गुण का नहीं । साहित्य समाज का दर्पण होता है । महाकाव्य में भी तत्कालीन सरल सामाजिक परिवेश का चित्रण हुआ है । उसमें क्लिष्टता, जटिलता और अलगाव जैसी प्रवृत्तियों को स्थान नहीं था ।

18वीं शती का आरम्भ यूरोपीय नवजागरण से हुआ । "पुनर्जागरण यूरोप की वह महान संक्रान्ति थी जिसने मध्ययुगीन जड़ता, रूढि और अन्धविश्वासों को, गाथिक वास्तु विधा को, संकीर्ण दृष्टिकोण को, ह्रासोन्मुखी अर्थ व्यवस्था को और सामन्तीय अ-राष्ट्रीयता को बहा दिया और उनके स्थान पर सन्देहवाद, व्यक्तिवाद, पदार्थवाद, मुक्ति, आत्माभिव्यक्ति के साथ साथ एक गतिशील आर्थिक व्यवस्था और राष्ट्रीयता को प्रतिष्ठित किया । स्वभावत: ही इस संक्रान्ति ने धीरे धीरे एक ऐसे उद्वेलन का रूप लिया जिसमें सब प्रकार की गतानुगतिकता को तिलांजलि दी जाने लगी । समाज में एक नई स्फूर्ति और सक्रियता प्रकट हुई जिसके फलस्वरूप नये - नये देशों की खोज की जाने लगी, धार्मिक मूढ़ता के स्थान पर वैज्ञानिक का अनुशीलन प्रारंभ हुआ, व्यापार और उद्योगों

को नई गति मिली, नये नगर – राज्य स्थापित हुए, मठों और गिरजों के चंगुल से निकलकर शिक्षा नई सरणियों में प्रवाहित होने लगी ।"[1] ऐसे नवजागरण की प्रवृत्तियों को महाकाव्य अपने में अनुस्यूत करने और उन्हें रचनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने में विफल होने लगा । जिसके कारण इन प्रवृत्तियों को अपने में अनुस्यूत करने वाली विधा के रूप में उपन्यास का उदय हुआ । इसलिए जार्ज लुकाच ने महाकाव्य तथा उपन्यास में अन्तर स्पष्ट करते हुए ठीक ही लिखा है कि --"महाकाव्य का स्वभाव बच्चे जैसा ही सरल होता है, जबकि उपन्यास इसके ठीक विपरीत – परिपक्व और व्यावृत होता है ।"[2] यह सर्वविदित है कि सामाजिक व्यवस्था हमेशा सरलता से क्लिष्टता की ओर अग्रसर होती रहती है । महाकाव्य सरल सामाजिक व्यवस्था की देन है तो उपन्यास संश्लिष्ट सामाजिक व्यवस्था की । इस प्रकार आधुनिक परिवेशगत प्रवृत्तियों को अपने में अनुस्यूत करने में महाकाव्य विफल हो गया वहीं उपन्यास उनसे जुड़ने में सफल रहा ।

आधुनिक काल में उपन्यास विधा का विकास निःसंदिग्धतः अन्य साहित्यिक विधाओं से तेजी से होने लगा । जिसके दो प्रमुख कारण है – एक मुद्रण यंत्र का आविष्कार जिसके कारण पुस्तकों की मुद्रण में तेजी आ गयी । दूसरा शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार जिसके कारण समाज में एक ऐसे वर्ग का आविर्भाव हुआ जो शिक्षा के कारण अपने जीवन स्तर को निम्नवर्ग से थोड़ा ऊँचा कर लिया । यही मध्यवर्ग था । मध्यवर्ग के उदय होने के कारण उपन्यास के पाठकों की संख्या ही अधिक नहीं हुई बल्कि

- -

1. राहुल सांकृत्यायन – दर्शन – दिग्दर्शन – पृ. 296

2. जार्ज लुकाच – उपन्यास का सिद्धांत – पृ. 84

औपन्यासिक कथ्य भी उनके जीवन पर आधारित होने लगा । इस प्रकार उपन्यास मध्यवर्ग के जीवन तथा परिवेश को समग्र रूप से प्रस्तुत करने वाला एक मात्र सक्षम विधा के रूप में अवतरित हुआ । इसलिए हीगले ने उपन्यास को "दी एपिक आफ दी मिडिल क्लास वर्ल्ड" कहा तो लुकाच ने "बुर्जवा एपिक ।"

उपन्यास अधिक लोकप्रिय होने का यह भी कारण है कि प्राचीन या मध्यकाल के आख्यानों में भगवान के प्रति आस्था सम्बन्धी तथा परलौकिक आनन्द की बातें हुआ करती थी । अर्थात इस लौकिक संसार से ये कृतियाँ बिल्कुल अछूत रहती थी । किन्तु जब उपन्यास का उदय हुआ तो लौकिक पक्ष जीवन पक्ष को अधिक महत्व दिया जाने लगा । इन कृतियों में देवताओं या महाराजाओं के स्थान पर सामान्य मनुष्य नायक होने लगा । इस प्रकार यथार्थ के धरातल पर जीवन के सभी पक्षों को उजागर करने वाले कथा वस्तुओं के कारण आख्यानों का पतन और उपन्यासों का विकास तीव्रगति से होने लगा ।

वस्तुत: साहित्य में आदर्शवाद को तिलांजलि देना और यथार्थवाद को स्वीकार करना ही उपन्यास के उदय के पीछे मूल कारण है । पाठक वर्ग आदर्शवाद से ऊब चुका था । सामाजिक व्यवस्था अधिक जटिल हो रही थी । ऐसे समय पर आदर्शवाद के नाम पर बहलाना पाठक वर्ग को पसंद नहीं आया । वे चाहते थे कि उपन्यास में कुछ जीवन मूल्य ऐसे हो जो अपने जीवन के विकास में काम आये और वे यह भी चाहते थे कि उपन्यास का सम्बन्ध सामाजिक परिवेश से हो और उसका चित्रण यथार्थ के धरातल पर हो ।

इस प्रकार कह सकते है कि उपन्यास और यथार्थवाद का घनिष्ठ संबंध है । इसी संदर्भ में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते है कि "उपन्यास

नामक साहित्यांग के यथार्थवादी होने में ही मैं उसकी सफलता मानता हूँ। कविता यथार्थ की उपेक्षा कर सकती है, संगीत यथार्थ को छोड़ाभी जा सकता है, पर उपन्यास और कहानी के लिए यथार्थवाद प्राण है।"[1] यथार्थ युग परिस्थितियों के आधारित होता है अर्थात यह काल के अनुसार गतिमय और परिवर्तनशील होता है। यही उपन्यास और अन्य प्राचीन कथा विधाओं में भेद दिखाई देता है। आख्यानों में सर्वकालिक सत्य और आदर्श रहते है जब कि उपन्यासों में तत्कालीन युग की परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण होता है।

उपन्यास और यथार्थवाद एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित है। दोनों का आविर्भाव एक साथ हुआ है जिसके कारण साहित्य में सब से ज्यादा समाज का चित्रण उपन्यास विधा में होने लगा। शायद इसलिए साहित्य समाज का दर्पण है, कहने के स्थान पर उपन्यास समाज की अभिव्यक्ति है, कहा जाने लगा। इस प्रकार उपन्यास ने यथार्थवाद के कारण साहित्य में अपना व्यापक फलक बना लियाहै। उपन्यास में यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण वस्तु और रूप में अनेक परिवर्तन आने लगे। यहाँ तक कि सामाजिक व्यवस्था के चित्रण करने में भी लेखक अपने अपने अनुभव ज्ञान एवं दृष्टि के सहारे समाज का चित्रण करने के कारण यथार्थ भी अनेक रूपों में उपन्यासों में दिखाई देने लगा। इस प्रकार उपन्यास साहित्य में यथार्थ-वाद का समाजवादी यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, प्रकृतवादी यथार्थवाद, अतियथार्थवाद आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, ऐतिहासिक यथार्थवादआदि रूपों में विकास हुआ। इन रूपों के कारण

- -

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी - 'विचार और वितर्क - पृ. 95

उपन्यास साहित्य का बहुमुखी विकास होने लगा । सबसे पहले कथा वस्तु को ही उपन्यास के लिए चुना जाने लगा । इस कथा वस्तु के कारण उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण यथार्थ के धरातल पर होने लगा ।

उपन्यास में सामाजिक पक्ष को एक पूर्ण इकाई के रूप में लेकर उसका चित्रण किया जाने लगा । न कि किसी वर्ग के प्रति पक्षपात या किसी पात्र के प्रति सहानुभूति । इस प्रकार समाज को संपूर्ण इकाई के रूप में देखने के कारण स्वतंत्र जीवन का चित्रण और मानव के सामाजिक संबंधों का चित्रण अधिक यथार्थ से होने लगा । इसके साथ साथ उपन्यास में पूर्व व्यक्तित्व बनाने में सहायक होने वाले तत्वों का बहिष्कार किया गया ।

उपन्यास में कथा वस्तु सामाजिक होने के कारण सामाजिक व्यवस्था में निहित क समस्याओं जैसे भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, आर्थिक वैषम्य, दहेज, यौनाचार आदि पर पैनी दृष्टि डाली जाती है ।इस प्रकार उपन्यास में जन मानस की सच्ची अभिव्यक्ति के रूप में यथार्थ चित्रण के कारण ही सामने आता है । महान रचनाकार वही होता है जो अपने समसामयिक परिवेश का चित्रण यथार्थ दृष्टि से करता है ।

यथार्थवाद यथातथ्य नहीं होता । रचनाकार अपनी सृजनात्मक दृष्टि से यथातथ्य को अभिव्यक्ति प्रदान करता है । शिवकुमार मिश्र का कथन है कि "सच्चा यथार्थवादी रचनाकार सजग होकर अपनी ज्ञानेंद्रिय के माध्यम से बाह्य जगत से जुड़ता है, अनुभवों की एक समष्टि प्राप्त करता है और तत्पश्चात जो कुछ भी ऐंद्रिय बोध, भाव या विचारों के रूप में प्राप्त करता है उसे अपनी रचनात्मक कल्पना के सहारे ही,

पहले अपने मन में एक रूप देता है तत्पश्चात उसकी अभिव्यक्ति करता है। इस अभिव्यक्ति का सीधा संबंध बाह्य जगत की अपनी छवियों से होता है। जीवन का ठोस यथार्थ कलात्मक रूप में हमें प्राप्त होता है।[1]

यथार्थवादी उपन्यासों में प्रतिनिधि पात्रों के द्वारा समस्त सामाजिक व्यवस्था का चित्रण होता है। इसमें पात्र मात्र व्यक्ति नहीं होते बल्कि एक विशेष वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं किन्तु पात्र का विशेष होने पर भी वह अपने नाम से कोई विशेष पात्र के रूप में आभासित न होकर सामान्य व्यक्ति के समान ही दिखाई पड़ते हैं। आयन वाट कहते हैं कि "उपन्यासकार एक व्यक्ति विशेष का चित्रित करने का मनोभाव तथा अपने पात्र का नाम वैसा ही रख कर व्यक्त करता है जैसा कि नाम उस तरह के व्यक्ति का साधारण जीवन में होता है।"[2] इन उपन्यासों में पात्र पूर्व नियोजित न होकर सहज और जीवंत होते हैं जिनमें पाठक अपने को बड़ी सहजता के साथ देख सकता है। चरित्रों की चारित्रिक दुर्बलताओं तथा अंतर्द्वंद्वों पर विशेष बल दिया जाता है।

उपन्यासों में यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण केवल वर्तमान काल का ही चित्रण नहीं होता बल्कि उसके सहारे अतीत तथा भविष्य का भी निरूपण किया जाता है। सच्चा यथार्थवादी लेखक वही है जो समसामयिक परिस्थितियों के द्वारा अतीत और भविष्य का सही आकलन करता है।

यथार्थवाद के संबंध में यह एक भ्रांत धारणा है कि उपन्यासों में सामाजिक व्यवस्था का कुरूप और नग्न चित्रण ही अधिक किया जाता है।

---

1. शिवकुमार मिश्र – यथार्थवाद – पृ. 146
2. आयन वाट – उपन्यास का उदय : अनुवादक : डा० धर्मपाल सरीन पृ. 13

किन्तु ऐसा नहीं है यथार्थवादी उपन्यासों में समाज के सभी क्षेत्रों पर निगाह डाला जाता है । यदि कुरूपता का ही वर्णन अधिक किया गया है तो उसका कारण यही है कि उपन्यासकार यही अवगत कराना चाहता है कि सामाजिक व्यवस्था पतन की दिशा की ओर अग्रसर है उसे हमें रोकना है ।

यथार्थवाद की यह भी विशेषता है कि इसमें "आदर्श" भी अन्तर्निहित होता है । इसलिए उपन्यास में समाज का जो भी चित्रण यथार्थ के धरातल पर होता है उसमें एक उद्देश्य होता है, वह उद्देश्य एक आदर्श युक्त होता है । शिवकुमार मिश्र कहते है कि "यथार्थवादी रचनाकार और विचारक इस तथ्य से परिचित है कि यथार्थ चित्रण यथार्थ जगत के व्यक्ति के ज्ञान पर निर्भर करता है । यदि यह जगत गतिशील है और व्यक्ति को उस गति की दिशा का ज्ञान है, वह उस दिशा के महत्त्व को समझता है जिसकी ओर वह उसे अग्रसर करना चाहता है तो निश्चित रूप से यह "आदर्श" उसके यथार्थवाद में निहित होगा ।"[1] इस प्रकार उपन्यास में यथार्थवाद सामाजिक व्यवस्था का समग्र चित्रण ही प्रस्तुत नहीं करता बल्कि वर्तमान स्थितियों से अवगत कराता हुआ विकासमय उद्देश्य को भी स्पष्ट करता है ।

यथार्थवाद के कारण उपन्यासों में शैलीगत परिवर्तन भी हुए । मुख्यतः भाषा के स्तर पर बदलाव आने लगा । पात्रों की भाषा का प्रयोग किसी विशिष्ट भाषा न होकर जिस स्थान और काल की कथावस्तु है उसी के अनुरूप वहाँ की बोलियों में होने लगा । इस प्रकार उपन्यास में सामाजिक स्तर पर बोली जाने वाली भाषा का प्रयोग हुआ है जिससे पाठक को यह आभास कराने में उपन्यासकार को सफलता मिली कि कथावस्तु के पात्र उसके इर्द गिर्द घूमने वाले ही है । वस्तुतः उपन्यासों में

---

1. शिवकुमार - यथार्थवाद - पृ. 139

में केवल भाषा के स्तर पर ही परिवर्तन नहीं आया बल्कि प्रस्तुतिकरण में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया । उपन्यास यथार्थ के अतिनिकट आभासित होने के लिए वर्णनात्मक आत्मपरक, पत्रात्मक, डायरी जैसे शैलियों में लिखे जाने लगे ।

अंततः इतना स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि उपन्यास और यथार्थ का अन्तः संबंध अटूट है । उपन्यास वर्तमान साहित्यिक विधाओं में इतना लोकप्रिय होने का कारण यही है कि उसमें जीवन के विभिन्न पहलुओं का यथार्थ चित्रण होता है ।अतः उपन्यास एक प्रकार से सामाजिक जीवन का लेखा जोखा प्रस्तुत करने वाला दस्तावेज है ।

7. निष्कर्ष :

आधुनिक साहित्य में यथार्थ, यथार्थवाद और यथार्थबोध शब्द अक्सर आते है । यथार्थ को विवेचित करने की सैद्धांतिक विचार धारा यथार्थवाद है । यथार्थ को देखने की दृष्टि तथा उसको दूसरों को बोध कराने की विधा यथार्थबोध है । आधुनिक युग का साहित्य कल्पना या आदर्श से ज्यादा यथार्थ पर आश्रित है ।

वस्तुतः "यथार्थवादी" दृष्टिकोण पाश्चात्य देन है । पाश्चात्य साहित्य और दर्शन में "यथार्थ" के संदर्भ में पर्याप्त विचार किया गया है । कार्ल मार्क्स, काडवेल, फ्लाबेर, जोला, हावर्ड फास्ट, अर्नेस्ट फिशर, एंगेल्स जैसे विचारकों का "यथार्थ" के विश्लेषण में महत्वपूर्ण योगदान रहा है । "यथार्थवाद" का आगे विकास होते हुए उसके अनेक रूप अवतरित हुए । इन रूप में प्रमुख है - समाजवादी यथार्थवाद,

आलोचनात्मक यथार्थवाद, प्रकृतवादी यथार्थवाद, अतियथार्थवाद, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और ऐतिहासिक यथार्थवाद ।

उपन्यास साहित्य का यथार्थ से घनिष्ठ सम्बन्ध है । उपन्यास और यथार्थ दोनों ने साहित्य में एक ही बार पदार्पण किया । ये दोनों भी अन्योन्याश्रित है । यथार्थ का चित्रण जितना अच्छा उपन्यास साहित्य में होता है उतना अन्य विधा में दुर्लभ है । इसी प्रकार उपन्यास साहित्य को पुष्ट एवं सुष्ठ करने में यथार्थ का जितना योगदान है उतना कल्पना और आदर्श का नहीं ।

समकालीन उपन्यास साहित्य में चित्रित यथार्थ उपन्यासकार के दृष्टि, अनुभव और विचार के आधार पर होता है ।

अध्याय - दो

हिंदी उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध का चित्रण

अध्याय - दो

हिन्दी उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध का चित्रण

1· प्रस्तावना

2· पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थ बोध (सन् 1850 - 1915)

3· प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध (सन् 1916 - 1936)

4· प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध (सन् 1937 - 1980)

4·1· प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास युग (सन् 1937 - 1960)

4·1·1· समाजवादी यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार

4·1·2· मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार

4·1·3· ऐतिहासिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार

4·1·4· प्रकृतवाद और प्रमुख उपन्यासकार

4·1·5· अतियथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार

4·1·6· आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार

4·1·7· आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यास

4·2· साठोत्तरी उपन्यास युग (सन् 1960 - 1980)

4·2·1· समाजवादी यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार

4·2·2· मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार

4·2·3· ऐतिहासिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार

5· निष्कर्ष

अध्याय - दो

हिंदी उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध का चित्रण

प्रस्तावना :

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने "हिंदी साहित्य का इतिहास" में लिखा है कि "जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है ।"[1] उन्नीसवीं सदी की उत्तरार्द्ध में बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार साहित्यिक क्षेत्र में भी पर्याप्त परिवर्तन होने लगे । हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर अब तक चला आ रहा पद्य यहाँ से क्रमशः ह्रास होने लगा और इसके स्थान पर गद्य का विकास हुआ । गद्य के आविर्भाव के पीछे अनेक कारण हैं जैसे देश पर पाश्चात्य प्रभाव, वैज्ञानिक आविष्कार, सामाजिक - सांस्कृतिक पुनर्जागरण आदि । सन् 1850 ई०वी० के बाद गद्य का विकास बहुत तेजी से होने लगा और इसके अनेक विधाओं का भी जन्म हुआ जैसे - उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, जीवनी, आत्मकथा, निबंध, रेखाचित्र, डायरी, रिपोर्ताज आदि ।

- -

1. रामचन्द्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास - पृ० ।

गद्य की सभी विधाओं में उपन्यास सब से अधिक लोकप्रिय बना और उसने सब से ज्यादा विकास किया । इसका कारण यह है कि उपन्यास जीवन को सही रूप में अभिव्यक्त करने वाला एक सशक्त साधन है । उपन्यास का यथार्थ से अटूट सम्बन्ध है । इसलिए.........जीवन में घटित होने वाली प्रत्येक घटना को उपन्यास जितने यथार्थ के साथ प्रस्तुत करता है उतना कोई और विधा नहीं ।

ह.प्र. द्विवेदी ने ठीक ही कहा कि "कविता यथार्थवाद की उपेक्षा कर सकती है, संगीत यथार्थ को छोड़ कर भी जी सकता है, पर उपन्यास और कहानी के लिए यथार्थ प्राण है ।"[1]

हिंदी उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध का चित्रण किस प्रकार हुआ है यह देखने के लिए यहां पर कुछ तत्कालीन प्रमुख उपन्यासों पर दृष्टिपात किया जा रहा है । अध्ययन की सुविधा के लिए समय सीमा के आधार पर हिंदी उपन्यासों को तीन भागों में विभाजित किया गया है, जो इस प्रकार है :-

पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध {1850-1915}
प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध {1916-1936}
प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध {1937-1980}

- -

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी - विचार और वितर्क - पृ. सं0 95

2. पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध :

हिंदी साहित्य के इतिहास के आधुनिक युग के आरंभ से लेकर प्रेमचंद के आगमन तक के काल को पूर्व प्रेमचन्द युग माना जाता है। अर्थात सन 1850 से लेकर सन् 1915 के आसपास तक इस युग की सीमा है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि इस युग के हिंदी उपन्यासों में यथार्थ-वाद की धारा स्वच्छ रूप से मिलना दुर्लभ है। क्योंकि यह काल हिंदी उपन्यासों के लिए आरंभिक काल रहा है। इस समय हिंदी उपन्यासों का सृजन अभी परिपुष्ट नहीं हुआ था। वास्तव में "उपन्यास" की धारणा ही अभी हिंदी के क्षेत्र में पनपी नहीं थी। इस काल में जो कुछ भी हिंदी उपन्यास के नाम पर लिखा जाता था वह आख्यायिका का ही दूसरा रूप था। "उपन्यास" और "यथार्थवाद" ये दोनों शब्द पाश्चात्य अवधारणा से संबंधित शब्द है जिन्हे अंग्रेजी में "नावेल" और "रियलिज्म" कहते है। इसलिए हिंदी के आरंभिक उपन्यासों में पाश्चात्य या आधुनिक अवधारणा युक्त यथार्थवाद को ढूंढना छिद्रान्वेषण के समान ही है। हाँ इतना कह सकते है कि आरंभिक दौर के उपन्यासकार पौराणिक कथाओं के आधार पर लिखना छोड़ कर सामाजिक विषयों पर लिखने लगे। फिर भी इस काल के उपन्यासों का मूल उद्देश्य सुधारवाद, उपदेश, मनोरंजन, नीति - शिक्षा देना था।

इस काल के उपन्यासों का विवेचन करने से पता चलता है कि इस काल में तीन प्रकार के उपन्यास लिखे गये है जैसे (1) अंग्रेजी प्रभाव से लिखे गये अंग्रेजी के अनुदित या रूपान्तरित उपन्यास (2) बंगला के प्रभाव से लिखे गये बंगला के अनुवादित तथा रूपान्तरित उपन्यास (3) हिंदी के मौलिक उपन्यास जिसमे सामाजिक ऐतिहासिक, तिलिस्मी, जासूसी उपन्यास प्रमुख है।

पूर्व प्रेमचन्द युग सामाजिक दृष्टि से और राजनैतिक दृष्टि से एक क्रान्तिकारी युग था । इस काल मे ही अनेक समाज सुधारकों ने जन्म लिया और सामाजिक आन्दोलन होने लगे थे । इसी प्रकार राजनैतिक क्षेत्र मे भी राजा, महाराजाओं का जमानों का ह्रास हो चुका था । अंग्रेज राज की स्थापना हो चुकी थी । देश पर पाश्चात्य प्रभाव पड रहा था । फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति का प्रभाव तत्कालीन लेखकों को प्रभावित कर रहा था । देश मे तरह - तरह की सामाजिक, राजनैतिक समस्याएं उत्पन्न हो रही थी । अंधविश्वास, पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण शिक्षा समस्या, नारी समस्या, देश की दुर्दशा आदि समस्याओं पर बंगला आदि भारतीय भाषाओं मे उपन्यास लिखे जाने लगे थे किन्तु दुर्भाग्यवश हिंदी साहित्य मे ऐसी समस्याओं पर उपन्यास नहीं लिखे गये । तत्कालीन हिंदी उपन्यासकारों ने ऐसे विषयों पर लिखने मे रुचि नहीं दिखलायी । वे यदि लिखते तो भी आदर्श के मुखौटे के कारण ज्वलंत समस्या भी शिथिल हो जाती । वे लोग तिलिस्मी, ऐयारी आदि विषयों को ही अपने उपन्यासों के विषय बनाकर मनोरंजन हेतु उपन्यासों का सृजन करते थे । किन्तु जब से बंगला उपन्यासों का अनुवाद होने लगा तब से काल्पनिक, अतिरंजित विषयों का रोमांस गर्भित चमत्कारों का, उपदेशात्मक उपन्यासों का लिखना कुछ कम होने लगा ।

हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है कि "इस काल के बंगला उपन्यासों की हिंदी उपन्यास को एक निश्चित देन है । इन्होंने यदि एक ओर हमारे कथा साहित्य को अतिप्राकृतिक, अतिरंजित, घटना बहुल ऐय्यारीपरक उपन्यासों के मोह जाल से मुक्त किया तो दूसरी ओर उन्हें शुद्ध भारतीय संस्कृति का पाठ भी पढ़ाया ।"[1]

- -

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिंदी साहित्य - पृ. 420

वस्तुतः प्रेमचन्द पूर्व युग के उपन्यास पूरी तरह सामाजिक तत्वों पर आधारित यथार्थवादी उपन्यास नहीं है । इन उपन्यासों मे ज्यादा से ज्यादा उपन्यास मनोरंजन के लिए ही लिखे गए है । जो एकाध उपन्यास सामाजिक परिप्रेक्ष्य मे लिखा गया उसमे यथार्थ की झलक दिखाई देती है । सामाजिक समस्याओं को यथार्थपरक दृष्टि से चित्रित किये गये उपन्यास भी इस काल मे उपस्थित है । ऐसे ही कुछ प्रख्यात उपन्यासों के माध्यम से यथार्थका विवेचन किया जा सकता है । अतः स्पष्ट है कि इस काल के उपन्यासों मे "यथार्थवाद" को आज के संदर्भ मे नहीं देखा जा सकता । फिर भी यथार्थवाद इन इन उपन्यासों मे अंकुर के रूप मे विकसित दिखाई पड़ता है ।

हिंदी साहित्य के इतिहास मे आधुनिकाल के आरंभ से पूर्व ही हिंदी कथा साहित्य सृजन होने लगा था । जिसे हम "उपन्यास" की परिभाषा मे तो बांध नहीं सकते फिर भी ये उपन्यास के रूप ही है जैसा कि सैयुयद इंशा अल्लाह खाँ कृत "रानी केतकी की कहानी" का उल्लेख किया जाता है जो कि खड़ी बोली मे लिखी गयी पहली कथा होने के कारण ऐतिहासिक महत्व रखती है । ऐसे ही लल्लूलाल कृत 'प्रेमसागर,' सदल मिश्र कृत 'नासिकेतोपाख्यान' [जिसका अनुवाद 1803 मे हुआ है] उल्लेखनीय है ।

इस काल के सामाजिक उपन्यासों मे जो चित्रण हुआ है उसमे यथार्थ को स्पष्ट रूप से दिखाया गया है । इस काल के अधिकतर उपन्यास आदर्शवादी दृष्टिकोण से लिखे जाने पर भी सामाजिक समस्याओं का चित्रण करते समय उनका दृष्टिकोण यथार्थ परक रहा है । यही इस काल के उपन्यासों की विशेषता है । जैसा कि "भाग्यवती" उपन्यास जिसे कुछ

हिंदी विद्वान हिंदी साहित्य का प्रथम उपन्यास मानते है, मे उपन्यासकार श्रद्धाराम फुल्लौरी ने समाज सुधार की आदर्श भावना को व्यक्त करने पर भी सामाजिक समस्याओं को यथार्थ दृष्टि से चित्रित किया है। इस उपन्यास मे आर्थिक व्यक्तिवाद के कारण संयुक्त परिवारों के विघटन पर प्रकाश डाला गया है और अनमेल विवाह का भी यथार्थ के धरातल पर विरोध किया गया है। इस उपन्यास मे नायिका भाग्यवती के माध्यम से नारी जीवन की विवशताओं को दर्शाते हुए उसे झेलने के अटूट विश्वास को भी दिखाया गया है। "भाग्यवती बुद्धिमती होने के कारण अटूट आत्म विश्वास वाली है। भाई के विवाह के पश्चात गृह कार्यों से मुक्त होकर यह अपना सारा समय अध्ययन मे लगाती है और साहित्य शास्त्र आदि का अध्ययन आत्मविश्वास की भावना को और अधिक सुदृढ़ कर देता है। गृह कार्य और अध्ययन ज्ञान दोनों मे सम्पन्न भागयवती का चरित्र लेखक ने आदर्श और यथार्थ दोनो से समन्वित चित्रित किया है। जहां एक ओर वह जीवन की कठोरतम परिस्थितियों से परिचित है, वहां दूसरी ओर वह काव्य रचना मे भी रुचि रखती है। उसके चरित्र का विकास यथार्थत्मक पृष्ठभूमि पर किया गया है। यथार्थ और आदर्श दोनों के समन्वय को उपन्यास मे सफलता पूर्वक निभाया गया है।"[1]

सन् 1882 मे रचित लाला श्रीनिवास दास का महत्वपूर्ण उपन्यास है "परीक्षा गुरु"। इस उपन्यास को अधिकांश विद्वान हिंदी साहित्य का पहला उपन्यास मानते है और इस उपन्यास मे सभी औपन्यासिक तत्व समाहित हुए मानते है। इसकी शैली विशेष महत्व रखती है। शैली का स्पष्टीकरण करते हुए स्वयं लेखक ने कहा है कि "नाटकों मे जिसका वचन

- -

1. डॉ० शैलबाला - हिंदी उपन्यास का प्रारंभिक विकास - पृ० 42

होता है उसका नाम आदि मे लिख देते है और वह पैराग्राफ उसका वचन समझा जाता है परन्तु इसमे ......इंवरटिकोमा....के भीतर कहने वाले का वचन लिखा जाता है और कहने वाले का नाम वचन के बीच मे या अन्त मे....अथवा नाम लिखे बिना...भी वह स्वत: स्पष्ट हो जाता है ।"[1] इस उपन्यास का कथा वस्तु सामाजिक है । सेठ मदन मोहन विलासी जीवन बिताने वाले व्यक्ति है उसके चार मित्रों मे से तीन मित्र उसकी कुवृत्तियों को बढाने वाले है । एक मात्र मित्र ब्रज किशोर सेठ मदन मोहन को कुवृत्तियों से बचाने का प्रयत्न करते रहता है किन्तु सेठ उसकी एक नहीं मानता और ब्रज किशोर का परिहास करने लगता है । सेठ मदन मोहन बाजार मे आये नये - नये विलासी वस्तुओं को खरीदने मे खूब धन खर्च करता है । अन्त मे दिवालिया हो जाता है । उसे कुर्की आती है और सेठ जी को बन्दी बना लिया जाता है । उनके स्वार्थी मित्र सेठ जी के गिरफ्तार होते ही किसी न किसी बहाने से खिसकने लगते है । अंतत: केवल ब्रजकिशोर जी ही काम आते है और सेठ जी को छुड़ाते है । सेठ जी को अपने व्यवहार पर ग्लानि होती है और वे अपनी इस स्थिति मे यह समझ जाते है कि मित्र वही होता है जो समय पर काम आता है । "परीक्षा" उनका "गुरू" बनकर अन्तर मे विवेक जागृत कर देती है, जिससे वे अपना भावी जीवन सुख तथा सावधानी से काटते है । इस उपन्यास मे मदन मोहन का चरित्र यथार्थ के आधार पर हुआ है । "मदन मोहन एक ऐसा पात्र है, जो आर्थिक विनाश की ओर निरन्तर बढते हुए अपने किसी भी इष्ट मित्र की सद्भावना की चिन्ता नहीं करते है । चूंकि लेखक स्वयं उस युग का था तथा उस वातावरण के संपर्क मे रह चुका था, इसलिए मदन मोहन का चरित्र यथार्थ की पृष्ठभूमि पर निर्मित है।"[2]

---

1. डॉ0 शैलबाला - हिंदी उपन्यास का प्रारंभिक विकास - पृ. 44
2. -वही- -वही- पृ. 65

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित "पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा" शीर्षक उपन्यास जो मराठी भाषा की एक रचना पर आधारित सामाजिक उपन्यास है । यह उपन्यास भी सामाजिक समस्याओं को यथार्थ के रूप में उद्घाटित करते हुए भी सुधार परक उपन्यास की कोटि में आ जाता है । इस उपन्यास में वृद्ध विवाह की कुप्रथा का विरोध तथा स्त्री शिक्षा का पूर्ण समर्थन किया गया है ।

इसी काल का एक और प्रख्यात सामाजिक उपन्यास है जिसे बालकृष्ण भट्ट ने लिखा है । उपन्यास का शीर्षक है " नूतन ब्रह्मचारी" । यह उपन्यास भी नीतिपरक उपदेशात्मक उपन्यासों के अन्तर्गत आता है । एक आज्ञापालन करने वाला, कर्मशील, उत्साही एवं सत्यनिष्ठ तथा सच्चरित्र बालक चोरी करने आये डाकुओं के सरदार का हृदय परिवर्तन करता है । यद्यपि इसकी रचना सामाजिक जीवन पर आधारित है परन्तु बालोपयोगी होने के कारण इसमें जीवन की गहराइयों का चित्रण नहीं हुआ है ।

बालकृष्ण भट्ट द्वारा लिखा गया दूसरा उपन्यास "सौ अजान एक सुजान" भी उपदेशात्मक सामाजिक उपन्यास की कोटि में आता है जिसमें दो युवकों को उनके गुरु पंडित चंद्रशेखर जी के माध्यम से अपनी पुश्तैनी संपत्ति को किस तरह दुष्टों से बचाया जा सकता है। बताया गया है । "रचना का कथानक कल्पना पर आधारित है । इसमें समकालीन यथार्थ भी है, परन्तु उस पर भी लेखक के कवित्व की छाप है ।......कवि कभी प्राचीन साहित्य में विचरण करता है, कभी समसामयिक जीवन में, कभी आदर्श पर विचार करता है, कभी यथार्थ पर ।"[1] इस उपन्यास की रचना में उपन्यासकार बालकृष्ण भट्ट ने मूल उद्देश्य स्पष्ट करते हुए स्वयं लिखा

---

1. डॉ० शैल बाला - हिंदी उपन्यास का प्रारंभिक विकास - पृ० 7।

है - "अन्त में हम अपने पढ़ने वालों को सूचितकरते है कि आप लोगों में यदि कोई काबोध और अज्ञान होतो हमारे इस उपन्यास केो पढ़कर बशाकरते है, सुज्ञान बने । इस किस्से के अज्ञानों को सुज्ञान करने को चालू था और आप लोगों को हमारा यह उपन्यास होगा ।"[1]

पंडित जगमोहन सिंह द्वारा लिखित "श्यामा स्वप्न" उपन्यास, जो गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग इसमें हुआ है, भी इस काल के सामाजिक उपन्यासों के अन्तर्गत आता है । इस उपन्यास की विशेषता यह है कि उपन्यास कार ने स्वच्छन्द प्रेम को खुलकर समर्थन दिया है । इस उपन्यास में नायिका श्यामा नायक श्याम सुन्दर से प्रेम करती है । नायक और नायिका के गन्धर्व प्रेम के प्रस्ताव द्वारा उपन्यास कार आधुनिक समाज के स्वच्छन्द और प्रेम विवाह की समस्याओं पर यथार्थ दृष्टि सेविचार किया है । इसी समस्या पर विचार करते हुए लेखक ने स्त्री स्वातंत्र्य एवं प्रेम भावना की पवित्रता पर भी बल दिया है ।

"निःसहाय हिन्दू" शीर्षक उपन्यास राधाकृष्ण दास द्वारा लिखा गया है । जिसकी कथा वस्तु गोरक्षा है । इस समस्या के चित्रण के कारण ही यह उपन्यास अपने समय का महत्त्वपूर्ण उपन्यास माना गया है । इस उपन्यास में पहली बार लेखक का दृष्टिकोण आदर्शोन्मुख रहते हुए भी किसी समस्या या यथार्थ परक विवेचन किया गया है । "लेखक ने गोवध की समस्या को प्रस्तुत करते हुए समसामयिक जीवन और विविध वर्गों की विभिन्न मनोवृत्तियों के चित्र भी प्रस्तुत किये है । अंग्रेजी शासन काल में भी हिन्दू और मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक वैमनस्य तो था ही,

- -

1. डा० कैलाशदा - हिंदी उपन्यास का प्रारंभिक विकास - पृ. 72

परन्तु शासन की ओर से इस भावित में छुत भी पड़ता रहता था । हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य के आधार पर हिंदी में अनेक उपन्यासों की रचना हुई । यहाँ तक कि प्रेमचन्द युग में भी यह समस्या कथा कृतियों का आधार बनी । परन्तु प्रस्तुत रचना में इस समस्या के जिस सैद्धांतिक और व्यावहारिक स्वरूप का निदर्शन किया गया है, वह कृति के महत्व का परिचायक है ।"[1]

भुवनेश्वर मिश्र के "घराऊ घटना" और "बलवन्त भूमिहार" उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का चित्रण अद्भुत ढंग से हुआ है । "घराऊ घटना" उपन्यास मनोरंजन की दृष्टि से लिखने पर भी मध्यवर्गीय गृहस्थ जीवन का अंकन बहुत ही मर्मस्पर्शी ढंग से हुआ है । "हर माँ की यही अभिलाषा होती है कि वह अपने पुत्र का परिणय देख सके । इस उपन्यास में इस तथ्य का बड़ा सजीव चित्रण हुआ है । परिणय के दो तीन वर्षों के अन्दर पुत्र न उत्पन्न होने तथा उससे सम्बद्ध जादू टोने की बात का भी यथार्थ अंकन हुआ है । स्त्रियों के आभूषण प्रेम, अन्धविश्वास और पैसे के लिए छल छद्म करने की प्रवृत्ति को भी वास्तविक रूप में चित्रित किया गया है । अपढ़ स्त्रियों की अदूरदर्शिता पर भी प्रकाश डाला गया है । इस प्रकार उपन्यास का चित्रफलक व्यापक और घटना व्यापार यथार्थवादी है ।"[2]

"बलवन्त भूमिहार" उपन्यास भी यथार्थपरक उपन्यास है जिसमें भूमिहार और जमींदार के बीच संघर्ष का चित्रण किया गया है । इसमें न तो नीतिपरक उपदेश मिलता है न अतिरंजित घटनाओं का समावेश यह

- -

1. डा० रेखबाला - हिंदी उपन्यास का प्रारंभिक विकास - पृ० 74
2. डा० सच्चिदानन्द राय - हिंदी उपन्यास : संस्कृति एवं मानववादी चेतना - पृ० 266-67

केवल बिहार के उत्तरांचल में निवास करने वाले जमींदारों के पारिवारिक सामाजिक तथा जमींदारी सम्बन्धी समस्याओं को प्रस्तुत करता है । सभी समस्याओं को समान महत्व दिया गया है और जमींदार तथा किसानों के पारस्परिक संबंध पर भी प्रकाश डाला गया है ।"[1]

इस काल के उपन्यासों में अनेक उपन्यास नारी जीवन संबंधी अनेक समस्याओं को उद्घाटित किया गया है । श्री गोकुल नंद प्रसाद कृत "कमला" नामक उपन्यास नारी जागरण का संदेश देता है । श्री बाल मुकुंद वर्मा कृत "मालती" शीर्षक उपन्यास अर्थाभाव के कारण प्रेम में आने वाले बाधाओं को प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास में मालती और रत्नचन्द्र आपस में प्रेम कर लेते है किन्तु अर्थाभाव से विवाह न होने के कारण दोनों विषपान करते है किन्तु चिकित्सक दोनों को बचाते है औरअन्त में दोनों का विवाह होता है । हालांकि यह उपन्यास आदर्शोन्मुख दृष्टिकोण से लिखा गया है । फिर भी नायक के साथ अर्थाभाव के कारण कैसी-कैसी समस्यायें उत्पन्न होती है । स्पष्ट रूप से बताया गया है और नायिका की मानसिक दशा का व्यापक फलक पर चित्रण किया गया है ।

इस काल में अनेक ऐसे उपन्यास भी लिखे गये है जिनमें विधवा समस्या को स्थान दिया गया है । पं० राधा चरण गोस्वामी ने "विधवा विपत्ति" नामक उपन्यास लिखा है जिसमें पुरुषों से पीड़ित बाल विधवाओं के प्रति गहरी सहानुभूति जताई है । बालविधवाओं का दैनिक जीवन कितने यातनाओं से ग्रस्त होता है, कितना दुःखमय एवं निस्सहाय बताया है । वे यह भी घोषित करते है कि उनके माथे पर लगाये जाने वाला कलंक का टीका निःसार और निरर्थक है । किन्तु "इसमें लेखक ने प्राचीन मान्यताओं के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि विधवा विवाह समाज को वांछित

- -

डा० सच्चिदानंद राय - हिंदी उपन्यास : सांस्कृतिक एवं मानववादी चेतना - पृ० 267

नहीं है और विधवाओं को चाहिए कि अपने स्वर्गीय पति का ध्यान करते हुए धर्म-कर्म का जीवन व्यतीत करें ।"1

"पंडित लज्जा राम मेहता" ने अपने उपन्यास "सुशीला विधवा" में विधवा का मार्मिक चित्रण यथार्थ के धरातल पर किया है । विधवा के प्रति समाज के दृष्टिकोण को भी प्रस्तुत किया है । फिर भी उपन्यास कार ने परम्परावादी होने के नाते विधवा विवाह का विरोध किया है । उनका कहना है कि बाल विधवा धैर्य संयम और आत्मविश्वास के साथ जीवन व्यतीत करने पर स्वर्ग में पति प्राप्त होता है । पंडित लज्जाराम मेहता के अन्य उपन्यास 'आदर्श दम्पति' "धूर्त रसिकलाल" "स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी" हिन्दू गृहस्थ" बिगड़े का सुधार और आदर्श हिन्दू हैं । ये सभी उपन्यास सामाजिक समस्याओं को यथार्थ दृष्टि से चित्रित करने पर भी सनातन धर्म के आदर्शों पर लिखे गये हैं । किशनाथ शर्मा ने भी अपने उपन्यास "कंठूलदास" में कलियुग की अनेक सामाजिक कुप्रथाओं का चित्रण व्यापक फलक पर किया है ।

गोपाल राम "गहमरी" ने पारिवारिक परिप्रेक्ष्य में दो उपन्यास "देवरानी जिठानी" और "बेकम बीबी" क्रमशः 1901 और 1902 में लिखे हैं । दोनों में भी पारिवारिक समस्याओं के बारे में बहुत ही सूक्ष्म रूप से चित्रण किये हैं । "देवरानी जिठानी" में संयुक्त परिवार में किस प्रकार छोटी-छोटी बातों से समस्यायें उत्पन्न होती है और संयुक्त परिवार के विघटन में किस प्रकार प्रेरकतत्व बन जाते हैं "गहमरी" जी ने बहुत ही संवेदनशीलता के साथ चित्रण किया है ।

---

1. डा० कैलाबाला - हिंदी उपन्यास का प्रारंभिक विकास - पृ० 78

गोपालराम "गहमरी" जी का दूसरा उपन्यास "बेकन बीबी" में भी पारिवारिक समस्या का चित्रण हुआ है । "इसमें लेखक ने एक व्यक्ति के दो विवाहों का चित्रण किया है । कथा नायक एक लम्बे काल का दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने के पश्चात भी जब निस्सन्तान रहने से निराश हो जाता है, तब सन्तान की लालसा से वह दूसरा विवाहकरता है । इस विवाह के बाद उसकी पहली पत्नी की मार्मिक वेदनाओं एवं अनेक विडम्बनात्मक परिस्थितियों का चित्रण है ।"[1]

कल्पनापूर्ण शक्ति के आधार पर लिखे गये सामाजिक उपन्यास के रूप में "सुन्दर सरोजनी" को अभिव्यंजित कर सकते है । जिसके उपन्यासकार देवीप्रसाद शर्मा है । इसमें प्रेमी और प्रेमिका अपने अपने स्वप्न में एक दूसरे को देखकर आपस में प्रेम कर लेते है । नायक बेताब सैर्वव्यापार कर रही नायिका को मिलने के लिए एक सकित के आधार पर श्रीलंका पहुंच जाता है वहाँ पर नायिका नायक को मिलती है । इस उपन्यास का विश्लेषण करती हुई हेमबाला लिखती है कि "यद्यपि तिलिस्मी ऐय्यारी और जासूसी द्वारा लेखक ने कौतूहल की दृष्टि नहीं की है फिर भी कथा कम रहस्यमयी नहीं है । ऐसा लगता है, मानो मध्ययुगीन कथा को आधुनिकता का आवरण देकर लेखक ने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । तस्वीर के लिए वीडियो पात्र की रचना जहाज पर चढते समय धर्म संकट, पति स्वीकार कर लेने पर भी जाति - पाँति का भेद भाव और उस पर विचार तथा बिहारी व्यापारियों का लंका जाकर विवाह सम्पन्न करना आदि कथानक को नया रूप देते है ।"[2]

- -

1. डॉ. हेमबाला - हिंदी उपन्यास का प्रारंभिक विकास - पृ. 82
2. -वही- -वही- पृ. 76

हनुमन्त सिंह रघुवंशी ने आत्मपरक शैली में एक सामाजिक उपन्यास लिखा है जिसका शीर्षक है " मेरी दुख गाथा" । इस उपन्यास की कथा वस्तु तत्कालीन युवाओं की समस्याओं पर आधारित है । अत: यह एक यथार्थ घटनाओं पर आधारित उपन्यास है ।

सन् 1899 में प्रकाशित पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध का उपन्यास "ठेठ हिंदी का ठाठ" भाषा कीदृष्टि से महत्वपूर्ण है । स्वयं उपन्यासकार ने कहा है कि यह उपन्यास ठेठ हिंदी में दूसरा है । यह भाषा के नये रूप का प्रयोग मात्र है । फिर भी यह एक आदर्शोन्मुख उपन्यास है जिसमें नायिका देवबाला देवनन्दन से प्रेम करती है किसी कारणवश देवबाला का विवाह रामनाथ नामक अशिक्षित से होता है । रामनाथ उसे अनेक प्रकार से यातनाएं देता है । फिर भी वह सह कर रह जाती है । उसके सास - ससुर का स्वर्गवास होता है । रामनाथ घर से निकल जाता है । देवबाला का एक मात्र पुत्र अस्वस्थ हो जाता है । ऐसी विपत्तिपूर्ण परिस्थिति में पूर्व प्रेमी देवनन्दन वहाँ पर आकर उसकी सहायता करता है और देवबाला के पति रामनाथ को ढूंढ लाता है । रामनाथ और देवनन्दन के सामने ही देवबाला अपने प्राणों को छोड़ देती है । इस उपन्यास में "लेखक ने सामाजिक यथार्थ का जीवन्त निरूपण किया है । लेखक ने पहली बार जाति प्रथा से उत्पन्न सामाजिक कुरीतियों का सहज और स्वाभाविक चित्रण किया है । आभिजात्य के चक्कर में पड़कर अनमेल विवाह और उससे उत्पन्न दुष्परिणामों की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया गया है । लेखक ने इस बात को दिखलाया है कि इन सामाजिक प्रतिबंधनों के कारण देवबाला और उसके देवनन्दन का परिणय तो नहीं हो सका पर देवबाला और रमानाथ का अनमेल विवाह अवश्य हो जाता है । देवबाला घुट-घुटकर अपने जीवन का अन्त कर देती है । रखैल रखने वाले रमानाथ को उसकी वेदनाओं को समझने का अवसर भी नहीं मिलता । यह है क्रूरता और विद्रूपता जिसके चंगुल में परवश नारी अनन्त काल से फंसी हुई है और असमय

ही अपना दम तोड़ देती है । उपन्यास के अन्त में दुराचारी रमानाथ भी देवनन्दन के सम्पर्क से सुधर अवश्य जाता है, पर इससे तो समस्या का समाधान नहीं हो पाता । उपन्यास यथार्थोन्मुख है, इसलिये उसमें हमें प्रभावित करने की क्षमता भी है । लेखक ने इसे आदर्शोन्मुख बनाने का प्रयत्न अवश्य किया है । इसमें संगठन सम्बन्धी त्रुटियाँ हैं, पर इसकी सामाजिक चेतना इस युग के अन्य उपन्यासों की तुलना में अधिक दीप्ति-मान हो उठी है ।"[1]

सन् 1907 में प्रकाशित हरिऔध जी का दूसरा उपन्यास "अध खिला फूल" है । इसमें नारी जीवन की समस्याओं का चित्रण हुआ है । आदर्श नारी को समाज द्वारा पथ भ्रष्ट किये जाने वाले तत्वों का भी विवेचन किया गया है । दुराचारी, लम्पट पात्र के द्वारा लौकिक आडम्बर पूर्ण तथा अनर्गल परम्पराओं के दुष्परिणाम को सफलतापूर्वक दर्शाया है ।

पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी का विशिष्ट स्थान है । आपने अनेक सामाजिक उपन्यासों का सृजन किया है । जिसमें से प्रमुख है - राजकुमारी (1902), चपला वा नव्य समाज चित्र (1903) पुनर्जन्म वा सौतियाडाह (1908) त्रिवेणी वा सौभाग्य श्रेणी (1907) लीलावती वा आदर्श सती माधवी माधव वा मदन मोहनी (1916) अंगूठी का नगीना (1918) । इसमें से ज्यादातर उपन्यास सनातन धर्म के आदर्शों पर लिखे गए है । इसलिए इनमें पति भक्ति स्त्री शिक्षा विरोध, आर्यसमाज का विरोध दिखाई देता है ।

"लीलावती वा आदर्श सती" उपन्यास के माध्यम से परम्परानिष्ठ समाज और नई चेतना से उद्भूत नये समाज की चेतना पर तुलनात्मक दृष्टि से

- -

1. डा० सच्चिदानंद राव - हिंदी उपन्यास : सांस्कृतिक एवं मानववादी चेतना - पृ. 266

विचार किया गया है और पाश्चात्य सभ्यता को भारतीय समाज के लिए कल्याणकारी नहीं माना है ।

कनककुसुम वा मस्तानी, "पुनर्जन्म वा सौतिया डाह" और अंगूठी का नगीना" भी सनातन धर्म के आदर्शों के आधार पर लिखे गये उपन्यास है । इनमें पति को पत्नियां दूसरा विवाह करने के लिए अनुमति देते है और पुनर्जन्म में विश्वास रखते है । इस प्रकार किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास रोचक रहने पर भी परम्परावादी धारणाओं से ग्रसित हैं ।

इसी काल के एक और उपन्यासकार चन्द्रशेखर पाठक है जिनका लिखा हुआ उपन्यास "रमाबाई" एक असफल प्रेम कहानी है । रमाबाई और नारायण प्रेम करते है किन्तु नारायण का पिता ऋण ग्रस्त होने के कारण विवशहोकर नारायण का विवाह दूसरे स्थान पर कर देते है । रमा निराशा और विषाद में डूब जाती है ।

मुंशी व्रजनन्दन सहाय कृत "अद्भुत प्रायश्चित" उपन्यास में आदर्शवादी दृष्टिकोण से परे सामाजिक यथार्थता का समावेश हुआ है । "अरण्यबाला" (1915) नामक उपन्यास में धार्मिक दृष्टिकोण की प्रबलता के बावजूद औद्योगिक प्रगति कृषि आदि में सुधार तथा समाज की विविध क्षेत्रीय प्रगति आदि को प्रमुखता दिया गया है । इसमें विविध वर्गीय आर्थिक असमानता का चित्रण हुआ है ।

मन्नन द्विवेदी कृत "रामलाल" और कल्याणी भी तत्कालीन सामाजिक उपन्यास है । "रामलाल" के माध्यम से लेखक ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि आश्रयहीन बालकों का हमारे समाज में कोई स्थान नहीं रहता । वे इधर उधर ठोकरें खाते हुए जीवन व्यतीत करते हैं । कल्याणी (1920) उपन्यास शिक्षाप्रद सामाजिक रचना है ।

इसी प्रकार और अनेक सामाजिक उपन्यासों की रचना इस युग में हुई है । सामाजिक उपन्यासों के समानान्तर ही ऐतिहासिक तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों का भी सृजन होने लगा था । ऐतिहासिक उपन्यासों में किशोरी लाल गोस्वामी कृत तारा व क्षत्र कुल-कमलिनी (1902) सुल्ताना रजिया बेगम वा रंगमहल में हलाहल (1904) "हृदय हारिणी वा आदर्श रमणी" (1904), "लवंगलता वा आदर्श बाला" (1904) मल्लिका देवी वा बंग सरोजनी (1905) सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई (1904 एवं 1911) गुलबहार वा आदर्श भ्रातृ- स्नेह (1916) लखनऊ की कब्र वा शाही महलसरा (1917) आदि उपन्यास प्रमुख है । इसी प्रकार मथुरा प्रसाद शर्मा कृत नूरजहाँ बेगम वा जहाँगीर (1905) ब्रजनन्दन सहाय कृत लाल चीन (1916) मिश्रबन्धुओं का पुष्यमित्र, विक्रमादित्य तथा वीरमणि (1917) प्रमुख उपन्यास है ।

इस युग के तिलिस्मी उपन्यासों में देवकीनन्दन खत्री कृत चन्द्रकान्ता (संवत 1944) तथा चन्द्रकान्ता संतती प्रसिद्ध है । इनके अतिरिक्त हरेकृष्ण जौहर कृत कुसुमलता, शंकर दयाल श्रीवास्तव कृत मदन मंजरी आदि प्रसिद्ध तिलिस्मी उपन्यास है ।

जासूसी उपन्यासों की परम्परा में गोपालराम "गहमरी" कृत "मेम की लाश" "खूनी का भेद", "काशी की घटना" प्रमुख उपन्यास है । इसी प्रकार राम प्रसाद लाल कृत "हम्माम का मुर्दा", बाबू जयराम दास गुप्त कृत- "काला चाँद या सौतेली माँ", और "जंगा खूनी" रामलाल वर्मा लिखित चालाक चोर, घटना चक्र, जासूस के घर खून तथा जासूसी कुत्ता और दुर्गाप्रसाद खत्री लिखित अनेक जासूसी उपन्यासों में रक्त मण्डल तथा "लाल पंजा" प्रमुख हैं ।

इस प्रकार पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में सामाजिक उपन्यासों के साथ साथ ऐतिहासिक तिलिस्मी और जासूसी उपन्यास भी लिखे गये हैं। पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों के विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उपन्यास विधा का यह शुरुआती दौर है इस लिए इस काल में उपन्यासों का पूर्ण विकसित रूप मिलना संभवनहीं है। इस काल के उपन्यासों में कहीं कहीं गद्य के साथ पद्य का भी प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि इस काल में अभी गद्य का पूर्ण प्रचार-प्रसार नहीं हुआ है। जहाँ तक कथा वस्तु का प्रश्न है - इस काल के उपन्यासों में कई प्रकार की कथा वस्तु मिलती है जिनमें मुख्यत: सामाजिक, ऐतिहासिक तिलिस्मी और जासूसी हैं।

"उपन्यास" का संबंध पाश्चात्य अवधारणा के अनुसार सामाजिक यथार्थ से होता है। इस बात की कमी इस युगीन सामाजिक उपन्यासों में है क्योंकि इस काल के उपन्यासों में विशेषत: सामाजिक उपन्यासों में विषय वस्तु उपदेशात्मक, नीतिपरक, सुधारात्मक या आदर्शमय है। इस कारण इन उपन्यासों में स्पष्ट रूप से यथार्थवाद का रूप दिखाई नहीं देता। यदि किसी उपन्यास में सामाजिक या नारी समस्या के बारे में चित्रण हुआ तो वह निश्चित रूप से यथार्थ के धरातल पर होने पर भी उसकी परिणति आदर्शोन्मुख होती रही है। इस प्रकार हम कह सकते है कि इस काल के उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण तो खुलकर हुआ है किन्तु एक सीमा के अन्दर ही उसका विकास हुआ है।

स्पष्ट है पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के जरिए व्यापक धरातल पर हुआ है किन्तु उसकी एक स्पष्ट दिशा नहीं रही है। यह सैद्धांतिक अभाव के कारण हुआ है। हाँ इतना कह सकते है कि इस काल में यथार्थ की किरण तत्कालीन उपन्यासों को प्रगति का मार्गदर्शन कराती हुई उपन्यासों में निहित थी।

3. प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध [सन् 1916 - 1936]

सन् 1916 से सन् 1936 ई० तक का काल हिंदी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द युग नाम से जाना जाता है । वस्तुतः हिंदी साहित्य के इतिहास में उपन्यास का जन्म 19वीं शती के उत्तरार्द्ध में होने पर भी सही मायने में प्रेमचन्द का साहित्यिक क्षेत्र में पदार्पण करने के पश्चात ही हुआ है । अर्थात सन् 1912 के आस पास से हिंदी साहित्य के इतिहास में साहित्यिक मूल्यों पर आधारित उपन्यासों का उदय हुआ ।

उपन्यास का सीधा संबंध यथार्थ से है । मानव जीवन सामाजिक आर्थिक राजनैतिक एवं धार्मिक प्रभावों से अछूता नहीं रहता है । इन प्रभावों से मनुष्य को अलग करके देख नहीं सकते है । अतः मनुष्य के जीवन में विभिन्न प्रभावों के कारण अनेक उतार चढ़ाव आते है । इन्हीं उतार-चढ़ावों का उपन्यासों का वस्तु बनाकर यथार्थ के आधार पर प्रेमचन्द ने लिखना आरंभ किया । इसी कारण प्रेमचन्द को न केवल उपन्यास क्षेत्र का बल्कि समस्त कथा साहित्य का स्रष्टा माना जाता है ।

प्रेमचन्द के पूर्व युग में जो उपदेशात्मक, तिलस्मी, ऐयारी या मनोरंजनकारी उपन्यास लिखे जाते थे जिनमें जीवन मूल्यों का पूर्णतः ह्रास था उनको सामाजिक जीवन से जोड़ने का सफल प्रयास किया । प्रेमचन्द के कारण ही उपन्यास क्षेत्र में यथार्थ के विभिन्न रूपों का समावेश हुआ और उनका विकास भी हुआ । सन् 1916 ई0 से सन् 1936 ई० तक अनेक ऐसे उपन्यासकारों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने सामाजिक यथार्थ को अपने अपने नजरिये से देखा और परखा । परिणामस्वरूप अपने विचार अपनी दृष्टि के माध्यम से पाठकों को यथार्थ का बोध करवाया । हाँ, इतना अवश्य कह सकते है कि जिस प्रकार प्रेमचन्दोत्तर हिंदी उपन्यास क्षेत्र में यथार्थवाद के विभिन्न रूपों जैसे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद समाजवादी यथार्थवाद

आलोचनात्मक यथार्थवाद, प्रकृतिवादी यथार्थवाद, अतियथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, ऐतिहासिक यथार्थवादआदि को देख सकते है, वैसे यहाँ पर नहीं देख सकते । यहाँ हम यथार्थ के आयामों के स्थूल रूपों को देख सकते है या मिश्रित रूप । कहने का मतलब यही है कि इस युग में यथार्थ के रूपों का स्पष्ट रूप से विभाजन नहीं हुआ है ।

इस युग के उपन्यासों में भारतीय समाज के प्रायः सभी वर्गों ग्रामीण तथा नागरिय जीवन के यथार्थ पहलुओं, सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक और धार्मिक समस्याओं का कलात्मक निरूपण किया गया है । आर्थिक शोषण, दहेज प्रथा, विधवा समस्या, बहु विवाह प्रथा, अनमेल विवाह प्रथा, वेश्या समस्या, छुआछूत की समस्या, ब्रिटिश नीति, राष्ट्रीय आन्दोलनों, साम्प्रदायिक संघर्षों आदि को इस काल के अनेक उपन्यासों में चित्रण कियागया है । इस प्रकार इस युग के उपन्यासकारों ने उपन्यास साहित्य को सामाजिक जीवन के यथार्थ से जोड़ा है । ऐसे उपन्यासकारों में प्रमुख हैं - प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, जयशंकर प्रसाद, ऋषभचरण जैन, सियारामशरण जैन, जैनेन्द्र कुमार, बेचन शर्मा "उग्र", चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला इलाचन्द्र जोशी, भगवती प्रसाद वाजपेयी, उषादेवी मित्रा ।

प्रेमचन्द इस युग के प्रेरणा स्त्रोत है । उनके जितने भी उपन्यास है उनमें एकाध छोड़कर सब के सब सामाजिक यथार्थ से जुड़े है । उन्होंने भारतीय समाज को समग्र रूप से अपने उपन्यासों में विश्लेषित किया है । विशेषतः भारतीय समाज में फैले विभिन्न समस्याओं को इस प्रकार चित्रित किया है कि पाठक उसे पढ़कर आत्मविभोर हो जाता है । इस प्रकार पाठक को प्रभावित करने की क्षमता प्रेमचन्द के उपन्यासों में मात्र इसलिए

नहीं है कि उनमें मानव जीवन को शक्ति और सुन्दरता प्रदान -- सोद्देश्यता होती है। बल्कि इसलिए है कि उनके उपन्यासों में यथार्थ की सही पकड़ है। इसी पकड़ के कारण ही प्रेमचन्द ने अपने कथा साहित्य को मानव जीवन से जोड़ा है। यथार्थ के संबंध में प्रेमचन्द ने ठीक ही लिखा है --"यथार्थवाद का यह आशय नहीं है कि हम अपनी दृष्टि को अंधकार के सिवा और कुछ ही क्या सकता है ? बेशक चुटकियाँ लेना, यहाँ तक की नश्तर लगाना भी कभी - कभी आवश्यक होता है, लेकिन दैहिक व्यथा चाहे नश्तर से दूर हो जाए, मानसिक व्यथा सहानुभूति और उदारता से ही शान्त हो सकती है, किसी को नीच समझकर हम उसे ऊँचा नहीं बना सकते, बल्कि उसे और नीचे गिरा देंगे। कायर यह यह कहने से बहादुर न हो जाएगा कि तुम कायर हो। हमें यह दिखाना पड़ेगा कि उसमें साहस, बल और धैर्य - सब कुछ है, केवल उसे जगाने की जरूरत है। साहित्य का संबंध सत्य और सुन्दर से है यह हमें न भूलना चाहिए।"[1]

उपरोक्त प्रेमचन्द के उद्धरण से पता चलता है कि प्रेमचन्द साहित्य में यथार्थ को स्पष्ट रूप से दिखाते हुए भी पाठक को निराश और उदास नहीं करना चाहते हैं। इसी कारण अपने आरंभिक उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को यथार्थ के धरातल पर खुलकर चित्रण किया है किन्तु उनका पटाक्षेप आदर्श के साथ हुआ है। उदाहरण के तौर पर "सेवा सदन", "प्रेमाश्रम", "कर्मभूमि", आदि में आदर्श भावनाएं हृदय परिवर्तन को देख सकते हैं। सेवा सदन की नायिका सुमन है जिसके माध्यम से "वेश्या जीवन को एक सामाजिक संदर्भ में देखा गया है। वेश्या जीवन पुरुष के लिए एक लुभावनी

- -

1. प्रेमचन्द - कुछ विचार - पृ: 72-73

चीज के नीचे छिपी नारी जीवन की गहनतम प्रतारणा, अपमानन को उद्घाटित कर उन मूल कारणों पर प्रकाश डाला जो हमारे मध्यवर्गीय स्त्री समाज को वेश्या बनने के लिए विवश कर देते है । और लेखक ने हमारे पुरुष समाज के रंग बिरंगी नकाब पहने हुए तमाम धार्मिक राजनीतिक, सामाजिक पुण्य पुरुषों को भरी सड़क पर नंगा कर दिया और उन सामाजिक कुरीतियों पर रोशनी डाली जो हमें ऊपर से शरीफ और नीचे से जानवर बनाये हुए है ।"[1] प्रेमचन्द ने अपने आरंभिक आदर्शवादी या सुधारवादी दृष्टिकोण के फलस्वरूप सामाजिक समस्याओं का समाधान भी देने का प्रयास किया है । वेश्या समस्या का समाधान उन्हें आश्रमों, अनाथालयों आदि की स्थापना में दृष्टिगत होता है । किन्तु प्रेमचन्द के परवर्ती उपन्यासों में विचारधारा के आधार पर काफी बदलाव आया है । जैसे दहेज समस्या, अनमेल विवाह समस्या, विधवा समस्या, हरिजन (अछूत) समस्या आदि को सजग रूप से चित्रित करते हुए भी अन्त में जो समाधान देनेकी पद्धति थी उसे परवर्ती उपन्यासों में तिलांजली दिया है । यदि हम प्रेमचन्द के उपन्यासों में चिंतन का विकास देखे तो क्रमशः सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि कायाकल्प निर्मला, गबन, कर्मभूमि और गोदान और मंगलसूत्र तक आते आते यथार्थ कीअभिव्यक्ति अधिक होती गई है और आदर्श या सुधारवादी भावनाओं से मोहभंग हो गया है । यथार्थ के धरातल पर लिखा गया उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास "गोदान" है । जिसमें प्रेमचन्द भारतीय किसान का यथार्थ चित्रण होरी नामक किसान के

- -

1. रामदरश मिश्र - हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा - पृ. 39-40

जरिये किया है । जिसमें गुण और दोष, अभाव और शक्ति एक साधारण भारतीय किसान के जैसे ही है । प्रेमचन्द की आस्था यथार्थवाद में किस तरह बढ़ती गयी है और आदर्श की भावना किस प्रकार ह्रास होती गई है डा० शिव कुमार मिश्र की इस उद्धरण से स्पष्ट होता है । वे लिखते है कि "शोषण , "प्रेमाश्रम" के किसानों का भी होता है, हारते वे है, परन्तु वहाँ वे इकट्ठे होकर सामंती शक्ति से जूझते भी है, जबकि "गोदान" का किसान एकदम अकेला है और जिन्दगी के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाई में उसके वर्ग के लोग, उसके भाई तक उसका साथ नहीं देते । शोषणकी प्रक्रिया भी यहाँ "प्रेमाश्रम" के समान स्थूल न होकर अत्यंत महीन है । यहाँ किसान एक ही बार में समाप्त नहीं होता, वह धीमे-धीमे, रगड़-रगड़ कर मारा जाता है और विडंबना यह है कि अंतिम समय तक उसे इस तथ्य का एहसास नहीं होता कि आखिर उसे मारने वाला है कौन ? उसके हत्यारे यहाँ अधिक सावधान है और मीठी-मीठी बातें करते हुए उसे रेत-रेत कर मारते है ।"[1]

कुल मिलाकर हम इतना कह सकते है कि प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में चाहे वह 'गबन' हो, 'निर्मला' हो, या अन्य कोई और हो प्रत्येक उपन्यास में यथार्थ का चित्रण पुरे जीवंतता के साथ किया है । जिस सामाजिक यथार्थ का चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है, वह मात्र उनका देखा हुआ ही नहीं उनका भोगा हुआ भी है । उनकी कृतियों में चित्रित यथार्थ मात्र सतह पर उतराने वाला यथार्थ नहीं है, वरन गहराई में जाकर जीवन की सही छवि को उजागर करने वाला है ।"[2]

- -

1. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ: 180

2. -वही- -वही- पृ. 179

इस प्रकार हम प्रेमचन्द के उपन्यासों के विवेचन के आधार पर कह सकते है कि प्रेमचन्द आलोचनात्मक यथार्थवाद के पक्ष में आने वाले कथाकार है । वस्तुतः प्रेमचन्द एक ऐसे कथाकार है जिन्होंने हिंदी साहित्य में उपन्यास विधाको एक प्रमुख स्थान दिलवाया । शिवकुमार मिश्र प्रेमचन्द के बारे में लिखते है कि "कतिपय सीमाओं के बावजूद जो उनके अपने युग की सीमाएं भी है, उनकी देन इतनी भास्वर है कि उसे कतई नजरंदाज नहीं किया जा सकता । बृहत स्तर पर चल रहे सामाजिक अन्याय के खिलाफ इतनी सशक्त आवाज आगे भी नहींगूंजी है । यह अगली पीढ़ी के कथाकारों का अवमूल्यन नहीं प्रेमचन्द के अ मूल्यावान प्रदेय के प्रति सहज प्रणति है ।आगे के कथाकारों में से अनेक ने उन्हें प्रेरणास्त्रोत के रूप में अपनाकर यथार्थ चित्रण के क्षेत्र में नये अध्याय जोड़े है, किन्तु यह निर्विवाद है कि प्रेमचन्द से बड़ी मानवीय संवेदना अभी तक दृष्टिगोचर नहीं हुई । यही प्रेमचन्द का युग प्रवर्तन है, यही उनका महत्व है ।"[1]

इस युग के अन्य महत्वपूर्ण उपन्यासकारों में विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" एक है । कौशिक जी भी प्रेमचन्द के परम्परा के ही लेखक है और प्रेमचन्द जैसे ही यथार्थ के धरातल पर सामाजिक समस्याओं का चित्रण भी करते हैं किन्तु कौशिक जी "प्रेमचन्द की गहराई नहीं पा सके हैं । प्रेमचन्द चाहे कोई समस्या लेते हो, चाहे समस्याओं का जाल, उन्हें जीवन यथार्थ कीगहरी जटिलताओं से गुजारते है । उन्हें अपने समय की बहुत गहरी पहचान है, उसकीबुनियाद की भी और उसकी व्याप्ति की भी । सामाजिक , राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन यथार्थ के परस्पर जकड़े हुए

- -

1• शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ: 181

संकुचित रूप को उभारने में उन्हें अद्भुत सफलता मिली है लेकिन कौशिक जी के उपन्यासों में समस्याएं रूप में आयी है । इन उपन्यासों में न तो चरित्र या सामाजिक यथार्थ संबंधी गहराई है और न संश्लिष्ट अभिव्यक्ति ही ।"[1]

"कौशिक" जी के दो उपन्यास मुख्य है एक भिखारिणी (1929), दूसरा माँ (1929) "भिखारिणी उपन्यास तत्कालीन सामाजिक रूढ़ियों के विरोध में संघर्ष को चित्रित करता है । विशेषतः इस उपन्यास में अन्तर्जातीय विवाहके कारण, पीढ़ियों के बीच उत्पन्न होने वाला टकराव का संपूर्णता के साथ चित्रण किया गया है । इस उपन्यास के नायक रामनाथ के माध्यम से उपन्यासकार स्वार्थी और कामुक युवकों का पर्दाफाश करता है । ऐसे युवकों का प्रेम प्रेम नहीं होता वह वासना को तृप्त करने के लिए खेले जाने वाला नाटक है । उपन्यास की नायिका के माध्यम से लेखक एक आदर्श चरित्र की स्थापना करता है । उसमें "जस्सो स्त्रीजनोचित गुण पराकाष्ठा को पहुंच जाते है । वह अपने प्रेमी रामनाथ को अत्यन्त्र विवाह करने की सहर्ष अनुमति देकर, सुहागरात के दिन,उसकी नववधू का शृंगार स्वयं करती है । उसका यह त्याग असाधारण है । इतना ही नहीं, वह वह अपनी सारी सम्पत्ति दान कराकर पुनः भिखारिणी बन जाती है ।"[2] इस प्रकार की भिखारिणियाँ समाज में बहुत कम मिल पायेगी । "जस्यो के पात्र के द्वारा आदर्श की स्थापना करने का प्रयास किया गया है ।

कौशिक जी का दूसरा उपन्यास "माँ" है । जो "माँ" का आदर्श रूप को प्रस्तुत करता है । इस उपन्यास में जन्म देने वाली माँ और गोद लेने वाली माँ के बीच का भेद स्पष्ट किया गया है । जन्म देने वाली माँ के पास अपने बच्चे केलिए जो प्यार, स्नेह और ममता होती है वह गोद

- -

1. रामदरश मिश्र - हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा - पृ. 60
2. डा० मोहनलाल "रत्नाकर" - प्रेमचन्द युग का हिंदी उपन्यास-पृ.26।

लेने वाली माँ के पास नहीं होती । इस उपन्यास में यह भी स्पष्ट किया गया है कि माँ योग्य निर्देशन से ही बालक का भावी जीवन निर्मित होता है । सुलोचना एक आदर्श माँ है और उसके दो बच्चे है - शम्भुनाथ और श्यामनाथ । श्यामनाथ को सावित्री नाम एक सम्पन्न स्त्री के द्वारा गोद लिया जाता है । श्यामनाथ को उचित मार्ग निर्देशन न मिलने के कारण वह लंपट, आवारा और वेश्यागामी बन जाता है और इधर शम्भुनाथ अपने आदर्श "माँ" सुलोचना के छत्रछाया में योग्य व्यक्ति बनता है । वह डिप्टी कलक्टर हो जाता है । इस प्रकार इस उपन्यास का कथा वस्तु सामान्य है । सामाजिक परिस्थितियों के चित्रण करते समय वेश्याओं के जीवन और वेश्यागमन को बुराइयों का उद्घाटन किया गया है । उपन्यास के अन्त में श्यामनाथ और उसके मित्र अपनी भूल अनुभव कर लेते है और ठीक रास्ते पर आ जाते है ।

इस प्रकार कह सकते है कि "कौशिक" आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण को, उस रूप में तो अभिव्यक्त नहीं कर सके है, जिस रूप में प्रेमचन्द अभिव्यक्त करते है । किन्तु उनका प्रयास यही रहा है कि वे सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करके, उच्च आदर्शों की स्थापना करें । सामाजिक असंगतियों एवं व्याभिचार का विरोध करके, स्वस्थ एवं आदर्श जीवन की कामना करें ।[1]

सामाजिक यथार्थ को उजागर करने वाले उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद भी एक है । इनके कंकाल, तितली, इरावती उपन्यास प्रमुख है । जिनमें यथार्थ को स्पर्श करता हुआ कथा आगे बढ़ता है । आलोचक प्रसाद के उपन्यासों में यथार्थवादी आदर्शोन्मुख यथार्थवादी और स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण को खोजते है । डा० त्रिभुवन सिंह के अनुसार "कंकाल" में दो

- -

1. डा० मोहनलाल "रत्नाकर" -प्रेमचन्द युग का हिंदी उपन्यास-पृ.26।

प्रकार की प्रवृत्तियों का सन्धि स्थल है । आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की जो धारा अप्रतिहत वेग से बहती चली आ रही थी "कंकाल" ने उसे विभाजित कर दो धाराओं में परिवर्तित कर दिया । "कंकाल" के अन्दर आदर्शोन्मुख यथार्थवादी तथा प्रकृतिवादी विचार धारा का सामंजस्य मिलता है । संभवतः इसी उपन्यास के द्वारा हिन्दी में प्रकृतिवादी उपन्यासों का इतिहास आरम्भ हो जाता है । लेखक ने इसके अन्दर सामाजिक कुरूपताओं को दिखाकर एक आदर्श समाज की कल्पना की है । इसमें प्रायः सभी पतित पात्रों का अन्त में चलकर सुधार कर लियागया है ।"[1] किन्तु प्रख्यात आलोचक शिवकुमार मिश्र के अनुसार "कंकाल" को "प्रकृतिवाद" की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता । वे कहते है कि "यह सही है कि इस उपन्यास में प्रसाद जी ने समाज को निरावरण किया है और व्यक्ति के सही विकास के लिए इस तथ्य की वकालत भी की है कि उसे अपनी मूल वृत्तियों के आधार पर विकास की सुविधा मिलनी चाहिए, किन्तु इन बातों के होते हुए भी "कंकाल" में प्रसाद के स्वच्छंदतावादी आदर्शवादी संस्कार भी उभरे हैं, जिनसे "प्रकृतिवाद" का नाता नहीं है । "कंकाल" में प्रसाद के पात्र प्रायश्चित भी करते है, अपने पापों के लिए आंसू भी बहाते है । "कंकाल" उपन्यास को अधिक से अधिक "प्रकृतिवादी" जीवन दृष्टि से अंशतः प्रभावित माना जा सकता है जो कि प्रधानतः वह स्वच्छंदतावादी भावाकुलता का प्रदर्शन ही अधिक है ।"[2] वस्तुतः "कंकाल" में धर्म के आड़ में अनैतिक कार्य जैसे व्यभिचार आदि धार्मिक केन्द्रों में किस तरह होते रहते है दिखाना ही

- -

1. डा० त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ० 227
2. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ० 182

प्रसाद जी का प्रधान उद्देश्य रहा है । इसी कारण जहाँ प्रेमचन्द के उपन्यासों में जहाँ भारतीय सामाजिक व्यवस्था का चित्रण हुआ है वहीं प्रसाद के इस उपन्यास में धार्मिक क्षेत्र मेंहोने वाले अनैतिक कार्यों का यथार्थ चित्रण हुआ है ।

"तितली" जयशंकर प्रसाद जी का और एक उपन्यास है । इसमें भारतीय कृषक जीवन के परिप्रेक्ष्य में गाँवों की स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। "यह उपन्यास सामन्तवाद के पतन, ग्राम्य जीवन की आर्थिक कठिनाइयों, कृषकों और श्रमिकों पर होने वाले अत्याचारों सरकारी कर्मचारियों, जमींदारों आदि द्वारा ग्रहण किए गए हथकंडों और अन्तर्जातीय विवाह जैसी समस्याओं को प्रधानता देता है ।"[1] इसी कारण कंकाल की अपेक्षा इस उपन्यास में यथार्थ का चित्रण अधिक सफलता के साथ हुआ है ।

प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों में पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र जी का नाम भी उल्लेखनीय है । "उग्र" जी सामाजिक जीवन को यथार्थ के धरातल पर चित्रण किया है । कहा जाता है कि इस युग में यथार्थवाद कभी कभी आदर्श का पंजा छुड़ाया ले रहा था तो उग्र जी एक कदम आगे चल रहे थे । वे यथार्थवाद का भाग अति यथार्थवाद और प्रकृतवाद की सीमा तक पहुँच गए थे । इसी कारण साहित्य के क्षेत्र में इनके उपन्यासों पर रोष छाता रहता है । इनके उपन्यासों में अनैतिकता, अश्लीलता, जीवन के कुत्सित अंगों का चित्रण का भरमार रहता है । 'दिल्ली का दलाल,' 'चन्द हसीनों के खतूत,' 'बुधुआ की बेटी,' 'शराबी' इनके मुख्य उपन्यास है ।

"दिल्ली का दलाल" तत्कालीन हिन्दू समाज की कुरीतियों पर प्रहार करता है - उसकी नैतिकता के छद्म का अनावरण करता है । इस उपन्यास

- -

1. डा० मोहनलाल रत्नाकर : प्रेमचन्द युग का हिंदी उपन्यास -पृ० 61

के कारण उग्र जी को सम्मान और अपमान दोनों भी मिला । "नैतिकतावादियों ने इसे अश्लील, कुरुचिपूर्ण और उपेक्षित कृति घोषित किया । यथार्थवादियों ने इसके प्रतिपाद्य विषय तथा शिल्प की मुक्त कंठ से प्रशंसा की । वस्तुत: यह उपन्यास स्वस्थ यथार्थवाद की सीमाओं का कहीं-कहीं उल्लंघन करने के कारण ही उपेक्षित समझा गया है । इसका मूल उद्देश्य व्यभिचार वृत्तियों के प्रति विद्रोह एवं घृणा उत्पन्न करना ही है । किंतु उपन्यास में कुत्सित अंगों का सीधा सादा विस्तृत विवेचन सामाजिक मर्यादाओं और नैतिक बंधनों को तोड़ देता है । उससे पाठक कुप्रभाव भी ग्रहण करते हैं । उपन्यासकार अपने सुधारवादी दृष्टिकोण से विचलित सा हो गया है ।"[1]

इसी प्रकार "चन्द हसीनों के खुतूत" में हिन्दू और मुसलमान धर्म के युवक और युवती के प्रेम की कथा है । इस कथा के आधार पर दोनों सम्प्रदायों के बीच के टकराहटों और धार्मिक रूढ़ियों का चित्रण यथार्थ के साथ किया है और मानवीय प्रेम को सत्य के रूप में स्थापित किया है । "बुधुआ बेटी" नामक उपन्यास में समकालीन सामाजिक परिवेश में नारी समस्या और अछूतोद्धार की समस्या का चित्रण हुआ है । अछूत समस्या जागरण की ओर नारी के मूल में स्थित सामाजिक धार्मिक और आर्थिक पहलुओं पर विचार किया गया है । "शराबी" उपन्यास में शराब पीने के कारण उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों का चित्रण यथार्थ के धरातल पर हुआ है । इस प्रकार पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र जी यथार्थवादी विचारधारा से प्रतिबद्ध होने के कारण ही वे प्रकृतवादी विचारधारा के क्षेत्र में भी पदार्पण किये हैं ।

---

1. मोहनलाल : प्रेमचन्द-युग का हिंदी उपन्यास - पृ. 65 - 66

आचार्य चतुरसेन शास्त्री भी इसी युग के महान उपन्यासकार है। इनके उपन्यासों का विभाजन दो भागों में किया जा सकता है - सामाजिक उपन्यास और ऐतिहासिक उपन्यास। सामाजिक उपन्यास प्रेमचन्द युग में लिखे गये है और ऐतिहासिक उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर युग में लिखे गये है। प्रेमचन्द युगीन प्रमुख उपन्यास है - 'हृदय की परख,' 'हृदय की प्यास,' 'अमर अभिलाषा' या 'बहते आँसु' और 'आत्मदाह'।

"हृदय की परख" चतुरसेन शास्त्री की प्रथमरचना है। इसमें जारज संतानों की समस्या का उल्लेख किया गया है। इस समस्या को प्रथम बार हिंदी साहित्य में उठाया गया है। "हृदय की प्यास" उपन्यास में भारतीय आदर्शों के अनुसार दाम्पत्य जीवन का चित्रण किया गया है। "हृदय की प्यास" की कथावस्तु यथार्थ जीवन से संबंधित होने पर भी आदर्शवादी परिणति लिए हुए है। उपन्यासकार ने मानव हृदय के भीतर चलने वाले सद्वृत्तियों और असद्वृत्तियों के संघर्ष को दिखाकर सद्वृत्तियों की विजय दिखाई है। उपन्यास में कहीं कहीं प्रणय क्रीड़ाओं का नग्न वर्णन भी मिलता है जिसका लक्ष्य पाठकों को आकृष्ट करना जान पड़ता है।"[1]

"अमर अभिलाषा या बहते आँसु" उपन्यास में ज्वलंत विधवा समस्या को उठाया गया है। इस उपन्यास में विधवा स्त्री पर होने वाले अत्याचारों का यथार्थ चित्रण किया गया है और विधवा विवाह का समर्थन किया गया है। "आत्मदाह" उपन्यास में भी व्यक्ति के जीवन में आने वाले विपत्तियों के बारे में चित्रण किया गया है। इस प्रकार कह सकते है कि चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास सामाजिक यथार्थ को लेकर आने पर भी उसमें

---

1. डा० गोपाल राय : हिंदी उपन्यास कोश (खण्ड -2) पृ० 23

सुधारवादी दृष्टिकोण रहने के कारण यथार्थ का सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में विवेचन न हो पाया ।

इस काल के अन्यतम उपन्यासकार ऋषभचरण जैन अपने समकालीन सामाजिक विसंगतियों और अभिशापों के आधार पर रचनायें की है । इनका दृष्टिकोण भी बेचन शर्मा उग्र के जैसा ही घोर यथार्थवादी दृष्टि - कोण रहा । डा0 गोपाल राय के अनुसार ये प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों में है, जिन्होंने अपने उपन्यासों में उग्र की तरह समाज के नग्न यथार्थ का वर्णन करने का साहस दिखाया था। समाज में फैले व्यभिचार और कुरीतियों का जिस साहस के साथ इन्होंने उद्घाटन किया, वह अभूतपूर्व था । यही इनकी प्रसिद्धि का कारण भी था और उपन्यासकार के रूप में इनकी मृत्यु का भी । समाज के अनुद्घाटित व्यभिचार कृत्यों को प्रकाश में लाने के जोश में, ये भूल गए कि सामयिकता के चित्रण से कोई उपन्यास-कार तत्कालीन पाठकों के बीच चाहे जितना लोकप्रिय हो जाए, उसका व्यक्तित्व स्थायी नहीं हो सकता ।"[1] ऋषभचरण जैन अनेक उपन्यास लिखे है जिनमें दिल्ली का व्यभिचार, भाई, रहस्यमयी, भाग्य, मन्दिर दीप, तपोभूमि और सत्याग्रह है । सत्याग्रह राजनैतिक यथार्थ पर आधारित उपन्यास है और बाकी के सामाजिक है ।

"दिल्ली का व्यभिचार" उपन्यास का मुख्य उद्देश्य दिल्ली में फैले व्यभिचार का यथार्थ के धरातल पर चित्रण करना है। इस उपन्यास के संबंध में डा0 गोपाल राय लिखते हैं कि "लेखक की एक "होटा कमेटी" है, जिसके 12 सदस्य हैं । इस कमेटी का सभा पति स्वयं लेखक है । "कमेटी" के सभी सदस्य दिल्ल के व्यभिचार से सम्बद्ध एक एक कहानी सुनाते हैं । इन्हीं

- -

1. डा0 गोपालराय : हिंदी उपन्यास कोश - खण्ड-2 पृ. 47।

कहानियों का संग्रह के रूप में यह उपन्यास है ।[1] 'भाई' उपन्यास ग्रामीण जीवन के परिप्रेक्ष्य में लिखागया है जिसमें आपस का द्वेष-द्वेष, सामाजिक विसंगतियाँ और हिन्दू - मुस्लिम संघर्ष का चित्रण अधिक यथार्थता के साथ किया गया है । "रहस्यमयी" उपन्यास में दिल्ली के अभिजात वर्गीय समाज में चलने वाली व्यभिचार का पर्दाफाश किया है । "भाग्य" उपन्यास भाग्यवाद को प्रोत्साहित करता है । "मन्दिर दीप" उपन्यास में लंपट व्यभिचारी युवक के माध्यम से सामाजिक अनैतिकता का वर्णन किया गया है । तपोभूमि उपन्यास में चार कहानियाँ है जो आत्मकथात्मक शैली लिखीगयी है और परस्पर घनिष्ट संबंध रखती है ।इनके माध्यम से भारतीय समाज के ज्वलंत समस्याएं - "हिंदू विधवा की दयनीय स्थिति पुरुष की व्यभिचारी - वृत्ति, पुरुष द्वारा नारी का तिरस्कार, पुरुष की अहंमन्यता एवं नर-नारी का कलह आदि पर विचार हुआ है । "सत्याग्रह" उपन्यास में अंग्रेज और पूंजीवाद के विरुद्ध किये गए सत्याग्रह का चित्रण है ।

कुल मिलाकर कह सकते है कि ऋषभचरण जैन के उपन्यासों में यथार्थ का जो चित्रण हुआ है उसमें अश्लीलता का झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देता है ।किन्तु सामाजिक समस्याओं का चित्रण ज्यों का त्यों निडरता के साथ चित्रित करने का साहसिक कार्य किया है ।

प्रेमचन्द युग और प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रसिद्ध उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा लगभग 20 उपन्यासों का सृजन किया है । इसमें कुछ सामाजिक उपन्यास हैं तो कुछ ऐतिहासिक । प्रेमचन्द युगीन सामाजिक उपन्यासों में 'लगन; 'संगम; 'प्रत्यागत; 'कुण्डली चक्र,' और 'प्रेम की भेंट' मुख्य है । "लगन"

- -

1. डा० गोपाल राय : हिंदी उपन्यास कोश - - खण्ड - 2 - पृ. 49

में दहेज प्रथा की समस्या का चित्रण हुआ है । "संगम" में ठाकुर जीवन की मूल समस्या का चित्रण है और उसके माध्यम से ग्राम जीवन में उभरती हुई विषमता का उद्घाटन किया गया है । "प्रत्यागत" में सामाजिक धार्मिक और साम्प्रदायिक विषमताओं, कुरूपताओं तथा टकराहटों का चित्रण है । "कुण्डली चक्र" में ग्राम समाज में व्याप्त कुरीतियों, अन्धमान्य मान्यताओं, भूतप्रेत में विश्वासों आदि का चित्रण है।....."प्रेम की भेंट" ग्राम जीवन की कुछ समस्याओं के बीच एक असफल प्रेमकथा का विधान करने वाला उपन्यास है ।"[1]

इस काल के अन्य गण्यमान्य उपन्यासकारों में राधिकारमण प्रसाद गुप्त भी है । इनका "राम रहीम" बृहत उपन्यास है इसके माध्यम से भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कारों के बीच में टकराहटों को दिखाया गया है । इनके अन्य महत्वपूर्ण उपन्यास है - 'तरंग' ।

प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने भी इसी युग में उपन्यास लिखना आरंभ किया । यद्यपि ये इस युग में मात्र दो - 'विदा" और और "विजय" उपन्यासों की रचना की । बाद प्रेमचन्दोत्तर काल में अनेक उपन्यासों का सृजन किया । "विदा" उपन्यास में भारतीय सभ्यता तथा संस्कारों का समर्थन और पाश्चात्य सभ्यता और संस्कार का विरोध आदर्श स्त्रियों के माध्यम से किया गया है । "विजया" उपन्यास विधवा समस्या पर आधारित है । चन्डी प्रसाद हृदयेश का उपन्यास "मनोरमा' में भी आदर्शवादी है और कथा के केन्द्र में दो विरोधी - प्रवृत्तियों की स्थिति है, जो त्यागवादी और भोगवादी दृष्टियों का विरोध प्रकट करती है । मनोरमा प्रलोभनों से आकृष्ट होकर पथभ्रष्ट हो जाने वाले और विधवा शान्ता अनेक प्रलोभनों के फन्दे काटकर अपने धर्म पथ पर चलने वाली नारी है ।"[2]

- -

1. डा० रामदरश मिश्र - हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा- पृ० 64

2. -वही- -वही- पृ० 65

"गोद" नामक उपन्यास में सियारामशरण गुप्त अपहरण की गयी स्त्री की समस्या को उठाया है । अपहरण की गई स्त्री फिर घर लौट आने पर अमानवीय रूढ़ियों के कारण जो अपमान को सहन करना पड़ता है इस उपन्यास में उद्घाटित किया गया है । इसी उपन्यासकार का और एक उपन्यास अंतिम आकांक्षा है जिसमें निम्नवर्गीय व्यक्ति के प्रति सामाजिक एवं धार्मिक विसंगतियों का चित्रण यथार्थता के साथ हुआ है ।

वस्तुत: इस काल के उपन्यासकारों में कुछ लोगों छोड़कर अधिकतर लोग यथार्थ के साथ कथानक का चित्रण करते हुए भी उपन्यास का अन्त सुधारवादी या आदर्शवादी दृष्टिकोण से किये है । इस कारण शायद पूर्व प्रेमचन्द युगीन संस्कार हो सकते हैं । इस काल में सामाजिक समस्याओं और राजनैतिक मुद्दों को केन्द्र में रखकर लिखने वाले अन्य प्रमुख उपन्यासकार हैं- जगदीश झा विमल, पं. टीकाराम सदाशिव तिवारी , पुष्प कुमारी अनूप महल, गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश, एम एल सोजतिया प्रभात किरण मन्मथ द्विवेदी, मदारी लाल गुप्त आदि । इनके अतिरिक्त और कुछ ऐसे उपन्यास-कार हैं जिन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं आधार पर उपन्यास लिखे । इनके उपन्यासों में ऐतिहासिक यथार्थवाद देखने को मिलता है । यही ऐतिहासिक यथार्थवाद इन उपन्यासकारों के परवर्ति उपन्यासों अधिक सक्षमता के साथ आया है । अर्थात इन उपन्यासकारों के प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासों में ऐतिहासिक यथार्थवाद अधिक मुखरित होकर आया है । अत: इस काल में लिखे गए एकाध प्रमुख उपन्यास हो तो प्रेमचन्दोत्तर युग के भाग में उसका विवेचन करेंगे । इस युग के ऐतिहासिक यथार्थवाद के आधार पर लिखने वाले उपन्यासकारों में वृन्दावनलाल वर्मा 'गढ़ कुण्डार; 'विराट की पद्मिनी; जयशंकर प्रसाद - 'इरावती', चतुरसेन शास्त्री - 'अमर का ब्याह' अथवा 'पूर्णाहुति; निराला - 'प्रभावती'; भगवतीचरण वर्मा - 'पतन,' गोविन्द वल्लभ पंत - 'सूर्यास्त' आदि है ।

इसी प्रकार मनोवैज्ञानिक धरातल पर यथार्थ का विवेचन करने वाले साहित्यकार भी इस युग में थे किन्तु इनका विकास प्रेमचन्दोत्तर युग में ही हुआ । यद्यपि इस युग में कुछ उपन्यास मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के आधार पर भी लिखे गए पर उनका समुचितविकास प्रेमचन्दोत्तर युग में ही हुआ । अतः रचनाकार को समय - सीमा में बाँधकर उनके द्वारा लिखे गए तत्कालीन एक दो उपन्यासों पर कोई निर्णय नहीं किया जा सकता । इसकारण इन उपन्यासकारों पर भी विवेचन प्रेमचन्दोत्तर काल में ही करना ठीक रहेगा । इस युग में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद पर लिखे उपन्यासकार और उनके उपन्यास इस प्रकार हैं - इलाचन्द जोशी - 'घृणामयी' (लज्जा) जैनेन्द्र कुमार - 'परख,' 'स्पर्धा,' 'सुनीता,' भगवती प्रसाद वाजपेयी - 'प्रेमपथ' 'अनाथ पत्नी', 'त्यागमयी,' 'पिपासा,' निराला - 'अप्सरा,' 'अलका,' 'निरुपमा', भागवतीचरण वर्मा - 'चित्रलेखा,' 'तीन वर्ष,' उषा देवी मित्रा, 'वचन का मोल' ।

प्रेमचन्द युग के उपन्यासों का समग्रतः अनुशीलन करने पर स्पष्ट होता है कि इस युग के एक दो उपन्यासकारों को छोड़कर बाकी के सभी उपन्यासकारों में यथार्थ का ग्रहण और यथार्थ का बोध कराने के सही दृष्टिकोण का अभाव लगता है । क्योंकि यथार्थ का चित्रण किस प्रकार करना चाहिए वे जानते ही नहीं है । इसी कारण यथार्थ के नाम पर अश्लीलता का वर्णन और अनैतिक कार्यकलापों का वर्णन ज्यादा कर बैठे हैं जो पाठक को मोहित करके उसकी दिशा भ्रमित कर देते है ।किन्तु इसी युग के श्रेष्ठ उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ऐसी गलती कभी नहीं की है । प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी व्यभिचार जैसे अनैतिक व्यवहारों का उल्लेख हुआ है किन्तु उनका वर्णन पाठक को आकर्षित नहीं करता बल्कि सोचने के लिए विवश कर देता है । इसका

कारण यही है कि "जिस सामाजिक यथार्थ का चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है, वहमात्र उनका देखा हुआ ही नहीं उनका भोगा हुआ भी है । उनकीकृतियों में चित्रित यथार्थ मात्र सतह पर उतराने वाला यथार्थनहीं है, वरन गहराई में जाकर जीवन की सही छवि को उजागर करने वाला है ।"[1] ऐसी यथार्थ की पकड़ बहुत कम उपन्यासकारों में देखने को मिला है । इस युग की दूसरी विशेषता यह है कि अधिकतर उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं - दहेज, विधवा समस्या, व्यभिचार अछूत समस्या - का चित्रण तो यथार्थ के धरातल पर हुआ है किन्तु ज्यादातर उपन्यासकारों ने इन समस्याओं का आदर्शवादी या सुधारवादी तरीके से समाधान देने प्रयास किया है । जिसके कारण उपन्यास में यथार्थ का चित्रण फीका पड़ जाता है । प्रेमचन्द के आरंभिक उपन्यास भी इस तत्व से वंचित नहीं है । इसका कारण युग और परिस्थितियाँ ही हो सकती है । तीसरी विशेषता यह है कि इस युग के उत्तरार्द्ध में पूर्णतः यथार्थवादी अवधारणा के आधार पर ही उपन्यास लिखे जाने लगे । जिसके फलस्वरूप शनैः शनैः यथार्थवाद के अंग जैसे ऐतिहासिक यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, प्रकृतवाद आदि का भी उपन्यास के क्षेत्र में पदार्पण करने लगे ।

4. प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध: (1937 - 1980)

हिंदी उपन्यास साहित्य को प्रेमचन्द ने जो सुदृढ़ बुनियाद तैयार की थी उसी के आधार पर प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास साहित्य का स्वस्थ विकास होने लगा । प्रेमचन्द के युग में यथार्थ का एक स्थूल चित्र उपन्यासों

- -

1. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ. 179

मे देखने को मिलता है । हाँ यह बात भी सही है कि प्रेमचन्द अपने युग प्रवृत्तियों और चिंतन से एक कदम आगे थे । इसी कारण उनके उपन्यासों मे यथार्थवाद का क्रमिक विकास ही नहीं मिलता बल्कि यथार्थवाद के विशेष आयाम भी दृष्टिगत होते है । जैसे प्रेमचन्द के उपन्यासों मे हमे सामाजिक समस्या के समाधान के रूप मे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और पात्रों के अन्त:गन का चित्रण करते समय मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का पुट तो मिलता ही है, इसके अतिरिक्त उनके परवर्ती उपन्यासों मे समाजवादी यथार्थवाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद का झलक मिलता है । वस्तुत: प्रेमचन्द आलोचनात्मक यथार्थवादी लेखक है । कहने का अभिप्राय यह कि प्रेमचन्द के युग मे ही यथार्थवाद का उत्थान शुरू हुआ और प्रेमचन्दोत्तर युग मे इसका विकास अनेक आयामों मे विभाजित होकर विकसित होने लगा ।

प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासकारों ने बदलती हुई परिप्रेक्ष्य को अपनी ज्ञान, दृष्टि और अनुभव के आधार पर परखा । जिसके कारण प्रत्येक उपन्यासकार का अपना अपना दृष्टिकोण का निर्धारण समाज के प्रति होने लगा । इसी कारण यथार्थवाद के कई आयाम उत्पन्न हुए । जिनमे प्रमुख है :-

1• समाजवादी यथार्थवाद
2• आलोचनात्मक यथार्थवाद
3• प्रकृतवाद
4• अतियथार्थवाद
5• आदर्शोन्मुख यथार्थवाद
6• मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद
7• ऐतिहासिक यथार्थवाद

जैसा कि सर्वविदित है कि प्रेमचन्दोत्तर युग का मतलब है प्रेमचन्द के देहान्त के बादसेवर्तमान तक का युग । किन्तु कुछ विद्वान अध्ययन की सुविधा के लिए इस युग को सन् 1947 ई० तक सीमित करते है और उसके आगे का युगको स्वातंत्र्योत्तर युग कहते हैं । इस प्रकार विभाजन ठीक नहीं लगता क्योंकि प्रेमचन्द के देहांत के बाद अर्थात 1937 से सन् 1947 ई० तक्काल बहुत कम है । इस दस वर्ष के काल मे कोई भी साहित्यिक प्रवृत्ति मे परिवर्तन होना संभव नहीं है । यदि कोई नई प्रवृत्ति का शुरूआत भी हुआ तो दस वर्षों मे ही समाप्त नहीं होता उसकी गति चलती ही रहती है । रामदरश मिश्र कहते है --"मनोवैज्ञानिक और समाजवादी - सामाजिक उपन्यासों की जो परम्परा स्वाधीनता पूर्व शुरू हुई थी वह स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी चलती रही । जैनेन्द्र अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी जैसे मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों, यशपाल, अश्क भगवती चरण वर्मा जैसे सामाजिक चेतना के उपन्यासकारों के उपन्यास स्वाधीनता पूर्व आ चुके थे, उन्हीं की परम्परा मे उनके स्वाधीनता परवर्ती उपन्यास आये । इनके परवर्ती उपन्यासों मे कोई दृष्टिमूलक या संरचना मूलक अन्तर नहीं उभरा, अन्तर केवल स्वाधीनता पूर्व और स्वाधीनता परवर्ती जीवन यथार्थों का है जो इनमे चित्रित हुए हैं ।"[1] अत: अध्ययन की सुविधा के लिए प्रेमचन्दोत्तर युग को सन् 1960 ई० तक एक भाग के रूप मे सन् 1960 से वर्तमान काल तक दूसरे भाग मे विभाजित करना ठीक रहेगा ।

सन् 1960 ई० साहित्य मे एक ऐसा बिन्दु है जो यहीं से साहित्यिक प्रवृत्तियों मे भिन्नता आ जाती है । स्वतंत्रता पूर्व देश के सामाजिक

---

1. डॉ० रामदरश मिश्र - हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा

राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियां जैसे थी स्वतंत्रता के बाद भी अर्थात सन् 1960 तक भी वैसे ही थे । भारतीय जनता में स्वाधीनता के प्रति मोह था । वे समझ रहे थे कि आजादी मिल गई अब सारे समस्याएं हल हो जायेंगे । किन्तु ऐसा नहीं हुआ । अपने भ्रष्टाचारी नेताओं के कारण जनता का मोहभंग हो गया । इसी मोहभंग के परिप्रेक्ष्य में सन् 1960 से हिंदी उपन्यास क्षेत्र में व्यक्तिवाद और समाजवाद के आधार पर ऐसे उपन्यास आये जिसमें सामाजिक विभीषिका, संत्रास, कुण्ठा, घृणा आदि का चित्रण विस्तृत रूप में होने लगा । इस काल के उपन्यासों में से आदर्शवाद पलायन कर चुका था । अर्थाभाव, आर्थिक वैमनस्य का चित्रण विशेषत: मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के पात्रों के माध्यम से होने लगा । नारी के बहुविध रूपों का खुला चित्रण उसके समस्याओं के साथ होने लगा ।

अत: प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का विभाजन सन् 1960 को केन्द्र बिन्दु मान कर करना ही समुचित होगा ।

1• प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास युग - 1937 - 1960

2• साठोत्तरी उपन्यास युग - 1960 - 1980

4•1• प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में यथार्थबोध (सन् 1937 से सन् 1960 ई तक)

सन् 1937 से सन् 1960 तक का समय भारतीय समाज में बहुत उथल पुथल का समय रहा । इस काल में घटित घटनाओं से भारतीय समाज बहुत प्रभावित हुआ । इस काल के प्रमुख घटनाएं हैं द्वितीय महायुद्ध बंगाल का अकाल, भारत छोड़ो 1942 का आन्दोलन, स्वतंत्रता प्राप्ति, देश गणतंत्र होने, प्रथम आम चुनाव और नेहरू जी का प्रधान मंत्री बनना ।

इन घटनाओं के कारण तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों में काफी परिवर्तन आ गया । द्वितीय विश्व युद्ध के कारण भारतीय जनता में युद्ध के प्रति घृणा होने लगा । जनता व्यक्ति का महत्व ह्रास होते देखकर निरुत्साहित होने लगी । सामाजिक परिवेश में रूढ़ियों तथा अन्य कुरीतियों के प्रति विद्रोह की भावना जागृत हो चुकी थी । बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर के कारण अछूत समस्या अहं मुद्दा बन गया था । राजनैतिक दृष्टि से स्वतंत्रता प्राप्ति की आकांक्षा लोगों में बढ़ती गई जिसका प्रभाव सन् 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन है और बंगाल के अकाल का भीभत्स भी तत्कालीन समाज पर अपना गहरा छाप छोड़ा । अनेक समस्याओं का हल स्वतंत्रता प्राप्ति से ही होता है । कह कर तत्कालीन नेता लोगों में विश्वास पैदा किये थे । उसी के अनुरूप जनता ने भी भारत गणतंत्र होने के पश्चात पं० नेहरू को भारी बहुमत से प्रधान मंत्री बनाया । इसी परिप्रेक्ष्य में हिंदी उपन्यास साहित्य का सृजन यथार्थता के साथ हुआ है ।

इस काल में उपन्यासों में यथार्थ का बोध विभिन्न रूपों में होने लगा जिसके परिणाम स्वरूप, उपन्यासों में समाजवादी यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, ऐतिहासिक यथार्थवाद, प्रकृतवाद, अतियथार्थवाद, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद का उदय हुआ ।

<u>4.1.1. समाजवादी यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार :</u>

समाजवादी यथार्थवाद मार्क्सवादी विचारधारा पर आधारित है । यह व्यक्ति की समाज से अलग सत्ता नहीं स्वीकारता । उसके अनुसार

समाज की अविभाज्य इकाई व्यक्ति है । इस प्रकार समाजवादी यथार्थवाद अखण्डता की व्यापक भावना पर आधारित है । समाजवादी यथार्थवाद पूँजीवाद, सामंतवादी तथा उपनिवेशवादी व्यवस्थाओं का विरोधी है ।

हिंदी उपन्यासों में इस विचारधारा का आगमन प्रेमचन्द युग से हुआ किन्तु इसका विकास प्रेमचन्दोत्तर युग में हुआ । प्रेमचन्द युग के समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासकारों में यशपाल, नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त ।

समाजवादी यथार्थवाद के सशक्त उपन्यासकार के रूप में यशपाल को देखा जाता है । उनके प्रमुख उपन्यास जैसे दादा कामरेड (1941) देशद्रोही (1943) पार्टी कामरेड (1946) मनुष्य के रूप तथा झूठा सच (प्रथम 1959, द्वितीय 1960) आदि राजनैतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि पर आधारित सफल उपन्यास है । इन उपन्यासों के माध्यम से भारतीय सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का समाजवादी यथार्थवाद के आधार पर विचार किया है । दादाकामरेड, देशद्रोही उपन्यासों के माध्यम से यशपाल भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के क्रान्तिकारी मोर्चे का वर्णन, वर्गीय हित, वर्ग संघर्ष, वर्ग सहयोग और साम्राज्यवादियों का यथार्थ मूल्यांकन किया है । "मनुष्य के रूप (1949)" उपन्यास में लेखक ने "सामन्ती पूंजीवादी वर्गीय स्वार्थ तथा वर्ग चरित्र, साम्राज्यवादी उपनिवेशवादियों द्वारा आर्थिक शोषण, पुलिस की कायरता और अत्याचार, परम्परित नैतिक मान्यताओं तथा अंधविश्वास के जाल में ग्रसित नारी की विवशता, थोथी धार्मिक मान्यताएं और पाखण्ड, मध्यवर्गीय चरित्र, अवसरवादिता और उसके आर्थिक खोखलापन का साम्यवादी दृष्टि से यथार्थ मूल्यांकन किया है ।"[1]

- -

1. डॉ० गोपाल कृष्ण शर्मा - मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास - पृ० 61

1942 ई0 के आन्दोलन के समय से लेकर 1946 ई0 के आम चुनाव तक कम्युनिस्ट पार्टी किन कारणों से देश की जनता की गलतफहमियों की शिकार बनी रही, इन्हीं बातों का विवेचन "पार्टी कामरेड" में किया गया है ।

"झूठा - सच" यशपाल का बृहत उपन्यास है जिसके दो भाग है - एक - वतन और देश, दूसरा देश का भविष्य ।"इस उपन्यास में भोला पांधे गली के मध्यवर्गीय जीवन, नेताओं की स्वार्थपूर्ण राजनीति, जमींदाराना शोषण, वर्ग - विषमता, विवाह और तलाक की समस्याएं, राजनीति, जमींदाराना स्वार्थपरता के हाथों में खेलती हुई साम्प्रदायिकता, साम्प्रदायिक दंगों में होने वाले रक्तपात, आजादी के बाद के विस्थापित लोग, कांग्रेस का वर्ग चरित्र, अफसरशाही, जातिवाद, भाई-भतीजावाद, सरकारी मशीनरी का भ्रष्टाचार, समस्याओं का समाधान न करके उन पर दिए जाने वाले लम्बे चौड़े झूठे भाषणों आदि का सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन किया गया है ।"[1] यह उपन्यास सन् 1942 से लेकर 1957 ई० तक के भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन का यथा तथ्य चित्रांकन किया है । जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त कुंठा मनोवृत्ति का पर्दाफाश करते हुए समाज को पूरी निर्ममता से धक्का देकर जगाने का प्रयत्न किया है और नवीन जीवन मान्यता तथा समाजवादी समाज व्यवस्था अपनाने का आह्वान किया है ।

राहुल सांकृत्यायन जी भी प्रखर समाजवादी विचारधारा के उपन्यासकार है । अतः इनके उपन्यासों में भी स्पष्ट रूप से समाजवादी

- -

1· डॉ0 गोपाल कृष्ण शर्मा - मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास - पृ· 68

यथार्थवादी का झलक मिलता है । इनके उपन्यासों में सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक समस्याओं का उजागर होता है और इन समस्याओं का समाधान समाजवादी विचारधारा के अनुरूप देते हैं । इनके प्रमुख उपन्यास हैं - "जीने के लिए" [1939] और "भागो नहीं, दुनिया को बदलो" । इनके अतिरिक्त ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे हैं ।

"राहुल जी ने अपने उपन्यासों में मार्क्सवादी सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हुए शोषक और शोषित का संबंध, आर्थिक विषमता, वैयक्तिकता की भावना का निषेध, जन शक्ति में विश्वास, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की मान्यता, ईश्वर और धर्म में अविश्वास, बौद्ध एवं चार्वाक दर्शन की मार्क्सवादी व्याख्या को प्रस्तुत किया है ।"[1] इनके उपन्यासों - "जयधौधेय" और "मधुर स्वप्न" में शोषण रहित, वर्ग विहीन समाज की कल्पना की है ।

"राहुल सांकृत्यायन ने जीने के लिए [1939] उपन्यास में राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए चल रहे आन्दोलन, विभिन्न राजनीतिक दलों की भूमिका, आतंकवाद का विरोध, प्रथम विश्वयुद्ध, साम्राज्यवादी सामन्ती अत्याचार, किसान मजदूर, आन्दोलन, गांधीवाद और कांग्रेस का वर्गीय चरित्र, धार्मिक कुरीतियां, स्वतंत्र प्रेम, आदर्शवाद तथा अहिंसा आदि का सजीव तथा यथार्थ चित्रण मार्क्सवादी पृष्ठभूमि में किया है ।"[2]

- -

1. डॉ० प्रभाशंकर मिश्र: महापंडित राहुल सांकृत्यायन का सर्जनात्मक साहित्य - पृ० 366
2. डॉ० गोपाल कृष्ण शर्मा: मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास - पृ० 69

ग्रामीण प्रान्तों में जमींदारों के द्वारा किसान खेतिहर मजदूरों का शोषण किस प्रकार किया जाता है । बाबा नागार्जुन अपने आंचलिक पुट लिए उपन्यास 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ' और 'वरुण के बेटे' में उजागर किया है । इनके उपन्यासों में रतिनाथ की चाची से लेकर वरुण के बेटे तक वर्गीय संघर्ष का क्रमिक विकास हुआ है । अपने उपन्यासों में नागार्जुन सामंती व्यवस्था के प्रति विद्रोह जाति पांत का विरोध रीति-रिवाजों, धार्मिक अन्ध विश्वासों, नैतिक मानदण्डों और अभिजात्य वर्ग के अहम का खुला विरोध किया है । डॉ० इन्द्रनाथ मदान के अनुसार "नागार्जुन ही शायद अकेले उपन्यासकार हैं, जिन्होंने समाजवादी बोध को सहज एवं अनायास रूप में आत्मसात किया है और वह बोध इनके पोर-पोर तथा रग रग से निःसृत है ।"[1] नागार्जुन नवयुवकों में उभरती हुई सामाजिक चेतना को आंचलिक परिवेश की समग्रता के साथ यथार्थवादी दृष्टिकोण से "नई पौध" उपन्यास में किया है । इस उपन्यास में सामंती मूल्यों के विरोध में और स्त्री समस्याओं जैसे अनमेल विवाह आदि का विद्रोह पूर्ण समाधान प्रस्तुत किया है । "प्रेमचन्द और उनके युगीन साहित्यकारों ने जहाँ अनमेल विवाह समस्या के समाधान का आदर्शवादी सुधारवादी प्रयास किया है, वहाँ नागार्जुन ने समाजवादी यथार्थवादी दृष्टिकोण के आधार पर नई पीढ़ी का विद्रोह कराकर समाधान भी प्रस्तुत किया है जो वास्तव में एक आगे का कदम है ।"[2]

- -

1• डॉ० सुरेश सिन्हा - हिंदी उपन्यास उद्भव और विकास - पृ• 510

2• डॉ० गोपाल कृष्ण शर्मा : मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास - पृ• 118

नागार्जुन की भाँति भैरवप्रसाद गुप्त ने भी भारतीय ग्रामीण परिवेश के आधार पर उपन्यास सृजन किया । इन्होंने भारतीय किसानों की अभावों का साक्षात चित्रण किया है । गांवों होने वाले शोषण, अत्याचारों का यथार्थ चित्रण अपने उपन्यासों मे किया है । "गंगा मैया", "जंजीरे और नया आदमी", 'सती मैया का चौरा' आदि उपन्यासों मे गुप्त जी ग्रामीण प्रान्तों मे सामंतो, जमींदारों के द्वारा होने वाले शोषण का चित्रण किया है । इसी प्रकार अपना प्रथम उपन्यास "मशाल" मे सर्वहारा के वर्गीय संघर्ष को पहली बार विस्तृत साम्यवादी चेतना के परिप्रेक्ष्य मे चित्रित किया गया है । इसमे मजदूर वर्ग के संघर्ष एवं साम्यवादी चेतना को स्वर मिला है ।

प्रेमचन्दोत्तर युग के समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासकारों मे रांगेय राघव भी एक है । समाजवादी यथार्थवादी दृष्टिकोण के आधार पर इन्होंने कई उपन्यास लिखे है जिनमे से प्रमुख है -'घरौंदे' ﴾1946﴿ 'विषादमठ' ﴾1946﴿, 'मुर्दों का टीला' ﴾1948﴿, 'सीधा सादा रास्ता' ﴾1951﴿ 'कब तक पुकारूं' ﴾1957﴿ आदि । "घरौंदे" मे नारी समस्याओं को उजागर किया है । "जिसमे उसने ﴾लेखक﴿ समाजवादी चेतना के आधार पर पूंजीवादी व्यवस्था की विषमता तथा मध्यवर्गीय अहम को उजागर कर साम्यवादी व्यवस्था की ओर संकेत किया है ।"[1] विषाद म0" उपन्यास मे बंगाल का अकाल का यथार्थ परक चित्रण किया है । "सीधा सादा रास्ता" मे सन् 1930 के सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का विवेचन किया गया है ।

"रांगेय राघव ने अपने उपन्यास "कब तक पुकारूं" ﴾1957﴿ मे राजस्थानी और ब्रज प्रदेश की सीमा के ग्रामीण अंचल "बैर" के करनटों ﴾अछूतों﴿ के जीवन की समस्या को विस्तार के साथ उठाया है ।"[2] इस उपन्यास

- -

1. डॉ0 गोपाल कृष्ण शर्मा - मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास - पृ. 174

2. -वही- -वही- पृ. 192

मे करमटो के संबंध मे रहे अनेक समस्याओ को उठाया गया है । और उसका समाधान मार्क्सवादी दृष्टि के आधार देने का प्रयास किया गया है ।

4·1·2· मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार :

मनोवैज्ञानिक धारणाओ के आधार पर यथार्थवाद का चित्रण होता है । इस कारण उपन्यासो मे पात्रो के व्यापक वर्णन की जगह गहराई से वर्णन किया जाता है । मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद मानव को पशुधर्मी स्वीकार करता है और उसके मन का विश्लेषण अधिक करता है । इस कारण साहित्य मे कुत्सित, घृणित तथा विकृत मन वालो का अधिक चित्रण हुआ है । विशेषत: उपन्यासो मे । जिसके कारण परम्परागत सामाजिक, सांस्कृतिक आदर्शों को ठेस पहुंचा और पाशविक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला ।

हिंदी उपन्यास साहित्य मे जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय आदि इस प्रवृत्ति के उपन्यासकार है ।

जैनेन्द्र की रचनाओ मे 'परख' (1920), 'सुनीता' (1934), 'त्याग पत्र' (1937) 'कल्याणी' (1939) 'सुखदा' (1948), 'विवर्त' (1953) 'व्यतीत' (1953) आदि प्रमुख उपन्यास है । 'परख' उपन्यास मे मानसिक द्वंद्वो और मानसिक संघर्षों का सूक्ष्म अवलोकन किया है ।

"सुनीता" मे दार्शनिकता के आधार पर जीवन संघर्ष की क्रिया-प्रतिक्रियाओ का चित्रण सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक यथार्थ के तरीके से हुआ है । त्यागपत्र मे मृणाल के माध्यम से नारी जीवन की मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन हुआ है । इसी प्रकार अन्य उपन्यासों मे भी व्यक्तित्व पर प्रभाव डालने

वाले मानसिक संघर्षों का वर्णन जैनेंद्र के उपन्यासों में मिलता है। रामदरश मिश्र के अनुसार "जैनेन्द्र का व्यक्ति बहुत कुछ सामाजिक यथार्थ से निरपेक्ष एक विशिष्ट दायरे में घूमता हुआ दिखायी पड़ता है। कथा की दुनिया व्यक्ति मन के भीतर अधिक चलती है बाहर कम। इसीलिए घटना की स्थूलता, बहुलता और विविधता के स्थान पर उसकी सूक्ष्मता और स्वल्पता गृहीत होती है। सारा संघर्ष भीतरी होता है अर्थात वह समाज के भीतर नहीं, व्यक्ति के मन के भीतर चलता है।"[1]

इलाचन्द्र जोशी भी प्रख्यात मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकार है। कहा जाता है कि "जोशी जी के पात्र व्यक्ति होते है किन्तु वे समाज से जुड़ते है - सामाजिक हित के लिए नहीं, बल्कि उनकी विसंगतियां उजागर करने के लिए उनके अहं का अनावृत करने के लिए, उनके आचरण के वैषम्य को दिखाने के लिए।"[2] जोशी के प्रमुख उपन्यास है-'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया', 'निर्वासित', 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी', 'लज्जा', 'मुक्तिपथ' आदि। "पर्दे की रानी" उपन्यास मे वेश्या से भोग करने के लिए बाप बेटे - संघर्ष करते है। इसी वासना मे बेटा इन्द्रमोहन अपनी पत्नी शीला की हत्या कर देता है और वेश्या से अपमानित होकर आत्महत्या कर लेता है। "प्रेत और छाया" मे हीनता ग्रंथि की विकृत अवस्था का व्यापक वर्णन किया गया है। "निर्वासित" मे यौन कुण्ठा ग्रस्त व्यक्ति का चित्रण हुआ है। इसी समस्या को सामाजिक परिप्रेक्ष्य मे रखकर अनेक समस्याओं

- -

1. रामदरश मिश्र : हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा - पृ. 90

2. -वही- -वही- पृ. 104

को उजागर किया है । "जिप्सी" में मनोविश्लेषणवाद और समाजवाद का अद्भुत समन्वय है और साथ में स्त्री चेतना का भी उजागर हुआ है । "जहाज का पंछी" में मध्यवर्गीय जीवन संघर्ष का चित्रण है ।

हिंदी उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद को प्रोत्साहन देने वाले व्यक्ति अज्ञेय है । इनके उपन्यासों में शेखर : एक जीवनी [दो भाग 1941-44] नदी के द्वीप [1951], अपने अपने अजनबी [1961] प्रमुख है । "शेखर एक जीवनी" में वैयक्तिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ देन माना गया है । "शेखर : एक जीवनी" में "शेखर का व्यक्तित्व अनेक व्यक्तित्वों के सम्पर्क में आकर उनके घात-प्रतिघात से कि प्रकार प्रभाव ग्रहण करता चलता है, विकसित होता चलता है, और उसकी संवेदनायें किस प्रकार नये-नये आयामों को छूती चलती है, अपनी वेदना के भीतर से उसे कैसे जीवन का नया रस प्राप्त होता चलता है, इन सबका बड़ा ही सूक्ष्म और मार्मिक उद्घाटन हुआ है ।"[1] इस उपन्यास में व्यक्ति मन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं को अन्तर संघर्षों को उलझी हुई संवेदनाओं का बहुत मार्मिकता के साथ विश्लेषण किया गया है । "नदी के द्वीप" उपन्यास में यौन संबंधों का मनोविश्लेषणात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।

"अपने अपने अजनबी" में अस्तित्ववादी दर्शन के माध्यम से मनोविश्लेषण किया गया है । इस उपन्यास में दो अजनबी स्त्रियों का मानसिक संघर्ष का चित्रण हुआ है ।

4·1·3· ऐतिहासिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार :

ऐतिहासिक यथार्थवाद भी यथार्थ को परखने का एक आयाम है अतीत

1· रामदरश मिश्र - हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा - पृ· 115

की घटनाओं को यथार्थ दृष्टि से विवेचन करना ही ऐतिहासिक यथार्थवाद का उद्देश्य है । इस प्रवृत्ति के उपन्यासों में पात्रों से ज्यादा तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण अधिक होता है ।

हिंदी में ऐतिहासिक यथार्थवाद के उपन्यासों की एक लम्बी परंपरा रही है । प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासों में भी इस प्रवृत्ति के उपन्यास अनेक आये है । ऐतिहासिक यथार्थवाद के आधार पर लिखने वाले उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, वृन्दावन लाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, भगवतीचरण वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रांगेय राघव आदि प्रमुख है ।

जयशंकर प्रसाद प्रेमचन्द युग के उपन्यासकार होने पर भी उनका अंतिम उपन्यास जो ऐतिहासिक यथार्थवाद पर आधारित है, "इरावती" (1937) प्रेमचन्दोत्तर युग में आता है । इस "उपन्यास में जीवन रस को सोखने वाले बौद्ध धर्म की कठोर, ठण्डी व्यवस्था, ऊष्मा को निगलने वाली उसकी खोखली अहिंसा नीति तथा विलासी कम और राजा के राज्य में उत्पन्न होने वाली अव्यवस्था, असुरक्षा के भाव, षड्यंत्र आदि का जीवन्त चित्रण हुआ है ।"[1]

इस युग के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा है । इन्होंने अनेक श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास लिखे है । जिनमें प्रमुख उपन्यास है -'गढ़ कुण्डार', 'विराट की पद्मिनी', 'कचनार', 'मृगनयनी', 'लक्ष्मी बाई'

- -

1. डॉ० रामदरश मिश्र : हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा -पृ. 184

'मृगनयनी', 'माधव जी सिंधिया,' 'भुवन विक्रम'। "गढ़ कुण्डार" में मुख्य कथा खंगारों का नाश एवं बुन्देलों का कुण्डार पर आधिपत्य स्थापना ही है।"[1] इसी प्रकार अन्य उपन्यासों में भी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में लिखे गये है। मृगनयनी उपन्यास में राजनीतिक और प्रेम का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया गया है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में भगवतीचरण वर्मा कृत "चित्रलेखा" का भी महत्व है। इस उपन्यास में पाप और पुण्य का द्वंद्व चलता है। इसकी कथा गुप्त काल का है। इसमें "सामन्ती भोग - विलास, तपस्वियों का आधिक्य, नर्तकियों का समाज में स्थान, उत्सवों में पुरुष और महिला वर्ग का अलगाव आदि बाते गुप्तकाल के अनुरूप ही है।"[2]

राहुल सांकृत्यायन ने सिंह'सेनापति,' 'मधुर स्वप्न,' 'जय यौधेय,' और 'विस्मृत यात्री' नामक चार उपन्यास लिखे है। "सिंह सेनापति" उपन्यास बौद्धकाल का है। डॉ० सुषमा धवन का मत है --"राहुल ने अपनी प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास कृति "सिंह सेनापति" में लिच्छवि गणतंत्र के सामाजिक जीवन की घटनाओं तथा पात्रों के आधार पर निजी इष्ट विचारों को प्रकाशित किया है।उपन्यास में लेखक का व्यक्तित्व जो बुद्ध और मार्क्स के सिद्धांतों से प्रभावित है, नायक के चरित्र में प्रतिमूर्त होता है।"[3] जय यौधेय उपन्यास यौधेय गणराज्य का परिचय देता है। इसमें तत्कालिन राजनैतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण है।

1· डॉ० रामदरश मिश्र : हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा - पृ· 188

2· -वही- -वही- पृ· 194

3· डॉ० सुषमा धवन - हिंदी उपन्यास - पृ· 366

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अनेक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे है जिनमे वैशाली की नगर वधू, वयं रक्षाम: और सोमनाथ प्रमुख है । वैशाली की की नगर वधू मे बौद्ध कालीन भारतीय गणतंत्र व्यवस्था का चित्रण किया गया है जो पतनोन्मुख थी । इसमें अम्बपाली की महिमा स्थापित की गई है और तत्कालीन सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण हुआ है । "सोमनाथ" उपन्यास मे महमूद गजनवी के द्वारा सोमनाथ मंदिर ध्वंस होने की घटना है । "वयं रक्षाम:" उपन्यास मे "प्राग्वेद" काल की कथाएं है ।

यशपाल कृत "दिव्या उपन्यास" भी ऐतिहासिक यथार्थवाद पर आधारित है । किन्तु लेखक स्पष्ट रूप से कहते है कि "दिव्या इतिहास नहीं, ऐतिहासिक कल्पना मात्र है । ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्त और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्र है ।"[1] दिव्या" मे बौद्ध कालीन कथा वस्तु है । उस समय समाज मे व्याप्त शोषण प्रवृत्ति दिव्या" पात्र के द्वारा उजागर किया गया है । दिव्या जो इस उपन्यास की नारी पात्र है, का शोषण दास प्रथा और सामंत प्रथा के सभी आयामों से होता है । "यशपाल ने "दिव्या" मे पतनोन्मुख बौद्धकालीन भारत के सामन्ती जीवन तथा समाज के वर्ग परक स्वरूप को समाजवादी दृष्टिकोण से अंकित करने का प्रयत्न किया है तथा यह दिखाने की चेष्टा की है कि हमारा अतीत जिसे हम प्राय: स्वर्ग समझ लेते है, वस्तुत: स्वर्ग नहीं है, उसकी वर्गमूलक समाज व्यवस्था में जन समुदाय का अधिकांश भाग जीवन की सुविधाओं से वंचित था और इतर जनों के जीवन का मूल्य अभिजात वर्ग के सुख का उपकरण मात्र था । अपने इस प्रयत्न मे यशपाल को सफलता मिली है और "दिव्या" की कथा के माध्यम से तत्कालीन जीवन और समाज का चित्र अपने

- -

1. यशपाल - दिव्या - पृ. 6. प्राक्कथन

अपने यथार्थ रूप में सजीव हो उठा है । ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि में भी लेखक को सफलता मिली है और तत्कालीन जीवन पद्धति वेश-भूषा, धर्म - दर्शन, समाज व्यवस्था आदि के यथार्थ चित्रण से वह जीवंत बन सका है ।"[1]

हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के चार ऐतिहासिक यथार्थवाद संबंधित उपन्यास है - बाणभट्ट की आत्मकथा, चारुचन्द्र लेख, पुनर्नवा और अनामदास का पोथा । संस्कृत के महाकवि एवं गद्यकार बाण भट्ट के चरित्र के आधार पर बाणभट्ट की आत्मकथा उपन्यास लिखा गया है । "चारुचन्द्र लेख" में मध्यकालीन भारत का समग्र चित्र प्रस्तुत किया गया है जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितियों का वर्णन हुआ । पुनर्नवा समुद्र गुप्त के काल का कथानक है जिसमें नारी के प्रति आदर सम्मान दिखाया गया है । अनामदास का पोथा में रैक्व आख्यान है ।

रांगेय राघव का "मुर्दों का टीला" उपन्यास भी ऐतिहासिक यथार्थवादी रचना है । "इसमें मोहन जोदड़ो की संस्कृति और सभ्यता को उपन्यास का आधार बनाया गया है । श्रेष्ठि ईरान आदि से दास-दासियाँ क्रय करते थे । दास - दासियों के साथ पशुओं का सा व्यवहार करते थे । दासियाँ उनकी सेवा भी करती थी और उनकी पाशव कामलिप्सा की तृप्ति भी और फिर भी उनका जीवन नदी की धारा में बहते हुए तिनके सा कम्पित और अनिश्चित रहता था । लेखक ने इन विलासी व्यापारियों की घृणित वासना और अत्याचार का नंगा रूप अनावृत किया है ।"[1] इस उपन्यास में शोषण के विरुद्ध जनता का विद्रोह दिखाया गया है ।

- -

1. डॉ० रामदरश मिश्र : हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा -पृ० 215

4.1.4. प्रकृतवाद और प्रमुख उपन्यासकार :

प्रकृतवाद डार्विन के विकासवाद पर आधारित है । एमिल "जोला" के अनुसार यह यथार्थवाद का सुधरा हुआ रूप है । "ऐतिहासिक दृष्टि से प्रकृतवाद यथार्थवाद के बाद का आन्दोलन है वह यथार्थवाद का सुधारक और इसी का विकसित रूप कहा जाता है । जोला के सन् 1880-81 के लेखों मे इसकी सर्वोत्तम व्याख्या उपलब्ध होती है ।"[1] प्रकृतवादी उपन्यासकार यथार्थ के अतिवादी चित्रण मे विश्वास रखते है । वे समाज को वैज्ञानिक दृष्टि से देखने का प्रयास करते है । किन्तु वे लोग समाज के कुत्सित, घृणित पक्षों का ही अधिक चित्रण करते है । "कहा जाता है कि प्रकृवादी उपन्यासों के जनक "जोला" ने यह व्यवस्था दे रखी है कि लेखकों का धर्म है, वे जीवन के गन्दे से गन्दे और कुरूप से कुरूप चित्र खींचे । मनुष्य की नैतिक दुर्बलताओं, रोगों और विकृतियों का वर्णन करते समय उन्हे कोई भी अंश छोड़ना नहीं चाहिए ।"[2] हिंदी उपन्यासों पर भी प्रकृवाद का प्रभाव पड़ा है । हिंदी के उपन्यासकार ऋषभचरण जैन, पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" तथा आचार्य "चतुरसेन शास्त्री" के उपन्यासों मे इस वाद का प्रभाव देखा जा सकता है ।

ऋषभचरण जैन के उपन्यासों मे हम समाज के पीड़ित दलित लोगों का नग्न चित्रण देख सकते है । इनके प्रमुख उपन्यास है -'चम्पाकली', 'हिज हाइनैस', 'हर - हाइनैस', 'मयखाना' और 'तीन इक्के'। चम्पाकली उपन्यास मे वेश्या

- -

1. डॉ० त्रिभुवन सिंह : हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ. 54

2. डॉ० रामचन्द्र तिवारी - हिंदी गद्य - साहित्य - पृ. 131

के जीवन की अन्तर्वेदना, तथा व्यथा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है । "दिल हाइनेस" उपन्यास "शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है, पर उन्होंने समाज की गंदगी का, यौन संबंधी समस्याओं का और इसी प्रकार अन्य सामाजिक समस्याओं का चित्रण जिस सफाई से किया है, वह उल्लेखनीय है ।"[1] हर हाइनेस" में भारतीय नरेशों का विलासिता का वर्णन व्यापक स्तर पर कियागया है । मयखाना और तीन इक्के उपन्यासों में शराब के दुर्गुणों का रहस्योद्घाटन और जुआ के दुष्परिणाम की चर्चा हुई है ।

पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" के उपन्यासों में भी हमें प्रकृतवाद की झलक दिखाई पड़ती है । उनके 'सरकार तुम्हारी, आँखों में' और 'जीजी जी' में हम प्रकृतवाद के लक्षणों को देख सकते है "सरकार तुम्हारी आँखों में" उपन्यास में धर्मपुर के महाराजा मदन सिंह की विलासिता, कामुकता और ऐयाशी का चित्रण प्रस्तुत किया गया है । "जीजी जी" एक सामाजिक उपन्यास है जिसमें अनमेल विवाह के दुष्परिणामों का चित्रण किया गया है । इस उपन्यास में व्यभिचारी पुरुष का नारी के प्रति दुर्व्यवहार करने का चित्रण यथार्थता के साथ किया गया है । आचार्य चतुरसेन शास्त्री के कुछ उपन्यासों में भी प्रकृतवादी लक्षणों को देख सकते है । मूलतः ऐतिहासिक रचनाकार होने पर भी एक दो सामाजिक उपन्यास लिखे है । इनके सभी उपन्यासों में आंशिक रूप में प्रकृतवादी विचार धारा दिखाई देता है । "लेखक अपने को मानवता का नहीं, मानव का पुजारी मानता है और वे घृणित, पापी, अपराधी, खूनी, डाकू - हत्यारे, व्यभिचारी तथा पागल मनुष्यों को अपना देवता मानते है । मनुष्य के प्रति यह दृष्टि भी

- -

1. डॉ० रामलोचिन्द प्रसाद सिंह - हिंदी उपन्यास: प्रेमचन्दोत्तर काल पृ. 47

है । उपेक्षित मनुष्य मनुष्य के भीतर सौन्दर्य देखने की यह प्रवृत्ति नवीन युग की देन है । शास्त्री जी ने आधुनिक जीवन मूल्यों से प्रेरित होकर एक ओर हमारे इतिहास की कुलीन और धर्मोज्ज्वल कहीं जाने वाली सभ्यता और मान्यता की कुरूपता और विभत्सता को उद्घाटित किया है, दूसरी ओर उपेक्षित, घृणित, पापी, मनुष्यों के भीतर सौन्दर्य देखा है । शास्त्री जी इसलिए अश्लीलता की परवाह न करते हुए या उसे अश्लीलता न मानते हुए एक वस्तु को प्रकृत रूप में खुलने देते है ।"[1]

4·1·5· अतियथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार :

अतियथार्थवाद का जन्म भी फ्रांस में ही हुआ । "अतियथार्थवाद का प्रयोग आपलेनियर के सिद्धांतों के आधार पर ऐसी सत्ता के अर्थ में किया गया, जो दृश्यमान वास्तविकता से परे हो । इसकी प्रवृत्ति अधिकांश रूप में मानसिक विकृतियों से सम्बद्ध है ।"[2] इसका कारण यह है कि प्रथम विश्व युद्ध की विभीषिका के कारण मनुष्य में निराशा, कुण्ठा, घृणा की भावनाएं उत्पन्न हुए । ये भावनाओं के कारण मनुष्य यथार्थ का जो चरम अभिव्यक्ति प्रकृतवाद में देखा था । उसका चरम अभिव्यक्ति अति यथार्थ के रूप में देखने लगा । वस्तुतः "अतियथार्थवाद प्रथम महायुद्ध - जनित विभीषिका का प्रतिफलन था । महायुद्ध - जनित, विशृंखलता से ऊबकर नवीन लेखकों के नग्न यथार्थ से दूर हटकर एक स्वप्नों की दुनिया बसाने का प्रयत्न किया था । ये भावनाशील मग्न मन व्यथित कठोर यथार्थवाद का आघात सहन न करके मन के रहस्यमय गह्वारों में प्रविष्ट होकर सृष्टि के

- -

1· डॉ० रामदरश शर्मा : हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा - पृ· 198

2· डॉ० सुरेश सिन्हा : उपन्यास - शिल्प और प्रवृत्तियां - पृ· 176

उपादानों को ढूंढने का प्रयत्न करने लगे थे ।"[1] अतियथार्थवादी उपन्यासकार सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों में विश्वास न रखकर समाज में व्याप्त असंगतियां, विद्रूपताएं, और कुरूपताओं का चित्रण व्यापक रूप से करता है ।

हिंदी साहित्य में अतियथार्थवादी उपन्यासकार नहीं है । आचार्य चतुरसेन शास्त्री और पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" जैसे उपन्यासकारों के उपन्यासों में अंशतः इस प्रवृत्ति को परिलक्षित किया जा सकता है ।

4·1·6· आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार :

आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यासों में जीवन का यथार्थ चित्रण किया जाता है और अन्त में एक आदर्श को प्रस्तुत किया जाता है अर्थात इस प्रवृत्ति के उपन्यासों में जीवन के और समाज के ब कटु से कटु परिस्थितियों का वर्णन तो किया जाता है किन्तु भविष्य के प्रति आस्था भी रखा जाता है । इसलिए उपन्यासों में दुष्ट पात्रों का भी हृदय परिवर्तन अन्त में करके एक आदर्श को स्थापित किया जाता है ।

हिंदी उपन्यास साहित्य में आदर्शोन्मुख यथार्थवादी प्रवृत्ति प्रेमचन्द पूर्व युग से ही है । प्रेमचन्द के काल में इसका विकास और चरमोत्कर्ष भी हुआ । स्वयं प्रेमचन्द ने भी अपने आरंभिक उपन्यासों में इस प्रवृत्ति को उभारा है । प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासकारों, जो प्रेमचन्द के परम्परा के है - में भी यह प्रवृत्ति दिखायी देती है । इस काल के प्रमुख आदर्शोन्मुख

- -

1· डॉ० त्रिभुवन सिंह : हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ· 59

यथार्थवाद उपन्यासकार है - भगवती चरण वर्मा, विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक", भगवती प्रसाद वाजपेयी, अमृतलाल नागर, उषा देवी मित्रा आदि ।

4·1·7· आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार :

आलोचनात्मक यथार्थवाद उपन्यास को न केवल समाज मे व्याप्त विकृतियों और विसंगतियों का चित्रण करने प्रेरित करता है बल्कि उसकी आलोचना भी करता है । इस वाद की विशेषता यह है कि यह किसी विशेष विचारधारा पर आधारित नहीं है जैसा कि अन्य यथार्थवादी धाराएं है । यह मात्र उपन्यासकार की ज्ञान, दृष्टि और अनुभव पर आधारित रहती है । इसीलिए उपन्यासकार स्वतंत्र रूप से समाज उसे जो विकृति, कुत्सित और विसंगि लगा उसका चित्रण यथार्थ के साथ करते हुए उस पर आलोचनात्मक व्यंग्य प्रहार भी करता है ।

हिंदी साहित्य मे आलोचनात्मक यथार्थवाद का आरंभ प्रेमचन्द के परवर्ती उपन्यासों से हुआ है । "गोदान" उपन्यास इस प्रवृत्ति का सशक्त उदाहरण है । प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों मे भी इस वाद का प्रचलन हुआ है । इस धारा के प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रमुख उपन्यासकारों मे उपेन्द्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव, भगवती चरण वर्मा आदि है ।

4·2· साठोत्तरी उपन्यास युग [सन् 1960 - 1980]

हिंदी उपन्यास साहित्य मे साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों का विशिष्ठ स्थान है । इस काल के उपन्यासों मे समाज का चित्रण अधिक नजदीकी से

हुआ है । अतः इस काल के उपन्यासों में यथार्थ तादात्म्य हो गया है । उपन्यास की संरचना में कल्पना का महत्वपूर्ण योग रहता है । इस काल के उपन्यासों में कल्पनात्मक भावनाएं भी यथार्थ के साथ ही रही है । अथार्थ इस काल के उपन्यासों की सृजनशीलता का मूल आधार यथार्थ ही रहा है ।

साठोत्तर युग के पूर्व हिंदी उपन्यासों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि प्रेमचन्द पूर्व काल में उपन्यास यथार्थ को आधार बनाकर लिखने पर भी उसे यथार्थवादी उपन्यासों की कोटि में नहीं रख सकते क्योंकि उसमें यथार्थ से ज्यादा आदर्श, सुधारवादी, नीतिपरक, उपदेशात्मक कथा वस्तुओं का गुंफन रहता था । किन्तु उपन्यास के इतिहास के दूसरे चरण में अर्थात प्रेमचन्द युग में उपन्यासों में यथार्थ को समुचित स्थान मिला । फिर भी इस युग के उपन्यासों से आदर्शवादी, सुधारवादी धारणाएं पूरी तरह से हट नहीं पायी । उपन्यास के इतिहास के तीसरे चरण - प्रेमचन्दोत्तर काल 1937 - 1960 में उपन्यास क्षेत्र से आदर्शवाद का लगभग सफाया हो गया और यथार्थवाद का पूरी तरह से उपन्यास पर वर्चस्व हो गया । इस प्रकार यथार्थवाद का वर्चस्व बनने के पीछे प्रगतिवाद और प्रयोगवाद जैसे तत्कालीन साहित्यिक विचार धाराओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । इसके अतिरिक्त अनेक पाश्चात्य विचार धाराओं का प्रभाव हिंदी साहित्य पर पड़ने के कारण उपन्यास क्षेत्र में यथार्थवाद का महत्व और अधिक होने लगा ।

साठोत्तर (1960 -1980) काल में यथार्थवाद अपनी पूरी शक्ति के साथ उपन्यास साहित्य को आप्लावित कर दिया । वह उपन्यास को सामाजिक संवेदनाओं का चित्र बना दिया ।

उपन्यास साहित्य मे जैसे जैसे यथार्थ का महत्व बढ़ने लगा वैसे वैसे यथार्थ को देखने की वैचारिक दृष्टि भी भिन्न भिन्न होती गई । इसी के परिणामस्वरूप इस काल मे सामाजिक परिस्थितियो, व्यक्ति संवेदनाओ का चित्रण होने लगा जो आज तक साहित्यिक उपन्यास क्षेत्र के लिए अछूता रहा । इस काल के उपन्यासो की यही विशेषता है कि इस से पूर्व उपन्यासो मे यथार्थ का स्वभाव फैलता जा रहा था अर्थात यथार्थ व्यापक होता जा रहा था । किन्तु इस काल मे यथार्थ का रूप अधिक गहराई की ओर जा रहा है । इसी कारण आज तक का उपन्यास पहले की अपेक्षा अधिक संश्लिष्ट होता जा रहा है और उसका यथार्थ स्थूल नही बल्कि सूक्ष्म होता जा रहा है । प्रख्यात भौतिकवादी दार्शनिक कार्ल मार्क्स का कहना है कि सामाजिक व्यवस्था की गति सरलता से क्लिष्टता की ओर बढ़ती जाती है । आज आदिम साम्यवाद से पूंजीवादी व्यवस्था की ओर समाज बढ रहा है । इस पूंजीवादी सभ्यता की विशिष्टता यह है कि पूर्व सामाजिक व्यवस्था को औद्योगिकरण पर निर्भर किया । जिसके कारण सामाजिक ढाँचा जो अब तक दो वर्गो - उच्च वर्ग और निम्न वर्ग - मे विभाजित था अब तीन वर्गो मे परिवर्तित हो गया । मध्य वर्ग का जन्म हुआ । मध्यवर्ग एक ऐसा वर्ग है जिसका जीवन बहुरूपिये होता है और इतने आयाम होते है कि अन्य किसी वर्ग मे नहीं होते । इसी कारण उपन्यासो मे यथार्थ का गहराई से अनुशीलन इसी वर्ग के माध्यम से हुआ है ।

साठोत्तरी उपन्यास पर तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियो का प्रभाव भी पडा है जिसके फलस्वरूप उपन्यास की कथावस्तु और भी संश्लिष्ट होता गया । सन् 1960 ई0 के

के बाद सभी दृष्टियों से जनता का मोहभंग होने लगा । जिसके कारण जनता में एक प्रकार से खोखला पन जन्म लिया । डाॅ० दंगल झाल्टे ठीक ही लिखते है कि -बीस वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध एक अजीब, असंतोष, अविश्वास, अस्वीकार, बौद्धिक तथा वैचारिक संघर्ष, मानसिक कशमकश और परंपरागत जीवन पद्धति के खोखलेपन के एहसास का जन्म दाता है ।"[1] इस प्रकार मनुष्य में अनेक मानसिक विकृतियों का जन्म होने लगा । स्वाधीनता के बाद देशीय राजनैतिक परिस्थितियों में स्वार्थ, भ्रष्टाचार और सत्तालोलुपता आदि बढ़ने के कारण देश में अनुशासनहीनता, नैतिक मुल्यों का पतन और देश के प्रति समाज के प्रति आस्था उठने लगा । जिसके कारण मध्यवर्गीय जनता और निम्नवर्गीय जनता संकटों में झुलसने लगी और उनका आक्रंदन सुनने वाला कोई नहीं रहा । ऐसे परिस्थितियों में युवा साहित्यकारों ने उपन्यास क्षेत्र में आगमन किया । जिन्होंने समाज का चप्पा चप्पा छाना था जिसके कारण उनके उपन्यासों में युवापीढ़ी का मोहभंग, आक्रोश और विद्रोह दिखाई देता है । इस प्रकार सन् साठ के बाद साहित्य में (उपन्यास में) एक प्रकार का सामाजिक विद्रोह का भाव जागृत हुआ । "यह जो विद्रोह साहित्य में आया उसमें उतावलेपन की कम परन्तु ठोस इरादे अधिक है । यह विद्रोह संपूर्ण बौद्धिक, मानसिक तथा भावनात्मक शक्ति के साथ उजागर किया गया है । अर्थात इसमें भी कोई संदेह नहीं कि कुछ युवा साहित्यकारों का विद्रोह महज परिपक्व विद्रोह न होकर असहायता के परिणाम स्वरूप उत्पन्न लिए आक्रोश मात्र ही होता है । लेकिन सामुहिक रूप से देखने पर इन युवा साहित्यकारों का विद्रोह एक सशक्त विचारधारा की भूमि पर खड़ा हुआ पाया जाता है ।"[2]

1• हिंदी विभाग - पूणे विद्यापीठ - साठोत्तर हिंदी साहित्य का परिप्रेक्ष्य - पृ• 54

2• -वही- पृ• 55

इस युग के उपन्यासकार तत्कालीन समाज का पूरा अनुशीलन करने के कारण वे यथार्थ के व्यक्तित्व बोध, भावबोध, युगबोध और नये संवेदन के धरातल पर देखने का प्रयास किया । इसके कारण इस काल के उपन्यासों मे यथास्थिति के स्थान पर संघर्ष और विद्रोह का आह्वान हुआ है ।

इस युग के उपन्यासकार यथार्थ का अनुभव पुस्तकों के माध्यम से नहीं बल्कि स्वयं अनुभव किया और स्वयं विसंगतियों तथा विद्रुपताओं को भोगा । "इसलिए ये उपन्यासकार अनुभूति के घिसे-पिटे रूप को अस्वीकार कर देते है और युगीन यथार्थ एवं ईमानदार अनुभूति के असली रूप को स्वीकारते है । आज का उपन्यास इतनी विभिन्न दिशाओं की ओर नये प्रयोगों के साथ बढ़ रहा है क्योंकि समय बदल चुका है तथा युग की मांग भी बदल गई है । इसलिए साठोत्तर हिंदी उपन्यास अपने पूर्ववर्ती परंपरागतमान्यताओं, मूल्यों तथा जीवन गत समस्याओं के साथ वहीं नहीं रूका प्रत्युत उससे बहुत आगे, बहुत आगे बढ़ गया है ।"[1]

इस काल के उपन्यासकारों की यह भी विशेषता है कि उन्होंने किसी विचारधारा, वाद या शैली को कभी साध्य नहीं माना बल्कि साधन मात्र माना । इसलिए "इन उपन्यासकारों पर न तो पूर्ण रूप से मार्क्सवादी तत्व लिपटे हुए है, न फ्रायड, एडलर, युंग आदि के सिद्धांतों की छूत- छू पर्त चढ़ी है और न तो ये अतियथार्थवाद, प्रकृतवाद, अस्तित्व-वाद, समाजवाद आदि के आवरण से पूर्णतः आवेष्टित है । साठोत्तर उपन्यासकार भी अर्थ तथा काम के आधार पर राजनीतिक, सामाजिक

- -

1. साठोत्तर हिंदी साहित्य का परिप्रेक्ष्य - सं० हिंदी विभाग, पुणे विश्वविद्यालय - पृ. 55 - 56

ऐतिहासिक एवं यथार्थवादी आदि विविध विषयों पर उपन्यास की रचनाएं कर रहे है परन्तु यह पुराना पारंपरिक वर्गीकरण आज के संदर्भ में कोई अर्थ नहीं रखता । साठोत्तरी युवा उपन्यासकारों ने अपनी चिकित्सक बौद्धिकता से इन सबका अनुशीलन तो किया है किन्तु उसे पचाकर विशुद्ध बौद्धिक स्तर पर अपनी सर्वथा अलग शैली में उसे स्थापित किया है । इस अर्थ में साठोत्तरी उपन्यास बौद्धिकता से विशुद्ध बौद्धिकता की ओर अग्रसर हो रहा है ।"[1]

साठोत्तरी उपन्यास का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए डॉ० दंगल झाल्टे लिखते है कि "उपन्यास का अब यह उद्देश्य माना जाने लगा है कि उसके माध्यम से मनुष्य का अपने भोगे हुए यथार्थ से साक्षात्कार हो और प्रकृति, परिवेश, सामाजिक व्यवस्था तथा अंतरंग भावना के बीच नया अर्थपूर्ण सामंजस्य स्थापित हो सके । यह उपन्यास अब समाज के वर्ग से हटकर व्यक्ति तथा उसकी अंत:चेतना को अत्यधिक प्रधानता दे रहा है । व्यक्ति और उसकी सूक्ष्म मानसिक जटिलताएं, समस्याएं अथवा विशिष्ट चेतना साठोत्तरी उपन्यास का लक्ष्य है ।"[2]

वस्तुत: संपूर्ण साठोत्तरी उपन्यास साहित्य यथार्थवाद पर आश्रित है । इसकाल के उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण संश्लिष्ट और सूक्ष्म भावनाओं पर आधारित है । इसी प्रकार यथार्थवाद के कई आयाम होने पर भी इस काल के उपन्यासों में किसी में भी किसी एक आयाम का आधिक्य

- -

1. साठोत्तर हिंदी साहित्य का परिप्रेक्ष्य - सं० हिंदी विभाग पुणे पृ. 56

2. -वही- पृ. 56 - 57

या महत्व दिखाई नहीं देता । कारण स्पष्ट है कि यथार्थ का चित्रण सामाजिक परिवेश के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयों पर हो रहा है । कभी - कभी एक उपन्यास में एक से अधिक यथार्थवाद के आयाम उजागर होकर सामने आते हैं । ऐसे समय में किसी उपन्यास में किसी यथार्थवाद के आयाम का आधिक्य है कह कर नहीं कहा जा सकता । अतः यहाँ पर इस काल के चर्चित उपन्यासों का विवेचन करेंगे ताकि इस काल के उपन्यासों में यथार्थवाद का चित्रण किस रूप में हुआ है स्पष्ट हो सके ।

4·2·1· समाजवादी यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार :

साठोत्तरी उपन्यासों में सामाजिक उपन्यासों का महत्वपूर्ण स्थान है । जिसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है । विशेषतः सामाजिक संरचना में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप विकसित हुआ मध्यवर्ग को केन्द्र में रखकर उच्च और निम्न वर्गों का विवेचनात्मक विवरण किए होने के कारण इसका सैद्धांतिक पक्ष को अलग नहीं देख सकते । अतः यथार्थ-वाद विभिन्न आयामों का सम्मिश्रण इन उपन्यासों में मिलता है ।

इस काल के प्रमुख समाजवादी यथार्थवादी उपन्यास हैं - अमृतराय, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, श्रीलाल शुक्ल, भीष्म सहानी, महीप सिंह, मोहन राकेश, हिमांशु जोशी, जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, काशीनाथ सिंह, राजेन्द्र अवस्थी, यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" और धीरेन्द्र "अस्थाना" ।

इस काल क में समाजवादी यथार्थवाद को उपन्यासों में स्थान देने वाले सशक्त रचनाकारों में अमृतराय का स्थान महत्वपूर्ण है । जिनका "बीज"

उपन्यास हिंदी साहित्य का अमर कृति रहा है । इसी प्रकार वाराणसी को केन्द्र मे रखकर देश मे व्याप्त निराशा, स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार आदि को "धुंआ" उपन्यास के माध्यम से चित्रित किया है । चाहे "बीज" हो या चाहे "धुंआ" अमृतराय ने सामाजिक समस्याओं को उठाया है किन्तु उनका औपन्यासिक विन्यास पारम्परिक और सपाट है । प्रगतिवाद की स्थूलता उनमे प्रमुख हो उठी है, अन्तरंग गहरे भाव - आवर्त कम ही आ पाये है ।"[1]

कमलेश्वर "एक सड़क सत्तावन गलियां" उपन्यास मे एक कस्बे की जिन्दगी के अनेक विसंगतियों, समस्याओं का चित्रण समाजवादी यथार्थवादी ढंग से किया है । इस मे उपन्यास मे उस कस्बे मे रहने वाले लोगों के अनुभवों को उपन्यास जीवंतता प्रदान की है । राजेन्द्र यादव कृत "उखड़े हुए लोग", अन देखे अनजान पुल" उपन्यास भी प्रमुख है । "उखड़े हुए लोग" मे लंपट, पूंजीवादी नेता देशबन्धु के काले कारनामों पर युवा पीढ़ी के लोगों के माध्यम से प्रहार किया गया है और युवा पीढी के सुन्दर भविष्य के प्रति विश्वास व्यक्त किया है ।

श्रीलाल शुक्ल साठोत्तरी हिंदी उपन्यास के एक सशक्त रचनाकार है जिन्होंने "राग दरबारी" की रचना करके तत्कालिन साहित्यिक क्षेत्र मे ही नहीं बल्कि राजनैतिक क्षेत्र मे भी शोर मचाया था । "रागदरबारी" के कथ्य के संदर्भ मे स्वयं उपन्यासकार लिखते है "रागदरबारी का संबंध एक बड़े नगर से कुछ दूर बसे हुए गांव की जिन्दगी से है जो पिछले बीस

---

1. रामदरश मिश्र : हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा - पृ. 176

वर्षों की प्रगति और विकास के नारों के बावजूद निहित स्वार्थों और अनेक अवांछनीय तत्वों के आघातों के सामने घिसट रही है । यह उस जिन्दगी का दस्तावेज है ।"[1]

भारत विभाजन के समय भड़के साम्प्रदायिक दंगों पर आधारित भीष्म साहनी की रचना "तमस" है । इसमें लेखक ने भारत विभाजन के कारणों और उत्पन्न हुई स्थितियों के संबंध में ब्यौरा प्रस्तुत किया है ।

मोहन राकेश का "अंधेरे बन्द कमरे" नयी दिल्ली के अभिजात जीवन पर आधारित उपन्यास है । इनका अन्तिम उपन्यास अन्तराल व्यक्ति व्यक्ति के बीच के सम्बन्धों को उद्घाटित करता है ।

जगदम्बा प्रसाद दीक्षित कृत "मुरदा घर" में नियॉन लाइट से जगमग सफेद इमारतों वाली सफेदपोश बस्ती के कॉन्ट्रास्ट में बम्बई की एक गंदी, घिनौनी, संडाध से भरी हुई झोपड़पट्टी की सच्ची यथार्थ तस्वीर को लेखक ने इस खूबी से उभारा है कि हमारे सभ्य समाज की परत दर परत खुलती गई है और वह अपने नग्न स्वरूप के साथ चेतना की संवेदनशीलता के कठघरे में आकर उपस्थित हो जाता है ।"[2]

राजेन्द्र अवस्थी कृत "बीमार शहर" में बम्बई की अकेलेपन का चित्रण किया गया है "इस उपन्यास में भी सेक्स व्यापार के प्रति बढ़ते हुए आकर्षण का मूल कारण व्यक्ति की आत्महीन परिस्थितियां है । इसका एक दूसरा कारण आर्थिक अभाव भी है । वैभव के व्यक्तिकरण से सामाजिक

- -

1. श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी : लेखकीय वक्तव्य.

2. डॉ0 पारुकान्त देसाई - साठोत्तर हिंदी उपन्यास - पृ. 163

जीवन में व्यक्तिक्रम उपस्थित होता है । वैभव एवं जीवन यापन की अनिवार्य आवश्यकताओं के अभाव में देह व्यापार आवश्यक धर्म हो जाता है । इसमें नारी देह के व्यापार का मर्मस्पर्शी चित्रण मिलता है ।"[1]

"एक और मुख्य मंत्री" श्री यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" का उपन्यास है जिसमें स्वतंत्रता के पश्चात देश की राजनीति में होने वाले मूल्यों का ह्रास का चित्रण हुआ है । इस उपन्यास में राजनीति में व्याप्त धूर्तता भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, राष्ट्र-द्रोहिता, दल-बदल राजनीति की विडम्बनाओं पर यथार्थ चित्रण किया गया है । इसी उपन्यासकार का "हजार घोड़ों का सवार" उपन्यास में शोषित एवं दलित वर्ग की समस्याओं का समग्र चित्रण किया गया है । धीरेन्द्र अस्थाना कृत "समय एक शब्द भर नहीं है" उपन्यास में "युवापीढ़ी के जन आन्दोलन तथा युवा पीढ़ी के नक्सली आन्दोलन और सत्ता का अंधापन दर्शाया गया है । आज के जीवन में भ्रष्ट राजनीति के दबाव से नयी पीढ़ी किस तरह तबाह हो रही है, इसमें मुख्यतः वर्णित किया गया है ।"[2] महीप सिंह का "यह भी नहीं" उपन्यास भी बम्बई के युवापीढ़ी पर आधारित यथार्थ रचना है ।

इस युग में लिखने वाले अन्य लब्ध प्रतिष्ठित साहित्य कार है - लक्ष्मीनारायण लाल, नरेश मेहता, अमृतलाल नागर, गुलशेर शानी, निर्मलवर्मा,

- -

1. डॉ० रामविनोद सिंह - आठवें दशक के हिंदी उपन्यास - पृ. 27
2. कृष्णकुमार बिस्सा "चन्द्र" -साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना -पृ. 24

गिरिराज किशोर, गिरीश अस्थाना, गोपाल उपाध्याय, राही मासूम रजा, विष्णुप्रभाकर, प्रभाकर माचवे, मन्मथनाथ गुप्त, राज कमल चौधरी कृष्णा सोबती, जगदीश चन्द्र, डॉ० रामदरश मिश्र, उषा प्रियंवदा, शिवानी बदी उज्जमा ।

लक्ष्मीनारायण लाल कृत "बड़ी चम्पा, छोटी चम्पा" उपन्यास वेश्या जीवन के संदर्भ मे उत्पन्न होने वाले सामाजिक विसंगतियो को बहुत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है ।

नरेश मेहता कृत "यह पथ बन्धु था" उपन्यास मे मध्यवर्ग के टूटते हुए व्यक्ति की यातनाओं को उजागर किया है ।अमृतलाल नागर अपने उपन्यास अमृत और विष, बूंद और समुद्र आदि उपन्यासो मे मध्यवर्ग की विसंगतियां और युवा वर्ग की त्रासदियो का चित्रण यथार्थ के धरातल पर हुआ । इसी प्रकार "नाच्यौ बहुत गोपाल" नामक उपन्यास मे अछूत समस्या को उठाया गया है । गुलशैर शानी "काला जल" नामक उपन्यास के मे मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवारो के समस्याओं को उठाया गया है । "यह उपन्यास आज के जीवन प्रश्नो, मूल्य संघर्ष और निरंतर सामाजिक संबंधो के बदलाव की चेतना को स्थापित करने के स्थान पर अपने को पारिवारिक समस्याओ तक सीमित रखता है और इन परिवारो का टूटना किसी भी तरह आज के परिवारों की नयी पुरानी पीढ़ियो के संघर्ष और उनकी चेतना की टकराहट का प्रतिनिधित्व नहीं करता बल्कि जो कि इसमे तीन पीढ़ियां आई है ।"[1]

"वे दिन" उपन्यास मे निर्मल वर्मा "यूरोप की महायुद्धोत्तर नयी दिशा - हारा पीढ़ी के संत्रास, घुटन, तनाव, मूल्यहीनता अर्थहीनता और उसके रीतापन को स्थापित करने वाला उपन्यास है । शीर्षक से

1• डॉ० रामदरश मिश्र : हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा - पृ• 164

ही यह बोध हो जाता है कि उसका सम्बन्ध पात्रों के अतीत से है, परन्तु यहाँ पात्रों की दुर्भाग्यपूर्ण नियति यह है कि अतीत "सावन धन सघन बरसते" वाला न होकर, युद्ध की अभिशप्त छाया से जुड़ा हुआ है । युद्ध की इस छाया से प्रत्येक पात्र आक्रान्त है । युद्ध न केवल कुछ लोगों को भस्म कर देता है, प्रत्युत अपने पीछे एक काली विषाक्त अवसाद में डूबी हुई शान्ति को छोड़ जाता है, जिसे भोगने वाले व्यक्ति जीवित होते हुए भी संवेदना के स्तर पर मुर्दे के समान होते हैं ।"[1] गिरिराज किशोर द्वारा रचित "लोग" उपन्यास में कुछ विशिष्ट लोगों की कहानी है "जो भारतीय स्वाधीनता प्राप्ति की संभावना के समय असुरक्षा अनुभव करते हुए अपने छूटते हुए वर्तमान और अदृश्य भविष्य के बीच लटक रहे थे ।"[2]

गिरीश अस्थाना के उपन्यास "धूप छाहीं रंग" दो खण्डों में विभक्त महाकाय उपन्यास है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की अनुभूत गाथा पेश करता है । पहले खण्ड में युद्ध की विभीषिका का चित्र है, दूसरे में शान्त सुविधापूर्ण जीवन की विसंगतियाँ चित्रित की गई हैं ।"[3]

"एक टुकड़ा इतिहास" में गोपाल उपाध्याय अछूतों की समस्या को उठाया है । हरिजनों की मुख्य समस्या आर्थिक है या सामाजिक ? इस प्रश्न पर विचार किया गया है । इसके साथ साथ समाज में हरिजनों की दशा पर भी प्रकाश डाला गया है ।

- -

1. डॉ० पारुकान्त देसाई - साठोत्तरी हिंदी उपन्यास - पृ. 149-150
2. डॉ० रामदरश मिश्र - हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा - पृ. 166-167
3. -वही- -वही- पृ. 169-170

राही मासूम रजा का "कटरा बी आर्जू" उपन्यास आपातकाल की घटनाओं पर आधारित है ।

विष्णु प्रभाकर का उपन्यास "कोई तो" मध्यवर्ग की यौन नैतिकता का प्रश्न उठता है "दरसल यह उपन्यास नारी प्रधान है । इसमें समाज और पुरुष से प्रताडित अनेक नारियों की व्यथा कथा है और उसके माध्यम से पुरुष समाज के कुरूप चेहरे पर से नकाब हटाया गया है । पुरुषों की यौन पिपासा और नकली नैतिकता के आतंक से बरबाद की गयी कितनी औरते यहां से वहां तक बिखरी है ।"[1]

डाॅ0 प्रभाकर माचवे के कई उपन्यास है जिनमें प्रमुख है, "जो" 'किसलिए' 'सांचा' आदि । "जो" अमरीकी नीग्रो जाति की जीवंत चित्रण है । 'किसलिए' मे मध्यवर्ग की मानसिकता को दर्शाया गया है और 'सांचा' मे मशीनीकरण के कारण मनुष्य का अवमूल्य किस प्रकार हो रहा है बताया गया है ।

मन्मथनाथ गुप्त आई सी एस अफसरों का देश के प्रति गद्दारी वगैरा कारनामों को "शहीद और शोहदे" नामक उपन्यास मे बहुत ही स्पष्ट रूप से पर्दाफाश किया है । राजकमल चौधरी के उपन्यास "नदी बहती थी", शहर था शहर नहीं था, देहगाथा और मछली मरी हुई यौनाचार के समस्याओं पर आधारित है ।

"धरती धन न अपना" प्रख्यात प्रगतिशील उपन्यासकार जगदीश चन्द्र का है । "इसमें लेखक ने पंजाब के एक छोटे से गांव "घोडेवाहा" को केन्द्र

- -

1. रामदरश मिश्र - हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा - पृ. 175

में रहकर सदियों से प्रताड़ित, साधनहीन, पराश्रित, भाग्यवादी, अपढ़ "चमार" जाति के जीवन का ऐसा अन्तरंग चित्रण किया है कि वह भारत के करोड़ों हरिजनों के जीवन का सच्चा दस्तावेज बन पड़ा है ।"[1]

डॉ० रामदरश मिश्र का उपन्यास "जल टूटता हुआ" का मूल कथ्य स्वातंत्र्योत्तर मोह भंग की अवस्था है । उपन्यासकार भूमिका में लिखा है - "स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात भारतीय गाँव के संबंधों तथा मूल्यों के तनाव विघटन और उसके जीवन संघर्ष एवं व्यथा की कथा है - "जल टूटता हुआ" । इसका भू-भाग वही कछार अंचल है जो पानी के प्राचीर [प्रथम उपन्यास] का है, किन्तु समय की चेतना दोनों को अलगाती है । इनके पात्र, इनकी कथाएं, इनकी चेतना और संरचना सभी अपने- अपने है । समय के फलक पर इन्हे एक भू-भाग का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध कहा जा सकता है, किन्तु अपनी अपनी सत्ता में सर्वथा स्वतंत्र ।"[2] "सूखता हुआ तालाब" डॉ० रामदरश मिश्र का ग्राम्य जीवन के टूटते मूल्यों एवं यथार्थ को व्यंग्यार्थ से सम्पृक्त करने वाला प्रतीकात्मक लघु उपन्यास है ।"[3]

इसी प्रकार बदी उज्जमां का एक चूहे की मौत, उषा प्रियंवदा का "रूकोगी नहीं राधिका", शिवानी का कृष्णा कली, कृष्णा सोबती का "मित्रो मरजानी" प्रमुख उपन्यास है ।

4.2.2. मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार :

इस काल के कुछ उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का प्रभाव अधिक रहा है । ऐसे उपन्यासों में अज्ञेय का अपने अपने अजनबी [1961]

- -

1. डॉ० पारुकान्त देसाई - साठोत्तरी हिंदी उपन्यास -पृ. 97
2. -वही- -वही- पृ. 92
3. -वही- -वही- पृ. 95

रांगेय राघव का 'पतझर', डा० देवराज के 'अजय की डायरी' (1960) और 'दोहरी आग की लपट', कमलेश्वर के "वही बात" और 'डाक बंगला', धर्मवीर भारती के 'गुनाहों का देवता', 'डूबते मस्तूल', लक्ष्मीकान्त वर्मा का 'तीसरा प्रसंग', मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' और मृदुला गर्ग का "उसके हिस्से की धूप" आदि प्रमुख है ।

इन उपन्यासों मे मनुष्य के अन्त:चेतना के संवेदनाओं का चित्रण हुआ है । अज्ञेय अपने उपन्यास अपने अपने अजनबी मे मृत्यु भय का मानसिक तनाव का चित्रण बहुत ही सशक्त रुप से किया है । "विवाह संबंधो मे आधुनिक प्रगतिशील दृष्टिकोण के मान्यता दी जाने लगी है । नारी पुरुष के सह जीवन तथा उन्मुक्त दृष्टिकोण को मान्यता दी जाने लगी है । रांगेय राघव के "पतझर" मे प्रेम विवाह के क्षेत्र मे स्वतंत्र अधिकार की आकांक्षा व्यक्त की गई है ।"[1] डॉ० देवराज का अजय की डायरी मे मध्यवर्गीय खोखले प्रेम का उद्घाटन किया गया है । "दोहरी आग की लपट" मे डा० देवराज नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व की खोज से उत्पन्न समस्याओं पर विचार किया है । "विवाह के उपरान्त पत्नी द्वारा किसी अन्य पुरुष को चाहने पर पति स्वतंत्रता का परिचय देता हुआ संबंधो को समाप्त करने मे हिचकिचाहट नही करता । उसके संबंधों को उदारतापूर्वक स्वीकार करता है । कमलेश्वर के "वही बात" मे इस परिवर्तित मानसिकता को व्यक्त किया गया है । समीरा के मुकुल की ओर आकृष्ट होने पर उसका पति प्रशान्त उन दोनों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखता है । वह सहर्ष मुकुल के लिए समीरा और अपने पद का त्याग कर देता है । इधर

---

1. प्रभा वर्मा - हिंदी उपन्यास : सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया और स्वरुप - पृ० 187

स्त्री भी ऐसे सम्बन्धों को अपने पति के सामने स्वतंत्रतापूर्वक स्वीकार करने लगी है क्योंकि विवाह आज के संदर्भ में नैतिक नहीं वरन् सामाजिक समझौता है ।"[1] "डाक बंगला" उपन्यास में कमलेश्वर आधुनिक नारी जीवन की अनेक विसंगतियों को रेखांकित करते है । "वासना की उद्दाम लहरों के समुद्र को अपने हृदय में संजाये हुए अनेक नारियां निरन्तर मानसिक व्यभिचार करते हुए भी तथाकथित शारीरिक पवित्रता को बरकरार रख पाती है क्योंकि समाज और परिस्थितियों द्वारा प्रदत्त रक्षा का कवच उन्हें हर समय बचाए रखता है, जबकि दूसरी ओर कुछ ऐसी नारियां भी होती है जो मन से किसी एक की होने के बावजूद परिस्थितियां उन्हें अनेक की अंक शायिनी होने के लिए विवश करती है ।"[2] "विज्ञान पूंजीवाद एवं सामाजिक संघर्षों ने व्यक्ति को आत्म केन्द्रित संघर्षशील, मृत्यु के प्रति सचेत और अस्तित्व के प्रति भयभीत बना दिया है । परम्परागत संस्कारों एवं रूढ़ियों को तोड़ना तो चाहता है किन्तु उसके लिए सामाजिक क्रान्ति नहीं करना चाहता । उक्त "गुनाहों का देवता" का चन्दर इसका उदाहरण है ।"[3] यह उपन्यास प्रेम की असफलता के कारण मानसिक कुंठा का वर्णन करता है । "भावना जीवन का आदर्श है और वासना उसका यथार्थ । प्रेम के इन दोनों पक्षों में गुनाहों का देवता भटककर जीवन का समन्वित रूप प्रस्तुत करता है । आधुनिक शिक्षित मध्यवर्गीय समाज में कुंठा एवं निराशा से आक्रान्त व्यक्ति किस प्रकार अपने आदर्शों को स्थिर

- -

1. प्रभा वर्मा - हिंदी उपन्यास : सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया और स्वरूप - पृ. 188
2. डॉ० पारुकान्त देसाई : साठोत्तर हिंदी उपन्यास - पृ. 135
3. प्रभा वर्मा - हिं.उ.सा.प.की प्र. और स्वरूप -पृ. 198

रखने के लिए छटपटता है, इसका सूक्ष्म चित्रण है ।"[1] "डूबते मस्तूल" में धर्मवीर भारत रंजना के माध्यम से विधवा सधवा के नियमों से नारी को मुक्त करना चाहती है। लक्ष्मीकांत वर्मा कृत "तीसरी प्रसंग" उपन्यास में पुरुष स्त्री को मात्र सेक्स की दृष्टि से देखता है । "आपका बंटी" में मन्नु भंडारीनेबाल मनोवैज्ञानिक चित्रण पूरे यथार्थ के साथ किया है । यह उपन्यास जितना मनोवैज्ञानिक लगता है उतना ही सामाजिक है । "इसमें अकेलेपन से मुक्ति के लिए संघर्षशील नारी मन की व्याकुलता की पहचान का सफल प्रयास किया गया है । बंटी का अकेलापन और उससे उत्पन्न टीस भरी जिन्दगी केवल किसी की व्यक्तिगत रुचि से नहीं बनी है, बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण की उपज है । नारी की अकुलाहट उसके जीवन की घनीभूत वेदना तथा दूसरों को पराजित करने वाली उसकी इच्छा शक्ति आधुनिकता बोध से बनी है ।[2]

4·2·3· ऐतिहासिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार :

साठोत्तरी उपन्यास काल में भी ऐतिहासिक परिवेश से जोड़कर उपन्यास लिखे गये हैं । ऐसे उपन्यासों में प्रमुख है - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के'चारुचन्द्र लेख'और'पुनर्नवा', अमृतलाल नागर के'शतरंज के मोहरे' 'मानस का हंस', 'खंजन नयन'आदि, आनन्द प्रकाश जैन कृत'कुणाल की आंखें' नरेन्द्र कोहली का'दीक्षा'और वीरेन्द्र कुमार जैन कृत'अनुत्तर योगी'(तीन खण्ड) ।

- -

1· कांति वर्मा : स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास - पृ· 14।

2· डॉ० रामविनोद सिंह : आठवें दशक के हिंदी उपन्यास - पृ· 10

हजारी प्रसाद द्विवेदी चारुचन्द्र लेख उपन्यास की ऐतिहासिकता के संबंध में लिखा है कि "ऐतिहासिक दृष्टि से कथा मे असंगति नहीं है। ऐसा लगता है कि किसी ने सोच विचार कर तथ्यों को इसमे पिरोया है। फिर भी उज्जयिनी के राजा सातवाहन का कोई प्रमाण नहीं है।"[1] इस उपन्यास के माध्यम से द्विवेदी जी विभिन्न हुए देश को संघ शक्ति के रूप मे उभारने की कोशिश की है। "पुनर्नवा" मे द्विवेदी जी चौथी शताब्दी मे भारतीय संस्कृति के पराभूत स्वरूप का विश्लेषण किया गया है।

अमृतलाल नागर के अनेक उपन्यासों मे भारत के अतीत के घटनाओं का सुन्दर वर्णन हुआ है। "शतरंज के मोहरे" नागर जी का एक ऐतिहासिक उपन्यास है जो अवध की गदर पूर्व के सामन्तवादी शासन अत्याचार, भोग-विलास, अनाचार आदि का बड़ी ही यथार्थ परक लेखा - जोखा प्रस्तुत करता है। "सुहाग के नूपुर" मे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे वर्तमान सामाजिक समस्याओं का चित्रण हुआ है। "लाल घूंघटवाला मुखड़ा" मे इतिहास के एक चरित्र बेगम समरा के इतिहास तत्वों तथा अन्य प्रचलित किम्वदंतियों का कल्पनापूर्ण चित्रण है। "एकदानैमिषारण्ये" उपन्यास पौराणिक घटनाओं पर आधारित रचना है। जिसके द्वारा भारतीय संस्कृति मे भावात्मक चेतना, लाने का प्रयास किया है। इसमे पुराण, इतिहास, जनश्रुति और कल्पना का ऐसा अद्भुत मिश्रण नागर जी ने किया है कि इनमे से किसी एक को अलग कर अलग कर लेने की न तो आवश्यकता महसूस होती है न ही वह संभव दीखता है। इस प्रकार इस उपन्यास मे भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म, दर्शन व जन जीवन को प्रभावित

- -

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - चारु चंद्रलेख : उपसंहार - पृ. 372

करने वाले वैष्णव चिन्तन की आधारभूमि नैमिषारण्य को आधार बना कर लिखा गया है । "मानस का हंस" मुगल कालीन पृष्ठभूमि पर आधारित तुलसीदास के साहित्य तथा भारतीय संस्कृति की पुन: प्रतिष्ठा है । इसमें तुलसी की साहित्य साधना, साम्प्रदायिक सद्भावना तथा सांस्कृतिक एकता को दर्शाया गया है । नागर जी आमुख में लिखते हैं - "समाज संगठनकर्ता की हैसियत से सभी को कुछ न कुछ व्यवहारिक समझौते भी करने पड़ते हैं । तुलसी और हमारे समय में गांधी जी ने भी वर्णाश्रमियों से कुछ समझौते किये पर उसके बावजूद इनका धनवादी दृष्टिकोण स्पष्ट है । तुलसी ने भले वर्णाश्रम धर्म का पोषण भले ही किया हो पर संस्कारहीन, कुकर्मी ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि को लताड़ने में वे किसी से पीछे नहीं रहे । तुलसी का जीवन संघर्ष विद्रोह और समर्पण से भरा है । इस दृष्टि से वह सब भी प्रेरणादायक है ।"[1] "खंजन नयन" सूरदास के जीवन चरित्र को केन्द्र में रख कर तत्कालीन समाज का चित्रण किया है । "करवट" और पीढ़ियाँ गत दो शताब्दियों का भारतीय इतिहास और सामाजिक संरचना पर आधारित उपन्यास है ।

आनन्द प्रकाश जैन "कुणाल की आँखें" नामक उपन्यास में अशोक के पुत्र कुणाल के माध्यम से "प्रियदर्शी" अशोक की दया निष्ठा, शान्ति और अहिंसा की नीति के नीचे कसमसाती उसकी हिंसक अशान्त वृत्ति देश में आरोपित शान्ति के साम्राज्य के विरुद्ध उफनती जनता की व्याकुलता और धर्म के विस्तार के अन्तराल में अट्टहास करती धार्मिक लीला और अमानवीय शोषण को बहुत कैलाम भाव से उभारता है ।"[2]

---

1. अमृतलाल नागर - मानस का हंस - "आमुख"
2. रामदरश मिश्र - हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा - पृ० 221

रामकथा पर आधारित "दीक्षा" उपन्यास के लेखक नरेन्द्र कोहली है । इस उपन्यास में राम के विवाह तक का कथा है । इस कथा को आज के राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय मानवीय प्रश्नों से जोड़ा है । उपन्यासकार नरेन्द्र कोहली "राम को शुरू से ही अपने परिवार में पीड़ित और उपेक्षित दिखाते है । वे एक बहुस्त्री - कामी पिता द्वारा उपेक्षिता स्त्री के अभिशप्त पुत्र है, इसी उपेक्षा और अभिशाप के भीतर उनकी संवेदना और ऊर्जा विकास पाती है । वही पारिवारिक पीड़ा उन्हें विश्व पीड़ा से जोड़ती है ।"[1]

वीरेन्द्र कुमार जैन कृत "अनुत्तर योगी" (तीन खण्ड) महावीर के जीवन पर आधारित उपन्यास है ।

<u>5. निष्कर्ष :</u>

हिंदी कथा साहित्य अनेक पड़ावों से गुजरते हुए आज एक वृहत्तर रूप को धारण कर चुका है । विशेषतः हम उपन्यास क्षेत्र को ध्यान पूर्वक देखें तो स्पष्ट होता है कि उपन्यास साहित्य के विकास में अनेक उतार - चढ़ाव आये है । तब कहीं जाकर यह विधा अभिव्यक्ति की एक सशक्त माध्यम बनी है ।

यदि हम उपन्यास साहित्य को विकास क्रम को ऐतिहासिक धरातल पर देखते है तो स्पष्ट होता है कि आरम्भिक दिनों में उपन्यास अपरिपक्व था । उपन्यास का उदय 19वीं शती के उत्तरार्द्ध से माना जाता है । यह काल एक प्रकार से उपन्यास का शैशव काल था । जिसमें

- -

1. रामदरश मिश्र : हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा - पृ. 222

विचारों की अभिव्यक्ति उतने स्पष्ट रूप से नहीं हो पाती थी जितनी आज होती है । इस काल में उपन्यास का ध्येय मात्र पाठकों का मनोरंजन करवाना था । इस कारण इस काल में ऐयारी - तिलस्मी उपन्यास अधिक लिखे गये । कुछ - कुछ समाज सुधार सम्बन्धी उपन्यास भी आये मगर समाज के प्रति इन उपन्यासों में उतनी लगाव नहीं था । इसका कारण यह है कि इस काल के उपन्यासकारों में यथार्थ की पहचान और उसका उपन्यास में चित्रण करने की शक्ति का अभाव था । यह स्थिति प्रेमचन्द पूर्व युग की थी ।

हिंदी कथा साहित्य में प्रेमचन्द के पदार्पण से उपन्यास साहित्य को एक सही और नयी दिशा मिली । अब तक मनोरंजन के लिए कल्पना-लोक में विचरण करने वाला उपन्यास साहित्य को इस काल में यथार्थ का आधार मिला और यथार्थ के धरातल पर सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण होने लगा । इस प्रकार इस काल में उपन्यास सही अर्थों में समाज का दर्पण बन गया ।

"प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास साहित्य में यथार्थ का चित्रण बहुरूपों में होने लगा । प्रेमचन्द युग का उपन्यास साहित्य कल्पना के स्थान पर यथार्थ को महत्त्व दिया तो इस युग का उपन्यास साहित्य यथार्थ के अनेक रूपों का चित्रण करने लगा । समाजवादी यथार्थवाद, आलोचना-त्मक यथार्थवाद, प्रकृतवाद, अतियथार्थवाद, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और ऐतिहासिक यथार्थवाद के रूप में उपन्यासों में यथार्थ का बोध होने लगा । इस प्रकार इस युग की विशेषता यह है कि यथार्थ का चित्रण बहुत गहराई के साथ हुआ ।

प्रेमचन्दोत्तर काल के बाद साठोत्तरी उपन्यासों में भी यथार्थ का चित्रण बहुत ही बारीकी के साथ होने लगा । जहाँ प्रेमचन्दोत्तर

काल के उपन्यासों में सरलता के साथ किसी एक रूप में यथार्थ का चित्रण होता था । वहीं साठोत्तरी उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण यथार्थ के अनेक रूपों के सम्मिश्रण के रूप में संश्लिष्ट रूप से होने लगा ।

वस्तुत: यह कह सकते है कि हिंदी उपन्यास साहित्य अपने शैशवावस्था के कल्पनाबद्ध रचनाओं को त्याग कर आज समाज के यथार्थ को यथातथ्य प्रस्तुत करने के लिए दृढ़चित है । ऐसे साहित्य का कोई विशेष ढाँचा या रूप नहीं होता । जिस प्रकार के समस्याएं आयेगी वैसे ही चित्रण साहित्य में किया जाता है और पाठक को रचनाकार के क्षमता के अनुसार वस्तुस्थिति के समीप ले जाने का प्रयास होता है । इसी कारण साहित्य में किसी एक धारणावाद या सिद्धांत के आधार पर रचना नहीं हो सकती । हाँ किसी धारणा या सिद्धांत का प्रभाव अधिक पड़ सकता है । यही स्थिति आज के उपन्यासों के साथ भी है । आज के उपन्यासकार पाठक को समाज का जीता - जागता यथार्थ को दिखलाने के लिए अत्याधिक उत्सुक रहता है जिसके कारण उसकी रचना में यथार्थ के अनेक रूप उपस्थित होना स्वाभाविक ही नहीं आवश्यक भी है ।

अध्याय - तीन

डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में समकालिक यथार्थबोध: वर्गीय पृष्ठभूमि और आर्थिक संदर्भ में

1. प्रस्तावना
2. वर्ग
3. वर्ग का उदय

   3.1. वर्ण

   3.2. जाति

   3.3. वर्ग

4. वर्ग विभाजन

   4.1. उच्च वर्ग

   4.2. मध्य वर्ग

   4.3. निम्न वर्ग

5. डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में वर्ग चेतना

   5.1. उच्च वर्ग

   5.2. मध्य वर्ग

   5.3. निम्न वर्ग

अध्याय - तीन

डॉ० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध: वर्गीय पृष्ठभूमि और आर्थिक संदर्भ में

तृतीय अध्याय

डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध : कतिपय पृष्ठभूमि और आर्थिक संदर्भ में

१· प्रस्तावना :

मानव सभ्यता के विकास क्रम को दुनिया के अनेक प्रसिद्ध दार्शनिक वैज्ञानिक और विद्वानों ने अपनी - अपनी क्षमता के आधार पर व्याख्यायित किया है । सभी विद्वानों का एक ही मत है कि मनुष्य को जब से ज्ञान का आभास हुआ तब से सभ्यता का विकास शुरू हुआ और इसी के साथ मनुष्य में अपनापन की भावना या स्वार्थ की भावना उत्पन्न होने लगी ।

कार्लमार्क्स ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की व्याख्या करते हुए कहते है कि आदिम साम्यवाद से दास प्रथा का जन्म स्वार्थ के कारण ही हुआ है । या बुद्धि के परिणति का कारण है । इस प्रकार संसार में "वर्ग" की भावना उत्पन्न होने के पीछे अपनी सुरक्षा सुविधा तथा सुख मूल तत्वों के रूप में काम करते है ।

प्राचीन भारतीय सभ्यता में भी वर्ण भेद तथा जाति भेद के पीछे यही मूल कारण निहित है । वर्तमान परिस्थितियों में वर्ग विभाजन के वे पहले के मानदण्ड नहीं रहे है अब नये मानदण्ड आये है वे है - "अर्थ पर

आधारित उपकरण। जिसके पास अधिक धन है वह उच्च वर्ग में आता है जिसके पास कुछ भी धन नहीं है या बहुत कम है वह निम्नवर्ग में आता है और इन दो वर्गों के बीच में जो है वे मध्यवर्ग के अन्तर्गत आते है। यह विभाजन आधुनिक युग की देन है जो आर्थिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

2. वर्ग :

"वर्ग" शब्द का अर्थ होता है, श्रेणी कक्षा, दल।"[1] सामान्यतः आकार प्रकार से भिन्न किन्तु किसी एक सामान्य धर्म को रखने वालों का समूह वर्ग ही कहलाता है जैसे - मनुष्य वर्ग, मजदूर वर्ग इत्यादि। वर्ग शब्द की व्याख्या करते हुए "वर्ग" को समानधर्मियों का समूह भी कहा जाता है। "हिंदी वृहद कोश" के अनुसार - वर्ग स्वजातीय या समान धर्मियों का समूह, दल एक स्थान से उच्चरित होने वाले वर्णों का समूह ग्रंथ का विभाग, अध्याय, समान अंका का घात, वह समकोण चतुर्भुज जिसकी लंबाई चौड़ाई बराबर हो, शक्ति, क्षेत्र अर्थ, धर्म आदि है।"[2] राजनीति कोश में "वर्ग" का अभिप्राय "व्यक्तियों का वह समुदाय है जो उत्पादन प्रक्रिया में एक सी भूमिका का निर्वाह करता है और जिनके संबंध उत्पादन प्रक्रिया में संलग्न दूसरे व्यक्तियों के साथ एक से होते है।"[3]

वस्तुतः "वर्ग" अंग्रेजी शब्द "क्लास" का पर्यायवाची है। "जिसका अर्थ या रेंमल्टों का समूह या श्रेणी। सेंकियास तुलियस ने संपत्ति के आधार

- -

1. डा० ओमवती सक्सेना - प्रेमचन्दोत्तर हिंदी उपन्यासों में वर्ग संघर्ष-पृ.1

2. कालिका प्रसाद - संपादक -हिंदी वृहद कोश -पृ. 1219

3. डा० सुभाष कश्यप तथा विश्व प्रकाश गुप्त-राजनीति कोश-पृ. 56

पर समाज को पाँच श्रेणीयों या वर्गों में बाँटा था जिसमें से हर कोई सेना के लिए एक निश्चित मात्रा में सैन्य टुकड़ियाँ (शत सैनिक दल) देता था और उन्हें एक निश्चित ढंग से शस्त्र सज्जित करता था। आगे चलकर क्लास (वर्ग) शब्द का व्यापक प्रचलन हुआ और लोगों के बड़े समूह को द्योतित करने लगा।"[1]

असल में "वर्ग" की अवधारणा मार्क्सवादी समाज दर्शन की है। मार्क्सवादी दर्शन आधुनिक काल का एक सशक्त दर्शन है जो "समाज के ऐतिहासिक राजनीतिक और आर्थिक से लेकर सांस्कृतिक और साहित्यिक पक्षों तक में एक ऐसी एक सूत्रता स्थापित कर देता है कि फिर भी हम उन्हें एक दूसरे से अलग कर के नहीं देख सकते। मार्क्सवाद का यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही उसकी सबसे बड़ी शक्ति है।"[2] मार्क्सवाद के अनुसार ऐसे मनुष्यों का समूह जो के साधनों की दृष्टि से आपस में ऐसा आर्थिक संबंध रखते है, जिसके कारण उनका किसी अन्य समूह से संघर्ष होता है, वर्ग है। उदाहरण के लिए सामन्ती समाज में जमींदार और किसान है तथा पूंजीवादी समाज में पूंजीपति और मजदूर वर्ग हैं।

कार्ल मार्क्स ने इकानामिक - फिलासाफिक मैनुस्क्रिप्ट में "वर्ग" के संबंध में अपने विचार स्पष्ट किया है। "मार्क्स ने वर्ग संबंध को आर्थिक संबंध माना है। वर्ग संबंध तत्वत: आर्थिक संबंध है और मार्क्स के अनुसार मनुष्य केवल आर्थिक आवश्यकतानुसार या नियमानुसार ही उत्पादन नहीं करता प्रत्युत वह सौन्दर्य के नियमों के अनुसार भी उत्पादन करता है। यही मनुष्यों की पशुओं से भिन्नता है।"[3]

---

1. प्रगति: द्वंद्वात्मक ऐतिहासिक भौतिकवाद की सरल रूप रेखा- पृ.373
2. जनेश्वर वर्मा- हिंदी काव्य में मार्क्सवादी चेतना - पृ. 19
3. प्रतापनारायण टंडन- हिंदी उपन्यास में वर्ग भावना - पृ. 37

वर्गों के संबंध में कार्ल मार्क्स के विचारों को और अधिक विकास करके लेनिन ने इस प्रकार परिभाषित किया है - कुंवरपाल सिंह लेनिन के हवाला देते हुए लिखते है कि -"वर्ग लोगों के ऐसे बड़े-बड़े समूहों को कहते है जो सामाजिक उत्पादन का इतिहास द्वारा निर्धारित किसी पद्धति में अपने अपने स्थान की दृष्टि से, उत्पादन के साधनों के साथ अपने संबंध (जो अधिकांश मामलों में कानून द्वारा निश्चित तथा निरूपित होता है।) की दृष्टि से और फलस्वरूप सामाजिक सम्पदा को प्राप्त करने की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न होते है ।"[1]

प्रतापनारायण टंडन "वर्ग" की परिभाषा बहुत सरल ढंग से प्रस्तुत करते है । उनके अनुसार "वर्ग शब्द का एक विशेष पारिभाषिक अर्थ है । यहाँ हम मनुष्यों के केवल उसी समूह या श्रेणी को वर्ग कहेंगे, जिनके आर्थिक हितों में कोई असमानता न हो । हम इसे यों स्पष्ट करने का प्रयत्न करें -

प्रत्येक समूह या श्रेणी के विभिन्न आर्थिक हित होते है । किसी समूह या श्रेणी में जितने मनुष्य होंगे, उनके समान हित होंगे । उदाहरण के लिए हम जमींदार, मिल - मालिक और मजदूर वर्ग को ले सकते हैं । इन तीनों वर्गों में प्रत्येक मेंजितने भी लोग होंगे, उन सबके अपने - अपने वर्गों के अनुसार समान आर्थिक हित होंगे । और इस प्रकार इन आर्थिक हितों में समानता होना ही वर्ग का प्रमुख लक्षण है ।"[2]

1.कुंवरपाल सिंह - भारतीय मध्यवर्ग चरित्र और भूमिका (लेख) मधुमति सितम्बर, 1989

2.प्रतापनारायण टंडन - हिंदी उपन्यास में वर्ग भावना - पृ. 36

मार्क्स के अनुसार प्रत्येक वर्ग का अपना दार्शनिक नैतिक और और सांस्कृतिक दृष्टिकोण होता है । जिसका निर्माण उसकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति से कहीं न कहीं अवश्य संबंध रखता है । उन्होंने साफ शब्दों में कहा है कि "मानव जीवन की सत्ता का निर्धारण उसकी चेतना द्वारा नहीं होता बल्कि चेतना उसके सामाजिक अस्तित्व के द्वारा निर्धारित होता है ।"[1] अत: स्पष्ट है कि मनुष्य की सत्ता का निर्धारण उसके सामाजिक अस्तित्व का निर्धारण करने के लिए समाज से उसका संबंध किस प्रकार का है ज्ञात होना चाहिए । दूसरे शब्दों में कहें तो व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति कैसी है स्पष्ट होना चाहिए । इसके लिए हमें समाज अ को वर्गों की दृष्टि से विश्लेषण करना आवश्यक हो जाता है । "वर्ग की अवधारणा" इसी कारण आधुनिक समाज में अपना विशिष्ट महत्व रखता है । "वर्गों" के माध्यम से ही समाज का संपूर्णत: विश्लेषण व मुल्यांकन किया जाना संभव है ।

यदि भारतीय परिप्रेक्ष्य में "वर्ग" को देखें तो पता चलता है कि इस के मूल में वर्ण, और जाति का महत्वपूर्ण स्थान है । "वर्ग" जो मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार आर्थिक स्थिति पर निर्भर रहती है-भारत के संबंध में जन्म तथा कर्म के आधार पर प्राचीन काल में निर्मित होता था । अत: वर्ग के उदय के परिप्रेक्ष्य में वर्ण, एवं जाति व्यवस्था के संबंध में संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करना यहाँ पर असंगत न होगा ।

3. <u>वर्ग का उदय :</u>

भारतीय सामाजिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में यदि वर्ग के उदय के बारे में देखें तो सबसे पहले वर्ण व्यवस्था पर विचार करना होगा । चूंकि

---

1. कार्लमार्क्स : भूमिका, ए कान्ट्रीब्यूशन टू द क्रिटिक आफ पोलिटिकल इकनोमी - पृ. 20

भारतीय सामाजिक व्यवस्था का मूलाधार वही है । वर्ण व्यवस्था, परिवर्तित काल के नियमानुसार जाति व्यवस्था का रूप धारण किया । जाति व्यवस्था ही आधुनिक समाज के आर्थिक पहलुओं के आधार पर पाश्चात्य दृष्टिकोण से वर्गों का रूप ले रही है ।

3·1· वर्ण :

भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था के संदर्भ में ऋग्वेद भगवद्गीता तथा मनुस्मृति आदि महत्वपूर्ण ग्रंथों में उल्लेख मिलता है । इन तीनों ग्रंथों में ही वर्ण व्यवस्था के मूल स्रोत है । ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में एक काल्पनिक कहानी है जिसमें वर्णों की उत्पत्ति के बारे में बताया गया है ।"जब देवताओं ने मनुष्य को अपना शिकार बनाकर बलि दी और उसका विभाजन किया । उसका मुख ब्राह्मण बना उसकी भुजाओं से क्षत्रिय बने, उसकी जांघ वैश्य बनी और उसके पैरों से शूद्र का जन्म हुआ ।"[1] यही वर्ण व्यवस्था के संबंध में मिलने वाली प्रथम जानकारी है । इसके पश्चात श्रीमद् भगवद्गीता में वर्ण व्यवस्था के संदर्भ में श्री कृष्ण कहते हैं -

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ।।[2]

अर्थात गुण कर्म के आधार पर मेरे द्वारा ही चारों वर्णों - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की सृष्टि हुई है । उनकी सृष्टि करनेवाला होने पर भी मैं कर्ता और अव्यय (अक्रिय अपरिणामी) हूँ ।

इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य के गुण तथा कर्म के आधार पर वर्ण का निर्धारण होता था न कि जन्म के आधार पर ।

1· रोमिला थापर - भारत का इतिहास - पृ· 28
2· हनुमान प्रसाद पोद्दार - गीता चिंतन - ज्ञानयोग(अध्याय·4) पृ·42

वर्ण व्यवस्था को उल्लेख करने वाला तीसरा प्रमुख ग्रंथ मनुस्मृति मनु द्वारा लिखा गया हिन्दुओं की आधार संहिता है। ... ने समाज में अराजकता व्याप्त न होने के लिए हिन्दू धर्म में व्याप्त वर्ण व्यवस्था को एक निर्दिष्ट नियमों के बंधन में बांध दिया। इन नियमों के अनुसार ब्राह्मणों के लिए अध्ययन, ज्ञानोपार्जन, यज्ञ यागादि धार्मिक अनुष्ठानों को संपन्न करने का कार्य निश्चित किया गया था। क्षत्रियों के लिए शासन, सीमा सुरक्षा, प्रजा पालन, इत्यादि सामाजिक नियम के उत्तरदायित्व दिया गया था। वैश्यों का काम सभी वर्णों के लोगों के लिए जीवनोपयोगी वस्तुओं को उपलब्ध कराना था। कृषि गोरक्षा और वाणिज्य के काम इस वर्ण के लिए निर्धारित किए गये है। शूद्र का काम सबसे कठिन था जो उपर्युक्त तीनों वर्णों की सेवा शुश्रूषा।

कालान्तर में सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन होने लगा मनु के नियमों का उल्लंघन होने लगा। राज्य की प्रभुसत्ता और शासन व्यवस्था ब्राह्मण और क्षत्रियों के हाथ में आ गई। वैश्य इन दो वर्णों का सहायक बना रहा। इस प्रकार अधिकार और आर्थिक सत्ता दोनों इन तीनों वर्णों के पास रह गया। जिसके फलस्वरूप शूद्र वर्ण समाज का अभिन्न अंग होते हुए भी लगभग सभी मानवीय एवं सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया। यहाँ तक कि धार्मिक उपासनाओं में भाग लेने, मोक्ष प्राप्ति के लिए तपस्या करने तथा सम्पत्ति संचय करने का अधिकार भी नहीं था।

वर्ण व्यवस्था श्रम विभाजन का परिणाम है[1] जो प्रत्येक वर्ण के लिए विशिष्ट कर्त्तव्य एवं दायित्व निर्धारित कर दिये गये है किन्तु वह धीरे धीरे मर्यादा के रूप में हिन्दू समाज की परंपरा बन गई और

- -

1. रामविलास शर्मा - मार्क्स और पिछड़े हुए समाज - पृ॰ 205

विभाजित वर्णों को एक-दूसरे के पूरक कहकर उसे न्याय संगत सिद्ध करने का प्रयास किया गया। किन्तु समय के व्यतीत होने के साथ साथ वर्ण व्यवस्था - ब्राह्मणों की साजिश के कारण - कर्म के आधार पर न रह कर केवल जन्म के आधार पर ही मानी जाने लगी। इसके परिणाम वर्ण व्यवस्था से जाति व्यवस्था का उदय हुआ।

3.2. जाति :

मनु के स्पष्ट वचन के बावजूद कि "जन्मना जायते शूद्र: कर्मणा द्विज उच्यते।"[1] वर्ण व्यवस्था कर्म के आधार पर न होकर जन्म के आधार पर रूढ़ि हो गई। जिसके फलस्वरूप विभिन्न कर्म करने वालों के विभिन्न समूहों का निर्माण हुआ जिसे वर्ण न कह कर जाति कहा जाने लगा। जाति हिन्दू धर्म की एक विशेषता है। असमानता इसका स्वरूप है। जाति की परिभाषा देना कोई सरल काम नहीं है। फिर भी एक कामचलाऊ परिभाषा देते हुए इतिहासकार इरफान हबीब कहते है कि "कोई जाति एक सुस्पष्ट और अलग समुदाय है जिसके सदस्य आपस में अंतर्विवाह (और अनुलोम विवाह) के संबंधों में बंधे होते हैं। प्रायः उनके बीच किसी वास्तविक या कल्पित साझे पैतृक व्यवसाय का भी संबंध होता है।"[2] जाति के नाम पर भिन्न श्रेणियों में लोग बंट जाने के कारण सामाजिक स्थिति में कोई मूलभूत परिवर्तन होना लगभग असंभव हो गया। "जाति समाज में सैद्धांतिक दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति का व्यवसाय जन्म के साथ

- -

1. अर्थात मनुष्य जन्म से शूद्र ही पैदा होता है। गुण, कर्म, स्वभाव और संस्कारों से द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) कहलाता है। डा० धनीराम शास्त्री (प्राक्कथन) अस्पृश्यता एवं मानवता - ए एन भारद्वाज - पृ. 19
2. इरफान हबीब - भारतीय इतिहास में जाति और वर्ण - पृ. 9

निर्धारित हो जाता है अर्थात जो जिस जाति में जन्म
उसका व्यवसाय हो जाता है, जैसे नाई के घर में जन्म लेने वा..
नाई का काम करेगा, धोबी के घर जन्म लेने वाला धोबी का काम
करेगा । कोई व्यक्ति अपने जन्मगत व्यवसायों को सरलता से बदल नहीं
सकता है ।"[1] इस तरह जाति व्यवस्था के कारण किसी को भी जाति
के नियमित दायरे से हटना संभव नहीं था । इस से समाज के उच्च जाति
(वर्ग) के लोगों ने अपने से निम्न रहने वालों पर आधिपत्य जमाए रखा ।

जाति व्यवस्था के उदय के संबंध में विचार करने पर पता चलता
है कि उत्पादन और दस्तकारी की विकास के साथ जातियों का भी
विकास हुआ । दस्तकारी के लिए कार्यकुशल लोगों की आवश्यकता हुई
जिसके कारण विभिन्न पेशों से विभिन्न लोग जुड़ गए । इस प्रकार वर्ण
व्यवस्था पेशों के आधार पर क्रमश: जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो
गई । इरफान हबीब कहते है - "जाति प्रथा को मुख्यत: एक दम क्रम
में उपजी विभिन्न सामाजिक संरचनाओं में उसकी भूमिका के आधार पर
व्याख्यायित किया जाना चाहिए । कोई सामाजिक संरचना "श्रम
की प्रक्रिया" के किसी रूप पर आधारित होती है और इसलिए वह
तब उत्पन्न होती है जब समाज के उत्पादक "अतिरिक्त उत्पादन" में
समर्थ होते है । यह सोचना व्यर्थ है कि इस चरण से पहले भी जाति
प्रथा जैसी संस्था का अस्तित्व रहा होगा ।"[2] इस संबंध में डा० राम
विलास शर्मा का मत भी उल्लेखनीय है । वे लिखते है - श्रम विभाजन
के प्रारंभिक दौर में दो, तीन या चार वर्णों से काम चल जाता है ,
किन्तु जैसे जैसे दस्तकारी की शाखाओं का विकास होता है और कु

- -

1. शम्भुरत्न त्रिपाठी - भारतीय सामाजिक संरचना और संस्कृति-पृ. 103
2. इरफान हबीब - भारतीय इतिहास में जाति और मुद्रा - पृ. 12

कुटुम्ब किसी एक शाखा से पीढ़ी दर पीढ़ी जुड़े रहते हैं, वैसे वैसे ... का निर्माण होता है और वे रूढ़िबद्ध होती हैं । ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ण उत्पादन में भाग नहीं लेते, उनमें "जातियाँ" नहीं हैं, सभी ब्राह्मणों की एक "जाति" ब्राह्मण है, सभी ठाकुरों की एक "जाति" ठाकुर है । विनिमय से संबद्ध एक "जाति" बनी "बनिया", बाकी सभी "जातियों" का संबंध उत्पादन और संस्कृति की शाखाओं अथवा सेवाकार्यों से है । पेशे से अलग जो "जाति" है, वह वास्तव में "जाति" है ही नहीं, वह किसी पुराने कबीले, उसकी शाखा या गोत्र का नाम है । उत्पादन और संस्कृति की विभिन्न शाखाओं के विकास के साथ पेशेवाली "जातियों" का निर्माण स्वाभाविक है ।"[1]

पाश्चात्य समाज शास्त्रियों के सामने आया । (कालान्तर में वर्ण और जाति से भिन्न वर्ग की अवधारणा) जिसके अनुसार मनुष्य की पहचान या मनुष्य की समाज में स्थिति को उसकी आर्थिक स्थिति के आधार पर देखा जाता है ।

3.3. वर्ग :

मानव सभ्यता के इतिहास को वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन करने का श्रेय प्रख्यात दार्शनिक कार्ल मार्क्स को मिला है । मार्क्स ने मानव जाति के अति इतिहास को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर विश्लेषित किया है । इस सिद्धांत के अनुसार वस्तुवादी विवेचन के अतिरिक्त तद्-युगीन वैज्ञानिक विकास को भी देखा जा सकता है । "इस प्रकार उन्होंने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को ऐसा व्यापक रूप दिया जो अजीव, सजीव और मानव संसार सबके विकास के सामान्य और विशिष्ट नियमों की

---

1. रामविलास शर्मा – मार्क्स और पिछड़े हुए समाज – पृ. 204-205

खोज करता है । उन्होंने एक ओर तो वस्तुवाद को मानव समाज पर लागू किया और सामाजिक विकास के नियमों की खोज की तथा दूसरी ओर इसे मात्र चिंतन की एक पद्धति, एक दृष्टिकोण से आगे ले जाकर सामाजिक परिवर्तन के प्रभावशाली शस्त्र का रूप भी प्रदान किया । अतः उनका द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद संसार की व्याख्या का ही नहीं, उसे बदलने का भी प्रयत्न करता है ।"[1]

इस प्रकार कह सकते है कि संसार में प्रत्येक वस्तु में दो परस्पर विरोधी तत्व विद्यमान रहते है । इन दो तत्वों में निरंतर संघर्ष चलता रहता है । संघर्ष से ही परिवर्तन होता है । मार्क्स ने वर्ण, जाति धर्मादि को नकारते हुए विश्वमानव को मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किया है - शोषक वर्ग और शोषित वर्ग, पूंजीवादी समाज में शोषक, शोषित वर्गों को बुर्जुआ और सर्वहारा के नामों से जाना जाता है । इन वर्गों के अतिरिक्त एक और वर्ग है जिसे निम्न पूंजीपति वर्ग कहते है । इसे मार्क्स ने पेटीबुर्जुआ" कहा है । यह वर्ग आधुनिक वैज्ञानिक समाज में मध्यवर्ग के रूप में विकसित हुआ ।

मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी प्रणाली को मानव सभ्यता के इतिहास पर लागू किया है । इसे ऐतिहासिक भौतिकवाद कहते हैं । "मार्क्स के अनुसार सामाजिक व्यवस्थाओं में उत्पादन प्रणाली ही प्रमुख है तथा सामाजिक परिवर्तन में आर्थिक पक्ष का ही मात्र हाथ है । यही वह शक्ति है जो उत्पादन के साथ साथ सामाजिक व्यवस्थाओं के स्वरूप को निर्धारित करती है तथा उनके विकास एवं परिवर्तन के लिए उत्तरदायी

- -

1. डा० भगवतराम शर्मा - मार्क्सवाद और हिंदी कविता - पृ० 2।

होती है ।"[1] अतः उत्पादन की प्रणाली के प्रत्येक परिवर्तन के सा. सामाजिक व्यवस्था में पाँच परिवर्तन हुए हैं । इन परिवर्तन के अलग-अलग युग माने जाते हैं । मार्क्स के अनुसार इन युगों में अब तक का इतिहास विभक्त है । ये युग इस प्रकार हैं "- 1: आदिम साम्यवादी 2· दास प्रथा का युग 3· सामन्तवादी युग 4: पूँजीवादी युग और 5· समाजवादी युग ।

"समाज के विकास की प्रारंभिक अवस्था में मनुष्य के जो विभिन्न वर्ग बने थे उनका आधार श्रम नहीं था । उस समय लोगों के हित और आर्थिक स्वार्थ परस्पर विरोधी नहीं होते थे । लोगों के दैनिक जीवन की आवश्यकताएं बहुत सीमित थी । इसी कारण उत्पादन के साधन बहुत सीमित थे और उनका विकास नहीं हो पाता था । बाद में ज्यों ज्यों मनुष्य का जीवन संक्रमिय होता गया त्यों-त्यों मनुष्य ने कुछ अन्य कार्य- खेती बारी तथा पशु पालन आदि प्रारंभ किये । लेकिन इस दिशा में यह प्रयास मनुष्यों के एक समूह द्वारा ही किया गया होगा और सारे समाज द्वारा नहीं । आगे चलकर यह समूह अपेक्षाकृत अधिक सभ्य होता गया होगा । लेकिन एक विशेष प्रकार के कार्य को प्रारंभ करने का कारण उस वर्ग के लोगों के सामने श्रम विभाजन की आई होगी तथा विभिन्न कार्यों को करने वाले लोगों के सामने उनके श्रम के फलस्वरूप हुई बचत के बटवारे की समस्या आई होगी । संभवतः इसी के कारण वर्गों की उत्पत्ति हुई होगी । बाद में विनियोग के सिद्धांत का प्रचार होने पर उनका विभाजन निश्चित वर्गों में हो गया होगा ।"[2]

1· डा0 ओमवती सक्सेना -प्रेमचन्दोत्तर हिंदी उपन्यासों में वर्ग संघर्ष पृ: 42

2· प्रतापनारायण टंडन-हिंदी उपन्यास में वर्ग भावना - पृ· 50-51

आदिम साम्यवादी युग में मनुष्य वर्ग रहित था । .. रहता था । "व्यक्तिगत सम्पत्ति की भावना नहीं थी और उत्पादन के साधनों पर समाज का अधिकार था ।[1] यहाँ पर वर्ग की भावना नहीं थी । इस युग के पश्चात दास प्रथा का युग आता है जिसमें मनुष्य अपनी बुद्धि के माध्यम से श्रम भार कम करके सुख-सुविधाओं को अधिक जुटाने के प्रयास करने लगा । जिसके कारण ही आदिम साम्यवादी युग से "आगे चलकर जब मनुष्य ने पशुपालन और खेती आदि को सीखा और धातु के तरह तरह के औजारों का प्रयोग करने लगा तो उत्पादन के इस बदले हुए ढंग ने दास व्यवस्था को जन्म दिया । उत्पादन के साधनों पर दास स्वामियों का अधिकार होता था । पराजित शत्रुओं को दास बना कर उनसे परिश्रम कराया जाता था और पशुओं के समान क्रय विक्रय होता था । इस प्रकार व्यक्तिगत सम्पत्ति का उदय हुआ ।"[2] व्यक्तिगत सम्पत्ति का आधार आर्थिक व्यवस्था था ।"इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि दास प्रथा शोषण की विकट अवस्था थी, शोषण का आरंभ था परन्तु यह भी मानना होगा कि वह अपनी पहली जंगली अवस्था से विकास का भी प्रबल प्रमाण थी ।"[3] दास प्रथा युग के पश्चात सामन्तवादी युग का जन्म होता है ।इसमें सामन्त और किसान दो वर्ग विद्यमान रहते हैं । सामन्त किसान का शोषण करता है । कभी कभी जमींदारों और भू-स्वामियों के शोषण और दमन के विरोध में इस काल में किसानों का संघर्ष यत्र तत्र होता था भी किन्तु सामंती व्यवस्था सशक्त रहने के कारण उनके आन्दोलन सफल नहीं हुआ करते थे ।इसी बीच औद्योगिकरण क्रान्ति होने के कारण नये - नये उद्योग भी विकसित होने लगे । कल कारखानों से अधिक उत्पादन होने के कारण

- -

1. जगदीश्वर वर्मा - हिंदी काव्य में मार्क्सवादी चेतना - पृ. 82
2. -वही- -वही- पृ. 82
3. यशपाल - मार्क्सवाद - पृ. 12

धनी लोगों ने अपनी पूंजी को उद्योग धन्धों में लगा दिए.
किसान और अन्य लोगों ने मजदूरी के लिए कल कारखानों की शरण.
इस प्रकार समाज व्यवस्था में एक और पहले युगों से भी संश्लिष्ट युग का
अवतरण हुआ । इस युग को पूंजीवादी युग कहा जाता है ।

पूंजीवादी युग में भी दो वर्ग रहते हैं – पूंजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग । मार्क्स ने इन वर्गों को बुर्जुआ और सर्वहारा की संज्ञा दी है । "पूंजीपति से मतलब आधुनिक पूंजीपति वर्ग, अर्थात सामाजिक उत्पादन साधनों के स्वामियों और उजरती श्रम का उपयोग करने वालों से है । सर्वहारा से मतलब आधुनिक उजरती मजदूरों से है, जिनके पास उत्पादन का अपना खुद का कोई साधन नहीं होता, इसलिए जो जीवित रहने के लिए अपनी श्रम शक्ति को बेचने को विवश होते हैं ।"[1] पूंजीपति अपने कल-कारखानों के द्वारा होने वाले उत्पादन को अपना व्यक्तिगत संपत्ति के रूप में स्वीकार करता है । मजदूरों के मूलभूत आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं करता है । इस प्रकार पूंजीपति अपनी आय में वृद्धि करने के लिए श्रमिकों का शोषण करता है । एंगिल्स का हवाला देते हुए जनेश्वर वर्मा लिखते हैं – "मिलों और कारखानों में जो सामान बनता है वह किसी व्यक्ति के नहीं वरन सम्पूर्ण श्रमिक समुदाय के परिश्रम का फल है । क्योंकि उसके उत्पादन में सभी अपने अपने ढंग से योग दिया है । उनमें

- -

1. कार्लमार्क्स एंगिल्स – कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र [1888 के अंग्रेजी संस्करण में एंगिल्स का नोट] पृ. 35

से कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता है कि यह वस्तु मेरी बनाई हुई है । इसका उत्पादन कर्ता मैं हूँ ।"[1] स्पष्ट है कि पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था के अंतर्गत अनेक मजदूरों के सहारे होने वाले उत्पादन पर पूंजीपति का अधिकार होता है और श्रमिकों को श्रम का फल नहीं मिलता । इस प्रकार श्रमिकों का शोषण होता रहा है । इस शोषण प्रक्रिया के विरोध में सर्वहारा संगठित होकर पूंजीपति वर्ग के विरोध में क्रांति करने से वर्ग विहीन, राज्यविहीन समाज का निर्माण होता है । यही मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद की अंतिम कड़ी समाजवादी युग है ।

समाजवादी युग का उदय पूंजीवादी समाज के विनाश से होता है । मार्क्स के अनुसार "इस युग में उत्पादन के सभी साधनों पर पूरे समाज का अधिकार होगा तथा प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकतानुसार सुविधाएं प्रदान की जायेंगी । इस समाज में पूर्ण समानता होगी, शोषक और शोषित, निर्धन और धनी वर्ग नहीं रहेंगे तथा वर्ग और शोषण न होने के कारण राज्य भी नहीं रहेगा । जब यह स्थिति सब देशों में आ जायेगी तब सारी पृथ्वी में साम्य स्थापना हो जायेगी । इस प्रकार साम्यवादी व्यवस्था वर्ग विहीन एवं राज्यविहीन आदर्श व्यवस्था होगी ।"[2]

4. वर्ग विभाजन :

आधुनिक समाज शास्त्रियों ने समाज को आर्थिक व्यवस्था पर आधारित होने के नाते तीन भागों में विभाजित किया है तथा संपूर्ण समाज को इन तीन भागों के माध्यम से ही विश्लेषित किया है । ये

1: जनेश्वर वर्मा - हिंदी काव्य में मार्क्सवादी चेतना - पृ: 152
2: डा० भगतराम शर्मा - मार्क्सवाद और हिंदी कविता - पृ: 20

तीन भाग है - 1• उच्च वर्ग, 2• मध्य वर्ग और 3 निम्न वर्ग । कार्ल मार्क्स ने ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टि के अंतर्गत समाज में हमेशा मुख्यतः दो वर्ग - शोषक और शोषित - रहने की बात कही थी । शोषक और शोषित वर्गों को आज के संदर्भ में उच्च वर्ग और निम्न वर्ग कह सकते हैं । मार्क्स ने मध्य वर्ग जैसा कोई वर्ग का अस्तित्व समाज में रहने के दावा से इन्कार किया है । हाँ, वे इतना मानते हैं कि समाज में एक अस्थाई रूप से निम्न पूंजीवादी वर्ग अस्तित्व में रहता है और सर्वहारा के नेतृत्व में होने वाले क्रान्ति के समय उसका सहयोग करता है । मार्क्स और एंगेल्स ने लिखा है कि "उन देशों में जहाँ आधुनिक सभ्यता का पूरा विकास हो चुका है, निम्न पूंजीपतियों का एक नया वर्ग बन गया है जो सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच झूला करता है और पूंजीवादी समाज के एक पूरक अंग के रूप में सदा अपने को ताजा करता रहता है । लेकिन होड़ की चक्की में पिसकर इस वर्ग के अलग अलग सदस्य टूट-टूट कर बराबर सर्वहारा वर्ग में शामिल हो जाते हैं ।"[1] किन्तु वर्तमान समाज को देखने से ऐसा नहीं लगता की पेटी बुर्जुआ (निम्न पूंजीवादी वर्ग) या मध्यवर्ग एक दिन सर्वहारा या निम्न वर्ग में आकर मिलता है । चूंकि औद्योगिक क्रांति के पश्चात मध्यवर्ग का विकास निम्नवर्ग से हुआ है और उसकी स्थिति निम्न वर्ग से बेहतर है ।

यहाँ पर उच्च वर्ग, मध्यवर्ग और निम्न वर्ग के विशेषताओं को देखें ।

1• मार्क्स और एंगेल्स - कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र - पृ• 67

4.1. उच्च वर्ग :

उच्च वर्ग का उदय समाज में व्यक्तिगत संपत्ति के इकट्ठा करने की प्रवृत्ति से ही हुआ है । ऐतिहासिक भौतिकवाद के परिप्रेक्ष्य में उच्च वर्ग का इतिहास देखे तो स्पष्ट होता है कि आदिम साम्यवादी युग को छोड़कर - क्योंकि इस युग में व्यक्तिगत संपत्ति इकट्ठा करने की प्रवृत्ति नहीं थी । बाकी सभी व्यवस्थाओं में उच्च वर्ग विद्यमान रहा है और उसका स्वभाव क्रमशः अन्य वर्गों प्रति कठोर होता गया है । दास प्रथा के युग में उच्च वर्ग स्वामी के रूप में, सामंतवादी युग में सामंत, जमींदार महाजन आदि के रूप में पूंजीवादी युग में पूंजीपति और उद्योगपति के रूप में विद्यमान रहा है ।

उच्च वर्ग का एक मात्र लक्ष्य है अपने स्वार्थों की पूर्ति करना । इस के लिए निम्न वर्ग की जनता का शोषण करता है । इस वर्ग का संबंध मात्र धन से है । आर्थिक व्यवस्था पर यह अधिकार जमाने का प्रयास करता है । इसके लिए वह जनता को अपने जाल में फंसाने का प्रयत्न करता है । सामंतवादी व्यवस्था में भी उच्च वर्ग की यही नीति थी । "ग्रामों की अशिक्षित अंधमूढ़ जनता की विवशता एवं विश्वास का फायदा उठाकर उच्च वर्ग हमेशा उसे फांसता रहा । गरीब, निर्धन, किसानों, मजदूरों एवं अबलाओं पर इन दिनों अनेक अत्याचार ढाये गये । सामन्तों में अभाव, स्वार्थ लिप्सा एवं निर्बलों के प्रति घृणा भाव दीख पड़ता है । गरीब जनता को फांसकर उनसे मुफ्त में श्रम लेने की प्रवृत्ति दूसरे के श्रम पर ऐश करने की इच्छा, अपने सुख में कमी आने पर निर्बलों पर क्रोध उतारने की प्रक्रिया, अधिकार प्रदर्शन के हेतु असमय किये जाने वाले अत्याचार वासना तृप्ति के लिए अबलाओं पर किये जाने वाले बलात्कार आदि का समुच्चय इस वर्ग में स्पष्टतः प्राप्त होता है ।"[1]

---

1. डॉ० सुधाकर गोकाककर - मार्क्सवाद और हिंदी कहानी -पृ. 35

पूंजीवादी समाज व्यवस्था में तो इस वर्ग के अमा-.. और अधिक हो गये । पूंजीपति या उद्योगपति मात्र यही सोचता र.. है कि किस प्रकार अपनी पूंजी की वृद्धि करें । उसे अन्य विषयों से कोई संबंध नहीं है । यहाँ तक कि अपने कल-कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों के स्वास्थ्य का ध्यान तक रखता नहीं । इस वर्ग पर पैसों का भूत सवार रहता है । धन के मोह के कारण वह स्नेहहीन और भावना-रहित होगया है । मार्क्स और एंगिल्स ने ठीक ही लिखा है - पूंजीपति वर्ग ने पारिवारिक संबंधों के ऊपर से भावुकता का पर्दा उतार फेंका है और पारिवारिक संबंध को केवल द्रव्य के संबंध में बदल डाला है ।[1]

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखने पर इस वर्ग के कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं - यह वर्ग हमेशा निम्नवर्ग का शोषण करता रहता है । इस वर्ग में धन का मोह अधिक रहने के कारण मानव मूल्यों का कोई महत्त्व नहीं होता । उसमें धन की संचय वृत्ति और कंजूसी अधिक रहती है । यह काला बाजार और भ्रष्टाचार में कोई कसर नहीं छोड़ता । धन अधिक रहने केकारण जीवन विलासपूर्ण बिताने की प्रवृत्ति और वासनामयता इस वर्ग की विशेषता है ।

4.2. मध्य वर्ग :

मध्यवर्ग पूंजीवादी व्यवस्था की उपज है । इससे पहले के व्यवस्थाओं में मात्र दो वर्ग प्रमुख रूप से थे । किन्तु पूंजीपति सभ्यता की शुरूआत जिस औद्योगिक क्रांति से हुई उसी क्रांति की उपज के रूप में मध्यवर्ग का विकास हुआ । मध्यवर्ग सामन्तवादी व्यवस्था में नहीं पाया जाता क्योंकि उस समय जमींदार तथा किसान का सीधा संबंध था । परन्तु पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था ने समाज को इतना जटिल कर दिया

---

1. मार्क्स - एंगिल्स - कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र - पृ. 39

कर दिया है कि एक मध्यवर्ग की आवश्यकता हुई जो इस जटिल व्यवस्था के संगठन के सूत्र को संभाल सके ।"[1] इस प्रकार मध्यवर्ग का जन्म आधुनिक पूंजीवादी समाज में हुआ । एक सी पाम के अनुसार - "18वीं शताब्दी के अन्त में छोटे-छोटे भू-स्वामी तथा किसान इस मध्यवर्ग से सम्बद्ध हो गये थे, परन्तु मध्यवर्ग नाम सन् 1812 ई० से पहले किसी वर्ग के लिए प्रयुक्त नहीं किया गया था ।"[2] इस प्रकार 19वीं सदी के आरंभ से मध्यवर्ग समाज में अपना एक विशिष्ट स्थान को पाकर विकसित होने लगा ।

मध्यवर्ग उच्च तथा निम्न वर्ग के बीच का वर्ग है । यह वर्ग विशिष्ट मनोवृत्तियों वाला है । "वर्तमान युग का मध्य वर्गीय व्यक्ति निश्चित और बंधी आमदनी वाला - क्लर्क अध्यापक या इसी श्रेणी का व्यवसाय करने वाला व्यक्ति है । निम्न वर्ग की अपेक्षा धन की दृष्टि से इसकी स्थिति कुछ ठीक है, किन्तु इस वर्ग की आँखें उच्च वर्ग की ओर लगी होती है । बौद्धिक विकास इस वर्ग में स्थाई असंतोष भर देता है । यही कारण है कि यह वर्ग अपनी आर्थिक चिन्ताओं से हमेशा पीड़ित रहता है ।"[3]

उपरोक्त विशेषताओं के अलावा मध्यवर्ग की कुछ अन्य महत्वपूर्ण विशेषताएं इस प्रकार है - "वर्गीय विशृंखलता, कायरता, अपनी अवस्था के प्रति असंतोष एवं अप्राप्य की तीव्र लालसा इस वर्ग की विशेषताएं हैं ।

- -

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा - हिंदी साहित्य कोश - पृ: 564
2. डा० मूलचन्द गौतम - हिंदी नाटक की भूमिका (मध्यवर्ग के संदर्भ में) पृ: 26
3. डा० सुधाकर गोकाककर - मार्क्सवाद और हिंदी कहानी - पृ: 65

परिस्थिति के प्रति असंतोष रहने पर भी इस वर्ग के व्यक्ति में समाज से लड़ने की शक्ति नहीं होती है । कायरता तो उसमें इतनी भरी रहती है कि वह अपनी छाया तक से डरता है । शारीरिक पीड़ा, पारिवारिक संकट एवं आर्थिक अभावों से दूर भागने की उसकी वृत्ति ही उसे ऊपर उठने नहीं देती । अपनी जान बचाने के लिए वह दूसरे की गर्दन फांसी के फन्दे में फंसाने को प्रस्तुत करता है । स्वार्थ साधन के लिए वह उच्च वर्ग के साथ किसी भी स्तर का समझौता कर सकता है, विद्रोह की छाती में खंजर भोंक सकता है विद्रोहियों में भेद एवं भ्रांति निर्माण कर सकता है । अत: इस वर्ग के व्यक्ति में अकर्मण्य असंकुटता एवं निराशा-जन्य का पुरूषता प्राप्त हो जाती है ।"[1]

4.3. निम्न वर्ग :

आर्थिक स्थिति पर आधारित सामाजिक व्यवस्था में निम्नवर्ग तीसरा और कनिष्ठ वर्ग है । अनादिकाल से उच्च वर्ग - स्वामी सामंत, पूंजीपति के द्वारा अनेक प्रकार से शोषित होता आ रहा है । मार्क्सवादी दर्शन में इस वर्ग को सर्वहारा कहा गया है । मार्क्स और एंगिल्स ने सर्व-हारा वर्ग के उदय के संबंध में लिखा है - जिस अनुपात में पूंजीपति वर्ग का, अर्थात पूंजी का विकास होता है, उसी अनुपात में सर्वहारा वर्ग का, आधुनिक मजदूर वर्ग का, उन श्रमजीवियों के वर्ग का विकास होता जो तभी तक जिन्दा रह सकते है जब तक उन्हें काम मिलता जाये, और उन्हें काम तभी तक मिलता है, जब तक उनका श्रम पूंजी में वृद्धि करता है । ये श्रमजीवी, जो अपने को अलग अलग बेचने के लिए लाचार है, अन्य

- -

1. डा० सुधाकर गोकाककर - मार्क्सवाद और हिंदी कहानी -पृ. 66

व्यापारिक माल की तरह खुद भी माल है, और इसलिए वे होड़ के हर उतार चढ़ाव तथा बाजार की हर तेजी मन्दी के शिकार होते है ।"[1]

अर्थाभाव के कारण सामाजिक संरचना में निम्नवर्ग की परिस्थिति बहुत ही दयनीय रहती है । इस वर्ग के लोगों का निश्चित आय जैसे मध्यवर्ग के लोगों का होता है - भी नहीं होती । चपरासी डाकिये, लाइन मैन, आदि लोगों का निश्चित आय होने पर भी यह उनके पारिवारिक निर्वाह में पर्याप्त नहीं होती । इस कारण यह वर्ग हमेशा श्रम करता रहता है । इस वर्ग में कुछ ऐसे लोग भी रहते हैं -"जिसकी आय का न कोई निश्चित साधन है और न कोई निश्चित मात्रा । इनमें ऐसे लोग भी है जिन्हें महीने में कई दिन बेकारी के साथ संघर्ष करना पड़ता है, जिनके परस्पर वार्तालाप का विषय प्राय: मजदूरी और धनाभाव होता है, मजदूरी मिलने पर ही जिनके खाने का प्रबंध होता है । जो आधुनिक नागरिक जीवन की साधारण सुविधाओं से भी प्राय: वंचित है ।"[2] ऐसे स्थिति में सामाजिक व्यवस्था में शोषित निम्न वर्ग एक जुट होकर संघर्ष करना चाहिए । जब तक अपने पर हो रहे अत्याचार अन्याय, और वर्ग वैषम्य की भावना के विरोध में यह वर्ग संघर्ष नहीं करता, तब तक उच्च वर्ग द्वारा इनका शोषण होता ही रहता है । शायद इसलिए ही मार्क्स और एंगिल्स ने कहा है कि -"सर्वहारा के पास खोने के लिए अपनी बेड़ियों के सिवा कुछ नहीं है । जीतने के लिए सारी दुनिया है । दुनिया के मजदूरों एक हो ।"[3]

निम्न वर्ग का जीवन बहुत ही दूभर रहता है । उद्योग धंधे शहर में आरंभ होने से निम्नवर्गीय किसान और अन्य दस्तकारी के काम के

---

1. मार्क्स एंगिल्स - कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र - पृ. 44
2. डा० हेमराज "निर्मम" - हिंदी उपन्यासों में मध्यवर्ग - पृ. 21
3. मार्क्स एंगिल्स - कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र - पृ. 80

करने वाले मजदूर बनकर शहर में रहने लगे । शहरों में आर्थिक अभाव के कारण मजदूर झुग्गी झोपड़ियों में रहने लगे । इनका जीवन कीड़े-मकोड़े की तरह अत्यंत हेय बनता गया । निम्न वर्ग में "शिक्षा दीक्षा से वंचित रहने के कारण घर परिवार के अभाव एवं व्यथापूर्ण जीवन के कारण से कभी स्नेह, सौहार्द के वातावरण से दूर घृणा, लांछना और लज्जा के बीच पलने के कारण कई आवारा बन गए । माँ-बाप हीन, सगे-संबंधियों से अलग बालक बचपन ही से फटकार झिड़की और घृणा के आदि बनते रहे । अतः उनमें उच्च वर्ग के प्रति एक तरह से पैदाइशी नफरत ही रही । अपंग या बेकार या श्रम से बचने वाले भिखारी बन गए जो गाली घृणा और झिड़की सहकर हाथ फैलाए रहने में माहिर हो गए । इस प्रकार शहरों में एक ओर बिजली के प्रकाश से चमकती ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएं दीख पड़ती हैं तो दूसरी ओर दिन के उजाले में भी अंधकार फैलाने वाली, गंदी, टूटी-फूटी झोपड़ियाँ दीख पड़ती हैं । बड़े बड़े शहरों में तो लाखों परिवार फुटपाथों पर पुलों के नीचे अपनी गृहस्थी बसाते और वहीं व्यतीत करते हैं । इस स्थिति के कारण शहरों के इस निम्न वर्ग के कई प्रश्न निर्मित हो गए हैं ।"[1]

कुल मिलाकर निम्नवर्ग के संबंध में हम इतना ही कह सकते हैं कि यह वर्ग हमेशा अर्थाभाव से ग्रसित रहता है । जिसके कारण वह निरंतर श्रम करता है फिर भी समुचित प्रतिफल उसे नहीं मिलता । इस वजह से वह विवशता पूर्ण जीवन व्यतीत करता है । मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार इस वर्ग में वर्ग चेतना को जागृत करके इसे अपने वर्ग शत्रु की

- -

1: डॉ० सुधाकर गोकाक्कर - मार्क्सवाद और हिंदी कहानी - पृ० 96

पहचान कराना आवश्यक है । इसके पश्चात अपने वर्ग शत्रु पूंजीपति वर्ग के विरोध में क्रांति करने के लिए तैयार होना चाहिए । तब ही निम्न वर्ग को समाज में अपने अधिकार मिल सकेंगे ।

5. डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में वर्ग चेतना :

आधुनिक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार समाज का विश्लेषण आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर होता है । समाज में व्यक्ति का स्तर निर्धारण भी आर्थिक स्थिति के अनुसार ही होता है । वर्तमान मानव समाज को आर्थिक दृष्टि से तीन भागों में विभाजित किया गया है । इन तीन भागों में जिस वर्ग के पास उत्पादन के उपकरण और अतिरिक्त आय है, वह उच्च वर्ग है । जिसके पास श्रम के सिवा और कुछ नहीं है और वह अपने श्रम पर ही विश्वास करके उसे बेच कर अपनी जीविका का प्रबंध कर लेता है वह निम्न वर्ग है । और इन दोनों के बीच में जो व्यक्ति रहते है वे मध्यवर्ग के अंतर्गत आते है । मध्यवर्ग का व्यक्ति निम्नवर्ग से अधिक और उच्च वर्ग से कम आर्थिक स्थिति में रहता है । उसके पास जीविका चलाने की मात्र गारंटी है और अन्य सुविधायें उसे आकाश कुसुम के समान है ।

डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में तीनों – उच्च, मध्य, और निम्न – वर्गों का चित्रण हुआ है । डा० माचवे बहुमुखी प्रतिभा शाली रचनाकार है वे अपने उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से देखते है । प्रत्येक वर्ग के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिकसमस्याओं को बहुत यथार्थ के साथ चित्रण किया है । हाँ, यह सच है कि प्रत्येक उपन्यास में तीनों उच्च, मध्य और निम्न वर्गों

का चित्रण नहीं हुआ है। कुछ उपन्यासों में उच्च वर्ग का चित्रण हुआ है तो कुछ में मध्य या निम्न वर्ग का । कुछ ऐसे उपन्यास भी माचवे जी ने लिखे है जिनमें इन तीनों वर्गों के समस्याओं से ऊपर उठकर नारी समस्या को केन्द्र में रखा है - जैसे 'एकतारा,' 'आभा,' 'लक्ष्मीदेवी' आदि उपन्यासों में पुरुष प्रधान समाज में नारी की स्थिति का सुंदर अवलोकन किया गया है । स्त्री समस्या प्रधान उपन्यासों के माध्यम से माचवे जी स्पष्ट करना चाहते है कि पुरुष चाहे वह उच्च वर्ग का हो या फिर मध्यवर्ग का या निम्नवर्ग का, वह स्त्री के प्रति एक समान दृष्टि ही रखता है । इस प्रकार समाज में स्त्री की समस्याएं सभी एक प्रकार के होने के बावजूद प्रत्येक वर्ग में कुछ नारी समस्याएं विशिष्ट होते है जो अन्य वर्गों के स्त्री में नहीं होते । जैसे उच्च वर्गीं महिला समाज में व्याप्त समस्याएं निम्नवर्ग में नहीं होती हैं ।

वस्तुत: प्रभाकर माचवे के द्वारा लिखित उपन्यासों में वर्ग चेतना का चित्रण किस प्रकार हुआ है यहाँ पर विवेचन करना है । इस लिए उपन्यासों के आधार पर उच्च वर्ग मध्यवर्ग तथा निम्न वर्ग का चरित्र चित्रण किस प्रकार हुआ है देखना समुचित होगा ।

5·1· उच्च वर्ग :

उच्च वर्ग सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से सम्मानित और संपन्न वर्ग है । एक प्रकार से समाज के आर्थिक ढाँचे का संचालन इसी वर्ग के हाथ में रहता है । जनसंख्या की दृष्टि से कम होने पर भी प्रशासन व्यवस्था पर उनका वर्चस्व होता है । हिन्दी उपन्यासों में उच्च वर्ग का चरित्र चित्रण प्रेमचन्द युग से बहुत ही सशक्त रूप में होता रहा है । प्रेमचन्द के युग के उच्च वर्ग "सामंत" के रूप में व्यवस्थित था । इस जमाने

के उपन्यासों में सामंतवादी दुर्गुणों का व्यापक रूप से चित्रण हुआ है । इस काल में सामंतवादी संस्कृति समाप्त होने और पूंजीवादी सभ्यता आने के कारण सामंतों का चित्रण कम और पूंजीपतियों का चित्रण अधिक होने लगा । इस काल में पूंजीपतियों के द्वारा किये जाने वाले शोषण, निम्नवर्ग पर अत्याचार आदि का समग्र चित्रण उपन्यासों में हुआ है ।

डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में भी उच्च वर्ग का चित्रण हुआ है । हां यह बात सही है कि इनके उपन्यासों में उच्च वर्ग का समग्र अनुशीलन नहीं हुआ है । इस का कारण यह है कि माचवे जी मूलत: वैचारिक रचनाकार है । वे कथ्य से ज्यादा विचार को प्रधानता देते है । अपने विचारों को पाठक तक पहुंचाने के लिए उपन्यास शैली को चुना है न कि उपन्यास लिखने के लिए विचारों को कथ्य रूप दिया है । इस कारण माचवे जी के उपन्यास साधारणत: लघु हैं । इस प्रकार लघु उपन्यास लिखने का कारण स्वयं बताते हुए वे कहते हैं कि --"मैंने अब तक पांच उपन्यास लिखे है । 1950 से 1965 तक क्रम से -"परन्तु", "एकतारा", "द्वाभा", "सांचा" और "जो" । मेरे मन में कई बार और बड़े उपन्यास लिखने की बात भी उठी । पर अधिकतर मैंने कई अध्याय लिखकर फाड़कर फेंक दिए - क्योंकि मेरे मन का पुरा समाधान नहीं हुआ ।"[1] इनके उपन्यास लघु होने पर भी उच्च वर्ग का जो चित्रण इनके उपन्यासों में विहंगम दृष्टि से हुआ है वह अद्भुत है । उच्च वर्ग की सभी खामियों जैसे स्वार्थपरता, अन्याय, विलासी आदि को बहुत ही सुंदर ढंग से चित्रण किया है ।

- -

1. डा० प्रेमभटनागर - हिंदी उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य : पृ: 264
(लेखक - का उपन्यासकार मैं: प्रश्नों का लिखित उत्तर: 7-6-68)

वस्तुत: डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में चित्रित उच्च वर्ग में जमींदार, पूंजीपति, सेठ और मिल मालिक आते है जो निम्न वर्ग की जनता का रक्त चूसते है । उनका शोषण अमानवीय है ।इस वर्ग के पात्रों का चित्रण देखने से पता चलता है कि वे धन प्राप्त करने के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार हो जाते है । चाहे मजदूरों के प्राण ही क्यों न जाय । उनके लिए कोई फर्क नहीं पड़ता । इस प्रकार उच्चवर्गीय संस्कृति और सभ्यता का चित्रण हम माचवे जी के उपन्यासों में देख सकते हैं ।

डा० प्रभाकर माचवे का प्रथम उपन्यास है - "परन्तु" । इस उपन्यास में जमींदार बाबू निखिल सेनगुप्त, उनके पुत्र अमिय, प्रभातचंद्र उनकी पुत्री अनीता, सेठ लक्ष्मीचन्द आदि उच्च वर्ग के पात्र हैं । इन पात्रों के माध्यम से लेखक ने उच्च वर्गीय कुसंस्कृति का पर्दा फाश किया है । उच्च वर्ग हमेशा सुविधाभोगी जीव है । यह उसकी विशेषता है । वह न दूसरों की परवाह नहीं करता है और न दु:ख दर्द ही बांटता है । वह मात्र अपने आपमें लीन रहता है । इसी का चित्रण इस उपन्यास में चित्रकार अमिय, जो जमींदार बाबू निखिल सेने गुप्त के पुत्र है, के माध्यम से किया गया है । वह सुविधाभोगी है ।इसलिए वह न कला में दुख का चित्रण करना चाहता है और न ही दुनिया के दु:ख केबारे में सोचना चाहता है । वह कला के बारे में इतना ही सोचता है कि "दुनिया में दु:ख बहुत है, गन्दगी बहुत है, सस्तापन बहुत है । अत: कला के सौन्दर्यलोक में चलो जहां सुख ही सुख है, दुख है भी तो वह सुख से समुतुलित है । सब कुछ साफ सुथरा, मन की मौज के अनुसार राजसी और समृद्ध है । वहां कुछ कमी नहीं है, क्योंकि वह स्वप्नलोक है कलाकार की "आत्मा" की हाथी दांत की बुर्जों से संरक्षित "यूटोपिया" है ।"[1]

---

1. परन्तु - पृ॰ 79

इस प्रकार उच्च वर्ग के लोग दुःख के नाम मात्र से पलायन करते हैं उसके पास नहीं जाना चाहते हैं । हमेशा सुविधाभोगी जीवन को व्यतीत करना चाहते हैं । इस उपन्यास की पात्र अनीता भी सुविधाभोगी जीव है । वह जमींदार प्रभात चन्द्र की पुत्री है तथा यूनिवर्सिटी में पढ़ती है और संगीत में रुचि रखती है । इसका परिचय अमिय से होता है जो एक चित्रकार है । एक दूसरे की अभिरुचियों के कारण वे परस्पर आकर्षित होते है । अमिय सोचता रहता है कि वह अनीता से विवाह करें किंतु "ब्याह शादी और चक्की चूल्हे के चक्कर में न पड़ने तथा निष्काम प्रीति का आदर्श रखने वाली अनीता, अपने परिचित अमिय को छोड़ कर अचानक लखपति के बेटे से अकस्मात शादी कर लेती है । इस प्रकार "अर्थ" ने आदर्श की एक न चलने दी और छिपी काम वृत्ति ने उसके विवाह न करने के संकल्प को शीघ्र ही लड़खड़ा दिया ।"[1] अमिय की स्थिति भी अनीता से भिन्न नहीं है । वह भी सेठ लक्ष्मीचन्द जैसे पूंजीपतियों के कला के व्यावसायिकरण करने संबंधी धारणाओं को सुनकर कला के लिए कला के आदर्श को तिलांजली देकर सेठ जी के पब्लिसिटी का प्रमुख मैनेजर होने के सपने देखता है ।

ग्रामीण इलाकों में जमींदार लोग निम्नवर्ग की जनता को शोषण के साथ साथ अपनी वासना कीपूर्ति भी कर लेते हैं । जमींदारों के पास अर्थ का दंभ रहने के कारण वे अपनी इच्छा के अनुसार गांवों में मनमानी करते हैं । किसी भी युवती को अपने साथ ले जा सकते हैं । इस उपन्यास में एक ग्रामीण युवतीहेमो अबोध के साथ साथ निर्धन परिवार से सम्बद्ध है, उस की एक निकम्मे जमींदार के लड़के से शादी कर दी जाती है । वह कुछ ही दिनों के बाद मर जाता है । हेम विधवा हो जाती है ।

- -

1• डा० सत्यपाल चुघ-प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि-पृ•792

हेम विधवा हो जाती है । हेम अपने दुर्भाग्य के संबंध में सोचना भी नहीं चाहती । "उसका पति, जिसे वह पूरी तरह से देख भी न पाई थी, एक उचक्का, बेकार, निठल्ला जमींदार का बिगड़ैल लड़का, वह जिया-मरा, एक सा था पर सिन्दूर उसके ललाट से पुंछ चुका है, चूड़ियाँ फोड़ी जा चुकी है । माँग अब सूनी पड़ी है और आजीवन उसे उसी एक निकम्मे के नाम की याद में अपना यौवन अपनी आकांक्षाएं, अपनी कुंठाओं की वंचनाएं लेकर साँसों का बोझा ढोना है ।"[1] इस तरह जमींदारों की हवस पूरी करने के लिए निम्न वर्गीय स्त्री को अपनी मान मर्यादा को न्योछावर करना पड़ता है । यह उच्च वर्गीय कुसंस्कारों का मात्र एक उदाहरण है ।

शहरी उच्च वर्ग के लोग भी जमींदारों से कम नहीं है वे भी अपनी काम वासना की पूर्ति के लिए जिस स्त्री को देखें उस स्त्री को अपने पास आने के लिए विवश करने का सामर्थ्य रखते है । "परन्तु" उपन्यास के सेठ लक्ष्मीचन्द ऐसे ही है । जब हेम अपने मामा के साथ कलकत्ता आती है और रास्तेमें सेठ जी बंगले के पास थोड़ी देर विश्राम के लिए अपने मामा के साथ ठहरती है तभी सेठ जी की निगाह हेम पर जाती है और वे अपने नौकर (सेक्रेटरी) सरजूपाण्डे को सूचना देते है कि किसी तरह उस लड़की को ले आओ । उसके बाद सेठ जी के यहाँ बच्चों की देखभाल करने की नौकरी के लिए आर्थिक विपन्ना हेम तैयार होती है । इस प्रकार वह सेठ जी के जाल में फंस जातीहै । सेठ जी ने उसके श्रम को ही नहीं, सतीत्व को भी जबरदस्ती खरीद लिया और यौवन के विकास के प्रथम पोर में ही उस पर "तुषारपात" हो गया ।[2] इस प्रकार युवतियाँ

- -

1. परन्तु - पृ. 90
2. डा० सत्यपाल चुघ: प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि-पृ. 79।

का जिंदगी नाश करने वाले ये पूंजीपति अपने आपको दोष-मुक्त मानते हैं। कर्म सिद्धांत को अपने अनुसार मोड़कर व्याख्या करते हैं। सेठ लक्ष्मीचन्द का नारी जाति के प्रति कैसा अभिप्राय है देखिए - "सेठ जी का विश्वास है कि ये (हेमा) ऐसी सब युवतियाँ उनके सुखोपभोग के लिए पैदा हुई हैं। उन्हें कृतज्ञ होना चाहिए कि एवज में वह उन्हें रुपये दे देते हैं। अन्य लोग तो वह भी नहीं देते। इस प्रकार बलात्कार करा लेना जैसे इस वर्ग की अनाथा दरिद्रा युवतियों का जन्म सिद्ध अधिकार है।"[1] इस प्रकार के विचार उच्च वर्ग के मन में रहना कल्पनातीत है। इस वर्ग के लिए दो ही विषय प्रमुख हैं - एक धन दूसरा - काम तृप्ति। "परन्तु" के सेठ जी जो अनेक प्रकार के समाज सेवी कार्य दिखावा के लिए करने पर भी उसकी छवि मात्र धन लोलुप और काम पिपासी के रूप में उभर कर सामने आती है। "वह राष्ट्रीय नेता, सरकार का सहायक, भगवान-भक्त, संगीत कला प्रेमी सब कुछ है और वस्तुतः कुछ भी नहीं" अर्थ और काम ही एक मात्र उसके काम के है। अपने पैसे से वह खद्दधारी सिद्धांतवादी सम्पादक को खरीद सकता है और कला का अभिमान करने वाले कलाकारों को भी। अपने नित्य नूतन का प्रेम सिद्ध करने के लिए यथानाम चंचल स्वभाव वाले सेठ लक्ष्मीचन्द्र किसी भी नारी तक हाथ बढ़ा सकते हैं क्योंकि सब युवतियाँ उनके सुखोपभोग के लिए पैदा हुई हैं। फिर भी वह इतने इज्जतदार आदमी बने रह सकते हैं कि महान देश भक्त और त्यागवीर श्री नित्यानन्द तथा स्वामी अद्वैतानंद उनसे प्रभावित हुए रहते हैं।"[2] ऐसे पूंजीपतियों के हाथों में स्वतंत्रता आंदोलन की बागडोर जाने के कारण ही शायद राष्ट्रीय एकता का आदर्श खोखला हुआ है। माचवे जी

- -

1. परन्तु - पृ. 99

2. डा० सत्यपाल चुघ - प्रेमचन्दोत्तर - उपन्यासों की शिल्प विधि-पृ. 792

में इस उपन्यास का एक पात्र अविनाश के यही विचार व्यक्त करता है। अविनाश कहता है कि "हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के मूल में ही यह पूंजीवादी धुन लगा हुआ है। इसने हमारे राष्ट्रीय एकता के आदर्श को खोखला और बाहर से खंडित कर दिया है।"[1]

उच्च वर्ग की एक और विशेषता को माचवे जी सेठ लक्ष्मीचन्द के माध्यम से व्यक्त करते है। उच्च वर्ग के लोग धन को खर्च करना नहीं चाहते श्रम करने पर भी मजदूर को मजदूरी नहीं देना चाहते और उसके लिए बहुत ही चालाकी से बातें करते है। सेठ अपने पूर्वजों के चित्र बनवाना चाहता था। वह अमिय के मित्र से बातकरता है, पर मेहनत की रकम देना नहीं चाहता। इसलिए वह उस चित्रकार से कहता है - "तस्वीर में कौन सी मेहनत पड़ती है। यह हिसाब का काम है क्या ? यह तो मन की मौज का काम है। आप यह नहीं देखते कि मेरी बैठक में आपके नाम का बना पोर्ट्रेट टंगा होने पर कितना बड़ा विज्ञापन हो जाता है। आपको घर बैठे सैकड़ों आर्डर जो मिलेंगे। रही बात दाम की सो हमारे कल्लू मियाँ पेंटर आजकल यहाँ नहीं है, नहीं तो ये काँच पर फूलों के गमले दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह रुपये में बना कर दे गये थे।"[2]

"परन्तु" उपन्यास के सेठ लक्ष्मीचन्द्र के समान ही "दर्द के पैबन्द" नामक उपन्यास में सेठ फूल चन्द है। सेठ लक्ष्मीचन्द को जो शौक है वैसे ही शौक सेठ फूलचन्द को भी है। जेब से एक कौड़ी भी जाने नहीं देते और समाज में सम्मान पाने की इच्छा रखते हैं। साहित्य सेवा करना चाहते हैं - शौक के लिए । इसलिए "भावना" नामक पत्रिका भी छपवाते

- -

1. परन्तु - पृ. 113

2. परन्तु - पृ. 117

है और स्वयं संपादक हैं । यह सेठ ऐसा व्यक्ति है अपने बाप की सम्पत्ति जो अपने और बहिन के बीच बाँट दी गई है, पूर्ण रूप से स्वयं हड़पना चाहता है । इसके लिए वह अपनी बहन का ब्याह भी नहीं करवाता है । सुता से अपने बारे में सेठ फूलचंद जी कहते हैं -"हमारे कई काम होते हैं । छापाखाना है । तम्बाकू का कारखाना है । कपड़े की दुकान है । एक भाई ब्याज वगैरह पर कर्ज देता है, गहने गिरवी रखते हैं । मुझे पिताजी से बहुत रुपया बहिन और मेरे बीच में ये जायदाद बाँट दी है । मैं चाहता हूँ वह शादी करके चली न जाये, तभी सारा पैसा मुझे मिले । पर वह विरह से सूखकर काँटा हो रही है । अपने आपको बड़ी साहित्यिका समझती है । टलती ही नहीं इस संसार से.....।"[1] वस्तुत: धन का भूत न पारिवारिक नाते रिश्ते देखता है और न ही पराये लोगों को । पूंजी-पतियों का जो एक मात्र लक्ष्य है पूंजी को सुरक्षित रखना और कमाना । इसके लिए यहाँ सेठ जी अपनी खास बहिन की वैवाहिक जीवन का ही बलि देते हैं । उनकी बहिन की भी वही इच्छाएं वहीं भावनाएं है जो अन्य व्यक्तियों में होती है । किन्तु सेठ जी द्वारा इन सब को अनदेखी करते हुए उसकी मौत का इन्तजार करते रहना मानव जाति पर कलंक है । जायदाद के लिए पारिवारिक सदस्य की मौत का इन्तजार करना उच्चवर्ग द्वारा ही संभव है ।

"एकतारा" प्रभाकर माचवे का एक लघुकृत उपन्यास है । जिसमें नायिका "तारा" सेठ की एक मात्र संतान है और उसकी माँ का बचपन में ही देहांत हुआ । तारा विद्रोही स्वभाव की थी । वह स्वतंत्र व्यवहार वाली थी । किन्तु घर में उच्च वर्ग के मर्यादानुकूल स्त्रियों को बाहर घूमने की स्वतंत्रता नहीं थी । उन्हें घर के चार दिवारों के बीच

- -

1· दर्द के पैबन्द - पृ· 50

में ही रहना पड़ता है । इस उच्चवर्गीय संस्कार के कारण तारा के भीतर स्थित रचनात्मक कार्यों को कोई परवा नहीं है । इसकी मानसिक स्थिति को समझते हुए तारा की सहेली सिन्धु तारा को एक पत्र लिखती है । जिसमें खलील जिब्रान का "मसीह का बगीचा की कविता" लिख कर भेजती है - कविता इस प्रकार है -

1. "काश मैं एक अच्छी बाढ़ही होता, झुकी और पत्रों से भरी, जिसमें आने जाने वाले पत्थर ही फेंकते । मुझे रंज है तो इसका कि मैं एक भरा हुआ सरोवर हूँ और मेरे पास कोई प्यासा ही नहीं आता ।"[1]

2. काश मैं एक सूखा ठूंठा होता, जिसमें अंकुराने की कोई क्षमता ही नहीं हो परन्तु मैं तो एक फलों से लदा वृक्ष हूँ जिसकी छाया में आज तक कोई पथिक ही नहीं आया, जो भूखे से मेरा एक आध टपका हुआ फल खाता ।"

3. "काश मैं काठ होता तो, किसी से कोई शिकायत और गिला तो न होती । परन्तु मै उस स्वर्ण की सुन्दर वीणा की तरह हूँ, जिसे आज तक किसी ने नहीं बजाया, जिसके तार अछूते हैं जिसका मालिक बहरा है और उसके हाथ कटे हुए हैं ।"

खलील जिब्रान की कविता की तरह ही उच्चवर्ग के संस्कारों के कारण कई स्वतंत्र व्यक्तित्व रखने वाली युवतियाँ समाज में नहीं आ पाती । विचित्र बात है कि उच्च वर्ग के पुरुष कहीं भी कभी भी घूम सकते है । दूसरी स्त्रियों से संबंध रख सकते है किन्तु अपने घर परिवार की स्त्रियों को घर से बाहर जाने नहीं देते ।

- -

1. एकतारा - पृ. 19

पूँजीपति अपने व्यापार के व्यवहार मे किसी को नहीं मानते । व्यापार को सर्वोच्च मानते हैं । अपने परिवार के लोगों को भी व्यापार की खातिर छोड़ सकते हैं । 'एकतारा' में "तारा" समाजवादी विचारधारा से आकर्षित होने के कारण क्रांतिकारी दल से मिलकर आती है । जिसके परिणाम स्वरूप तारा के घर पर पुलिस ने एक दो बार छापे मारा और सेठ जी को सचेत किया कि यदि उनकी बेटी "तारा" क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेगी तो ठीक न होगा ।सेठ जी को भय हुआ की जो अंग्रेजी सरकार से माल उत्पादन करने से आर्डर्स मिलने वाले है यदि न मिले तो बहुत घाटा होगा । इसलिए सेठ जीलेअपनी पत्नी के मत के अनुसार "तारा" को अपने व्यापार की खातिर घर से निकाल दिया । यह उच्चवर्गीय संस्कृति है जिसमें धन के मोह में नाते रिश्ते देखे नहीं जाते ।

"तारा" क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण अंग्रेज सरकार द्वारा गिरफ्तार हो जाती है । जिस जेल में तारा रहती है उसी जेल में स्वतंत्रता आन्दोलन की कई स्त्रियां भी थी जो जेल आना उनके लिए एक यात्रा थी । उन स्त्रियों को बाहर से भोजन के साथ साथ अन्य सुविधाएं भी उपलब्ध होती थी । वे उच्च वर्ग के स्त्रियां होने के नाते अपना आर्थिक दंभ को वहां पर बताते थे । अन्य स्त्रियां उनके धन के मोह में उनके इर्द-गिर्द घूमा करती थी । तारा को जेल की दुनिया में आकर लगा कि - "आदमी आदमी के रिश्ते आर्थिक और आज केवल आर्थिक है, जो जयंत कहता था, वह बहुत अंशों में सही था ।"[1] "परन्तु" उपन्यास के अविनाश भी इसी अर्थ में कहता था कि पूंजीवादी लोग राष्ट्रीय एकता के आदर्श को खोखला बना दिये है । "तारा" जेल में रहकर देखती है कि उच्चवर्गीय मिरी आजादी की लड़ाई और उनके इर्द गिर्द घूमने वाले उनके चन्दे किस

---

1. एकतारा - पृ. 42

प्रकार धन पर लट्टू हो गये है । तारा कहती है कि "मैं इस जेल में आकर साफ देख रही हूँ कि प्रेम भी बिकी की चीज बन गया है । जैसा दाम वैसा दूध, सस्ता चाहोगे तो और पानी मिला दिया जाएगा । वैसे ही यहाँ प्रेम का हिसाब है । अमीर से सब प्रेम दरसाते है गरीब के प्रति दिखाते समय कुछ पानी मिला दिया जाता है ।"[1] इस प्रकार उच्चवर्ग के लोग धन के दंभ पर प्रेम का भी पण्य परन्तु में बदल देना चाहते है । ठीक इसी तरह के विचार "डामा" उपन्यास के एक पात्र निर्मल अपने डायरी में लिखता है । वह उच्च वर्गीय युवक है । "प्रेम" को वह भी आर्थिक दृष्टि से देखता है । वह अपनी डायरी में लिखता है - "सचाई यह है कि आदमी के प्रेम का बेरोमीटर आर्थिक दबाव के सहारे चढ़ता उतरता है अ और प्रेम की पवित्रता का ढिंढोरा पीटा जाय, श्री और मेरे बीच में अमिता मुझे ही इसलिए पसन्द करेगी कि करेगी कि मैं घर का बच्चा हूँ, मकान जायदाद है, बैंक अकाउंट है, रहन-सहन आलीशान है और मेरे लिए जैसी अमिता, वैसी केतकी - फर्क क्या पड़ता है ? सभी स्त्रियाँ एक ही होती है ।"[2] उच्च वर्ग में पैसों का घमंड अधिक होता हैं । वह पैसे के माध्यम से कुछ भी खरीदना चाहते हैं । यहाँ तक की जो प्रेम है, मानवीय मूल्यों को उजागर करते हुए मानव को उच्च स्तर पहुँचाता है, उसे भी यह वर्ग पैसों से खरीदना चाहता है । यह वर्ग हमेशा धन जुटाने के चक्कर में रहता है न इसे किसी का दुःख है और न संवेदना । धन जुटाने के चक्कर में रहता है, न इसे किसी का दुःख है और न संवेदना । बस, धन कमाना इसका एकमात्र लक्ष्य है । युवक निर्मल अपनी डायरी में लिखता है - "कमाने की राह । मेरे लिए वह सीधी खुली है । आज

- -

1· एकतारा - पृ· 44

2· डामा - पृ· 54

फर्स्टक्लास एम.एस-सी., कहेगा, कम पी सी एस परसों डिप्टी कलक्टरी या बिजिनेस । पिताजी का रोब काफी है और माहवार बारह सौ से ऊपर आय घर बैठे आ जायेगी । पर बंगाल का अकाल पीड़ित··छोड़ो भी उसे । मै अमिता की तरह सेंटिमेंटल थोड़े ही हूँ । अकाल पर रोते बैठना स्टूपिडता है । वह श्री को कहती है । मेरे लिए परीक्षा है और ये हाइसेन्स वर्ग, फीके जीन्स और भाभा ।"[1] इस प्रकार उच्च वर्ग का युवक समाज के प्रति लापरवाह होता है वह अपना कारियर देखता है न की सामाजिक विभिषिका । उच्चवर्ग के युवक को सिर्फ अपने विलासी जीवन तथा उसे क्या क्या खरीदना चाहिए आदि की ही सोच सताती रहती है । सामाजिक कार्यों में भाग लेना तो दूर उसके बारे में कभी सोचता तक नहीं है ।

"दूत" उपन्यास में सेठ धन्नोमल के माध्यम से उच्च वर्ग में व्याप्त कामुकता तथा निम्न जातियों के प्रति अछूती भावना का उजागर किया गया है । सेठ धन्नोमल विलासी जीवन बिताने वाले है । "उन्होंने तीन चार बीबीयाँ की । एक के मरने के बाद दूसरी ।"[2] उनका एक लाडला बेटा था श्याम बाबू । सेठ जी के घर में एक काम करने वाली नौकरानी रहती थी जिसका नाम था कलिया जो मंदिर में नाचने का काम भी करती थी । सेठ जी कलिया पर लट्टू हो गये । एक दिन श्याम बाबू गाँव लौट आया जो शहर में पढ़ाई के लिए गया था । वह कलिया पर आसक्त हो गया और उसे अपने वश में कर लेना चाहता था किन्तु कलिया श्याम बाबू से कहती है --"आपके बापू हैं न, उन्हें बुढ़ापे में ऐसा नहीं करना चाहिए । वे मुझ से बहुत कुछ कराते है, जो उन्हें नहीं करना

- -

1. भाभा - पृ. 53
2. दूत - पृ. 51

चाहिए ।"[1] श्यामबाबू कहता है कि मैं माँ से कह दूं, तो कलिया कहती है --"नहीं नहीं बाबू ऐसा अन्याय मत करना । सेठ जी से मैंने बहुत रुपये लिये है । मुझे उनका कर्ज चुकाना है । ऐसे ही तो सेवा टहल से कर्ज चुक जायेगा । वैसे भी मेरे बाप के समान बराबर है ।"[2] माचवे जी लिखते है "बूढ़े सेठ धन्नोमल को बेटे की हरकतों का पता न हो, ऐसी बात नहीं थी। पर वे सोचते थे कि छुट्टियों के बाद वह फिर शहर चला जायेगा । इस तरह की बातें जमींदार साहूकार परिवारों में होती ही रहती थी । उन पर क्या ध्यान देना । सेठानी बोशीनगरी की तरह सब देखती रहती।"[3] एक दिन श्याम बाबू ने अपने पिता के सामने कलिया से ब्याह करने का प्रस्ताव रखा । बाप बहुत आग बबूला हुआ --"तुम्हारी मति मारी गई है ? यह नीच जात नचनी और हमारा अग्रवाल वैश्यों का बड़ा उचा वंश । कोई जोड़ है भला ? यह नहीं हो सकता । मैं मर जाऊं तो फिर उसे घर में लाना ।"[4]

सेठ धन्नोमल, श्यामबाबू और कलिया के इस त्रिकोणीय वासनायुक्त प्रेम प्रकरण से स्पष्ट होता है कि उच्च वर्ग अपनी वासना को तृप्त करने के लिए पैसों का जाल बिछाता है चाहे वह कर्जों के रूप में हो या नौकरी के रूप में हो । दूसरी बात यह है कि इस वर्ग की काम-क्रियाओं में नैतिक मूल्यों की मर्यादा नहीं है । पिता और पुत्र एक निम्न जाति की स्त्री को अपना शिकार बनाते है । तीसरी बात यह है कि जब श्यामबाबू कालिया को ब्याह करना चाहता है तो सेठ जी सख्त विरोध इस कारण करता है कि वह एक निम्न जाति अछूत की स्त्री है और अपना उच्च संस्कार वाला परिवार है । सेठ जी अपने पुत्र को यह भी धमकी भी देता

- -

1,2, 3. वही - पृ. 53

4. वही - पृ. 54

है कि वह (सेठ जी) मरजाने के बाद ही उसे घर में लाना । इस संदर्भ में डा० राम विनोद सिंह का वक्तव्य महत्वपूर्ण है - वे लिखते है कि -"कुलीन संस्कृति सुविधाभोगी संस्कृति है । इसलिए इस संस्कृति में पलने वाले व्यक्ति भंगी युवतियों या दूसरे वर्ग की उपेक्षित जातियों की औरतों के साथ सहवास करने में कभी अपनी मर्यादा की हानि नहीं समझते है । उन औरतों के साथ शारीरिक खेल में उनका जन्मना उच्चवर्गीय संस्कार कभी व्यवधान उपस्थित नहीं कर पाता । लेकिन उस सहवास के परिणाम को स्वीकारने के अवसर पर उनका जातीय अभिमान या वर्गीय संस्कार उभर आता है ।"[1]

गांव में बाढ़ आने का कारण भी कलिया ही मानते है, गांव का मुखिया कहता है --"कुछ लोगों का ख्याल है कि गांव में जो बाढ़ आई वह उस (कलिया) जैसी पापिनी की वजह से ही आई । कुछ बड़ी जातवाले उसे पानी में बहा देने वाले थे । पर दादा ने रोका ।"[2] दोपदी हंसकर बोलती है --"गांव का यह अच्छा नियम है । खुद ही बुराई करें और उसके शिकार को अपनी विपत्ति का कारण समझें । खुद ही गंदगी फैलायें और सफाईवालों को अछूत समझें । यह विचित्र न्याय है ।"[3]

"सांचा" औद्योगिकरण सभ्यता के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुए कल-कारखानों के जीवन पर आधारित उपन्यास है । इसमें मिल-मालिकों द्वारा मजदूरों का शोषण किस प्रकार होता है और ग्रामीण किसान मजदूर इस मिल के कारण शहर की ओर किस प्रकार आकर्षित होते है बहुत ही यथार्थ के साथ चित्रण किया गया है । बेनी नामक ग्रामीण माधिया नामक अपने ही गांव के व्यक्ति के साथ इन्दौर जाने के लिए खाना होता है । बीच

- -

1. डा० रामविनोद सिंह - आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास -पृ. 112
2., 3. वही - पृ. 29

में दोनों उज्जैन में उतरकर काली माता का दर्शन कर लेते हैं और वहाँ अनेक मंदिरों में भी जाते हैं। एक जगह देवता की चढ़ाई में से चोरी से सिक्के माँग्या लेता है किन्तु अबोध ग्रामीण केशो इसे महापाप समझता है। तब चालाक माँग्या केशो को बताता है कि शहर में पूँजीपति धन इकट्ठा कैसे करते है। उसने सहज हल्के भाव से कहा — "इसमें कौन सा पाप है। केशो तुम बुद्धू के बुद्धू रहे - शहर में तो यह आम रिवाज है। एक आदमी दूसरे की जेब के पैसे अपनी जेब में कैसे ले आए। उसकी आँखों में धूल फैंककर हाथ की सफाई से यही तो सब विद्या यहाँ पढ़ाई जाती है। जो जितनी चतुराई से दूसरे की जेब से पैसा निकाल सकता है, उतना ही बड़ा व्यापारी, उतना ही बड़ा वकील - बारिस्टर, उतना ही बड़ा डाक्टर कहलाता है। यहाँ पढ़ाई - लिखाई सब इसी बात की होती है। समझे।"[1] पूँजीपति को प्रेम है उस धन से, मोह है सम्पत्ति का, अन्य सभी संबंध उसकी दृष्टि में तुच्छ है। मजदूर उसके लिए पूँजी निर्माण का साधन है, समाज वस्तु को खरीदने का आधार है। अगर मजदूर विद्रोह करेगा, समाज प्रगति की माँग करेगा तो उसके पास लड़ाई, अकाल, साम्प्रदायिकता एवं कृत्रिम तंगी निर्माण करना आदि हथियार हाजिर है। इनकी सहायता से उभरते विरोध एवं उगते विद्रोह को वह कुचलता आया है। समाज को हमेशा अपने अधीन रखने के लिए वह नित्य नये हिकमतों की खोज में रहता है। वह साम्प्रदायिकता दारिद्र्य, दैन्य, अशिक्षा, अज्ञान, अन्धश्रद्धा आदि को खड़ा करके, खाद देकर उगाता - कुचलता आया है। विज्ञान की प्रतिदिन बढ़ती प्रगति ने उसकी साम्राज्यवादी वृत्ति को स्पष्ट कर दिया है।[2] ठीक यही अभिप्राय साँचा उपन्यास में मनोहर व्यक्त करता है - "तो दंगा करता कौन है? हिन्दू कहते हैं, मुसलमान करते है, मुसलमान

- -

1. साँचा - पृ. 25

2. डा० सुधाकर गोकाककर - मार्क्सवाद और हिंदी कहानी - पृ. 45

कहते है, हिन्दू करता है, कांग्रेसी कहते हैं - ब्रीज करता है । मैं समझता हूँ - सब झूठ कहते हैं । दंगा कराने वाला पैसा है ।"[1]

प्रभाकर माचवे जी ने पूँजीपति देश अमरीका में व्याप्त रंग भेद समस्या पर मन को झकझोर देने वाला उपन्यास लिखा है । उपन्यास का नाम "जो" है । "जो" नीग्रो है और इस उपन्यास का नायक है । इस उपन्यास में उपन्यासकार ने पूँजीवादी समाज में व्याप्त पारिवारिक विघटन का एक दृश्य खींचा है । जिसके माध्यम से स्पष्ट करना चाहता है कि पूँजीवादी देशों में वृद्ध माता-पिताओं की देखभाल स्वयं संतान ही नहीं कर पा रही है । नौजवान अपने रोमान्स में डूबते जा रहे है और उनके माता-पिता, जो वृद्ध है, जीवन के अन्तिम दिनों को बहुत ही यातनाओं के साथ काट रहे है । यह समस्या पूँजीवादी देशों की विकराल समस्या है । जिसके कारण मानवीय मूल्यों का ह्रास होना पारिवारिक संबंध मात्र दैहिक हो जाना हो गया है । "जो" उपन्यास में एक वृद्धा लक्ष्मण चतुर्वेदी से योगा सीखती रहती है । वह वैंकटरामन से लक्ष्मण चतुर्वेदी के संबंध में कहती है कि -"यह कहते है कि इनके पास पढ़ने आने वाली बूढ़ी स्त्रियाँ, बूढ़े लोग ज्यादा है । यह इस मुल्क की बड़ी समस्या है । घरों में इन बूढ़ों को स्थान नहीं क्या करें ?"[1]

"तीस चालीस पचास" उपन्यासों में भी एक जगह उपन्यासकार माचवे जीने पूँजीवादी अमरीकी देश की "लड़ाई करवाओ धन कमाओ" नीति का पर्दाफाश किया है । पूँजीवादी समाज में दूसरों से कोई मतलब नहीं रहता । अपना व्यापार किस प्रकार चल रहा है उसी से उनका मतलब है । इस उपन्यास में एक अमरीकी वृद्ध दम्पत्ति मि-ठिक और श्रीमती होप से वासुदेव और उनकी पत्नी सरला का सेन फ्रान्सिस्को के एक गार्डन में

---

1. "जो" -पृ. 23

मुलाकात होती है । उसी समय एक नीग्रो युवक युद्ध विरोधी, एटमबम के विरोध में मोर्चे के लिए चन्दा मांगने आता है । तब वासुदेव एक सिक्का उसकी टोपी में डाल देता है । मि॰ हिक तथा श्रीमती होप इस तरह पैसे न देने की बात करते हैं । वासुदेव कहते है कि --"पर उनकी बातों में तो बड़ा आदर्शवाद है । वे युद्ध के विरुद्ध कुछ करना चाहते हैं । मि॰ हिक-- तब भारतीय नारी सरला आश्चर्य व्यक्त करती हुई कहती है कि -"तो यहाँ लड़ाई भी एक रोजगार की तरह चलती है । बाप रे बाप !"[2] इस प्रकार पूंजीवादी देशों में युद्ध भी एक व्यवसाय हो गया है । युद्ध हो या शांति उससे पूंजीपतियों का कोई सरोकार नहीं । उन्हें तो सिर्फ धन चाहिए ।

"दरभुआ" उपन्यास में दो ऐसे पात्र है जिनके माध्यम से उपन्यासकार माचवे ओने उच्च वर्ग के विलासी जीवन, रहन-सहन और उनकी इच्छाओं पर प्रकाश डाला है । ये दो पात्र है '- सेठ गेन्दालाल और श्रीमती देवी ठाकुर । दोनों चम्पादढ़िया के बारे में उपन्यासकार ने लिखा है कि वह जब मारवाड़ से चले थे तो उनके पूर्वज एक लोटा लेकर यहाँ आये थे । और दो वर्षों के भीतर ही "आज सेठजी के पास एक आलीशान कोठी, कुछ फिकर नहीं, ऐसा कारोबार और अनेक धार्मिक - आध्यात्मिक, सांस्कृतिक साहित्यिक आदि आदि संस्थाओं में विपुल चन्दा दान से अटूट ख्याति और यश भी, उन पर, लक्ष्मी की कृपा के साथ साथ बराबर बरसता रहा ।"[3] सेठ गेन्दालाल की रहन सहन के बारे में उपन्यासकार वर्णन करता है -"चुन्नटदार धोती, मलमल का कुर्ता, सोने के बटन, इत्र लगाकर सेठ जी चांदी

- -

1. तीस-चालीस-पचास - पृ॰ 68

2. -वही- पृ॰ 69

3. दरभुआ - पृ॰ 21

की कुबवाला बेंत लिए अपनी "टमटम" में कभी घूमने जाया करते थे । अब एक बड़ी इम्पोर्टेड "कार" ले ली है । विक्टोरिया मेमोरियल के पास गाड़ी ठहराकर तीस चालीस कदम टहल लेते थे । इधर डाक्टरों ने सब तरह के परहेज लगा दिये है, वर्ना पकने खाने के बड़े शौकीन है । महफिलों में पीने के भी रहे । ऐसा कौन बड़ा गाने वाला या गाने वाली कलकत्ते में आई या रही , जिस पर उन्होंने हजारों रुपये कुरबान कर दिये हों । संगीत के जलसे, मजलें, बैठकबाजी उनकी बड़ी प्रिय हाबियां थी । फिर संगीत के वे पहचानने की विशेष तमीज उनके यहां नहीं थी । पर संगीतकारों के "संरक्षक" और "पेट्रन" कहलाने का बड़ा भारी शौक था ।"[1] ऐसे सेठ जी यदी कोई पुस्तकें बेचने वाली लड़की घर पर आई तो उस युवती के रूप को देखने के लिए उसके पास से पुस्तकें खरीदते है न की पढ़ने के लिए । प्रो महीधर सेठ जी से यही प्रश्न करता है कि यह अरविंद ग्रंथावली क्यों खरीदी ? तो सेठ जी उत्तर देते हैं - "क्या बतायें प्रोफेसर साहब, बेचने के लिए जो लड़की आई थी यह बेहद सुरूपा थी, यथानाम । हमने इस आशा से खरीदा कि कभी तो दुबारा मिलने आयेगी । पर उसने बाद में दर्शन नहीं दिये । कई देवियों का ऐसे ही साक्षात्कार हो जाता है । हम अपनी दक्षिणा चढ़ा देते है ।"[2] एक दिन ऐसे सेठ जी के पास कोई साहित्यिक संस्था वाले फु पेज विज्ञापन मांगने आये थे । किन्तु सेठ जी बहुत ही चतुराई से कहा दिया कि अब कारोबार सब कुछ बेटे जमाई संभालते है । वहां मुनीम से मिलो ।" किन्तु संस्थावाले कह रहे है कि हम उद्‌घाटन के लिए हिंदी के स्वनामधन्य कविवर...एक बड़ा लोकप्रिय नाम बाताना चाह रहे है । किन्तु सेठ जी को गुस्सा आ गया और कहने लगा -

---

1. दराबुआ - पृ. 22
2. -वही- पृ. 23

"अरे, क्या रखा है, उद्घाटन फुद्घाटन में । क्या बोले इस साल प्रेमचन्द की शताब्दी मना रहे हो, और फला-फला का सम्मान करने जा रहे हो । अरे उन मरे हुओं का क्या सम्मान करते हो ? यहाँ जिंदा आपके सामने मालिक ए-मौसीकी, "शाह-ए-शायरी" सेठ गेन्दालाल बैठा है, और आप कौन परेमचन्द-फरेमचन्द का नाम ले रहे हो । वो तो हर कोर्स बुक पढ़ने वाला बच्चा जाने है । पर गेन्दालाल मर जायेगा तो कौन फिर यह कहानी सुनायेगा कि गौहरजान कैसे गाती थी और बेगम अख्तर की पहली कान्फ्रेंस में क्या हुआ कलकत्ते में····?"[1] चन्दा माँगने वाले पहले अवाक हो गये फिर संभलकर सेठ जी से कहने लगे कि आप ही केकड़-कम्पों से गीतकार कवि सम्मेलन का उद्घाटन होगा तो सेठ जी खुश हो गये । जब वे लोग चन्दा देने के लिए कहने लगे तो सेठ जी कहते है कि - "अरे हमसे उद्घाटन भी करवाओगे और चन्दा भी माँगोगे ? भला यह कोई बात हुई । लोग क्या कहेंगे ? उद्घाटन और सम्मान हमारा करो करवाओ ·· पर पैसे टके की बात मत करो । ये इत्ते सारे ससुरे चुनाव जल्दी जल्दी देश में हो जाया करे हैं - क्या चुनाव बिना चन्दों के हो जाते है, और चन्दे आते कहाँ से हैं ?"[2] चन्दा माँगने वाले हाथ जोड़ कर चले गये । इस प्रकार के होते हैं उच्च वर्ग के लोग । अपने घर से एक कौड़ी जाने की नहीं देते पर मान सम्मान की आशा करते हैं ।

इसी उपन्यास में उच्च वर्ग की दूसरी पात्र है श्रीमति देवी ठाकुर । रईस तथा अपने को रवीन्द्रनाथ ठाकुर से दूर दराज का संबंध बताती है । चित्रकला और कविता जैसे ललित कलाओं की विदुषी अपने आप को मानती है । नौकरी के संबंध में श्रीमति देवी ठाकुर के घर महिमा और अदिति जाते हैं तो महल को देखकर अचम्भे हो जाते हैं —"जूते उतारकर बाहर रख

- -

1. दरअसल - 25

2. दरअसल - 25

रख दिये गये । मोटे कालीनों पर पतलियाँ धँसी जा रही थी - मानो समुद्र के किनारे की बालू पर चल रही हो । नीले जामुनी परदों पर जरी का कसीदा हो रहा था । दीवार पर बड़े बड़े पेंटिंग थे । एक बड़े से चित्र में सिर्फ दो कबूतर बने हुए थे - एक दीवार पर बैठा था, दूसरा नीचे आँगन में, बड़ी शांति थी । छत से फानूस लटक रहे थे । लगा कि जैसे वह बीसवी सदी के कलकत्ते में न रहकर किसी अठारहवी शती के राजमहल के भीतर आ गई और वहाँ कोई अशांत आत्मा हवा में भटक रही है ।"[1] इस तरह के घर में रहने वाली अभिजात स्त्री को अपने आप पर गर्व और भ्रम है कि वह एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करने वाली कवयित्री है । वह अपने अंग्रेजी में लिखी दो तीन कविताएं एक के बाद एक सुनाती रही । बेचारी महिमा और अदितिविवश होकर सुनती रही । ऐसे भी उच्च वर्ग के लोग होते है जो अपने आपको समाज सेवा और साहित्य सेवा करने वाले समझ लेते है । उनके लिए ऐसे कार्य फैशन के लिए मात्र होते है या फिर समाज में एक स्टेटस पाने के लिए ।

इसी उपन्यास में एक और छोटा सा पात्र है जिसका नाम है सेठ दूधनाथ । वह दूध का व्यापार करता था और दोहरी चाल चलता था । "एक ओर वे सस्ते दूध की "को-आपरेटिव डेयरी" चलाते थे । दूसरी ओर कहीं उनके पैसे किसी ऐसी विदेशी फर्म के साथ जुड़े थे, जो विदेशों को डिब्बा बंद गो-मांस निर्यात करती थी···इनपिता को रायबहादुरी मिली हुई थी, इन्हें स्वतंत्रता सैनिक की पेंशन । जिस भी रूप में हो, सार्वजनिक संस्थाओं से पैसे बचाकर ये मुनाफा चुपके से ब्याज के रूप में, अपनी जेब में डालते जाते थे । यह सौदा बड़े सभ्य ढंग से चलता था - पैसा किसी बड़ी पेढ़ी में लगाया । यह दिखाने के लिए आठ प्रतिशत ब्याज कागज

- -

1: दशभुजा - पृ· 62

पर दे रही है, ऊपर चुपके से दो-तीन प्रतिशत बन्हें, बीच में "बिचौलिये" की तरह मिल जाता था । लाखों की इस तरह आमदनी अनेक नामों से, अनेक मार्गों से, नंबर दो में, हो जाती थी । गये महायुद्ध के बाद बल्कि, बंगाल के काल क के बाद से ही यह काम खासा बढ़ चुका था ।"[1]

लापता उपन्यास में भी सेठ मक्खनलाल भी पैसे के लिए तड़पने वाले व्यक्ति हैं । वे एक बार अपनी विवाहयोग्य बेटी की विवाह क्यों नहीं हो रहा है एक ज्योतिष से पूछते है तो वे ग्रहशांति करने की बात कहते है । किन्तु सेठ जी के लिए "बेटी से बढ़कर उनका एक ही देवता है-पैसा । पैसे के लिए वे कुछ भी कर सकते थे । पैसा हो तो एक वर क्या अनेक वर प्राप्त कर लिये जा सकते हैं ।"[2] इस लिए वे पैसा खर्च करने कीबात सुनते ही वहाँ से निकल गये । अरविंद म-न मल्होत्रा जो अब बालाकलकर के नाम से है जो विलायत जा रहा है, उसके साथ अपनी बेटी उषा का विवाह कर देना चाहते है । जब बालाकलकर पूछते हैं कि आप विवाह का मुहूर्त वगैरह नहीं देखते है ? तब सेठ जी कहते हैं --"वह तो सेठानी को राजी करने के लिए सब "ततीगों" करने ही पड़े हैं । उसकीआप परवा मत करो । जरा सा पैसा ज्यादा दिया कि सब ग्रह नक्षत्र अनुकूल करा के जो चाहे वह महीना, हफ्ता, दिन, घटिकर हम पैसे से ले करा सकते है । पुरोहित और मुहूर्त तो अपनी मुट्ठी में है ।"[3]

5.2. मध्य वर्ग :

मध्यवर्ग संपन्न वर्ग और निर्धन वर्ग के बीच में आता है । "जिसमें परिवेश को सीमित करना कठिन कार्य है । इस वर्ग का विस्तार स्पष्ट है

- -

1. लापता - पृ. 26
2. दशाब्दी - पृ. 67
3. लापता - पृ. 27-28

और इसी कारण निश्चय के धरातल पर टिका यह वर्ग कभी उच्च वर्ग के समीप लगता है तो कभी निम्न वर्ग के निकट । वास्तविक स्थिति इस वर्ग की यह है कि "त्रिशंकु" की तरह समाज के इस श्रेणीकरण के मंच पर लटका हुआ है । अनेक बाते है जिनके कारण यह वर्ग समाज के अन्य दोनों वर्गों से भिन्न प्रतीत होता है । कौटुम्बिक तथा सामाजिक मर्यादा, वंश, रहन-सहन, जीविका, शिक्षा, आय एवं सम्पत्ति के आधार पर यह वर्ग दोनों वर्गों से पृथक होता चला जाता है । धन की भूमिका महत्वपूर्ण है तो भी मात्र अर्थ ही वर्ग विभाजन का आधार मान लिया जाये यह भूल होगी । मानते है समाज मे व्यक्ति का स्थान आर्थिक स्तर द्वारा निश्चित होता है तथापि सोशल स्टेटस के आधार पर मध्यम वर्ग की सीमा मे सभी जाति और वर्ग के लोग सम्मिलित किये जा सकते है ।"1

डॉ० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों मे मध्यवर्ग का चित्रण व्यापक स्तर पर हुआ है । माचवे जी अपने उपन्यासों विशेषत: नगरीय जीवन के संबंधी कथा प्रस्तुत करने के कारण नगरीय मध्यवर्ग का चित्रण अधिक हुआ है । जिसमे शहरी मध्यवर्ग की समस्याएं और जीवन स्थिति पर यथार्थ के साथ चित्रण हुआ है । माचवे जी शहरी समस्याओं पर ही अधिक क्यों लिखे हैं । इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहते हैं--"मै निपट देहातों मे बहुत कम रहा हूँ । यद्यपि एक गांव के वातावरण को लेकर एक दो कहानियां लिखी है । मै देहात से अधिक कस्बे के छोटे शहर - रतलाम, उज्जैन आदि और बडे नगर नागपुर, इलाहाबाद, अहमदाबाद आदि अब गये बीस पच्चीस वर्षों मे दिल्ली बम्बई, कलकत्ता, मद्रास और दुनिया के और बडे शहर जैसे बर्कले, कैलिफोर्निया मैक्सिन, विस्कान्सिन मे रहा हूँ । मेरे उपन्यासों का परिवेश और समस्याएं नितान्त शहरी है, महानगरीय है, यह मेरी सीमा मे मानता हूँ ।"2 फिर

- -

1• भूपसिंह भूपेन्द्र - मध्यवर्गीय चेतना और हिंदी उपन्यास-पृ•11

2• डॉ० कृष्ण रेणा - प्रभाकर माचवे के हिंदी उपन्यास -पृ• 91
{प्रभाकर माचवे से साक्षात्कार से}

भी अपने उपन्यासों में माचवे जी ने यत्र तत्र ग्रामीण मध्यवर्गीय जीवन का भी चित्रण किया है । माचवे जी के किसलिए, कहाँ से कहाँ, साँचा, द्वाभा, दशभुजा, लापता ०० जैसे उपन्यासों में हम मध्यवर्ग का चरित्र चित्रण देख सकते है ।

"परन्तु" उपन्यास का अविनाश निम्न मध्यवर्ग का युवक है । वह सिद्धांतत: आदर्शवादी है और उसी के अनुकूल जीवन व्यतीत करने का प्रयास करता है । वह कला को जीवन के लिए समझता है तथा राजनीति में सक्रिय भाग लेता है । पर उसके आदर्श को अर्थाभावभाव की सहज प्रवृत्तियों से संघर्षलीन रहना पड़ता है । वह आर्थिक दृष्टि से सुविधाभोगी तथा अनीता से रोमांस लड़ने वाले, अपने सहपाठी अभिय से ईर्ष्या करता है, अपने अभावों को देशभक्ति में भुलाता और अपना बचपन की साथिन - किन्तु बाद में विधवा हेम - को सहानुभूति दिखाते - दिखाते उसके प्रति वासना - वशीभूत होकर अपने आदर्श से गिर जाता है । माचवे जी का मनोवैज्ञानिक निष्कर्ष है - "बेचारा आदर्शवादी अविनाश ॥ वह भी आखिर हाड मांस से बना शरीर का आदमी ही तो था । और वासना आदि स्वाभाविक प्रकृति है तो उससे इतनी घिन, इतना भुकराना क्यों ? परन्तु - तात्पर्य यह है कि मूल प्रवृत्तियों को उचित स्थान दिए बिना आदर्श मूल्य इसी तरह पराजित होते रहेंगे और गतिरोध उत्पन्न होता रहेगा ।"[1] इस कथ्य से यह स्पष्ट होता है कि मध्यवर्गीय युवक के जितने विशेषताएं होती है उनमें से अधिकतर परन्तु" के अविनाश में है । वह आदर्शवादी रहना चाहता है किन्तु उसके विपरीत कार्य करता है । वह कला को जीवन के लिए मानता है । सुविधाभोगी सहपाठी अमिय सेईर्ष्या करता है । ये सभी प्राय: मध्यवर्गीय

- -

1. डा० सत्यपाल चुघ -प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि -पृ. 791

युवाओं मे निहित लक्ष्य ही है जिन्हे माचवे जीनेअपने ढंग से अपना पहले उपन्यास मे चित्रित किया है ।

एकतारा उपन्यास मे कुछ क्रान्तिकारी युवक होते है जिनका संबंध मध्यवर्ग से होता है । मध्यवर्ग के ये युवक अंग्रेजो के विरूद्ध सशस्त्र लड़ाई गुप्त रूप से करना चाहते है और इनके आदर्श भी उच्च है । किन्तु इनके आदर्श केवल भाषणों तक ही सीमित थे । इस दल का एक युवक जिसका नाम है सुरेश - जो आधुनिक फैशन वाली लड़की उर्वशी से नफरत करता था - एक दिन उसी के साथ रात मे रहता है । इस दल के नेता जयंत है जो समाजवादी सिद्धांतो पर लम्बे लम्बे व्याख्यान देता था, स्त्री को भी पुरूषों के समान स्वतंत्र होने का पक्ष लेता था, परन्तु वह भी "तारा" पर सन्देह करता है जो वस्तुत: असत्य है । अपने कुछ राजनैतिक कार्यों के माध्यम से जयन्त स्वतंत्र भारत मे मंत्री पद हासिल करता है । इस प्रकार मध्यवर्ग की जनता जल्द से जल्द उच्च वर्ग जैसी सुविधा भोगी जीवन बिताना चाहती है जिसके लिए वे अपने आदर्श, अपने नैतिक मुल्यो को भी छोड़ने मे पीछे नहीं हटते ।

तारा वैमेन्द्र से शादी कर लेती है और उसकी नाटक कंपनी को ग्रामीण आंचलो मे ले जाना चाहती है किन्तु नाटक कर्मी एक एक करके कंपनी को छोड़कर जाने लगे । ग्रामीण आंचलो मे पैसे देकर नाटक देखने वाले कम होते है । अत: नाटक कंपनी को खर्च भी अधिक होने के कारण काम करने वालो को वेतन कम मिलने लगा । इसलिए वे अपनी जीविका के लिए दूसरी नाटक कंपनियों को खोजने लगे । स्पष्ट है मध्यवर्ग के सामने सबसे मुख्य मुद्दा जीविका का होता है । जीविका के लिए वे कहीं भी जा सकते हैं ।

मध्य वर्ग की एक और विशेषता यह है कि आर्थिक विपन्नता के कारण कई बार पति - पत्नी के बीच तलाक भी हो जाता है । एकतारा उपन्यास मे "तारा" हालांकि जमींदार की लड़की है किन्तु वह घर छोड़कर आजादी की लड़ाई मे भाग लेती है । वह क्षेमेन्दु के साथ शादी कर लेती है । किन्तु जब परिवार मे आर्थिक समस्याएं उत्पन्न होती है तो क्षेमेन्दु तारा से दूर-दूर रहने लगता है । एक दिन "घर पहुंचने पर तारा को डाक से नोटिस मिली । उसके पति क्षेमेन्दु ने उससे तलाक मांगा था । तारा फिर अकेली रह गयी ।"[1] इस प्रकार मध्य वित्तीय परिवारो मे आर्थिक विपन्नता की स्थिति मे तलाक भी दिये जा सकते है ।

"आभा" उपन्यास की नायिका आभा एक मध्यवर्गीय शिक्षिका है जिसका पति एक पुत्री को देकर चला गया है । आभा अपने पति श्री द्वारा छोड़ने पर भी उसकी आराधना करती है । उसे मन मे हमेशा द्वन्द्व रहता है कि कभी श्री से द्वेष ईर्ष्या करती है तो कभी परंपरिक मूल्यों का निर्वाह करते हुए उसकी प्रतिमा को पूजती है । वह कभी सोचती है - "क्यों न उठाकर फेंक दू ? यह सब पूजा अर्चना, यह सब युग युग का छलावा, यह जन्म जन्मान्तर की प्रवंचना, यह एकतरफा, प्रत्याशाहीन, प्रतिदान रहित, निरंतर देते ही जाना..."[2] मध्यवर्गीय परिवार मे नारी ससुराल मे जाकर अनेक बंधनो मे बंध जाती है । "आभा" ससुराल मे पहुंचकर ऐसा ही अनुभव करती है । "यहां ससुराल मे आभा के मन के विपरीत सब कुछ है । यहां पर्दा है । यहां घर की चारदीवारी है, यहां पढ़ने को कुछ नहीं है, उसकी प्रिय रुचि संगीत के विकास के साधन नहीं है । पति है, परन्तु संगीत के लिए उनके कान शून्य है ।"[3] इस प्रकार पर्दा आदि के कारण उसके कौशलो का विकास नहीं

- -

1. एकतारा - पृ. 74

2. आभा - पृ. 11-12

3. आभा - पृ. 64

होता । इस प्रकार आभा के मन मे द्वन्द्व है जिसके कारण वह पारंपरिक मूल्यों को छोड़ नहीं पाती और न नवीन संस्कार ग्रहण ही कर पाती है । यह मध्यवर्गीय नारी की विडम्बना है । इस उपन्यास का नायक "श्री" है जो चंचल मन का मध्यवर्गीय युवक है । वह अकारण आभा को छोड़ देता है । एक संतान होने पर भी । श्री के लिए आभा कोई विशेष नहीं थी । वह और कई स्त्रियों मे से एक थी। उसका संबंध अमिता, श्यामा, शकुन और औरों से था । इस प्रकार "श्री" एकनिष्ठता के अभाव मे गुमराह हो जाता है । "युद्ध मे जाकर श्री ने अपना नाम विजय लिखवाया था । पर डीमाब होकर विजय फिर से घर लौटा ।"[1] और वहाँ बचे तिरेपन रुपये, पन्द्रह आने लेकर घर की ओर निकल पड़ा । "विजय आगे की बातें सोचने लगा । घर जाकर आठ दस आश्रितों का पेट पालना है । किस भरोसे ? वह मामूली डिमाब्ड (छुट्टी पाया हुआ) सैनिक है, वह अन्धाधुन्ध फौज का नेतार्ई सिपाही भी तो नहीं है कि जेल से लौटा, खद्दर टोपी सिर पर रख ली, अहिंसा को शब्द रूप मे अपना लिया और प्रांतीय सरकारों मे उसके लिए स्थान सुरक्षित......।"[2] इस प्रकार एक मध्यवर्गीय युवक आर्थिक विषमता मे अपने परिवार का पालन पोषण करने की तरकीब सोचता है । उसकी विवशता है कि वह युद्ध मे अंग्रेजों के पक्ष मे सैनिक था यदि वह आजादी की लड़ाई मे जेल जाकर आया हो तो वह बड़ा नेता बन जाता और राज्य सरकारों मे शामिल हो जाता । किन्तु वह विवश था । वह सोचता है - वह एक निम्न मध्य वर्ग का मामूली, महज सिपाही था,

- -

1. हाभा - पृ. 73

2. हाभा - पृ. 75

अब एक जवान आदमी है । बस । क्या होगा उससे ? या उसका ? नौकर के लिये दरवाजे पर कोई खड़ा करेगा नहीं । लौटे हुए सिपाहियों से सभी सन्देह करते है, नफरत करते है ।"[1] इस प्रकार सोचते सोचते वह हताश हो गया और इस आर्थिक समस्या का समाधान मौत ही समझा । क्योंकि "बेकारी या अर्द्ध बेकारी निम्न मध्यवर्गीय समाज को लंगड़ा बना रही है । इससे आर्थिक स्थिति बिगड़ती ही जाती है । बेकारी से ही यह वर्ग अधिक अशान्त है । इसी के कारण उसके जीवन मे अस्थिरता तथा असन्तोष उत्पन्न होते है ।"[2] इस कारण विजय का मन करता है, ऐसे जीने से मरना क्या बुरा है ? रेलवे के पहिये भारी है - सिर्फ एक ही तो झमाके की बात है फिर यह बेकारी की चेतना रहेगी भी कहां ?"[3] किन्तु उसमे इतना साहस नहीं है कि आत्म हत्या कर ले । यही बात माचवे जी कहते है -"परन्तु आत्मघात करने के लिए जो दृढता, जो क्षमता चाहिए इस युद्ध मे वह खो चुका है । युद्ध उसे नैतिक दृष्टि से खोखला बना दिया है । वह अब किसी से नहीं डरता और सब कुछ से डरता है ।"[4] अधभित से वह तरह - तरह से सोचने लगा - वह सोचने लगा - जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है । जिन्दादिली भी एक आर्थिक सुविधा से पैदा होने वाली एक खास किस्म की स्नोबरी {एक झूठा लोक दिखावा} है । दिल तभी तक जिन्दादिल है, जब तक उस पर जेब गर्म हो और वह गर्म की जाने पर आप चाहे किसी को लड़ा लीजिये । पहले जमाने मे तीतर बटेर लड़ाए जाते थे । आजकल देश-देश के जवान ।"[5] इस प्रकार बेकारी, आर्थिक विवशता, नौकरी की

- -

1. हाभा - पृ 576

2. डॉ० हेमराज निर्मम - हिंदी उपन्यासों मे मध्यवर्ग - पृ. 176

3.4. हाभा - पृ. 76.

5. हाभा पृ. 77

अप्राप्ति, कबीलेबाजी, अयोग्य के चुनाव आदि कारणों से युवक, समाज, शासन और जीवन के प्रति रिक्तता लिए जीता जाता है ।"[1]

माचवे जी का एक और उपन्यास है "साँचा" जिसमें औद्योगीकरण के कारण मानवीय गुणों के बाष्प बन जाने की गाथा है । यान्त्रिकीकरण के कारण पूँजीपतियों और मजदूरों के बीच मध्यवर्ग का भी उपस्थित होना अवश्यंभावि था । क्योंकि उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच दलाल मध्यवर्ग के ही होते हैं । इस उपन्यास में भगवान जावर ऐसा ही व्यक्ति है जो मिल में मजदूरी दिलाने के लिए मजदूरों से कमीशन लेता है । माचवे जी लिखते हैं - "भगवान जावर घनी मूछी, ताँबे के रंग की आँखों का गुंडे जैसा जान पड़ने वाला आदमी था । सब जानते थे कि वही "बदला" दे सकता है और हर नए मजदूर को कमाई का निश्चित अंश उसे देना ही पड़ता था । आज तक भगवान मात्र का यही काम साधारण रहा है । वह मनुष्य की कमाई का हिस्सा खाता चला आ रहा है । वह भी डर की धमकी के भरोसे ।"[2] स्पष्ट है कि जब शोषण करने का अवसर आ जाता है और अर्थ की आवश्यकता होती है तो मध्यवर्ग निम्न वर्ग का शोषण करने से पीछे नहीं हटता । हालांकि मध्यवर्ग का भी उच्च वर्ग के द्वारा शोषण होता है । डॉ० हेमराज "निर्मम" लिखते हैं - "मध्यवर्ग शोषक भी है और शोषित भी । उच्च वर्ग तथा उच्च वर्गनिम्न मध्य वर्ग का शोषण करते हैं और निम्न मध्यवर्ग अवसर आने पर निम्नवर्ग का शोषण करता है । परस्पर शोषण की क्रिया-प्रतिक्रिया चलती रहती है । एक ही वर्ग के लोग भी परस्पर शोषण करने का प्रयत्न करते हैं । धन लालसा ही मध्यवर्ग को शोषण में प्रवृत्त करती है ।"[3]

- -

1. डॉ० सुधाकर गोकाकर - मार्क्सवाद और हिंदी कहानी -पृ. 76

2. साँचा - 51

3. डॉ० हेमराज "निर्मम" -हिंदी उपन्यासों में मध्यवर्ग - पृ. 166-67

इस उपन्यास में मनोहर एक ऐसा पात्र है जो एम॰ए॰ फिलासफी उत्तीर्ण हुआ है। नौकरी कहीं नहीं मिली है और वह अपने आदर्शों के अनुरूप मजदूर संघ में भर्ती होकर मजदूरों की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करता रहता है। मनोहर बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। वह उसके घर से कई मील दूर पर रहने वाले मिशनरी फादर डिक्सन से और उसकी पुत्री लिजा के पास जाकर दर्शन शास्त्र पर ही नहीं अन्य विषयों पर बहस करता था। वह लिजा के प्रति आसक्त हो गया था किन्तु फादर डिक्सन और लिजा की ओर से प्रतिकूल उत्तर मिलने से अपना इरादा बदला और मजदूरों की सेवा करने के लिए इन्दौर चला गया। वहाँ उसने बांड भरा – "मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आजीवन 30 रुपये महावार में मजदूर संघ की सेवा करता रहूँगा, विवाह नहीं करूँगा, राष्ट्रीय हित को दृष्टि में रखकर यह संस्था ही मेरा घर होगा।"[1] यद्यपि उसका मन इस मजदूर संघ में नहीं हुआ पर वह बार बार विद्रोह करता था। वह अकेला हो गया था उसका मित्र शरण था उसका भी साथ छोड़ दिया। "मनोहर बड़ी आशा से अहमदाबाद आया था कि यहाँ कम से कम उसे काम कुछ न कुछ मिल ही जायेगा। यह बड़ा व्यापारी शहर, गुजरात की नाक, अस्सी मिलें, यहाँ चलती है और कहीं न कहीं तो उस एमए पास, बोलने में कुछ हकलाने वाले नौजवान को, जिसकी हड्डियाँ चाहे तो आप गिन लें इतना वह कमजोर है – कोई काम जरूर मिल जायगा। वैसे चाहे वह कुछ भी पास हो, उसे सिवा थोड़ा बहुत गाने गुन-गुना लेने के और आता ही क्या था ? आज की दुनिया में काम निकलने के लिए जो गुण चाहिए – मक्कारी, झांसेबाजी, खुशामद, अपना ही उल्लू सीधा करने की खुदगर्जी – इनमें से एक भी गुण तो उसके पास नहीं था।"[2] यह युवक जब भूख

- -

1॰ साँचा – पृ॰ 47

2॰ साँचा – पृ॰ 113-114

से अहमदाबाद की सड़कों पर घूम रहा था तो वहाँ दंगा हो गया और पुलिस उसे पकड़ कर ले गई। "मनोहर "सी" क्लास का कैदी बन गया। दंगों से भले ही किसी को नुकसान होता हो, लेकिन मनोहर जो बेकार था उसे काम मिल गया। मनोहर चक्की पीस रहा है और दीवारों में बंधा आसमान का टुकड़ा देख रहा है। वह अब राजनीति, हिन्दू-मुस्लिम, आर्थिक कारण, बेकारी वगैरह बातें नहीं सोचता। कंधों में और घुटनों में जो दर्द हो रहा है और उसे अब जो दिन का खाना घंटी बजने पर मिलने वाला है, उसकी ओर उसका ध्यान जा रहा है।"[1]

"तीस चालीस पचास" उपन्यास में माचवे जी ने पीढ़ीगत वैषम्यों का सुन्दर चित्रण किया है। इसमें तीन पीढ़ियाँ हैं जिनको क्रमशः वासुदेव और सरला, मोहन और सुहासिनी, अनिरुद्ध और उषा प्रतिनिधित्व करते हैं। वासुदेव और सरला प्राचीन परम्परा और मूल्यों को निभाने वाले हैं। उनके पुत्र और बहू मोहन और सुहासिनी इन संस्कारों को न ही छोड़ पाते हैं और न नये संस्कारों को ग्रहण करते हैं। मोहन का पुत्र अनिरुद्ध, जिसने विदेशी उषा से शादी की है, नयी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है और नये संस्कारों को ग्रहण करने वाला है। इन्हीं के बीच में मध्यवर्ग के परिवारों में होने वाले संघर्षों का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। वासुदेव जो पुराने पीढ़ी के हैं अपनी जिन्दगी के बारे में बताते हैं कि --"मेरी स्कूल की मास्टरी बेमानी हो गई थी। जीवन अस्त व्यस्त था पर सरला थी कि वह बराबर मेरे जीवन के सुख - दुख में, ज्वार और भाटे में, अंधेरे और उजियाले पखवाड़े में, एक - सा साथ देती रही। उसने अपने आप घुल - घुलकर मिट जाना स्वीकार किया, उफ तक नहीं की।"[2] इस तरह पुराने मध्यवर्गीय परिवार

- -

1. सांचा - पृ. 119-120

2. तीस चालीस पचास - पृ. 8

मे पति पत्नी एक दूसरे के साथ सदा के लिए रहते थे । दूसरी पीढ़ी के प्रतिनिधि मोहन के माध्यम से माचवे जी शायद कहते है -"हर क्रांतिकारी अपनी अलग राह के लिए छूट चाहता है - वह मनसा सही अर्थ मे क्रांतिकारी नहीं होता । यह तथ्य उपन्यास का एक सशक्त पक्ष है ।"[1] तीसरी पीढ़ी अनिरुद्ध और उषा के माध्यम से समाज मे फैलने वाली अराजकता, विश्रृंखलता आदि का चित्रण हुआ है । इस उपन्यास की समीक्षा करते हुए डॉ० चंद्रकांत बांदिवडेकर लिखते है - "माचवे जी के सामने एक भारतीय बौद्धिक समाज का चित्र है । यह बौद्धिक समाज स्वतंत्र, गांधीवाद, समाजवादी, तरह तरह के संस्कार लेकर आगे बढ़ रहा है । यह वह दुलमुलयकीनी वर्ग है जो किसी सिद्धांत को मनःपूर्वक न स्वीकारता है, न उसे अंतिम सीमा तक जाकर गहराई से जी लेता है । यह खास भारतीय मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी समाज है जिसकी रीढ़ की हड्डी ही कमजोर है, जो आत्मशक्ति से प्रतीतिपूर्ण परिचय से अलग पड गया है । सब पश्चिमी विचारधाराओं को वह अपना लेता है परन्तु ये विचार उसे कहीं भिगो नहीं देते - ऊपर से छिटककर खिसक जाते है । विज्ञान, टेक्नालॉजी, बुद्धिवाद, उद्योगीकरण, नागरीकरण, मूल्यभ्रष्टता से उत्पन्न दोष - सभी आघातों से यह वर्ग बड़ी अनिश्चित अवस्था मे है । वह कोयले मे रत्नकण की खोज करना चाहता है, काले बादल की स्वर्णमय रेखा को देखना चाहता है । उसने अमरीका के जीवन का सुख-सुविधापूर्ण और भयानक रूप देखा है, रूसी जीवन की अच्छाइयों, बुराइयों से वह परिचित हो गया है । उसके सामने प्रश्न है - उसकी "सेवापुरी" मे उसके लिए इनमे से क्या क्या लाभदायक और स्वास्थ्य हो सकता है । माचवे के पास भी उत्तर नहीं है ।"[2]

- -

1. चंद्रकांत बांदिवडेकर - आधुनिक हिंदी उपन्यास:सृजन और आलोचना-पृ.22
2. -वही- -वही- पृ.23

"दर्द के पैबन्द" उपन्यास में माचवे जी मैत्रासिक पत्रिका के संपादकों, आलोचकों और हिंदी विभाग के प्रोफेसरों पर तीखा व्यंग्य किया है । माचवे जी ने इस उपन्यास में एक जगह फूलचंद सेठ जी द्वारा संचालित एवं संपादित भावना पत्रिका के सह-संपादक नरिंदर के बारे में उल्लेख किया है । वह एक मध्यवर्गीय व्यक्ति है जिसके पाँच बच्चे है और पत्नी हिस्टीरिया रोग से पीड़ित है । किन्तु नरिंदर अपने पेश में डूबा रहता है और अपने आपको बड़ा साहित्यकार एवं अध्यात्मवादी मानता है । उनके बारे में उपन्यासकार का कथन है - "नरिंदर साहब तो रात-दिन सिगरेट शराब और शायरी में धुत रहते । अपने आपको जीनियस समझते थे । "नंगी औरत" उनका पहला काव्य संग्रह छपने से पहले ही उन्होंने उन सब आलोचक दोस्तों से उस पर दस लेख लिखवा लिये और छपवा लिये थे, जिनकी रचनाएं वे "भावना" में छापते थे । अधिकतर आलोचक बात यूरोप या अमेरिका के किसी अज्ञात नाम कवि से शुरू करते, फिर अपने ससुर, दामाद, साढ़, सरहज आदि की रचनाओं से और रिश्तेदार बहुत "आब्वियस" न हो जायें इसलिए अपने जातवाले नौजवान कवियों की कुछ संदर्भ से कटी हुई लेन-डारि, पंक्तियों के उदाहरणों से भर देते । और इस अंदाज से बात करते कि अलावा इन गिने चुने महान युग परिवर्तनकारी कवियों के औरों की पहचान भी उन्हें नहीं है । और सच्चे पारखी तो हमीं है या हमारी कांक्षा चक्र के सदस्यगण । वैसे नरिंदर बड़े अध्यात्मवादी भी अपने आपको मानते थे ।"[1]

मध्यवर्ग के अन्तर्गत प्रोफेसर तथा अध्यापक वर्ग भी आ जाता है । माचवे जी ने स्पष्ट किया है कि किस प्रकार मध्यवर्गीय प्रोफेसरों, अध्यापकों ने हिंदी विभाग को अपने सगे-संबंधियों से भर डाला । साहित्य के नाम

- -

1. दर्द के पैबन्द - पृ: 53

पर कैसे कैसे असाहित्यिक और निरी प्रशंसा से युक्त पत्रिकायें छपती है और किस प्रकार अपनी पुस्तकों के प्रकाशन के लिए प्रकाशक से भ्रष्टता पूर्ण सौदेबाजी की जाती है । इन सबका व्यंग्य के साथ इस उपन्यास में चित्रण किया गया है । उत्तर प्रदेश के एक छोटे से नगर के संबंध में कहते हैं — "नगर की असली प्रतिभा निरुपम भट्टाचार्य थी । सिनेमा घर सस्ते गाने जोर-जोर से लाउड स्पीकर पर फेंकते जाते । उसके बिल्कुल पास के लड़कियों के इन्टर कॉलेज में अध्यापक डॉक्टर सुमन जी बच्चियों को उपदेश देते जाते । यह सब चित्रपट संगीत श्रवण मत करो दुहिताओं । वह अश्लील है । प्रेम की व्यापक अनुभूति लक्ष्मण के शरीरातीत इत्यादि इत्यादि । लड़कियाँ उबासियाँ लेती, प्रोफेसर की लिखी कुंजियाँ रटकर पास होती, प्रोफेसर अपनी ही लड़की को निन्यानबे प्रतिशत मार्क दिलवाते, फिर धीरे धीरे प्रोफेसर की बेटी, बेटे, दामाद, बहुएं और उनके बेटे बेटियाँ भी हिंदी विभागों में बराबर ऊँचे स्थान पाते जाते और यह मनोपोली बीस बरस से चल रही थी । धीरे धीरे साहित्य की समालोचना की पुस्तकों में विद्यार्थी सिर्फ प्रोफेसर कुलपुत्र और उसके कुनबे की साधारण रचनाओं के उद्धरण याद करके प्रथम डिवीजन पाते । और हिंदी साहित्य के इतिहास पर जो ग्रंथ लिखे जाते, वे भी ऐसी ही सिफारिशी पिट्ठुओं से लिखवाये जाते । एक झूठ को सौबार दुहराने से वह सच हो जाता है, गोयबेल्स का यह वचन और कहीं सच न हो, हिंदी साहित्य के इन स्वातंत्र्योत्तर दो दशकों के में बड़ा सटीक साबित होता नजर आता । जो लोग इस तरह "व्यवस्था" के विरोधी हैं, वे भी वही टेकनीक अपनाते । एक छोटी पत्रिका चलाते जो छह महीने में दो अंक प्रकाशित करके बंद हो जाती । उसमें "अ" "ब" की प्रशंसा में लिखता, "स", "द" और "य" को सबसे महान "जीनियस" बताता और इस तरह से वही, पुनर्मूल्यांकन और नव-समीक्षा के आयाम और परिदृश्य और परिप्रेक्ष्य और ऐसे ही

सुपरिचित शब्द फेंके जाते । असलियत यह थी कि यान्ई सर्कल (सीमित जादुई दुनिया) के बाहर कोई उन लोगों को नहीं जानता था ।... ये अध्यापक और उनके विद्यार्थी अपने आपको बहुत बड़ा मूल्यवादी और चारित्रिक दृष्टि से औरों से श्रेष्ठ और ऊँचा समझते जाते । शिक्षा का स्तर और पिछड़ता जाता और भ्रष्टाचार सिर्फ राजनैतिक नेताजन ही करते है, ऐसा चोर बाजार करने वाला बनिया करता । और नेता और बनिया दोनों को ये अध्यापक वर्ग के "नव ब्राह्मण" कोसते जाते- असली भ्रष्टाचारी तो वे है । जब खुद प्रकाशकों से रिश्वतें लेते और कोर्स बुक कमेटियों में किताबें अपने ही चमचों की लगाते जाते ।"[1]

उपरोक्त उद्देश्य से स्पष्ट होता है कि आज के अध्यापक और प्रोफेसर पैसों के चक्कर में किस प्रकार पड़ गये है । कारण यह है कि वर्तमान व्यवस्था में अध्यापक और प्रोफेसरों को समुचित वेतन नहीं मिल पा रहा है तथा उनकी जरूरतों कीपूर्ति नहीं हो पा रही है । दूसरे व्यवसायों में अन्य कार्य करके भी धन कमा सकते है किन्तु शिक्षकों को ऐसा अवसर नहीं है । वे या तो प्राइवेट ट्यूशन करें या पुस्तकें लिखें या फिर किसी पत्रिका को लेख वगैरह लिखे । इसके अलावा वे अन्य कार्य नहीं कर सकते । बढ़ती हुई महँगाई और आवश्यकताओं के अनुरूप धन कमाना जरूरी हो जाता है । इसी कारण कभी कभी यह मध्यवर्ग गलत रास्तों को अपनाता है ।

"किसलिए" उपन्यास में माचवे जीनेसमस्त मध्यवर्ग की विशेषताएँ को एक जगह रख दिया है । इस उपन्यास में दिल्ली के एक उपनगर के एक ऐसे बड़े चालनुमा घर की कल्पना की गयी है जिसमें "नौ परिवारों या

- -

1. दर्द के पैबन्द - पृ. 61 - 62

घरौंदों की नौरतन घटनी स्वरूप मिली हुआ है। "सब में मध्यवर्ग के विविध पेशों के लोग रहते है। जाहिर है कि यह मकान हमारे मध्यवर्गीय समाज का प्रतीक है जहाँ भिन्न भिन्न स्वभाव और पेशे के लोग रहते है। वे अलग अलग भी है और उनकी सामूहिक इकाई भी है। लेखक ने इस समाज की कथा अधर्म, अनर्थ और अ-काम तीन खण्डों में बाँट कर कही है। धर्म, अर्थ, काम, इन तीन पुरुषार्थों के आगे अ उपसर्ग लगाकर यह कहना चाहा है कि ये तीनों अपना सही अर्थ खो चुके है। अधर्म, अनर्थ और अकाम से पीड़ित इस समाज के विविध वर्गों और पात्रों को उपस्थित कर लेखक ने हमारी आज की जिन्दगी का यथार्थ रूपायित किया है।"[1] कथा यात्रा के दौरान लेखक ने सिन्धी सरकारी अफसर ललवानी और उसकी धार्मिक धर्मपत्नी, उसका लड़का आवारा छात्र, पंजाबी नवधनाढ्य कपूर, सरकारी नौकर मि॰ वर्मा, जनसंघी लोहिया - समर्थक पत्रकार सिद्धेश्वर बीजापुरे, इन्टर कालिज में हिंदी के लेक्चरर और उग्र समाजवादी बनवारी लाल त्रिवेदी जैसे पात्रों के अलावा रिपुदमन और वल्लरी, अम्मा आदि की व्यक्तिगत जिन्दगी की कहानी "अ" (लेखक) और "ब" (चित्रकार) के इर्द गिर्द बुनी है।

इस उपन्यास में प्रत्येक घटना मध्यवर्ग की विशेषता को उभारती है। उदाहरण के लिए एक घटना देखिए जिसमें पार्वती नामक हरिजन महिला इन सभी घरों में आकर काम करती थी। एक दिन इसकी बेटी राधिया को एक पड़ोस के चोरी के आरोप पर पुलिस पकड़ कर ले गई। उसे अपनी बेटी को छुड़वाने के लिए सौ रुपये की जरूरत थी। पास किसी तरह राधिया का बाप जुटा लिया पर पचास रुपये ? पाँचों घरों से दस-दस रुपये मिल जाएँ तो मामला निपट जाता किन्तु ये मध्यवर्गीय परिवार के

- -

1. रामदरश मिश्र - हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा - पृ॰ 177

लोग । कोई नीति, उपदेश, कोई गाली देता रहा मगर कोई पैसा नहीं दिया । किन्तु इसी मध्यवर्ग का व्यक्ति त्रिवेदी जाकर उसे छुड़वा देता है । पार्वती जब रुपये माँगने जाती है "लालवानी साहब उपर से बोले - अरे इसको एक पैसा मत देना । ये यों ही बहाने बनाकर पैसा माँगती है । सब पैसे शराबी जुआरी आदमी उड़ा देता है । मिस्टर वर्मा उधर से चिढ़के - मैं कहता नहीं था, शुरू से ही कि हरिजन नौकर मत रखिए । इन सालों के मिजाज बहुत बढ़ गए है । यह सब गलती वो गाँधी ने शुरू की । सबको बराबरी का दर्जा देने गए । लो अब भुगतो उसके दुष्परिणाम । मिसेस कपूर चुप क्यों रहती, वे किसी लेकम थोड़े ही थी - पैसे की कोई बात नहीं । दस के बदले हमी सौ दे देते । पर प्रश्न सिद्धांत का है । हमारे धर्म में कहा है कि नीच जात को सदा नीच जात की तरह ही रहना चाहिए । अब तो सब लोगों ने धर्म छोड़ दिया । उसी का यह नतीजा है ।"[1]

मध्यवर्ग की एक और विशेषता है कि वह अपने साथ काम करने वालों से मीठी-मीठी बातें करके काम निकाल लेता है । यही प्रवृत्ति इस बंगले के सभी स्त्रियों में थी । जब उनके यहाँ कोई अधिक काम है तो काम करने वाली पार्वती और उसकी पुत्री राधिया से मीठी-मीठी बातें करती है । तब माँ बेटी समझजाते है कि "कुछ सौदा सुलुफ बाजार से लाना है, या अतिरिक्त काम बिना पैसे दिए कराना है, इसीलिए ये सब मीठी-मीठी बातें है ।"[2]

मध्यवर्ग के सरकारी नौकर या अफसर जो लोग होते है, इनके लिए तो मात्र धनार्जन और मान सम्मान प्राप्त करना ही एक मात्र उद्देश्य होता है । इसकी खातिर वे पारिवारिक समस्याओं को भी अदेखी कर सकते है । यहाँ तक की पत्नी के गुम जाने पर भी पुलिस या अन्य किसी को

- -

1. किसलिए - पृ: 28
2. किसलिए - पृ: 31

खबर नहीं करते क्योंकि उनका जो मर्यादा सम्मान इससे जुड़ा है । वह नष्ट हो जाता है और आने वाला प्रमोशन रुक जाता है । इस उपन्यास में वल्लरी के पिता ऐसे ही अफसर है जो कि पत्नी आत्महत्या करने गई तो वह "पड़ोसियों - पड़ोसियों को अपनी पत्नी के श्रेष्ठ गुणों का बखान करते नहीं अघा रहे है । आंसू बहा रहे है और चीख रहे है ।"[1] एक समझदार पड़ोसी ने कहा कि माँ से मिलने गई होगी । जरा आप दक्षिण की ग्रांडट्रंक एक्सप्रेस के स्टेशन मास्टर को तार या ट्रंक टेलीफोन पर बात कीजिए । किन्तु "अब सुब्रह्मण्यम यह बात करने को राजी नहीं है । क्योंकि उस दशा में उनकी बदनामी हो जाती और अगला प्रमोशन रुक जाता । उन्हें प्रमोशन पत्नी से अधिक प्रिय था ।"[2]

वल्लरी रेडियो के शिक्षण के संबंध में जर्मनी गई थी । वहाँ उसका परिचय ओरिया भाषी जगन्नाथ से हुआ और वे विवाह भी कर लिए । किन्तु जगन्नाथ धोखेबाज निकला जो बाते वल्लरी को उसने बतायी थी वे सब झूठ थी । यह बात कटक आने पर पता चला "वह न जमींदार था न अनेक मकानों का मालिक और न अनेक डिग्रीधारी बड़ा लेखक । वह सिर्फ एक लोफर था ।"[3] वल्लरी को बहुत कष्ट पहुँचाता था । इसलिए वह निश्चय की कि अपने परिचित मि॰ सिंह के यहाँ चली गई । "बाद में पता चला कि वह दुष्ट शराबी जगन्नाथ अपनी पत्नी से वेश्यावृत्ति कराने पर तुला था । वह उसे बाध्य कर रहा था कि उसके जो मित्र आए उनका भी वह मनोविनोद करे । जब हालत इस सीमा तक पहुँच गई, वह बेचारी एक दिन वहाँ से भाग कर चली आई ।"[4] इस प्रकार मध्यवर्गी

1• किसलिए - पृ॰ 37

2• -वही- पृ॰ 46

3• -वही- पृ॰ 48

4• -वही- पृ॰ 57

झूठी शान में जीवन बिताता है और जब उसका पर्दाफाश हो जाता है तो वह अकेला रह जाता है। आर्थिक अभाव में वह अपनी पत्नी को भी वेश्या बनाने में पीछे नहीं हटता।

मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी अपने स्वार्थ के लिए स्वयं अपने द्वारा स्वीकार किए गए सैद्धांतिक विचारधारा या मान्यताओं को भी त्याग देने के लिए तैयार हो जाता है। ऐसा ही पार्क अंटर कालेज में हिंदी के लेक्चरर श्री बनवारीलाल त्रिवेदी है। "प्रो त्रिवेदी कनौजिया ब्राह्मण है और बावजूद मार्क्सवादी - लेनिनवादी कम्युनिस्ट धारा से प्रभावित होने के, वे वक्त पड़ने पर अपने कनौजियापन का भी लाभ उठा लेते है।"[1] जहाँ तक लक्ष्मी का संबंध है, वे रोज सवेरे उठकर उनकी तसवीर को प्रणाम करते है। जिस टेक्स्ट बुक कमेटी में मुख्य किताब लगाने वाले बड़े डाक्टर साहब है, उसी को वे सवेरे प्रणाम करते है। अब वे लक्ष्मी से इसलिए बहुत नाराज हो गए है कि विभागाध्यक्ष के चरण छू-छूकर, उनकी सब तरह से सेवा कर, यानी कि उनके लिए किताबें और भाषण लिख-लिखकर देने पर भी बेचारे त्रिवेदी जी वैसे भी फटेहाल रहे थे। इसका कारण भारतीय दर्शन के अनुसार वे अपने पूर्वजन्म पर या भाग्य पर न डालकर, सीधे पूंजी-वादी व्यवस्था के अंतिम दौर में से भारत का गुजरना बताते हैं। इसकी संहार और विकृत अंतर्विरोधात्मक प्रकृति के मत्थे मढ़ते है।"[2]

मध्यवर्ग के लोग धन कमाने के लिए तरह तरह के तरीके सोचते है। पत्रकार बीजापुरे पत्रिकाओं के लिए लेख लिख-लिख निराशहुए क्योंकि कोई भी उनके लेख छापता नहीं था तो उन्होंने एक नई प्रणाली शुरू की। "पैसे जुटाने का और एक रास्ता बिजापुरे जी ने खोज निकाला। वे सब नेताओं

---

1. किसलिए - पृ. 57

2. इसलिए - पृ. 58

मंत्रियों, उप मंत्रियों, संसद सदस्यों के जन्म दिनों की एक तालिका बना लाए और उन उन दिनों पर उनके फोटो इंटरव्यू आदि मांगने शुरू करने लगे। कुछ धनी नेता आत्मप्रचार के लिए कुछ अतिरिक्त धन किशपुरे जी को देने लगे। उन्होंने और एक धंधा शुरू किया। कोई पचास वर्ष का हुआ, किसी की षष्ठि पूर्ति हुई कि सम्मान - अभिनंदन आदि समारोह आयोजित कराना। उसमें भी उन्हें थोड़ी दौड़-धूप तो करनी पड़ती थी, पर आमदनी भी हो जाती थी। नगर में आये बाहर के साहित्यकारों के लिए गोष्ठियाँ भी ये ठेके पर आयोजित करते, और जैसी जिसकी जजमान के प्रति श्रद्धा रहती, चाय-पान से लगाकर बड़े-बड़े भोजों तक उत्सव हो जाते।"[1]

यदि मध्यवर्ग के पास थोड़ा ज्यादा धन रहा तो अपने आपको उच्च वर्गीय व्यक्ति समझते है और अपने परिवार को दूसरों से अलग विशिष्ट मानते है। यहाँ तक कि बच्चों को भी अन्यों से अलग रखने का प्रयास किया जाता है। "श्री कपूर के दोनों बच्चे अवश्य पैसे के मामले में बहुत सतर्क है। उन्हें पग पग पर पढ़ाया गया है कि वे अमीर माता-पिता की संतानें है, उन्हें अपने आपको गरीबों की संतानों से अलग रखना है। मध्यवर्ग के सब होते है, पर कपूर के बेटे बचपन से कार, फ्रिज, टेलीविजन आदि के आदी है। उनके लिए ये सब जिनके पास न हों, उनके बच्चों से क्या बात की जाए ? सो कुमार कपूर और कुमारी कपूर अपनी दुनिया में और दोस्तों में डूबी रहती है।"[2] "कपूर की बेटी कल्पना वर्मा जी की ममता की हम उम्र है। पर दोनों सहज भाव से एक दूसरे से मिल नहीं पाती। कल्पना हर बार अपनी कार या टेलीविजन या फ्रिज का जिक्र किए बिना नहीं रह सकती - और इस तरह दूसरी बच्ची के सामने अपनी

---

1. इसलिए - पृ. 69
2. -वही- पृ. 70

विशिष्टता का बखान करती रहती है । कपूर साहब का अनिल अंगुलियों के माटू को हमेशा धिक्कारता से देखता है और नीचा दिखाने का यत्न करता है। उधर ममता या माटू के मन में यह भाव गहरे जगाता है कि संपत्ति का दिखावा ही आदमी को बड़ा नहीं बनाता । विद्या और दूसरे गुण भी है, जो मनुष्य को विशिष्ट बनाते है ।"[1]

मध्यवर्ग की विशेषता यह है कि इस वर्ग में स्त्री पुरुष में समानता नहीं होती, स्त्री के कुछ विशिष्ट दायरे होते है वह घर के बाहर नहीं निकल सकती । मध्यवर्ग, विशेषतः पुरुष प्रधान समाज है । इसका उल्लेख आलोच्य उपन्यास में उपन्यासकार माचवे लेखक "अ" से कराता है । "अ" "ब" (चित्रकार) से कहता है - "हमारा सारा स्त्री पुरुष के बारे में विचार हमारी परिस्थितियों में से उपजा हुआ है । मध्य वर्ग की पुरुष प्रधान नैतिकता को हम अपना मानदंड मानकर चलते हैं । असल में न आदिवासी समाजों में, न हरिजनों, गिरिजनों में न किसान मजदूरों में यह भेदभाव है । वहाँ सब एक सा श्रम करते हैं । उन्हें करना ही पड़ता है । यहाँ तक कि कानून की मनाही होने पर भी बच्चे भी उसी श्रमरूपी विराट चक्की में बराबर पीसे जाते हैं । तो ऐसी दुनिया में ये सब जो तुम मानकर चलते हो, वे "बायोलाजिकल" (प्राणिशास्त्रीय या दैहिक) भेद स्त्री-पुरुष में कहाँ है ?"[2]

मध्यवर्ग में नौकरशाही वर्ग विशिष्ट है । उसके विशेषताओं को माचवे जी श्री लालवानी के माध्यम से चित्रित किया है - "श्री लालवानी पहले से भी ज्यादह फाइलों में डूबे रहते । नौकरशाही की सब बुराइयों के वे प्रतीक बन गए । किसी भी काम को दफ्तर में जल्दी करना वे पाप समझते थे । बोलते वैसे ही कम थे, अब और भी मौनी बाबा बन गए । सवेरे दफ्तर जाने में आधा पौन घंटा देर लगाते । साढे ग्यारह बजे चाय के

- -

1. इसलिए - पृ: 70-71

2. -वही- पृ: 181

बहाने चार दोस्तों से मौसम या ताजा राजनैतिक स्कैंडल पर गप लड़ाते । लंच के समय घर आते । दो घंटे बाद लौटकर जाते । चार बजे फिर चाय । कभी दफ्तर से पाँच बजे उठते ही नहीं थे । टाइपिस्ट और स्टेनोग्राफर को छः सात बजे तक नहीं छोड़ते । एक एक फाइल पर "नोटिंग" कराने में तीन-तीन बार ड्राफ्ट बदलते । अपने से नीचे के लोगों के साथ बुरी तरह पेश आते । और अपने से ऊँचे अफसरों की बेहद मीठी भाषा में खुशामद करते, तलुए चाटते । यों वे बराबर तरक्की पाते रहते । ऊपर की आमदनी से भी उन्हें परहेज नहीं था । पर यह सारा कमाया हुआ पैसा जाता कहाँ ? तो श्रीमती लालवानी के हाथों से किसी बाबा, स्वामी, गुरु या पहुँचे हुए सिद्ध के चरणों में, या फिर बच्चू के हाथों चरस- कोकीन, एल एस डी की खरीद में । जैसे मार्ग से धन आता, वैसे ही मार्ग से जाता । श्री लालवानी बेचारे बीच में अनिवार्य कारण मात्र थे । जैसे हलवे की कढ़ाई में कलछी । उसके बिना हलुआ बनता भी नहीं, और वह हलुआ खा भी नहीं सकती ।"[1]

मध्यवर्ग की विशेषताओं के संबंध मे "धुंध" उपन्यास में भी चर्चा हुई है । गाँव के हेडमास्टर और द्रौपदी मध्यवर्गीय विशेषताओं के किस्से सुनाते हैं । हेडमास्टर ने कहा -"मध्यवर्गीय संस्कार कहाँ छूट हो पाते है । इन महात्माओं ने जनता का नाम लेकर, उनके लिए जो लोक संगीत महल खोले तो उसमें वही मध्यवर्गीय बातें आ गई । एक विदेशी महिला जो उत्कृष्ट नाचती थी, एक बहुत अच्छे नर्तक से आकृष्ट होकर यहाँ आई । इस आदमी ने उससे प्रेम का नाटक किया । बाद में अपनी ही भाषा बोलने वाली, अपनी ही जाति और प्रदेश की लड़की से शादी कर ली, जो उस विदेशिनी के नख के बराबर भी नहीं थी । विदेशिनी ने दुःखी होकर नाचना ही छोड़ दिया ।"[2] द्रौपदी ने कहा --"कई ऐसे किस्से हैं ।

- -

1. इसलिए - पृ. 19।

2. धुंध - पृ. 6।

ये तथाकथित मध्यवर्गीय क्रांतिकारी अपने घेरे से बाहर जा ही नहीं सकते । मुंह में राम बगल में छुरी की तरह मुंह से ये दुनिया भर के शोषितों की एकता की बात करते हैं, पर प्रत्यक्ष आचरण में ये लोग अपनी बेटी के अन्य धर्मावलम्बी से प्रेम या शादी करने के प्रस्ताव को सुनते ही, उसे पिस्तौल से गोली मारने को भागते हैं । फिर चाहे वह लड़की पागल होकर आत्म-हत्या ही क्यों न कर ले ।"[1] इस प्रकार मध्यवर्गीय व्यक्तियों के दोहरे रूप होते हैं । समाज में प्रतिष्ठा पाने के लिए बड़े-बड़े आदर्शों का बखान करते हैं पर जब अपनी बात आ जाती है तो पीठ दिखा देते हैं । ऐसी दोहरी मानसिकता के कारण ही मध्यवर्गीय समाज खोखला होता जा रहा है ।

"कहाँ से कहाँ" उपन्यास में ऐसे बुद्धिजीवियों पर व्यंग्य किया गया है जो किसी सेमिनार या सम्मेलन में भाग लेकर ऐसी चर्चाएँ करते हैं जिन में ढेरे सारे विदेशी ग्रंथों से उद्धरण रहते हैं । वे असली समस्या को छोड़ कर अमूर्त शब्दजाल में और उसकी अर्थहीनताओं के तन्तु जाल में अपने आपको उलझाते रहते हैं और भारतीय बुद्धिजीवियों की मन:स्थिति ऐसी थी कि वे कोई हिंदी में बोलता तो सुन नहीं पाते थे । [ग्राम] समाज सुधारक जितेन्द्र बोल रहा था तो "कितनों के मुंह एकदम उतर गये । चूंकि वह हिंदी में बोला था । कई कितनों ने तो ऐसा चेहरा बना लिया "वाट इज दिस आर्टिफिशियल स्कॉलास्टिक "जार्गन" दिस जैंटलमैन इस स्पीकिंग ?" एक भारतीय ने अजनबी की तरह पूछा ।"[2] और कई कितनों ने आपस में ऐसे ही कहने लगे । गांव से जितेन्द्र जैसा गया था वैसा ही लौट आया । कोरा का कोरा । साथ में आधा किलो कागजों का भार

- -

1. धुली - पृ. 61
2. कहाँ से कहाँ - पृ. 86

जकर बढ गया था - "कई साइक्लोस्टाइल्ड पेपर्स थे ।"[1] ऐसे सेमिनारों ऐसे कक्षाओं पर जितना खर्च होता है, वह सब व्यर्थ है । माचवे जी सोचते हैं कि - "क्या सचमुच इस देश में पढा लिखा, हजार से ऊपर तनखा पाने वाला, एक ऐसा वर्ग है, जो इस देश से कटा हुआ है । वह समझता है कि वही सांस्कृतिक नेतृत्व, शासन, जन - प्रचार, माध्यमों का नियंत्रण और पूरी नई पीढ़ी का मानस बनाने का अपने ऊपर उत्तरदायित्व ओढ़े हुए हैं । उसके बिना विद्यालय, विश्वविद्यालय, सचिवालय, बड़े सरकुलेशन के बीबी, अखबार, अन्तर्राष्ट्रीय विचार गोष्ठियां, सांस्कृतिक प्रतिनिधि मंडल की यात्राएं कुछ नहीं कर सकतीं....."[2]

सरकारी कार्यालयों में फैली भ्रष्टाचार और अफसरशाही का भी इस उपन्यास में माचवे जीने पर्दाफाश किया है । नौकरी दिलाने के नाम पर ग्रामवासियों का भरपूर शोषण करना ही इनका काम है । माचवे जी अफसरों की दैनिक कार्यक्रम बताते है - "कैसी कैसी अफसरशाही । एक और अफसर रोज सबेरे उठकर योग और ध्यान में चार घंटे बिताते हैं - चार से आठ बजे तक । पर दफ्तर में सब तरह के भ्रष्टाचार को प्रश्रय देते हैं - मातहतों से मुफ्त फल और सब्जियां, शक्कर और चावल मंगवाते हैं । शौक यकता पड़ने पर "रिसेप्शनिस्ट" लड़की का भी उपयोग करते हैं और ऊपर से सबको अध्यात्म का उपदेश पिलाते रहते हैं । क्या दोहरी जिन्दगी है ।"[3]

इस उपन्यास में भी संपादक और प्रोफेसर जैसे बुद्धिजीवियों के खोखलेपन का चित्रण यथार्थ के साथ किया गया है । आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए वे अपने विचारधाराओं को छोड़ सकते हैं तथा समझौतावादी नीति को अपनाते

- -

1. कहाँ से कहाँ - पृ. 86
2. -वही-
3. -वही- पृ. 133

है । संपादक वर्ग के संबंध में लिखते हैं कि "क्रांति का वे समर्थन उसी मात्रा में करते थे जितना तक उनके मालिकों को पसन्द था । "[1] और शिक्षकों के संबंध में लिखते हैं कि "प्रोफेसरों का यह हाल था कि वे पढ़ाना कम, अन्य मार्गों से आय बढ़ाने में लगे रहते थे । कोर्स की पुस्तकें लगवाने के लिए पैसा खाते थे । गुमनाम से कुंजियों जैसी किताबें लिख देते, और क्या-क्या नहीं करते । उनकी अपनी कोई विचारधारा नहीं थी । "जैसे बहे बयारि पीठ तब तैसी दीजे" उनकी नीति थी ।"[2]

"दरारें" उपन्यास में भी बौद्धिक नलिकान्त का चित्रण किया गया है जो एक बौद्धिक समाज से कटा हुआ, किताबें बहुत पढ़ता था, दर्शनशास्त्र के ग्रंथ, साहित्य के ग्रंथ पढ़ता था । अमरीकी और रूसी साहित्य इतिहास के बारे, कलकत्ते क्रांतिकारियों के बारे में बौद्धिक रूप से जानते थे ।"अंग्रेजी ही उनकी अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम थी, चूंकि वे अपने आपको "अपरूटेड" यानी "उखड़ा हुआ आदमी" मानते थे ।[3] इस उपन्यास में पंचानन जैसे युवकों का भी चित्रण हुआ है जो अपने आपको महान क्रांतिकारी समझता है । असलियत तो यह है कि ऐसे युवक जो स्वार्थी होते हैं । पंचानन अंग्रेजों को हटाने के लिए बम बनाने वाले व्यक्ति हैं । इसी अदिति का परिचय हो जाता है और अदिति समझ जाती है कि "पांडु केवल आदर्शवादी कलाकार नहीं है। एक दोहरा व्यक्तित्व है । भीतर से वह गहरा स्वार्थी और कमीना भी है । वह स्वयम् स्त्री लंपट नहीं था । पर वह उससे भी बुरा निकला । वह अदिति को आधार बनाकर अपने दफ्तर में, जहाँ वह "किरानी" था, वहाँ अपने बड़े "सेक्रेटरी" को खुश करना चाहता था ।"[4] पंचानन एक बार अपने अफसर श्री सेन से अदिति को मिलवाने दफ्तर के केबिनेट में ले गया । पंचानन ने जाकर परिचय दिया तो अदिति

- -

1.2. कहाँ से कहाँ - पृ. 136

3. दरारें - पृ. 28

4. दरारें - पृ. 37

को लगा कि बाहर आग उगलने की भाषा बोलने वाला वह "विप्लवी" युवक कहीं लुप्त हो चुका है और यहाँ घिघियाने वाला एक किरानी अपने प्रमोशन के लिए दस्तबस्ता खड़ा है और उस छोटे से स्वार्थ के लिए वह चाहे जो बड़ा अपराध सहज कर डाल सकता है।"[1]

श्रीसेन का मध्यवर्ग का अफसर है जो क्रांति में विश्वास रखता है और नौकरी भी छोड़ नहीं सकता। इसके बारे में अदिति जब बुद्धिजीवी नलिनी कांत को बताती है तो वह कुछ गंभीर होकर श्रीसेन जैसे व्यक्तियों केबारे में कहता है कि --"अदिति, इसमें कोई अचरज मुझे नहीं हुआ। यह "क्लास" कैरेक्टर है। क्लास वन का यह अफसर है। अपनी नौकरी छोड़ सकता नहीं। क्रांति जरूर करना चाहता है। शक्ति उसमें है नहीं। वह पंचानन जैसे लोगों को अपना साधन बनाता है। जब तक मनुष्य मनुष्य को साध बनाता रहेगा कोई महत्कार्य हो नहीं सकता। सारी राजनीति की "हार" इसी में है। वह एक विराट पैमाने पर कुछ मुट्ठी भर लोगों द्वारा बहुत बड़ी जटिल जनता को मूर्ख बनाने का धन्धा है।"[2]

इस उपन्यास में माचवे जीनेकुछ ऐसे युवकों का चित्रण किया है जो निम्न मध्यवर्ग के हैं और समस्त सामाजिक ढांचे को बदलने की आकांक्षा से प्रतिबद्ध है। वे "हैंड ग्रनेड" बम बनाने वाले, सर्व सिद्धांत द्वारा अतिवाम युवकों की टोली एकदम अद्भुत थी। अदिति देख रही थी कि"वहाँ सभी निम्न मध्यवर्ग के युवक है। किसी में भी झूठा दंभ नहीं था। न पैसे का, न बुद्धि का, न रूप का, न अपने नाम का।"[3] ऐसे युवक देश की सामाजिक आर्थिक समस्याओं पर चर्चा कर रहे है। देश में मूल्यों का पतन और भ्रष्टाचार

- -

1. दर्पणा - पृ. 38

2. दर्पणा - पृ. 42-43

3. दर्पणा - पृ. 68

का फैलाव मात्र आर्थिक विपन्नता के कारण ही हो रहा है । ऐसा इन युवकों और युवतियों का विचार था । एक कह रहा था " इस देश में पुलिस सबसे कम तनख्वाह पाती है और सबसे ज्यादा भ्रष्टाचार वहीं से शुरू होता है ।"[1] दूसरा कह रहा था "इस देश में नैतिकता के मान बदल रहे हैं । अब डाकिया गांव की अकेली बुढ़िया को उसके मनीआर्डर के पैसे नहीं पहुँचता, खुद की जेब में डालता है और किसी भी लड़की के अंगूठे के निशान लगाकर रसीद वापिस भेजने वाले के पास भिजवा देता है । आज किस-किस को कहाँ तक रोकियेगा ।"[2]

माचवे जी का "लापता" उपन्यास मध्यवर्गीय युवक की मानसिक स्थिति को स्पष्ट करने वाला है । इस उपन्यास के माध्यम से रचनाकार ने हीन भावना से ग्रसित, अकेलेपन को महसूस करने वाले युवक का चित्रण किया है । अरविंद मल्होत्रा दिल्ली में रहने वाला युवक है और घर में प्यार न मिलने के कारण वह घर छोड़कर भाग गया था । वह एक अजनबी की तरह देश के चारों ओर घूमता था । अपनी पहचान मिटाना चाहता था । किन्तु वह मिटा नहीं पाया । वह हमेशा दुःखी रहता था ।"कहीं न कहीं गहरे में उसके मन में यह पीड़ा थी कि वह बिना जड़ों का निर्मूल, विच्छिन्न एक तरह की अमरबेल का सा जीवन बिता रहा है । फिर उसने यूरोप में गत महायुद्ध के बाद रेफ्यूजियों के जहाँ तांते लग गये, और भिन्न-भिन्न देशों में विनाश के बाद पुनर्निर्माण का कार्य भी बड़े पैमाने पर हुआ, वह देखा और उसके मन में यह एकाकीपन उसे और भी सालने लगा ।"[3] अरविंद मल्होत्रा बार बार अपने नाम और वेशभूषा बदलकर अपनी पहचान को समाप्त करना चाहता था किन्तु कर नहीं पाता था क्योंकि भीतर ही भीतर उसको एकांत बहुत खलता था । "अकेला होने पर उसका मन

- -

1.2. दामुआ - पृ. 70

3. लापता - पृ. 39

उसको खाने लगता था । बार बार उसे अपने परिवार की याद आती । सौतेली ही क्यों न हो, माँ कैसी है, कहाँ है ? और सब रिश्तेदार ? आँधी आते ही पक्षी भाग नहीं जाते हैं ? दरिद्र का भी ऐसा ही होता है । फिर पेड़ पर पत्ते आये कि पक्षी चहचहाने आ जुटते हैं । पैसे वालों के पास लोग हर तरह जमा हो जाते हैं । जहाँ होगी कण, वहीं जुटेगी जन ।[1] "जब व्यक्ति आत्म स्थापन (सेल्फ असर्शन) न कर सके तो हीनता ग्रंथि से जकड़े होने के स्पष्ट लक्षण हैं ।"[2] अरविंद मल्होत्रा में भी हीनता की भावना थी क्योंकि उसे घर में प्यार नहीं मिलता था । सौतेली माँ थी और पिता भी सदा छोटे भाई का पक्ष लेते थे । उसे समझाने की कोशिश ही कोई नहीं करता था । वह अपने भाई के बारे मे बताता है जो उससे एकदम उल्टा था - "वह मारपीट करता । घर पर आकर झूठ बोलता । सबकी सहानुभूति पाता । छोटा था न । मुझे सब दुरदुराते । सब चाहते थे कि मैं पढ़ाई पूरी करने से पहले ही कमाने लग जाऊं । यह कैसे संभव था ? मेरी किताबें वह चुराता । पन्ने फाड़ डालता मेरे होम वर्क के । मेरे अपमानित होने में उसे बहुत आनन्द मिलता था ।"[3]

अरविंद मल्होत्रा जब आशुतोष नाम से कभी कभी डायरी लिखता था । डायरी में भी अकेलेपन के बारे में ही लिखा करता था - "आदमी अकेला रहना चाहता है । उसी में उसे सुख लगता है । पर वह अकेला रह ही नहीं सकता । बचपन से उसे परिवार, कलम, मित्र बहुत होने पर पत्नी-पति, बच्चे और कितने कितने लोग घेरे रहते हैं । वह निस्संग रह ही नहीं पाता और सोचता रहता है कि निस्संगता ही अन्तिम सुख है ।

- -

1. लापता - पृ॰ 45

2. डा॰ हेमराज निर्मम - हिंदी उपन्यासों में मनःपक्ष - पृ॰ 216

3. लापता - पृ॰ 88

यही अकेलापन, जिसे वह सुख की कुंजी मानता है, उसके दुख की जड़ है, क्या वह इसलिए दुखी है कि उसे भारी दुनिया में उसके मालिक, स्वामी, माता-पिता, आत्मीय स्वजन सबने निराश्रित छोड़ दिया है ? क्या वह इस अलगाव से दुखी है ? पर पहले तो मनुष्य जंगल में, गुफाओं में रहता था । उसने बनाया हुआ कोई सर्वशक्तिमान, सर्वकृपावान ईश्वर भी नहीं था । तब वह क्या अकेलेपन के दर्द से छटपटाता नहीं था ? नहीं, वह इसलिए दुखी था कि वह अपने आपको पहचानता नहीं था । उसकी पुकार थी कौन हूं मैं ? कौन हो तुम ? क्या हूं मैं ?"[1] इस प्रकार अकेलेपन अजनबीपन का कारण मनुष्य को प्यार, अपनापन का सहारा न मिलता ही है । अरविंद जब घर लौट आता है तब विनीता घर के बच्चों के साथ बात करती हुई कहती है कि अरविंद पर कभी कोई गुस्सा नहीं करना चाहिए । क्योंकि "यह छोटी सी बात नहीं है । अलगाव यहीं से शुरू होता है । स्नेह की कमी अजनबीपन की शुरूआत है ।"[2]

5.3. निम्न वर्ग :

निम्न वर्ग सामाजिक व्यवस्था में सबसे निचला भाग है । यह वर्ग अपना श्रम बेचकर जीवन व्यतीत करता है । निम्न वर्ग समाज में सभी दृष्टियों से पिछड़ा रहता है । इसी पिछड़ेपन का उच्च वर्ग तथा अन्य फायदा उठाते हुए उनका शोषण करते हैं । "इस वर्ग के अंतर्गत समाज के वे लोग आते हैं, जिनका सारा जीवन उच्च तथा कुछ हद तक मध्यवर्ग की सेवा में व्यतीत हो जाता है । यों तो हम मुख्य रूप से कृषकों तथा मजदूरों को ही इस वर्ग के अंतर्गत रख सकते हैं, लेकिन हमारी सम्मति में वे कहार, चपरासी, घरेलू नौकर तथा इसी कोटि के अन्य सभी पेशे वाले लोग भी इसी वर्ग में हैं, जिस

---

1. लापता - पृ. 91
2. लापता - पृ. 132

की स्थिति किसान अथवा मजदूरों से भिन्न नहीं है । बहुत निम्न श्रेणी के दुकानदार अथवा खोंचे आदि लगाने वाले भी इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं । इन सभी की समस्याएं प्रायः एक ही है ।"[1]

भारतीय सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में विवेचन करते समय निम्नवर्ग का संबंध सिर्फ आर्थिक आधार पर नहीं देखा जा सकता बल्कि उसके साथ जाति की स्थिति को भी ध्यान में रखना पड़ता है । अधिकतर निम्न जातियाँ निम्न वर्ग के अंतर्गत ही आती हैं क्योंकि निम्नवर्ग की एवं निम्न-जातियों की समस्याएं लगभग एक जैसी ही है । अतः भारतीय समाज में निम्न वर्ग के संदर्भ में विवेचन करते समय हरिजन आदि अछूत कहीं जाने वाली जातियों को निम्नवर्ग के अंतर्गत ही विवेचित करना ठीक होगा ।

डॉ० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में निम्न वर्ग का चित्रण बहुत ही व्यापक स्तर पर हुआ है । लगभग सभी उपन्यासों में निम्नवर्ग का यथार्थ चित्रण हुआ है । निम्नवर्ग का चित्रण करते हुए माचवे जी ग्रामीण तथा नगरीय निम्नवर्गीय जीवन का बहुत ही मार्मिक चित्रण उपस्थित करते हैं । ग्रामीण प्रान्तों में अज्ञान, निर्धन जैसे अनेक कारणों के कारण निम्नवर्गीय जनता बहुत ही हीन स्थिति में जीवन व्यतीत करती है । इनका शोषण अनेक प्रकारों से उच्च वर्गीय जमींदार, सेठ मिल-मालिक तथा उच्च मध्यम-वर्गीय लोग करते हैं ।

माचवे जी का प्रथम उपन्यास "परन्तु" में जहाँ उच्च वर्ग तथा मध्य वर्ग का चित्रण हुआ है वहीं निम्न वर्ग का भी चित्रण हुआ है । इस उपन्यास में "हेम" निम्नवर्ग की पात्र है । "विवाह के बाद जल्दी ही विधवा

- -

1. प्रतापनारायण टंडन - हिंदी उपन्यास में वर्ग भावना - पृ. 127

हो जाने से "अन्न देवता की विडम्बना" को समझाने - आदिम प्रवृत्तियों की दृष्टि से, भूख और आत्मरक्षा के लिए, हेम गाँव से अपने मामा के साथ कलकत्ता आती है और सेठ लक्ष्मीचन्द के यहाँ नौकरी करती है। x x x परन्तु·····सेठ जी ने उसके श्रम को ही नहीं, सतीत्व को भी जबरदस्ती खरीद लिया और "यौवन के विकास के प्रथम पोर" में ही उस पर "तुषारपात" हो गया।"[1] इस प्रकार निम्नवर्गीय व्यक्तियों का कोई जीवन मूल्य नहीं रहा। वे मात्र उच्चवर्गीय लोगों के लिए विलास की वस्तु है। उनकी कोई मान मर्यादा या इच्छा का मूल्य नहीं है क्योंकि वे आर्थिकहीन व्यक्ति है जीविका के लिए कैसे भी कार्य करने को तैयार हैं। इसी का फायदा उठाते हुए उच्च वर्ग के लोग न केवल श्रम का शोषण करते हैं, बल्कि उससे अपनी वासना को भी तृप्त कर लेते हैं।

कलकत्ता जैसे महानगर में निम्न वर्गीय व्यक्तियों की जिन्दगी बहुत ही कष्टदायक होती है। आदमी जीविका के लिए हमेशा संघर्ष करता रहता है। उसका उद्देश्य मात्र रोटी कमाना है। हेम कलकत्ते में रिक्शा को देख रही है। "हेम ने जीवन में रिक्शा पहली बार देखा था। आदमी आदमी को खींच कर ले जा रहा है। क्या अद्भुत दृश्य है। आदमी ने अपने आपको बैल, खच्चर या घोड़े में अनायास परिवर्तित कर दिया है - फर्क इतना है कि बैलों के गले में जो घंटी बाँधी जाती है, वह इसके हाथ में है। गोल-गोल पहिए चलते है, इसलिए गोल-गोल सिक्के मिलते हैं - पैसे अठन्नी, रुपये। दो पैर निरन्तर भाग रहे हैं। दो पहिए उनके पीछे बराबर अविराम गति से चले आ रहे हैं। ये दो पहिए उन दो पैरों के स्वामी है। ये दो पहिए रिक्शे के है जो कि किसी पैसे वाले का है, या यदि रिक्शा वाले का हो तो कर्ज के बदले में उसी पैसेवाले के बहीखाते में गिरवी रखा जा चुका है।"[2] इस प्रकार निम्नवर्ग की जिन्दगी बहुत ही दर्द भरी होती है।

- -

1. डॉ० सत्यपाल चुघ - उपन्यासों की शिल्प विधि - पृ: 79।
2. परन्तु - पृ: 9।

रिक्शा भी उसका स्वयं का नहीं होता । किसी पैसे वाले के पास से किराये पर लिया हुआ या उसी का है तो भी वह गिरवी रखा हुआ है ।

"एकतारा" उपन्यास में हेमेन्द्र द्वारा एक नाटक खेला जाता है जिसमें यह बताया गया है कि ग्रामीण निम्नवर्गीय किसान जनता का शोषण किस प्रकार होता है और उन निम्नवर्गीय जनता में वर्ग चेतना आने के पश्चात, जमींदार आदि शोषक वर्ग की बाधाओं से मुक्त हो जाते हैं । नाटक में - लो, ग्राम देवता लो प्रणाम ।" गीत परदे के पीछे से गाया जा रहा था और एक एक कर गाँव के शोषण के दृश्य सांकेतिक नृत्य द्वारा दिखाये जा रहे थे । कैसे जमीन एक जमींदार हड़प लेता है, कैसे धर्मवाले, झाड़ - फूंक करने वाले उसे और लूटते है और कैसे अन्त में वह मुंहताज हो जाता है । इसलिए इन सब विघ्नों को हटाने वाले गण देवता तुम्हे प्रणाम हो । सब किसान मिलकर जुलूस निकालते हैं । एक एक कर यह विघ्न बाधाएँ भागती है । बिलखती रोती किसान की लड़की जो कि बंधक रखी गयी थी जो कि बेड़ियों से कसी थी, मुक्तहोती है । सब मिलकर बसंत का गाना गाते है ।"[1] इस नाटक में शोषण के संबंध में एक किसान का लड़का जोर जोर से कहता है कि -"आज का जमाना मजबूरी का है । रम्मू भैया, तुम्हारे चाहने न चाहने से कुछ नहीं होता । काम करो तो भी मार है, न करो तो भी मार है । तुम्हारे लिए यही बदा है ? मक्खन - मक्खन सब ठाकुर लालसिंह का है और छाछ भी तुम्हारे पल्ले पड़ने वाली नहीं - चाहे गाय तुम्हारी हो, चाहे चारा उसे तुमने खिलाया हो, चाहे दुहा उसे तुमने हो ।"[2]

"सांचा" उपन्यास में मजदूरों की जिन्दगी पर प्रकाश डाला गया है । मिल-मालिकों का शोषण, गाँवों से अपने बीवी बच्चों को छोड़ कर रोजी रोटी कमाने की आशा से आये ग्रामीण श्रमिकों का चित्रण यथार्थ के

- -

1. एकतारा - पृ. 60

2. एकतारा - पृ. 62 - 63

साथ कियागया है । निम्नवर्गीय मजदूर जो अज्ञान और निर्धनता से बंधे हुए है उनका शोषण न केवल यांत्रिकीकरण से हो रहा है बल्कि बिचौलियों के माध्यम से भी हो रहा है ।इस प्रकार मिल की जिन्दगी से आदमी आदमी न रह सका वह एक यंत्र का पुर्जा मात्र बन गया । गांव से कैशों और मांगीराम मिल में काम करने के लिए निकलपड़े । एक मिल में काम करने लगे । यांत्रिक सभ्यता की यही विशेषता है कि आदमी कोआदमी रहने नहीं देता । उन्हें नम्बरों में बदल देता है ।"आंकड़ों के पीछे आदमी है । मशीन आदमी को आंकड़ों में परिवर्तित करती है । कैशो और मांगी-रामअब कैशों और मांगी राम बनकर आगे इस कहानी में नहीं मिलेंगे - पर वायींग खाने में नम्बर दो सौ तीस और दो पच्चीस की तरह से मिलेंगे ।"[1] मिल के माध्यम से यांत्रिक सभ्यता मजदूरों का रक्त किस प्रकार चूसती है । कैशोंको इसी के बारे में सोच रहा था । उसके दिमाग में मिल एक विशालकाय अहिरावण - महिरावण का रूप ग्रहण करके सामने आ रही थी, उसके लाल लाल जबड़े, अकराल विकराल उसके दन्त है, लपलपाती जिह्वा है । त्रिनेत्र है - नौ भुजाओं में परशु, पाश खड्ग, एक त्रिशूल, दराती, हथौड़ा और राजदंड भी है। इस यंत्र अक्षम दानव का प्रिय पेय है - गांवों का स्वास्थ्य-रस । कैशों के सामने यह यंत्र दानव मोटे मोटे ग्रंथ पढ़ रहा है - देखते - देखते वह चश्मा पहनने वाले गंजे वकील का रूप धारण करता है । उसके हाथ में एक "पिरानी" जैसे लोहे का कांटा है जो "टिक-टिक" करके इन मजदूर मानवों की, त्वचा में चुभोते जाता है - कुछ रक्त जो रिस कर निकलता है, उसे देख देखकर वह खुश होता है - वह उस कई पशु, कई राक्षस यंत्र रूपी विशालकाय वस्तु के नीचे पिसता जा रहा है ।"[2]

- -

1. सांचा - पृ: 32

2. सांचा - पृ: 36

इस मिल में काम करने वालों में छोटे-छोटे बच्चे भी थे। "रातपाली के बच्चे अपने से कहीं अधिक बोझा उठाये हुए ले जा रहे थे। वैसे कागज में कानून थे - बच्चों में अमुक उम्र तक के लड़कों को मेहनतका काम न देने का आदेश था। पर बात यह थी कि कई तरह के ये आवारा छोकरे यहाँ वहाँ अपराध करते और सब पापों का प्रक्षालन करने यहाँ पहुंचते। लेबर इन्सपेक्टर से बचने के लिये इनके नाम रजिस्टर में दर्ज नहीं कराये जाते। ज्यों ही इन्सपेक्टर के आने की भनक पड़ती इन्हें भगा दिया जाता था। इन्सपेक्टर की "मुट्ठी गरम" करके मामला निपटा दिया जाता था।"[1] इस प्रकार बच्चों का शोषण होता था और इस शोषण में सरकारी कर्मचारियों का भी हाथ था। इस मिल में काम करने वाली महिलाओं की स्थिति भी ठीक नहीं थी। उनका भी शोषण होता था। मजदूरिनें ज्यादातर बहुत छिपछिप साँचों पर काम करती - सालखाते में भी कुछ थी पर उनकी कोई जिन्दगी नहीं थी वैसे ही पुरुषों से कम मजदूरी यहाँ भी उन्हें मिलती। और जिस पर अपमान के घूंटकी, सब तरह की बुराइयाँ उन्हें घेरे रहती। उन पर जाबर की नजर थी ही। साथ ही उन्हें काम पर लगाने वाला ठेकेदार अव्वल नंबर का शराबी और जुआरी था। उसकी अंटी में इनकी गाढ़ी कमाई का बहुत सा पैसा जाता।"[2] क्योंकि इन महिलाओं की परिस्थिति ही कुछ ऐसी थी कि वे काम करने मजदूर हो गये थे। लक्ष्मी को उसके धनी ने छोड़ दिया था। पार्वती दो पतियों को छोड़ चुकी थी। सोना के घरबच्चे थे, पति कमाता था, उसे भी कमाना पड़ रहा था। नरबदा का पति शराबी था और उसकी आय घर में आती ही नहीं थी।

---

1. साँचा - पृ. 53
2. साँचा - पृ. 54 - 54

गीता का बाप बहुत बूढा था - इसलिये जवानी में ही उसे नौकरी करनी पड़ती थी । इन सब औरतों की कमजोरियों और मजबूरियों से उनको नौकरी दिलाने वाले सुपरिचित थे और वे उनसे पूरा फायदा उठाते थे ।"[1] मजदूरों की जो शोषण होता था वह कुछ मजदूरों को ज्ञात होता था कुछ को नहीं । जब पगार का दिन आता था तो उस दिन उनका शोषण करने वाले अनेक रूपों में मिल के बाहर उपस्थित रहते थे । "जिस दिन केशो पहुँचा था पगार का दिन था और जब शाम को वह मिल सेबाहर निकला तो दूसरा ही नजारा दिखाई दिया । मिल के फाटक पर पठान, कर्ज देने वाले खान और कई तरह के फुसलाती लोग खड़े थे । मिल के फाटक के बाहर पास में ही लाली की दुकान थी । बहुत सा मिल में मिला रुपया उस लाली में उंडेल दिया जाता, जैसे ठरो ज्यादा पीकर बाद में होने वाली के हो । कुछ भद्दी, जिनकी आँखों में शर्म का पानी मर चुका है, ऐसी औरतें भी फाटक के बाहर थीं । मेहनत के पैसे का यह सब उपयोग अजब था । लाटरी सट्टे वाले भी बाहर पैसे उगाने के लिए खड़े रहते थे । इतनी सब आँखों के पींजरों से कोई बचाव नहीं था, पगार इधर से आती, उधर चली जाती । मजदूर मानों सिक्कों के मैल को बहाने वाली नालियाँ थे ।"[2] इतना होते हुए भी उस मिल में नौकरी करने के लिए निम्नवर्ग के मजदूर विवश थे । कारण स्पष्ट था आर्थिक विपन्नता और रोजी-रोटी का प्रश्न । यही स्थिति गाँव से रोजी रोटी कमाने के लिए आये केशो का था । जो मिल में काम करना उसे पसंद नहीं था फिर भी विवश होकर कर रहा था ।"पहले ही दिन केशो इस महा सपि की माया से आतंकित हो गया । उसकी तो जैसे बोलती बंद हो गई । यह नया काम कोई खास उसे पसंद नहीं आया । पर पसंद आना न आना गौण बात थी, मुख्य बात थी माहवार मिल से वाले निश्चित पगार के सिक्के ।"[3]

---

1. साँचा - पृ. 53 - 54
2. साँचा - पृ. 54
3. साँचा - पृ. 55

निम्नवर्ग की जिन्दगी में प्रत्येक पहलू अर्थ से जुड़ा होता है । वह हर क्षण अपनी रोजी रोटी के बारे सोचता रहता है जिसके कारण उसके अंदर रहे सहज मानवीय भावना भी नष्ट हो जाती है । वह अपने साथी मजदूर की रक्षा भी नहीं कर पाता क्योंकि यदि उसकी रक्षा करता तो उसकी मजदूरी कट जाती । इसी कारण यह वर्ग अपने मानवीय संवेदनाओं को भी उजागर नहीं कर पाता । केशो जिस मिलमें काम करता था उसी में एक दुर्घटना में एक मजदूर जिसका नाम नारायण था, की बाँह कंधे से अलग हो कर टूट गिरी । वह खून में लथपथ बेहोश पड़ा था । "कई स्वार्थी ऐसे है कि अपना सांचा छोड़ कर नारायण के पास आने को राजी नहीं थे । उन्हें लगता था - पता नहीं सहानुभूति दिखाने जाओ तो जाबर कहीं काम से न निकाल दें ।"[1]

केशो जैसे मजदूर अनेक आशाओं की गठरी लेकर शहर में आते है ताकि अपनी जिन्दगी में कोई सुधार हो । किन्तु मजदूरों की जिन्दगी में कोई सुधार नहीं होता । यह अज्ञान और असंगठित होने के कारण है । जब तक मजदूर अज्ञान में पड़े रहेंगे तब तक पूंजीपति, मिल मालिक उनका रक्त चूसते रहेंगे । इसलिए निम्न वर्ग में वर्ग चेतना अत्यावश्यक है । आलोच्य उपन्यास में जैसे की तैसी रहने से केशो ऊब जाते है । "कभी इस यूनियन वाला उन्हें बनाता था, कभी उस संघ वाले को चंदा देना पड़ता । हालत ज्यों की त्यों बनता थी । नेता लोग आते । व्याख्यान देकर चले जाते । फूलमाला, पेम्फलेट, शब्द, शब्द, शब्द....बादल की तरह से निकल जाते । मजदूरों को दुनियाँ उसी तरह किलकिलाती रहती । ताड़ी उसी तरह बिकती रहती, खान उसी तरह ठठा पीटता रहता, मजदूरों औरतों की अस्मतें पान की पीक की तरह खुले आम सड़कों पर कलंकती बनती, मजदूरों

---

1. सांचा - पृ. 57

के बच्चे उसी तरह बिना दवा दारू के मर जाते ।"[1] यह है औद्योगीकरण सभ्यता का फल । जिसमें जीने के लिए मूलभूत आवश्यकताओं की भी पूर्ति न हो पा रही है । मजदूरों की स्थिति जैसे गांवों में किसान की रहती है वैसे ही था । उसके सामाजिक, आर्थिक स्थिति में कई परिवर्तन नहीं आ पाया है ।

मिल में जो यूनियन है वे मजदूरों की भलाई की बात करती है किन्तु जब मजदूर को आवश्यकता होती है तब कोई भी यूनियन उसे साथ नहीं देती । वह मजदूर वैसे ही घुट-घुट कर मर ही जाता है । इस बात को माधवे जी ने इस उपन्यास में बहुत ही यथार्थ के साथ चित्रित किया है । केशो को टी.बी. हो गया था । उसकी दवा दारू के लिए पैसे देने के मामले में वहाँ के दोनों यूनियन आपस में झगड़ने लगी । कम्युनिस्ट यूनियन कहती है कि वह आई एन टी यू सी का सदस्य है इसलिए उसे वहीं जा कर मदद मांगनी चाहिए । आई एन टी यू सी कहती है कि वह कम्युनिस्ट यूनियन का मेंबर है इसलिए उसकी मदद कम्युनिस्ट यूनियन को ही करनी चाहिए । इसी में बहस में अमूल्य समय व्यतीत हो गया । केशो मर गया । उसके अंतिम संस्कार के लिए शायद मिल वालों ने कुछ रुपये प्रबंध किये हैं ।

गरीबी की जिन्दगी बिताने वाले केशो का जन्म और मरण दोनों गरीबी में ही घटित हुए । उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं आ पाया था । शादी के बाद उसकी पत्नी जलमन्ती समझदारी के साथ अर्थाभाव परिस्थितियों में भी परिवार और बच्चों को संभाली । "जलमन्ती की हिम्मत और गरीबी के साथ जूझने की हिन्दुस्तान की माताओं का कमाल देखिए कि अपने मुंह का कौर निकालकर चम्पा के मुंह में दिया और धीरे धीरे बच्चे

---

1. साँचा - पृ. 62

को खड़ा किया ।"[1] 'किन्तु गरीबी में स्वाभिमान । कंगाली में गीले आटे के बराबर यह बात है । सद्गुण को भी दुर्गुण बनाने वाला बहुत बड़ा अभिशाप है, यह गरीबी ।"[2]

"जो" उपन्यास माचवे जी की एक सशक्त कृति है जिसमें उन्होंने अमेरीका में व्याप्त रंगभेद जैसी ज्वलंत एवं मानव मूल्यों संबंधित समस्या को उठाया है । माचवे जी ने इस रंगभेद समस्या को नीग्रो नायक जो उपन्यास के नायक भी हैं "जो" के माध्यम से चित्रित किया है । नीग्रो जाति की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को उपन्यास में उजागर करते हुए उनके सांस्कृतिक पक्ष पर भी प्रकाश डाला गया है । माचवे जी की महत्ता इसमें है कि उन्होंने अमरीकी नीग्रो समस्या और भारत की सवर्ण और असवर्ण की समस्या को तुलनात्मक दृष्टि से देखा है । दोनों में वे सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से भी कुछ अंशों में समानता देखते हैं । दोनों भी निर्धन और सामाजिक समानता से वंचित हैं । डा० प्रभाकर माचवे "जो संस्मरण" में लिखते हैं कि "अमरीका और वहाँ के रंग-भेद पर इतना कुछ अंग्रेजी में लिखा जा चुका था कि उसमें मुझे कुछ जोड़ना जरूरी नहीं था । पर अपने आपको सबसे समृद्ध, धनाढ्य और आधुनिकतम सुसंस्कृत कहने वाले महादेश में भी मनुष्य को कितना अपमान सहना पड़ता है, केवल प्राकृतिक अश्वेत रंग के कारण ।यह मेरी समस्या थी - जिसका कोई उत्तर मेरे पास नहीं था । - और उसी की तुलना में मैं भारत में जड़ बद्ध जाति भेद कीसमस्या को चुनना चाहता था । डा० अम्बेडकर कहा करते थे कि हिन्दू धर्म का सनातनी स्वरूप और प्रजातंत्र या लोकशाही में कोई समन्वय नहीं हो सकता । यदि आप जन्मना जाति-

- -

1. सांचा - पृ: 12

2. सांचा - पृ: 13

भेद मानते है और मनु आपके विचार व्यवहार के आधार है, तो आप डेमोक्रेट [प्रजातांत्रिक] कैसे हैं ? प्रजातंत्र मनुष्य मनुष्य में समानता में विश्वास करता है - आप शुरू से ही ऊंच नीच का बंटवारा लेकर चलते हैं । इसके लिए मैंने एक काल्पनिक तमिल [तमिल] ब्राह्मण विद्यार्थी चुना जो अमेरिका में पढ़ता है - उसकी सहानुभूति नीग्रो आंदोलन के साथ है, पर अपने ही घर में, अपने ही प्रदेश में डी एम के के बन्धु के साथ नहीं । यह मत विरोध एक लेखक की दृष्टि से बहुत मनोरंजक आधार था, उपन्यास का । चाहे समाजशास्त्री उसके अनेक कारण देता रहे ।"[1]

भारत को स्वतंत्र हुए भी लगभग पचास वर्ष होने आये है किन्तु निम्न वर्ग की जिन्दगी ज्यों की त्यों है । कई सरकारें बदली किन्तु मजदूर किसानों की जिन्दगी नहीं बदली । निम्न वर्ग की जिन्दगी में सुधार सिर्फ नारा रह गया है । झुग्गी- झोपड़ियों में वही हीन, जिन्दगी बीतती जा रही है । सड़कों के बग ल - गंदे नालों के पास, पुलों के नीचे कीड़ो मकोड़ो के समान निम्न वर्गीय जनता जीवन बिताती है। वहीं उनका जन्म होता है वहीं पलती है बढ़ती है और वहीं उनके जीवन का अंत हो जाता है । तीस चालीस पचास उपन्यास में पुराने पीढ़ी के प्रतिनिधित्व करने वाले वासुदेव के माध्यम से डा० माचवे कहलाते है कि - "अभी अभी गांधी शताब्दी मनाई गई । अहिंसा के प्रचारक के शताब्दी वर्ष में देश भर में दंगे हुए । साम्प्रदायिकता को विष मानने वाले की स्मृति यों मनाई गई । क्या जैसा बापू चाहते थे वैसा "रामराज" भारत में आ गया है ? हरिजन अभी झुग्गी - झोपड़ियों में उसी तरह जी रहे है जैसे दो हजार बरस पहले । और छुआछूत क्या गांवों से हटी है ।"[2] इन समस्याओं

- -

1· सं० भीष्म साहनी व अन्य- आधुनिक हिंदी उपन्यास -पृ· 233-234
[जो: संस्मरण - डा० प्रभाकर माचवे से- लेख]

2· तीस चालीस पचास - पृ· 13

के पीछे अन्याय, भ्रष्टाचार सत्ता की लोलुपता और लापरवाही कारण है । जिसके कारण महंगायी बढ़ती जा रही है । निम्नवर्ग के लोग और निम्न या गरीब होते जा रहे हैं । उच्च वर्ग के लोग और धनवान होते जा रहे हैं । समाज में इन दोनों वर्गों के बीच फासला दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है । अब निम्न वर्ग के लोग शान्ति से भी जी नहीं सकते क्योंकि रोजी रोटी मिलना निश्चित नहीं है । हर पल उसके लिए संघर्ष करते ही रहना है । इसलिए 'तीस चालीस पचास' में नई पीढ़ी की उषा पुरानी पीढ़ी की सरला से कहती है कि --"अब जीवन उतना सरल नहीं रहा कि भजन किया और सब प्रश्नों से, सब चीजों से छुटट्टी पाली । अब तो भजन के लिए भी निश्चिंतता नहीं । महंगी में पिसते गरीब के लिए रोटी ही रामचन्द्र है, खाना कपड़ा ही कृष्ण ।"[1]

शहर और गांव में ही नहीं देश के दूर - दराज पहाड़ी प्रदेशों में भी निम्न वर्ग की जनता सुखी नहीं है । वहाँ भी उनका शोषण उसी तरह होता है जैसे गांवों में और नगरों में हुआ करता है । वैसे ही बच्चों से श्रम कराना, पैसे से लड़कियों की गुप्त रूप से बिक्री आदि । "दर्द के पैबन्द" उपन्यास में पहाड़ी प्रदेश का चित्रण हुआ है । जहाँ का रहन सहन, रीति-रिवाज आदि का भी वर्णन मिलता है । लता पहाड़ी प्रदेश में जाकर देखती है कि शायद परिवर्तन आया होगा । वह कहती है कि "पर अब भी गरीब की हालत खास सुधर गई हो ऐसा मुझे नहीं लगा । जिस पहाड़ी नौकर लड़के को मैं होटल में देखती थी, उसकी नेकर और कुर्ता फटा हुआ था । उससे श्रम उसी तरह बुरे ढंग से बिना किसी रियायत के कराया जाता था ।

- -

1. तीस-चालीस पचास - पृ: 133

पहाड़ी लड़कियों की आम बिक्री, खरीद, फरोख्त, नेपाल की सीमा से कलकत्ता - बम्बई के चकलाखानों तक और वहां से पता नहीं किन-किन देशों के गुलाम बाजारों तक उसी तरह चल रही है। नाम बदल गये हैं, और तरीके अधिक पालिश किये हुए शायद हो गये हैं, पर उनकी मूल क्रूरता तो किसी कदर कम नहीं हुई है।"[1] ऐसे लोगों को देखने के पश्चात वसुबन्धु सोच में पड़ जाता है कि इनका उद्धार कौन करेगा। अज्ञान और अंध-विश्वासों में जकड़े हुए इन निर्धन परिवारों को कैसे न्याय मिलेगा। उनके अधिकार उन्हें कब मिलेंगे। उनका शोषण कब बंद हो जायेगा। वसुबन्धु ऋता से कहता है - "सचाई यह है कि यह पहाड़ी लोग जो निरंतर कष्ट से झुके सिर और पीठ पर बोझा उठाये पुश्तों से कुलीगिरी करते जो मैले कुचैले कपड़े पहने बेहद गरीबी की गंदगी और अंधविश्वास की गर्दिश में पड़े हैं, उन्हें गर्त से कौन उबारेगा।"[2] वसुबन्धु सोचता है कि जो व्यक्ति अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए रात दिन मेहनत करता है उसके लिए कला, सौंदर्य आदि का कोई महत्व नहीं है उसके लिए तो सब से पहले रोटी चाहिए खाने के लिए। वसुबन्धु समाजवादी विचारधारा के बुद्धि-जीवी है। वह निम्न वर्गीय जनता की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों के बारे में और उनकी उन्नति के बारे सोचता रहता है। वह ऋता से कहता है - "पर जिन्हें जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के लिए पशु की तरह खटना पड़ता है, उनके लिए यह सब साहित्य संगीत, कला - सौंदर्य के मूल्य कोई विशेष सार्थकता नहीं रखते। ऋता, यदि इन लोगों को दो चीजों में चुनना हो : रोटी या हिमालय की सुन्दरता - तो वह पहले क्या चुनेंगे? रोटी के लिए कितने इन्हीं में से पहाड़ छोड़कर दूर-दूर न सिर्फ मैदानों में, पर सात समंदर पार फौज में और नौकरियों में और कई तरह

- -

1. दर्द के पैबन्द - पृ: 21

2. दर्द के पैबन्द - पृ: 43

के कारखानों में लग गये है । उन्हें पहाड़ का आकर्षण फिर लौटाकर नहीं ला सका ।"[1] इस प्रकार गरीब पहाड़ी जनता जीविका के लिये कहीं पर भी जाने के विवश रहती है ।

प्रभाकर माचवे जी इस उपन्यास में रीटा के माध्यम से भारतीय सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण किया है । विशेषत: निम्नवर्गीय जनता का । "रीटा मूलत: आस्ट्रेलिया की रहने वाली बचपन से अनाथ थी । पादरी चाचा ने उसे पाला पोसा पर उसके संस्कार उसे ईसाई विरोधी बनाते रहे । उसने वहाँ आस्ट्रेलिया में आदिवासियों के मध्य रहकर काम किया है । भारत आकर शान्तिनिकेतन के आस पास के सन्थालों में रवीन्द्र नाथ के आदर्शों की खोज करती रही । वह प्रो० राज से विवाह कर वहाँ और उसके आस पास के गाँवों में गांधी जी के आदर्शों के प्रभाव और प्रचार पर शोध कर रही है । वही पाण्डिचेरी में आश्रम के पास के निचले, पिछड़े, दलित, शोषित वर्ग का योग अरविन्द के पूर्णयोग और आध्यात्मिक सत्य साधना का संबंध खोजती है ।"[2] इस प्रकार रीटा भारत में बहुत सारी आशाओं के साथ आती है । वह कहती है । "पर यहाँ आकर मुझे फिर वही आदिवासीयों से पाला पड़ा । कलकत्ते के करीब संथालों में मुझे काम करना पड़ा । वे भी अध नंगे, अशिक्षित, अंधविश्वासी, अत्यंत जल्दी गुस्सा होने वाले, अजीब लोग जान पड़े ।"[3] फिर वह शांतिनिकेतन के पास के झुग्गी - झोपड़ियों में जाकर दवा दारू आदि देने का काम करती है । रीटा के इस काम के माध्यम से माचवे जीनेवहाँ के निम्नवर्गीय जनता का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है जिससे उनकी अज्ञानता और निर्धनता

- -

1. दर्द के पैबन्द - पृ: 44
2. डॉ० विजया अवधान-स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के संवर्द्धन में महाराष्ट्र की भूमिका - पृ: 63 - 64
3. दर्द के पैबन्द - पृ: 102

का स्पष्ट आभास हमें मिलता है । रीटा कहती है - "हम दवा देते । वह भी ठीक से उन झोपड़ियों की स्त्रियाँ नहीं लेती थी । दवा के बाद जैसी पुष्ट खुराक नहीं थी। आमदनी इतनी कम थी कि उसमें क्या हो सकता था ? अगर हम कुछ फल या दुग्धचूर्ण के डिब्बे देने की कोशिश भी करते तो वे संदेह करते ।"[1] आगे और उनके बारे में जानकारी देती हुई रीटा कहती है - इंजिक्शन लेने की बात तो उन्हें असह्य थी । इतनी गंदगी और मच्छर भारी सीलन भरी जगहों में ये लोग रहते थे, इतनी अभावग्रस्त उनकी दुनिया थी कि झोपड़ी में एक टूटी चरपाई और तीन चार मटकों के सिवा कुछ नहीं होता । कई शामें बीत जाती जब चूल्हा ही नहीं सुलगता । मर्द कुछ मजूरी से कमा लाते तो वह सब शराब पर खर्च कर देते । नित्य ही मारपीट, गाली गुफ्ता, चिल्ल-पों मची रहती । बच्चों का रोना : औरतों की दहाड़ दो चार दिन में एकाध खून भी हो जाता । यह भी एक बस्ती थी जिसमें हम काम कर रहे थे ।"[2]

माचवे जी कहते हैं कि जहाँ एक ओर गंदी बस्ती में मनुष्य रूपी कीड़े सड़ रहे हैं तो दूसरी शांति निकेतन के छात्र क्या करते हैं ? क्या वे संगीत साधना में लिप्त हैं या "शिक्षा" पर अपनी विचारों पर विवेचन कर रहे हैं । शांति निकेतन के पास की गंदी बस्ती के संबंध में बताते हैं कि "पास के संथाल - टोले में शराब के कुल्हड़ पीकर गाली - गुफ्ता, हाथापाई, मारपीट होना बहुत सामान्य व्यापार है । कई झोपड़ों में तो शाम को दीया ही नहीं जलता था । "एसे मर्ग मेरो मजार पर जो दिया किसी ने जला दिया ।" गुन गुनानेवाला भी कोई नहीं था । कई

---

1. दर्द के पैबन्द - पृ. 103-104

2. दर्द के पैबन्द - पृ. 104

जगह कई दिन बिना दाने पके ही गुजारा कर जाता था । तो यह सब शान्ति निकेतन के छात्र क्या करते रहते थे ? आध्यात्मिक चर्चा या कलाशास्त्र में सौंदर्यतत्व के उद्बोधन के पूर्व मानसिक व्यापारों का प्राच्य दृष्टि से विवेचन या "शिक्षा" में प्राकृतिक तत्वों का समावेश" पर अपनी विचारों की मीमांसा ?"[1] इस प्रकार निम्नवर्ग की उद्धार करे बिना अपने बुद्धिजीवी मानसिकता लिप्त होने वाले शान्ति निकेतन के छात्रों पर तीखा व्यंग्य किया है ।

शांति निकेतन के पास के गांव वालों में अज्ञनता है परिवार नियोजन वाले डाक्टरों को देखते ही गांव की स्त्रियाँ छुप जाती हैं । कोई एक पुरुष आया और घोषित किया - "हमें आपके पैसे भी नहीं चाहिए । न हमें कई आपरेशन करना है ।"[2] सरकारी मदद कुछ गांव वालों को मिलता है क्या ? कह कर पूछने पर --"सरकार तो कुछ भी नहीं करती । महंगी बढ़तीजाती है । बाबु जी ! नौजवान बेटे को स्कूल भेजा । वह बेकार बैठा है । मैं अकेला मजूरी करता खेत पर । उससे सबका पेट कैसे भरने वाला है ।"[3] कह कर एक आदमी ने अपना दुखड़ा सुनाया । एक गांव का व्यक्ति भूदान वालों पर व्यंग्य करता है । वे उस व्यक्ति को जमीन नहीं दिलवाया थे । वह कहता है --"अरे, वह सब कहने कीबातें हैं । हमने भी उन सफेद टोपीवालों से पूछा था । बोले, हम "हवा" बना रहे हैं । हवा में ही रहते हैं । हम लोग तो सिर्फ हवा खाकर रह नहीं सकते ।"[4] गांव की

- -

1. दर्द के पैबन्द - पृ. 122

2. -वही- पृ. 126

3.4. -वही- पृ. 126

पाठशाला की बहुत बुरी दशा थी । "एक गाँव में शाला है । पर शाला क्या गोशाला बहतर होगी । बच्चे सीलन भरे एक बड़े से बाड़े में बन्द कर दिये जाते है । मास्टर को भी कुछ नहीं आता । बेचारे को तनखा ही क्या मिलती है ?"[1] अस्पताल की दशा कुछ ठीक नहीं थी । वह भी पाठशाला की तरह ही थी । "सरकारी अस्पताल है, जहाँ दो मील तक जाकर वही पानी मिली दवा लाते । उससे कोई असर ही होता नहीं । पड़ोसी के बच्चे को बुखार बहुत आता था । डाक्टर से कहा । कोई नहीं आया देखने । तीन दिन बाद मर गया । यहाँ गरीबों को कौन पूछता है ?" उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि सरकार द्वारा गरीब शोषित, दलित, हरिजन और जन जातियों के कल्याण के लिए जो कार्यक्रम चलाये जा रहे है वे नाम मात्र के हैं । उन योजनाओं से न देहातों की भलाई होती है और न लोगों की । जैसे के गाँव वैसे ही है और जनता गरीब की गरीब । फिर भी हम यह नहीं कह सकते हैं कि निम्नवर्ग में जागृती नहीं के बराबर है । निम्नवर्ग अपने प्रति होने वाले अन्याय और शोषण करने वाले को पहचान रहा है । उसी गाँव बनिया जो सूद अधिक लेकर किसानों व दूसरों का ठगता था । अब वह वैसा नहीं कर सकता क्योंकि अब उनके बेटे पढ़े लिखे बन गये हैं । सूद अधिक लेने के संदर्भ में पूछे गये प्रश्न के उत्तर में बनिया कहता है - "नहीं जी, अब तो धरमईमान का काम ही नहीं रह गया है । इनके बाप दादा थे, तो जन्म भर गिरवी रख जाते थे चाँदी का कड़ा या कोई हंसली । और बराबर हर महीने सौदा सुलुफ ले जाते थे । तो कहाँ उनका जल्दी से चुकता थोड़ी ही था । अब बापू महार का बेटा भी गणित पढ़ गया है । वह भी हत्ता सा लौंडा - चपर चपर जबान लड़ाता है । कहता है -आपको इतना ज्यादा

- -

1. दर्द के पेबन्द - पृ. 126

2. -वही-

सूद लेने का अधिकार नहीं है (मुँह बिराकर) आदिकार – बड़े बड़े शब्द इन लीडरों से सीख लिये – आँखें दिखाते हैं हमें। हमारी दिल्ली और हमसे ल्याई। अब तो चाचा ने सब पैसा शहर में लगा दिया है। वहीं मकान कर लिया है। यह गाँव की जमीन और दुकान तो सिरदर्द है। कभी बेच देंगे।"[1]

सेवाग्राम के पास भी वही स्थिति है जो शांति निकेतन के पास थी। सेवा ग्राम का व्यक्ति देश के संबंध में कहता है —"मैं तो नहीं जानता, पर जो उपजाता है उसे वह चीज इस देश में नहीं मिलती। जो अहीर - गवली हैं, वे दूध शहरों तक बेच आते हैं। खुद दूध के उनके घर में लाले हैं। जो कवि ने इतना सारा कातती है और जो बुनकर कपड़ा बुनते हैं, वे कहाँ खादी पहनते हैं। उनका बुना कपड़ा बड़े बड़े भंडारों में चला जाता हैं। वे खुद सस्ता मिल का कपड़ा पहनते हैं। या फिर विलायती उतरन के पकड़े मिलिट्री डिस्पोजल से खरीदे ले आते हैं।"[2] इस तरह से माचवे जी स्पष्ट करना चाहते है कि जो काम व्यक्ति करता है उसका फल वह भोग नहीं पा रहा है। यह देश की दुर्दशा है। यहाँ के कौशल पूर्ण कारीगर दस्तकार आदि आज रोजी रोटी के लिए तड़प रहे हैं। उनका कौशल नष्ट हो रहा है। उनका उद्धार करने वाला कोई नहीं है। उनकी जिंदगी उदास है।

"किसलिए" उपन्यास विशेषतः मध्यवर्ग पर आधारित है। फिर भी एक दो ऐसे पात्र है जो निम्न वर्ग से संबंध रखते है। पार्वती और राधिका माँ बेटी है जो जाति के हरिजन है। ये लोग दिल्ली के एक उपनगर में एक बड़े से चालनुमा मकान की आठों परिवारों में बर्तन मांजने

- -

1. दर्द के पैबन्द – पृ॰ 127

और अन्य काम करती थी । इन्हीं के माध्यम से माचवे जी निम्नवर्गीय जिन्दगी का चित्रण किया है । आठों परिवार वालों को नौकरानी भी एक मशीन जैसा है उनकी कोई मानवीय संवेदनाएं नहीं है । वह बीमार पड़े या उसे कोई दर्द हो उससे उनका कोई संबंध नहीं । उन परिवारों को मात्र मशीन के जैसा काम करना है क्योंकि वे वेतन देते हैं । माचवे जी लिखते हैं —"वे माँ बेटी इन छह घरवालों की निगाह में आदमी नहीं, यंत्र थे । सबको उनकी नियमितता की आदत सी हो गई थी । जैसे समय से चल जाते है, बंद हो जाते है । जैसे, बिजली बटन दबाते ही जल उठती है, बटन दबाते ही बंद हो जाती है । जैसे, कनेक्शन लगाते ही पंखा या रेडियो बिजली से चल पड़ता है । जैसे स्विच घुमाते ही गैस का चूल्हा जल उठता है । वैसे ही नौकर चाकर हैं । उन्हें कोई बीमारी या सुख-दुख या मानवीय संवेदना हो सकती है, इस बात की किसी को परवाह नहीं थी ।"[1]

रधिया अपने एक पड़ोस के घर में भी बर्तन माँजने का काम करती थी । एक दिन उस घर वाले ने रधिया पर आरोप लगाया कि उसने चोरी की है । वह पुलिस विभाग से संबद्ध था । रधिया को हवालात में डाल दिया गया । किन्तु वास्तव में रधिया ने चोरी नहीं की थी । जिस घर में काम करने जाती थी उस घर की मालकिन उससे और भी अधिक काम उतने ही थोड़े रुपयों में करवा लेना चाहती थी या उसे निकाल देना चाहती थी । इस प्रकार उस पर चोरी का इल्जाम लगाकर उसे हवालात में बंद करवा दिया गया । ऐसी घटनाएं निम्नवर्ग के लोगों की जिन्दगी में हमेशा घटती रहती है क्योंकि उच्च वर्ग और उच्च मध्यवर्ग के लोग उनका शोषण करना चाहते है । यदि उसका विरोध हुआ तो उसका प्रतिकार इस प्रकार ले लेते हैं ।

---

1. किसलिए - पृ. 30

निम्नवर्ग पर केवल भारत में ही पुलिस व्यवस्था का अत्याचार होता है, उन पर झूठे मामले दर्ज करते है ऐसी बात नहीं है । श्रीलंका में भी यही हाल है । वहाँ भी पूँजीपति या धनवान व्यक्तियों के हाथों में प्रशासन व्यवस्था है । वहाँ की पुलिस भी उन्हीं लोगों की सहायता करती है, रक्षा करती है, निम्नवर्ग या कमजोर वर्ग की नहीं । लूसी और विलियम श्रीलंका में रहने लगे थे । एक दिन रात में मेरिया रोते हुए आयी । और उसके गोद में उसका इकलौता बारह बरस का बेटा जोसफ बेहोश पड़ा था । उसके सिर से खून बह रहा था । विलियम ने डाक्टर को बुलाया । डाक्टर ने उसका परीक्षण किया और इंजेक्शन देकर कहा अब खतरे से बाहर है । मेरिया बता रही थी कि "उसके पति को पुलिस पकड़कर ले गई । वह भी हड़तालियों में था । शाम को सब मजदूरों ने तय किया कि जुलूस बनाकर पुलिस चौकी पर जाएँगे । मेरा यह छोटा सा लड़का जेसू भी उसके साथ चला गया । पुलिस ने बेरहमी से डंडे बरसाए ।"[1] उसने डाक्टर को बताया "साहब, किसी तरह इन कानून के संरक्षक कहलाने वाले राक्षसों से हमें बचाइए । हम गरीब आदमी हैं । कहीं दूर पर कोई बगावत का झंडा बुलंद करने वाले लोग होंगे । पर बताओ, ये लोग [illegible] गए और वे ही फिर पकड़ने के लिए भी आ गए । मेरा पति सफाई मजदूर है, जेनीटर" है दफ्तर में । उसे भला ये कागज क्या समझ में आएँगे । पड़ोसिन मंगम्मा कह रही थी कि ये कागज चीनी भाषा में है । अब आप सोचिए डाक्टर साहब, हम गरीब आदमी – हमें ये भी नहीं पता है कि चीन मुल्क है किधर । पश्चिम में है या दक्षिण में है ? और हमी पर यह सारी तोहमत । गरीब को सब तंग करते हैं । आप ही अब हमारे जीवन दाता हैं, त्राता हैं, बचाइए ।"[2] इस प्रकार अकारण झूठे इल्जाम लगाकर

---

1. किसलिए – पृ. 152
2. किसलिए – पृ. 154

पुलिस तंत्र निम्नवर्गीय लोगों को सताता रहता है । कारण यह है कि इनके पीछे कोई नहीं है न कोई नेता है, न कोई अफसर, सबके सब पूंजी-पतियों के साथ, धनवान सेठों के साथ है । इन्हें पूछने वाला कोई भी नहीं है ।

"धूत" उपन्यास के माध्यम से ग्रामीण समस्याओं का विशद चित्रण हुआ है । गांव की जो समस्याएं है वे मूलत: निम्नवर्ग की ही समस्याएं है जैसे किसानों कीसमस्या, अछूत समस्या, आर्थिक समस्या, बेरोगारी की समस्या तथा ग्राम सुधार की समस्या आदि । इन समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में "धूत" उपन्यास लिखा गया है । गांव का परिवेश है । वहाँ पर द्रौपदी नाम लड़की वामपंथी विचार धारा वाली है और धर्मराज गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित है । दोनों गांव के सुधार के लिए तैयार होते हैं । गांव में बाढ़ आई हुई है और कई लोग बह गये हैं । "जमींदार की हवेली में जो छिप गये, बचे रहे । गांव के बाहर की तो कई सौ झोपड़ियाँ बह गईं ।"[1] इस प्रकार जो गरीब जनता है उसका सब कुछ बाढ़ में बह गया है, उसके लिए जीने और मरने में कोई मूल्य नहीं है । इसी कारण वह आदमी निराशा और उदास होकर जवाब देता है ।

गांव की जनता जो अज्ञान और निर्धनता के कारण विकास नहीं कर पा रही है ऐसे लोगों से मिलने के लिए धर्मराज, द्रौपदी और महंत विश्वदास मिलकर गांव की सबसे उपेक्षित गंदी बस्ती की ओर जाते है जहाँ पर मेहतर, चमार आदि हरिजन बसते हैं । एक हरिजन बूढ़े के माध्यम से मायके की उनकी व्यथा सुनाते हैं -"अछूत तो हमें सब मानते ही है । पर और भी दुख की बात यह है कि पहले हमें घर घर से कुछ जूठा, फैंका हुआ अन्ना, रोटी - सालन मिल जाती थी । अब वह भी बंद है । महंगी बढ़ती

- -

1. धूत - पृ० 15

जाती है, उस हिसाब से रोजगार नहीं मिलता । नगरपालिका वाले आकर सब जगह नल लगाने वाले हैं । हमें अपने लिए पानी इतनी दूर गाँव बाहर के कुएँ से लाना पड़ता है । झोपड़ियों का यह हाल है कि हर बारिश में छप्पर बनाना पड़ता है । मरे हुए जानवरों की खाल खींचने का काम कितना बड़ा और कौन सा काम है ? नयी पीढ़ी रबड़ की चप्पलें और जूते पहन रही है । हमारे लिए जूता गाँठने का काम भी नहीं रहेगा। नये ढंग की टट्टियां बन रही है । हमारे लिए मैला साफ करने का काम नहीं रहेगा । जंगल में जाकर शिकार करने सुअर पालने या बाँस की टोकरियाँ बुनने के काम में कितना तत है । खेतों में हमारी औरतें पहले थोड़ी बहुत मजूरी करती भी थी। अब वह भी नहीं मिलती । बच्चे स्कूलों में पढ़ने जाकर और "फिरंट" हो गये हैं । कहते हैं, यह सब गंदे और ओछे काम हम क्यों करेंगे ? हमें भी जमीन दीजिए तो हम भी खेती करेंगे । हम किस तरह से औरों से कम हैं ? मगर हमारे साथ सलूक कैसा किया जाता है ।गाँव के ब्राह्मणों, ठाकुरों और कायस्थों के लड़के पता नहीं अपने आपको कितना लाटसाहब समझते हैं ।हमारी जात-बिरादरी में सब लड़कियाँ बड़ी होकर बिन ब्याही रह जाती हैं । उनके यह सब झगड़ा का नहीं होता । नयी शिक्षा ने सबकी आँखें खोल दी हैं । बेकारी बढ़ गयी है । अभी हमारी माँगें तो सीधी सी यही है कि हमें इन्सान की तरह माना जाए, कुत्ते की तरह दुरदुराया न जाये ।"[1]

गाँव में और कई सामाजिक समस्याएं थी जैसे की "औरतें अब बड़े घरों की चाकरी टहल पर ही नहीं जी सकती थी । उन्हें सिलाई की मशीन चाहिए थी । काम चाहिए था ।"[2] कहाँ मिलना मुश्किल था, अस्पताल

---

1. सूत - पृ. 76-77
2. सूत - पृ. 77

ठीक नहीं था, डाक्टर नहीं था, गांव वालों के बेटे पढ़कर बेकार और आवारा घूम रहे थे । उन्हें काम चाहिए था । इस प्रकार अनेकों समस्याओं से गांव दुःखित था ।

गांव के किसानों की आर्थिक समस्या थी । "कभी बीज अच्छे नहीं मिलते थे, तो कहीं खाद अच्छी नहीं थी । जानवरों की नस्ल सुधारने का कोई तरीका नहीं था । खेती के औजार बाबा आदम के जमाने के थे । घर घर में कुनबे के आपसी झगड़े थे, आपस में मुकदमे बाजियां हो रही थी। कहीं सिंचाई की कोई व्यवस्था नहीं थी, तो कहीं मवेशी को चारा डालने का प्रबंध नहीं था । किसानों के पास जमीन के अलावा कोई साधन निर्वाह का नहीं था । न कोई और पर्याप्त व्यवसाय था न कोई हस्तोद्योग या दस्तकारी । सबसे बड़ी असुविधा तो खेती की उपज को बेचने की थी । वहां कई महाजन और बिचौलिये थे । समस्याएं अर्थ तंत्र के चारों छोरों की थी - उत्पादन, वितरण, विनिमय, उपभोग । सब जगह दलाल थे और मेहनत का फल मेहनतकशों को नहीं मिलता था ।कहने को कागज पर जमींदारी हट गई थी, पर ये सब बताने वारे छोटे - मोटे मारमच्छ । इन्हें कौन संभाले ?"[1]

इस प्रकार उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि प्रभाकर माचवे जी ने इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन की समस्याओं को अलग अलग रूप से पूरे विस्तार के साथ देखा है। प्रत्येक समस्या को बहुत ही बारीकी से देखा है । गांव मे अधिकतर समस्याएं निम्नवर्ग जनता से जुड़ी हुई होते हैं । चाहे अछूत समस्या हो, किसान समस्या हो या फिर स्त्रियों की समस्या हो । प्रत्येक समस्या निम्नवर्ग की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को झकझोरने

- -

1. धूल - पृ. 78

वाली है । अछूतों की समस्या का केन्द्र बिन्दु है कि उन्हें सभ्य समाज में मनुष्य के रूप में देखना है । उन्हें भी सभी मानवीय अधिकार मिलने चाहिए । स्त्रियों की समस्या यह है कि उन्हें कुछ काम चाहिए क्योंकि खाली बैठने ऐसे उच्चवर्गीय महिलाएं बैठती है से काम नहीं चलेगा । उनकी जीविका चलना है । किसानों की आर्थिक समस्या है इससे महत्वपूर्ण समस्या बिचौलियों की है । जो बीच मेंआकर किसानों का शोषण करते हैं । उनके उपज का अधिकतर भाग ऐसे ही लोग हड़प लेते हैं । इस तरह ग्रामीण निम्नवर्गीय जीवन में प्रत्येक व्यक्ति की कोई न कोई समस्या है । इसके अतिरिक्त अंधविश्वास, बेरोजगारी आदि के कारण इनका शोषण और भी अधिक होता रहा है ।

डा० माचवे कहते हैं कि ऐसे गांव में जहां अज्ञानता, अशिक्षा के साथ-साथ सामाजिक समस्यायें ज्वलंत थी ऐसे गांव से द्रोपदी और धर्मराज का पाला पड़ा था । माचवे जी उस गांव की जनता की दशा का वर्ण करते हुए कहते हैं --"ऐसे आदमियों का गांव के उन आदमियों से पला पड़ा था, जिनकी आदमियत बरसों और सदियों से धूल मिट्टी हो चुकी थी । उस गांव में हल बक्खर की कीमत थी, बीज और खाद की कीमत थी, गाय और बैल की कीमत थी, पर सिर्फ कीमत नहीं थी तो मनुष्य के श्रम की, मनुष्य के विश्वास की, मनुष्य की अच्छाई की:..."[1] इस प्रकार यहां सभी वस्तुओं और चीजों का मूल्य था किन्तु मात्र आदमी का मूल्य नहीं था । यही हमारी मौजूदा समाज की भी विडम्बना है ।

- -

1. धूल - पृ० 86

"लक्ष्मीबेन" उपन्यास नारी के विविध रूपों को दर्शाने वाली कृति है। इसमें प्रो. लेखागुप्ता लक्ष्मीबेन नाम से सिंधाई नारी, नामक झुग्गी-झोपड़ी की बस्ती में समाज सेवा करती रहती है। इस उपन्यास में उपन्यासकार अछूतों आदि निम्नवर्गीय जनता के घर जो प्राचीकाल में गांव में बाहर रहते थे। आज भी वही स्थिति बरकरार रहने को रेखांकित करता है। "हर महानगर में, हर नई बनने वाली बस्ती, बड़ी इमारत, फाइवस्टार होटल के आसपास ये फैलते हुए झुग्गी झोपड़ियों के अंबार मिल जायेंगी। यानी कीतीन हजार बरस पुराना चला आ रहा भारत काग्राम पैटर्न - अछूतों की बस्तियाँ अलग उनसे भी गये बीतों की गांव से बिलकुल बाहर यहाँ थी, अब भीजारी है।"[1] उनकी सामाजार्थिक परि-स्थितियों के बारे में बताते हुए लेखक कहता है --"उनमें तो कई ऐसे है जिनको आसमान के सिवा और छत नहीं। पेड़ का साया भी नहीं। टाट की दीवार भी नहीं। फुटपाथ में नाली के पास जन्मे, और वहीं भीख मांगते - मांगते बड़े हो गये, और फिर वही बच्चे जनते लगे बीच में पुलिस पकड़ ले गई तो बारिश - सर्दी में कुछ दिन सरकारी मेहमान बने।"[2] एक युवक से लक्ष्मीबेन सफाई के संदर्भ में बातचीत करती है। वह युवक कहता है -"सफाई के लिए भी पैसे जरूरी होते हैं। साबुन चाहिए। दवाइयाँ चाहिए। यहाँ तो म्युनिसिपैलिटी की मेहरबानी से ये खुली नालियाँ ही ही हमारे बाथरूम है और कहीं नल है तो टोटी नहीं, और कहीं टोटी है तो पानी नहीं। यहाँ "नंगी क्या नहाये क्या निचोड़े।"[3] उस बस्ती के लोग नित्य काम करने पर भी पेट मुश्किल से भर पाते थे क कई लोगों के परिवार बड़े है बूढ़ों की देखभाल करें और रोटी के टुकड़े देकर जिलाये या गोद में बैठे शिशु को आटा घोलकर पिलाये। समझ में नहीं आता था।

- -

1. लक्ष्मीबेन - पृ. 35-36

2. लक्ष्मीबेन - पृ. 36

3. लक्ष्मीबेन - पृ. 37

इन परिवारों में उपवास हफ्ते में एक बार करने का शौक नहीं था वह तो इनके लिए नित्यकर्म था । झुग्गी झोपड़ियों की जिन्दगी को और दर्दनाक बनाने में शराब का योग कम नहीं है कमाई का पैसा सब कुछ यहाँ के लोग शराब पीनेमें लगा देते थे । माचवे जी कहते है - "अमीर पीता है तो भारी वक्त काटने के लिए, गम गलत करने, क्लबों में दोस्तबाजी करने या एक "प्रेस्टीज सिंबल" की तरह आत्म प्रदर्शन के लिए । पर गरीब जब पीने लगता है - तो वह अपने आपको ही पीने लगता है ।"[1] किन्तु ऐसी बस्ती में भी कुछ ऐसे लोग है जो शिक्षित है वे ज्ञानवर्धक किताबें पढ़ना चाहते हैं । लक्ष्मीबेन से वे कहते हैं कि हम डा० अम्बेडकर की किताबें, लेनिन की जीवनी, मार्क्स की किताबें पढ़ना चाहते है । इस प्रकार कह सकते है कि निम्नवर्ग की जनता में जागरूकता आ रही है ।

प्रभाकर माचवे ने 'कहाँ से कहाँ' उपन्यास में नगरीय जीवन के दो पहलुओं पर दृष्टि केन्द्रित किया है । एक पहलू है उच्चवर्गीय भोग-विलासी जीवन, दूसरी ओर है झुग्गी झोपड़ियों की जिन्दगी जिसमें जीने के लिए पल पल कीड़े मकोड़ों की तरह संघर्ष करना पड़ता है । उपन्यास के अंतर्गत एक ऐसा दृश्य को उपन्यासकार ने दर्शाया है जहाँ एक ओर सितारों का होटल है, जिसमें विलासियों के लिए सभी सुविधाएं उपलब्ध है । ठीक होटल के सामने ही एक गंदी झुग्गी झोपड़ियों की बस्ती है जिसमें लोग सामाजार्थिक रूप से बहुत ही पिछड़े है । जिनको प्रतिदिन रोटी की चिंता रहती है । यह दृश्य किसी ऐसे वैसे नगर का नहीं है साक्षात महानगर दिल्ली की है । जो भारत की राजधानी है । लिखा कहती है - "जिसको कहने के लिए तो भारत की राजधानी और महानगरी कहलाने का सौभाग्य मिला है, पर वह है एक विशाल झुग्गी - झोपड़ी । वह न गाँव है, न

- -

1. लक्ष्मीबेन - पृ. 38-39

कस्बा, न नगर, न महानगर । वह एक मिश्रित पैदावार है ।"[1] जिस होटल में नसमा काम करती थी उससे "दूर के मैदान में झुग्गी – झोंपड़ियों की दरिद्र दुनिया तक दिखती थी । सूखी गठरें, नंगे बच्चे, मैले कुचैले कपड़ों में लड़कियाँ, मुंह को रंग पोते, पेट की आग बुझाने के लिए क्या कुछ नहीं करती, शराब पीकर धुत होकर औरत को पीटने वाला क्रूर मर्द, सब तरह के जघन्य अपराधों में आकंठ डूबे गुंडे, आज जीवन का पूरा आनन्द उठा कर, कल की परवाह न करने वाले वे दरिद्र "नारायण" लक्ष्मी पर आसक्त..."[2] ऐसे झुग्गी – झोंपड़ियों में रहने वाले जीने के लिए कुछ भी करने के लिए विवश हो जाते हैं । होटल के बाहर कम वस्त्र पहने कई दक्षिण भारतीय लड़कियाँ खड़ी है । एक की गोद् में बच्चा था । वे वेश्यावृत्ति करके जीविका का निर्वाह करने के लिए विवश थी । होटल से बाहर आने वाले सैलानी उनका सौदा कर लेते हैं । "एक विदेशी सैलानी उसमें से एक लड़की को इशारे से बुलाता है । जेब में से बहुत से नोट निकाल कर दिखाता है । वह बच्चा गोद में लेकर उधर जाती है । पास में ही एक अंधेरी गली है । लड़की वापिस आती है । बच्चा साव-धानी से साथ वाली अधेड़ सी औरत को दे देती है । अब की बार लड़की की आँखों में कुछ विजय की सी चमक है । मुरझाए चेहरे और रूखे बालों में भी दांत सफेद चमकते है । वह पान चबाती है । चली जाती है ।"[3] इस प्रकार निम्नवर्गीय परिवारों में विशेषतः नगरीय झुग्गी झोंपड़ियों में रहनेवालों में जीविका के लिए वेश्या वृत्ति आम सी बात हो गयी है । जिसका शोषण, सुविधाभोगी व विलासी जीवन बिताने वाले उच्च वर्ग के लोग करते हैं । साथ में भ्रष्टाचारी पुलिस व्यवस्था भी अपने हिस्से का

- -

1. कहाँ से कहाँ – पृ. 38
2. कहाँ से कहाँ – पृ. 78
3. कहाँ से कहाँ – पृ. 91

रुपये उन स्त्रियों से लेती है । जब वह स्त्री अपने गोद के बच्चे को अधेड सी औरत को देकर विदेशी सैलानी के साथ चली जाती है तब "उधर से एक पुलिस का सिपाही यह सब देखते हुए आता है । अधेड औरत उससे कुछ मजाक करती है । एक नोट पुलिस की जब मे ठूंस देती है । वह निर्विकार भाव से मूछों पर ताव देते हुए चला जाता है ।"[1] होटल के बाहर भास्कर यह ड्रामा देखता रहा । उसने देखा वह गरीब दक्षिण भारतीय लड़की थोडी देर बाद वापिस चली आयेगी । शायद दूसरा ग्राहक खोजेगी । क्या उसे किसी ने यह सब करने के लिए उसकी और उसके बच्चे की भूख ने विवश नहीं किया ? भूख बड़ी शक्ति है । भूख बड़ी कमजोरी है ।"[2]

इस प्रकार प्रभाकर माचवेजेनिम्नवर्गीय परिवारों की जिन्दगी का दस्तावेज प्रस्तुत किया है जिसमे भूख को मिटाने के लिए तरह तरह के पेशों को स्वीकारने की विवशता को रेखांकित किया है ।

"लोक प्रिया" नामक साप्ताहिक पत्रिका मे भास्कर और नजमा काम करने लगे थे । इसी पत्रिका के एक काम के सिलसिले मे भास्कर एक गरीब बस्ती मे रिपोर्टिंग के लिए गए थे । वहां बहिष्कृत, दलित, और हरिजनों की संख्या अधिक थी । एक हरिजन युवक से उसकी भेंट हुई । वह युवक मैट्रिक पास होकर बेकार था । उस निराशामय हरिजन युवक से भास्कर पूछता है कि तुम इतने निराश क्यों हो ? तो वह युवक उत्तर देता है --"चूंकि हम कमजात है । बड़े जात वालों के बेटे ही बड़ी आमदनी करते है । वे ही बडे अफसर, व्यापारी, सैनिक इंजीनियर बनते है । वे ही ~~स~~ राज चलाते है । नेता भी उसी वर्ग से आते है ।[3]

- -

1• कहां से कहां - पृ• 91 - 92

2• कहां से कहां - पृ• 92

3• कहां से कहां - पृ• 135

भास्कर उस युवक से कहता है कि अब तो हरिजन और आदिवासी वर्ग के लोग भी नेता और उच्च अधिकारी बन रहे है, तो वह युवक कहता है -"वे भी उन्हीं की तरह हो जाते है । वैसे ही खान-पान, वैसी ही पोशाक, वैसी ही मीठी-मीठी भाषा । वही झूठे आश्वासन, वही छद्म मुस्कराहट । उससे क्या होगा ? अब अवाम यह सब मक्कारी समझ गई है ।"[1] युवक के आक्रोश के पीछे गहरी संवेदना और व्यथा है । क्योंकि इस वर्ग के इक्के दुक्के लोग जो उच्च अधिकारी या नेता बने है और वे भी अपने वर्ग को भूले जा रहे है । अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए उच्च वर्ग के साथ मिल रहे है ।इस कारण निम्नवर्ग विशेषत: हरिजन और आदिवासियों की स्थिति मे विशेष परिवर्तन नहीं हो पा रहा है । इस बात को माचवे जी ने बहुत ही समुचित रूप से इस उपन्यास मे उठाया है ।

"दशभुजा" उपन्यास मे एक बस्ती मे हरिजन लड़की सीता पर बलात्कार की घटना वर्णित है । इस घटना के माध्यम से माचवे जी यह स्पष्ट करना चाहते है कि स्वतंत्रता प्राप्त होनेके इतने साल बाद भी हमारे समाज मे अभी वर्ग वैषम्य है । एक निम्नवर्गीय उसमे भी हरिजन लड़की पर बलात्कार करना एक मामूली सी बात ही है । आज निम्नवर्गीय जनता को समाज पर और पुलिस व्यवस्था पर विश्वास उठ गया है । उपन्यास की नायिका अदिति हरिजन लड़की सीता से कहती है कि चलो पुलिस स्टेशन रपट लिखवायेंगे किन्तु "उसे डर था कि पुलिस भी उसके साथ कोई बदसलूक न कर बैठे । यह हमारे रक्षकों की त्रास आज गरीबों और दलितों के मन मे रह गयी है । स्वराज्य के तैंतीस वर्ष बाद ।"[2] फिर वहाँ पर ऐसे लोग जमा हो गये है जो मनोरंजन करने आए थे । विभिन्न प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगे । कोई लड़की

- -

1. कहाँ से कहाँ - पृ. 135-136

2. दशभुजा - पृ. 77

को दोषी कहता है, कोई पुलिस को तो कोई विरोधी पार्टी का । अदिति डाक्टर के पास सीता को ले जाती है, जांच करवाती है । उसका बयान दर्ज करवाती है । निश्चित रूप से वह बलात्कार की घटना थी । "क्या ऊंची जात इस ब इस तरह नीची जात की स्त्री को कमजोर समझकर दबोचने मे विजयोन्माद अनुभव करती है ? क्या यही उनके हजारों वर्षों के "संस्कार" ? है ? या वे इसे अपना वंश परंपरागत जन्मना अधिकार मानते है । घटना को सांप्रदायिक या कम्पिद का आर्थिक रूप दे देने से समस्या हल नहीं हो जाती ।"[1] ऐसे अनेक विचार अदिति के मन मे लोगों के प्रतिक्रियाओं के स्वरूप उभरने लगे थे । जब अदिति उस हरिजन अबोध लड़की सीता, अदिति से इस प्रकार बात करती है कि जिससे उसका अबोधपन, मासूमियत झलक पड़ता है और यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जिस निम्नवर्गीय लड़की शोषण हो रहा है वह उसको मालूम ही नहीं । ऐसी दयनीय स्थिति का चित्रण मालवे जीने यथार्थ के साथ किया है । सीता अदिति से कहती है -बीबी जी, असल मे हमारी जात का ही दोष है । गये जन्म के पाप है न, इसी से पंडित बोलता था, यह जोनि पाई । अब तो जन्म भर यही भुगतना है । पर मेरी समझ मे नहीं आता कि मेरे बदन से इस तरह खिलाट चिपटकर उस गुंडे को क्या मिला ?"[2] और आगे हरिजन लड़की सीता जो वक्तव्य देती है उसमे अबोधता और मासूमियत होने पर भी उसके शब्द आज के सामाजिक व्यवस्था पर तीखा प्रहार है । वह अदिति से कहती है -"आप बेफिजूल इतनी चिंता करती हो बीबी जी - मै अपने भाग्य से जिऊंगी, मरूंगी । ये नासपीटे पुलिस क्या कभी उसे पकड पायेंगे ? सुना है पुलिस वाले और गुंडे, दोनों की आधी आधी आमदनी बंधी रहती है । कुछ नहीं होने वाला है ।

- -

1. दशभुजा - पृ. 79

2. दशभुजा - पृ. 80

मुझे अपने हाल पर छोड दीजिये ।"[1] इस प्रकार अदिति जो अब तक सिर्फ पुस्तकों मे निम्नवर्ग के संबंध मे पढती थी, उसे अब सचमुच निम्नवर्गीय बस्तियों मे, झुग्गी - झोपडियों मे जाने का अवसर मिला । "मनुष्य को किस पशु या कुत्सित अवस्था मे दरिद्रता पहुंचा सकती है, यह देखकर अदिति एकदम सन्न रह गई । यानी जो कुछ हम किताबों मे पढते थे और विश्वास नहीं करते थे उससे भी बदतर यहां का जीवन था । सत्य कल्पना से कहीं अधिक कठोर था ।"[2]

6. निष्कर्ष :

डॉ० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों मे समाज मे व्याप्त तीनों - उच्च, मध्य और निम्न वर्गों का चित्रण यथार्थ के धरातल पर हुआ है । इनके कुछ उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर काल के होने पर भी कथ्य की दृष्टि से स्वातंत्र्य पूर्व के है । इस कारण इन के रचनाओं मे जहां पर उच्च वर्ग का चित्रण हुआ है वहमुख्यत: जमींदार, पूंजीपति, सेठ और मील मालिकों के माध्यम से हुआ है । इन चरित्रों के माध्यम से माचवे जी ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि आज निम्नवर्ग की जनता का शोषण किस प्रकार किया जाता है । उच्च वर्ग के द्वारा निम्न वर्ग का शोषण गांवों मे जमींदार तथा शहरों मे पूंजीपति और मील मालिकों के द्वारा होता है । उच्च वर्ग सभ्यता की मुखौटा पहन कर असभ्य एवं अमर्यादित कार्य करता है । इसका चित्रण माचवे जी अपने उपन्यासों मे यथार्थ के साथ करते है ।

- -

1. द्वाभा - पृ. 80

2. द्वाभा - पृ. 85

डॉ० माचवे के उपन्यासों मे मध्यवर्ग का चित्रण बहुत ही अद्भुत ढंग से किया गया है । मध्यवर्ग के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण करते हुए उनकी विशेषताओं तथा मनोवृत्तियों का चित्रण काफी प्रभावोत्पादक है । इनके उपन्यासों से विशेषत: नागरीय मध्य वर्ग का चित्रण अधिक हुआ है । इसका कारण बताते हुए डॉ० माचवे कहते हैं कि वे गांवों की अपेक्षा दिल्ली, बम्बई जैसे महानगरों मेंअधिक रहे है जिसके कारण इनके उपन्यासों मे शहरी जीवन और समस्याओं का ही चित्रण अधिक हुआ है । यह उनकी सीमा है । शहरी मध्यवर्ग का प्रत्येक अंश का चित्रण इनके उपन्यासों मे हुआ है । वैसे तो मध्यवर्ग का क्षेत्र अधिक व्यापक है, प्रोफेसर, शिक्षक, सरकारी कर्मचारी, छोटे - मोटे व्यापारी आदि इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं । इस कारण इनकी समस्याये भी अधिक है और भिन्न- भिन्न है । इनका चित्रण डॉ० माचवेजी बड़ी ही मार्मिकता के साथ किया है । इनके चित्रण मे कहीं व्यंग्य है, तो कहीं दु:ख है ।

डॉ० माचवे जी के लगभग सभी उपन्यासों मे निम्नवर्ग का चित्रण हुआ है । माचवे जी अपने उपन्यासों मे इनका चित्रण करते हुए सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों पर भी प्रकाश डाला है । इस वर्ग के लोग अज्ञानता निर्धता और अनेक कारणों के कारण बहुत ही हीन स्थिति मे जीवन बिताते है । इनका शोषण अनेक रूपों मे उच्चवर्गीय जमींदार, सेठ, मिल-मालिक आदि लोग करते हैं ।

वस्तुत: माचवे जी के उपन्यासों मे सामाजिक परिस्थिति का चित्रण वर्गगत समाज के आधार पर किया गया है । उच्च वर्ग के लिए सेठ, मिल-मालिक, मध्यवर्ग के चित्रण के लिए शिक्षक व सरकारी कर्मचारी और निम्नवर्ग के चित्रण के लिए अछूत या हरिजन का चित्रण अकसर हुआ है । साथ ही उपन्यासों मे प्रतिनिधि पात्रों के माध्यम से वर्गगत विशेषताओं को दिखाने का प्रयास किया गया है ।

अध्याय - चार

डॉ० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में समकालीन यथार्थबोध : औद्योगीकरण और अमानवीयकरण के संदर्भ में

अध्याय - चार

डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध: औद्योगिकरण और अमानवीयकरण के संदर्भ में

1. प्रस्तावना
2. क्रान्ति और औद्योगिक क्रान्ति
3. भारत में औद्योगिकरण की प्रक्रिया
4. भारतीय समाज पर औद्योगिकरण का प्रभाव

    4.1. सामाजिक परिस्थिति

        4.1.1. मिल के अंदर बाहर की समस्याएं
        4.1.2. नैतिक मान्यताओं में परिवर्तन
        4.1.3. दुर्व्यसनों व अपराधों में वृद्धि
        4.1.4. नगरों में गंदी बस्तियों का निर्माण
        4.1.5. गांवों का पतन और नगरों के प्रति आकर्षण
        4.1.6. नगरीकरण से उपजा ऊब और अलगाव

    4.2. आर्थिक परिस्थिति
    4.3. राजनैतिक परिस्थिति

5. डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में औद्योगिकरण और अमानवीकरण का चित्रण.

    5.1. सामाजिक परिस्थिति पर औद्योगिकरण का प्रभाव
    5.2. आर्थिक परिस्थिति पर औद्योगिकरण का प्रभाव
    5.3. राजनैतिक परिस्थिति पर औद्योगिकरण का प्रभाव
    5.4. औद्योगिकरण और अमानवीकरण

6. निष्कर्ष

अध्याय - चार

डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध: औद्योगीकरण और अमानवीयकरण के संदर्भ में

1• प्रस्तावना :

पारम्परिक मूल्यों का अनुगमन करते हुए मंद गति से विकास की ओर अग्रसर होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय समाज के यूरोप में 18वीं शती में हुए औद्योगीक क्रान्ति के कारण एकदम से अपना रूप ही बदल डाला। औद्योगिक क्रान्ति विश्व की ऐतिहासिक घटनाओं में अत्यंत विशिष्ट स्थान रखती है। इसके कारण विश्व का कायाकल्प हुआ। परिणामत: न केवल विश्व आर्थिक बाजार में मूलभूत परिवर्तन संभव हुए बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्य में भी अभूतपूर्व परिवर्तन होने लगे।

औद्योगिक क्रान्ति के एक ओर सुपरिणाम निकले तो दूसरी ओर दुष्परिणाम भी सामने आने लगे। भारत जैसे तृतीय विश्व के देशों में एक दृष्टि से सुपरिणाम से अधिक कुपरिणाम ही ज्यादा दृष्टिगत होते हैं। जिसके अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे अशिक्षा, स्वार्थ, शोषण आदि। इस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति ने भारत जैसे देशों पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में अपना अमिट प्रभाव छोड़ा। औद्योगीकरण के कारण भारतीय समाज में द्रुतगति से परिवर्तन होने लगा। ग्रामीण संरचना में स्थित समाज अब नगरों के मोहजाल में फंस गया। जिसके कारण नगरीय सभ्यता या

नगरीकरण का शुरुआत हुई । पारिवारिक संबंधों में आर्थिक स्त्रोत में मूल परिवर्तन दिखाई देने लगा । प्रस्तुत अध्याय में डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में चित्रित समाज पर औद्योगीकरण के प्रभाव पर विस्तार से विचार किया जाता है ।

2. क्रान्ति और औद्योगिक क्रान्ति :

क्रान्ति शब्द का साधारण अर्थ है - किसी परिवर्तन के लिए द्रुत गति से किया जाने वाला कार्य । जाहिर है कि इतिहास और राजनीति शास्त्रों में क्रान्ति शब्द अपना एक विशिष्ट अर्थ लिये हुए है । इन शास्त्रों में सत्ता परिवर्तन के लिए किया जाने वाला भारी संघर्ष लड़ाई या युद्ध को क्रान्ति कहा जाता है । वस्तुत: क्रान्ति शब्द संघर्ष लड़ाई और युद्ध शब्द से जुड़ा है । "क्रांति" कहने से मात्र हमें खून खराबा, तबाही, जानमाल की हानि आदि का बोध होता है । किन्तु क्रांति शब्द सिर्फ इतिहास और राजनीति जैसे शास्त्रों में ही प्रयोग नहीं होता बल्कि दूसरे क्षेत्रों में भी प्रयोग किया जाता है । दूसरे क्षेत्रों में इस का अर्थ होगा अधिक उत्पादन । उदाहरण के लिए वन संरक्षण और विकास के लिए चलाया जा रहा अभियान "हरित क्रान्ति" है । इसी प्रकार उद्योगों का विकास "औद्योगिक क्रान्ति" कहलाता है । अत:कहा जा सकता है कि अत्यधिक मात्रा में और अल्पावधि में किसी वस्तु का अधिक मात्रा में उत्पादन करना भी उस क्षेत्र में क्रान्ति ही है । संक्षेप में क्रान्ति का अर्थ मौलिक परिवर्तन है जो हमेशा हिंसक ही नहीं बल्कि कई बार अहिंसक भी होता है ।

औद्योगिक क्रान्ति से मतलब है श्रम संबंधी उपायों और मशीनों का उत्पादन विधियों में प्रयोग किया जाय ताकि उत्पादन बढ़े । "यद्यपि "औद्योगिक क्रान्ति" शब्द 19वीं शताब्दी के आरंभ में प्रयुक्त हुआ जिसका संदर्भ फ्रांस की क्रान्ति तथा क्रान्तिकारी लड़ाइयों {1789-1815} से उत्पन्न परिवर्तनों तथा ब्रिटेन में तब हो रहे आर्थिक एवं तकनीकी परिवर्तनों में मिलान तथा तुलना करना था । किन्तु लिपिबद्ध एवं प्रकाशित रूप से "औद्योगिक क्रान्ति" शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग एनाल्ड टोयनबी ने 1884 में अपने प्रसि. ग्रंथ "लेक्चर्स आन दी इण्डस्ट्रीयल रिव्योल्यूशन आफ 18वीं सेन्चुरी इन इंग्लैंड" में प्रयुक्त किया । वस्तुतः इसका प्रयोग सन् 1937 में ही फ्रांसीसी लेखक "ब्लांकी" ने किया था । तत्पश्चात "फ्रेडरिक एंजिल्स और कालमार्क्स" द्वारा इस शब्द को प्रयुक्त किया गया था ।"[1]

"औद्योगिक क्रान्ति" उद्योगों के क्षेत्र में आया भारी परिवर्तन है । "सामान्यतः औद्योगिक क्रान्ति" उन अत्याधिक तीव्र गति से घटित प्रभावशाली आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, सामाजिक तथा बौद्धिक परिवर्तनों को कुल मिला कर कहते हैं जिन्होंने अत्यधिक अल्पावधि में 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के आरंभ से 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के अंत 1750 से 1850 के मध्य के 100 वर्षों में ब्रिटेन में औद्योगिक समाज को जन्म दिया और इसके पश्चात ही अनेक अन्य देशों में भी इसी से मिलती-जुलती औद्योगिक क्रान्तियाँ हुई और फिर सभी जगह "औद्योगीकरण" की एक लहर सी आ गयी जिसकी गति कहीं तीव्र थी और कहीं मन्द ।

- -

1. डा0 वीरेन्द्र प्रताप सिंह - डा0 रवि प्रकाश पाण्डेय : समकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति - पृ: 40-41

अर्थात तकनीकी, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक परिवर्तनों की तेजी और विशेष रूपों का सामान्यीकरण करके उन्हें भी औद्योगिक क्रान्ति की संज्ञा दी जाने लगी ।"[1]

यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति का प्रथम सूत्रपात इंग्लैण्ड में होने की चर्चा करते हुए सुकोमल सेन इसके कारणों पर प्रकाश डालते हैं - "इसका एक कारण यह था कि इंग्लैंड में ही सबसे पहले सामंती आधिपत्य समाप्त हुआ और कारखानों के लिए स्वतंत्र स्रोत प्राप्त हुए । दूसरा कारण यह था कि 1757 के प्लासी युद्ध के बाद इंग्लैंड अपने उपनिवेशों से प्राप्त दौलत से परिपूरित हो चला था । इससे पूँजीवाद बढ़ाने के लिए सरमाया मिला । अगले 25 वर्षों में ही औद्योगिक क्रान्ति के लिए आवश्यक प्रायः सारे आविष्कार उपलब्ध हो गये थे । इन सबसे कोयला लोहा, सूती वस्त्र व रेल उद्योग आदि तेजी से स्थापित होते गये ।"[2] इस प्रकार इंग्लैंड से आरंभ हुई औद्योगिक क्रान्ति विश्वव्यापी आर्थिक जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन ला सकी ।

"औद्योगीकरण" शब्द का विकास औद्योगिक क्रान्ति से हुआ है । इसका साधारण अर्थ होगा - उद्योग की स्थापना और विकास । किन्तु इसका एक विशिष्ट अर्थ भी है जिसके अनुसार औद्योगीकरण वह आर्थिक विकास की व्यापक प्रक्रिया है जिसके द्वारा देश की संपूर्ण आर्थिक संरचना परिवर्तित की जा सकती है । साधारणतः औद्योगीकरण से मतलब यह होता है कि परम्परागत उद्योगों के स्थान पर आधुनिक उद्योगों को स्थापित करना और इन आधुनिक उद्योगों की सब से महत्वपूर्ण विशेषता उत्पादन कार्यों में वैज्ञानिक उपलब्धियों का उपयोग है ।

- -

1. डा० वीरेन्द्र प्रताप सिंह - डा० रवि प्रकाश पाण्डेय: समकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति - पृ० 40-41

2. सुकोमल सेन - भारत का मजदूर आंदोलन - पृ० ।

"ऐतिहासिक दृष्टि से" औद्योगीकरण" के प्रारंभ एवं स्रोत, ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति है, किन्तु फिर भी इसका सामान्य प्रचलन विगत 60-70 वर्षों से ही हुआ है, औद्योगीकरण की सामाजिक स्थिति को ही व्यक्त करने हेतु पहले "औद्योगिक क्रान्ति" की अवधारणा ही प्रयुक्त होती थी, इस पुराने वाक्यांश को त्याग कर इस नवीन शब्द का प्रयोग इस लिए होने लगा क्योंकि उद्योगों के विकास के साथ साथ इनका वर्गीकरण करने के लिए कुछ ऐसी आवश्यकतायें उठ खड़ी हुई जिनके लिए पुराना "औद्योगिक क्रान्ति" वाक्यांश पर्याप्त नहीं प्रतीत हुआ । इस पूरी स्थिति को हम यूँ कह सकते है कि औद्योगीकरण शब्द अधिक व्यापक, अधिक अर्थपूर्ण और आधुनिक प्रचलन तथा "औद्योगिक विकास" के पर्याय का शब्द है, जबकि औद्योगिक क्रान्ति अपेक्षाकृत अधिक सीमित और एक विशेष अर्थ वाला तथा इस बीती हुई ऐतिहासिक घटना का द्योतक है ।"[1]

अतः स्पष्ट है कि औद्योगीकरण शब्द औद्योगिक क्रान्ति शब्द से अधिक विकसित है और व्यापक अर्थ लिये हुए है । औद्योगीकरण के अंतर्गत ही आरम्भिक दौर के रूप में "औद्योगिक क्रांति" शब्द समाहित होती है । औद्योगीकरण शब्द न केवल उद्योगों के विकास से संबंध रखता है बल्कि नगरीकरण और देश के सामाजार्थिक की अवधारणा उद्योगों के क्रमिक विकास एवं उसके परिणाम स्वरूप समाज के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक आदि क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में है ।"[2]

---

1. डा० वीरेन्द्र प्रताप सिंह व डा० रवि प्रकाश पाण्डेय: समकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति - पृ. 39
2. -वही- पृ. 41

यूजीन स्टेनले के मतानुसार औद्योगीकरण और उत्पादकता परस्पर संबंधित तत्व है। उनके ही शब्दों में "दोनों परस्पर संबंध प्रक्रिया के अंग है इनमें से कोई भी बिना एकदूसरे के बहुत आगे नहीं जा सकता। यह कथन सत्य है कि उच्च उत्पादकता से औद्योगीकरण को प्रोत्साहन मिलता है तथा औद्योगिकरण से उच्च उत्पादकता को बढ़ावा मिलता है।"[1]

पी कांग चांग के मतानुसार औद्योगीकरण से तात्पर्य "उस प्रक्रिया से है जिसके अंतर्गत उत्पादन कार्यों में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते रहते है। इन परिवर्तनों में कुछ आधार भूत परिवर्तन वे है जिनका संबंध किसी उपक्रम के यंत्रीकरण से होता है तथा जिसके द्वारा किसी नवीन उद्योग की स्थापना, किसी नये बाजार की खोज तथा किसी नये क्षेत्र का शोषण होता है। इस प्रकार औद्योगीकरण वह साधन है जिससे पूंजी की गहनता और विस्तार दोनों ही बढ़ते है।"[2]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि औद्योगीकरण प्रक्रिया नये नये मार्गों द्वारा उत्पादन को अधिक करते हुए पूंजी की वृद्धि करता है।

3. भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया :

भारत को एक कृषि प्रधान देश कहा जाता है पर सत्य है कि भारत को मात्र कृषि प्रधान देश बना दिया गया। भारत के इतिहास का विवेचनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर स्पष्ट होताहै कि भारत अंग्रेजों के आगमन से पहले न केवल कृषि में समृद्ध था बल्कि इसके साथ-साथ हस्तउद्योग और भारी उद्योग में भी उन्नत था। यह देश दूसरे देशों

- -

1. डा० वीरेन्द्र प्रताप सिंह एवं डा० रवि प्रकाश पाण्डेय : समकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति - पृ. 41।

2. -वही- पृ. 41-42

को औद्योगिक उत्पादनों का भारी मात्रा में निर्यात भी करता था किन्तु व्यापारियों के रूप में पदार्पण किये अंग्रेजों ने जिनकी नस नस में पूंजीवादी प्रवृत्ति ओत-प्रोत थी । धीरे धीरे सब से पहले यहां के भारी उद्योगों को जैसे वस्त्र लोहा, जहाज निर्माण आदि को नष्ट कर डाला । इसके पश्चात ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था का मूल आधार कुटीर उद्योग को भी अपने राक्षसी पंजों से तबाह कर डाला । इस प्रकार पूंजीवाद प्रवृत्ति ने प्रतिस्पर्द्धा में प्रतियोगी की कमर पहले ही तोड़ डाली और उसी को अपना ग्राहक बनने के लिए विवश कर दिया ।

भारतीय कपड़ा उद्योग को अंग्रेजों ने किस प्रकार नाश कर डाला इस पर डा० रामविलास शर्मा ने विस्तार के साथ विचार किया है । वे कहते हैं -"18वीं सदी के अंत में भारत के रेशमी और सूती कपड़े अंग्रेजी बाजार में वहां के कपड़ों के मुकाबले में 50 - 60 फीसदी सस्ते बेचे जा सकते थे । इससे साबित होता है कि इंग्लैण्ड अभी औद्योगिक दृष्टि से कमजोर था । अपने माल की खपत के लिए उसने भारतीय माल पर 70-80 फसदी कर लगाया जिसका अर्थ था माल आने पर एकदम से रोक लगा देना ।"[1] डा० शर्मा आगे रजनी पाम दत्त का हवाला देते हुए लिखते है कि "अंग्रेजों ने भारतीय माल पर जो भारी कर लगाने की नीति अपनायी थी, वह 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक जारी रही । 1940 की पार्लियामेंट कमेटी की जांच से पता चलता है कि भारत में आने वाले अंग्रेजी माल पर साढ़े तीन फीसदी (सूती और रेशमी माल पर) और दो फीसदी (ऊनी कपड़ों पर) कर लगता था लेकिन यहां से जो माल विलायत

---

1. रामविलास शर्मा : मानव सभ्यता का विकास - पृ० 120

जाता था उस पर दस फीसदी (सूती माल पर) बीस फीसदी (रेशमी माल पर) और तीस फीसदी (ऊनी माल पर) कर लगता था।"[1] इस प्रकार वस्त्र उद्योग के प्रसिद्ध नगरों का पतन धीरे धीरे होने लगा। "मोंटगोमरी मार्टिन ने अंग्रेजों द्वारा सूरत, ढाका और मुर्शिदाबाद जैसे औद्योगिक केन्द्रों के नाश को बहुत ही दुखद घटना बतलाया था।"[2]

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत लोह उद्योग में भी काफी विकसित किया था। भारत में तैयार हुए लोहे का उपयोग अंग्रेजों द्वारा न करने के कारण यह उद्योग भी ठप्प पड़ गया। डॉ० शर्मा कहते है कि "बाहर से सस्ता लोहा मँगाने की अंग्रेजी नीति के कारण भारत का अपना लोहे का कारबार चौपट हो गया। अर्थशास्त्री बकनन ने लिखा है कि भारत में लोहा गलाने की जो पुरानी भट्टियाँ मिली है, वे मूलत: वैसी ही है जैसी आधुनिक युग के पहले यूरोप में थी।"[3] यही दशा जहाजों के कारबारों की हुई। अंग्रेजी राज में भारतीय उद्योग धन्धों की तबाही पर अपनी पुस्तक में वामनदास बसु ने लिखा है कि पूरब का काफी व्यापार पहले भारतीय जहाजों द्वारा होता था। चीन, ईरान, लाल सागर तक भारतके जहाज माल पहुँचाते थे। 1795 में ईस्टइंडिया कंपनी को यह आज्ञा मिली थी कि वह भारत में बने हुए जहाजों द्वारा लंदन माल ला सकती है। सर टामस मनेरो ने भारतीय उद्योग धंधों की दशा देखकर कहा था – औद्योगिक रूप में हम उनसे (भारतवासियों से) बहुत पिछड़े हुए है।[4]

---

1. रामविलास शर्मा – मानव सभ्यता का विकास – पृ: 120
2. –वही– पृ: 121
3. –वही– पृ: 121
4. –वही– पृ: 121

इस संदर्भ में आर सी दत्त का कहना है कि "इस देश के कताई बुनाई तथा अन्य उद्योग धंधों ने लाखों नर नारियों को पूर्णकालिक अथवा अंशकालिक आजीविका जुटा ई है । परन्तु ब्रिटिश सत्ता के साथ यह सब कुछ लुप्त हो गया है । भारत ने अपना विदेशी बाजार ही नहीं खोया, प्रत्युत अपनी घरेलू मंडी भी खो दी है । इस समय भारत को बराबर बहुत बड़े परिमाण में विदेशी सामान का आयात करना पड़ रहा है । x x x विदेशी उत्पादनों द्वारा भारतीय शिल्प उत्पादनों की स्थानापन्नता ब्रिटिश भारत के इतिहास का निकृष्टतम अध्याय है ।"[1]

संक्षेप में हम इतना कह सकते हैं कि "भारत में ब्रिटिश नीति का द्विपक्षीय उद्देश्य था, एक तो ब्रिटेन के औद्योगिक उत्पादनों की खपत के लिए भारत को एक "मूल्यावान मंडी बनाना" भले ही इसके लिए भारतीय उद्योग धंधों के कुचलने के लिए विविध तीव्र साधन ही क्यों न अपनाने पड़े । दूसरा ब्रिटेन के तेजी से बढ़ते हुए उद्योगों के लिए ब्रिटेन की बढ़ती हुई आवश्यकता के कच्चे माल को सस्ती दर और सुनिश्चित परिमाण में संतोषजनक संभरण के लिए भारत को कच्चे माल के उत्पादक कृषि देश के रूप में परिवर्तित करना ।"[2]

निश्चित रूप से हम अंग्रेजों की इस पूंजीवादी नीति की सराहना करना चाहिए कि जो देश (भारत) उद्योग के क्षेत्र में एक कदम अपने से आगे था उस देश की औद्योगिक व्यवस्था को समूल नष्ट करके उन्होंने उसको अपने कच्चे माल की बस्ती बनाया और अपनी उत्पादित वस्तुओं का बाजार बनने को बाध्य कर दिया ।

---

1. विपन चन्द्र : भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव औरविकास
   पृ० 52

2. -वही- पृ० 53

यूरोपमें विशेषतः इंगलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति की शुरुआत हुई। यहाँ अनेक नयी नयी मशीनों का आविष्कार होने लगा। जिसके कारण परम्परागत चलने वाले उद्योगों में क्रान्ति आ गई। वस्तुओं की उत्पत्ति बढ़ने लगी। इस संबंध में डा0 रामविलास शर्मा लिखते हैं - "के ने जब फ्लाइंग शटल ईजाद की तो उसका उपयोग पहले पूँजीपतियों ने नहीं किया। यह शटल सस्ती थी और उसे पहले स्वतंत्र बुनकरों ने अपनाया। मशीनों का उपयोग सूती उद्योग धंधों में हुआ जिनका गठन पूँजीवादी ढंग से हुआ था। कपास के लिए अंग्रेजी उद्योगपति पर निर्भर थे। कपास का व्यापार बढ़ने के साथ गुलामों का व्यापार भी बढ़ा क्योंकि अमरीकी खेतों में नीग्रोदास खेती करते थे। सूती कपड़ों के धंधों में बुनाई औरकताई के अलग विभाग थे। हरग्रीव्ज की स्पिनिंग जेनी, आर्कराइट की पानी से चलने वाली कताई की मशीन, क्राम्पटन और स्ट्रिटने के आविष्कारों ने कताई की समस्या हल की और कार्टराइट के करघे ने बुनाई का काम आसान किया। 1785 में कताई के लिए भाप से चलने वाले इंजन का उपयोग हुआ। मशीनों का उपयोग पहले सूती धंधों में हुआ उसके बाद उन्हीं धंधों में जिसका असर सारे इंगलैंड पर हुआ।"[1]

इसके पश्चात अंग्रेजों ने भारत में छोटे - छोटे उद्योग अपने हित एवं सुविधा के लिए लगाए। कुछ ऐसे उद्योगों की भी स्थापना हुई कि जो कच्चे माल को साफ सुथरा बनाये और वस्तुओं के निर्माण के लिए माल को एकदम तैयार करके रख सके किन्तु वास्तविक रूप में भारत में औद्योगीकरण प्रक्रिया का सिलसिला "रेल" के आगमन के पश्चात ही ठीक ठीक शुरू हुआ।

---

1. रामविलास शर्मा - मानव सभ्यता का विकास - पृ० 122

भारतीय औद्योगिक विकास पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है कि भारत में सबसे पहले सूती तथा जूट उद्योगों की स्थापना हुई है । "भारत की पहली सूती मिल सन् 1818 में घोड़िया (कलकत्ता) में स्थापित हुई जबकि कपास का उत्पादन क्षेत्र महाराष्ट्र में होने के बावजूद भी बम्बई की पहली सूती मिल कावसजी नानाभाई डावर ने 1854 में लगाई । आगामी 25 वर्षों में इस क्षेत्र में 60 सूती मिलें स्थापित हो गयी ।"[1] इसी प्रकार "1855 में आकलैंड ने बंगाल में श्रीरामपुर के पास रिशड़ा में पहली जूट मिल कायम की ।"[2]

रेल के आगमन से औद्योगीकरण प्रक्रिया में तेजी आ गई । 1853 से रेलों का सूत्रपात फौजों और आयात निर्यात का ढोने के उद्देश्य से किया गया । इस महत्वपूर्ण उद्योग की स्थापना के बाद रेलों की मरम्मत व इससे संबंधित अन्य उद्योगों की स्थापना अंग्रेजों के लिए एक मजबूरी थी ।"[3]

भारत में हो रही औद्योगिक प्रक्रिया भले ही अंग्रेजों के लाभ एवं स्वार्थ के पक्ष में हो रहा था, फिर भी देश के विकास तथा आर्थिक मजबूती के लिए औद्योगिक विकास करना आवश्यक समझा राष्ट्रवाद के नेताओं ने । इसी कारण वे उद्योग धंधे लगाने के लिए प्रोत्साहित करते थे । "भारतीयों द्वारा आधुनिक उद्योगों की स्वीकृति और वकालत को आधुनिक भारत में औद्योगीकरण के अग्रदूत जस्टिस रानाडे ने अपने देशवासियों को संबोधित निम्नलिखित प्रबोधन में सर्वोत्तम रूप से इस

- -

1. सुकोमल सेन - भारत का मजदूर आंदोलन - पृ. 7 - 8
2. रामविलास शर्मा - मानव सभ्यता का विकास - पृ. 207
3. सुकोमल सेन - भारत का मजदूर आंदोलन - पृ. 7

प्रकार प्रकट किया - हमें सर्वोत्तम शिक्षकों से सीखने के लिए दास ईश्वर द्वारा सुस्थापित व्यावहारिक कार्य है। ... हमें अपने कच्चे माल के स्तर को सुधारना है अथवा हमारी धरती के उत्तम स्तर की उत्पादन के अनुकूल न होने पर उसका आयात करना है। हमें सहयोग द्वारा श्रम और पूंजी को संगठित करना है और उन्मुक्त रूप से विदेशी कौशल तथा मशीनरी का तब तक आयात करना है जब तक हम अपने आप भली प्रकार कार्य करना सीख नहीं जाते है तथा उनकी सहायता की अपेक्षा छोड़ नहीं देते। हम बहुत अधिक पिछड़ गए है, अब हमें नए कामों में हाथ डालना है तथा और अधिक कठोर श्रम के लिए ईमानदारी से कमर कसनी है।"[1] 1890 में रानाडे ने लिखा : "स्कूलों और कालेजों की अपेक्षा कारखाने और मिलें अधिक प्रभावशाली ढंग से राष्ट्र की गतिविधियों को जन्म दे सकती है।"[2]

इस प्रकार अंग्रेजों और भारतीय राष्ट्रवाद के नेताओं के प्रेरणा से कई छोटे और बड़े उद्योगों की स्थापना हुई। "कुछ प्रकार के कच्चे मालों को निर्यात से पहले संवारना जरूरी होता है। इसलिए चावल कूटने, आटा पीसने, रूई धुनने व उन्हें गांठों में बांधने तथा जूट के बोरे बनाने आदि के कारखाने स्थापित हुए। 1839 से लगाए जाने वाले चाय बागानों में भी काफी ब्रिटिश सरमाया लगा और इस उद्योग का विशेष उत्कर्ष हुआ।"[3]

"कालक्रम की दृष्टि से भारत में सर्वप्रथम नील, चाय तथा कॉफी बागान के उद्योग ही शुरू हुए।"[4] इसके पश्चात रेल के आगमन के

- -

1. बिपन चंद्र: भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास-पृ.56
2. -वही- पृ.57
3. सुकोमल सेन - भारत का मजदूर आन्दोलन - पृ. 7
4. विपनचन्द्र - पृ. 59

के बाद सूती कपड़ा, पटसन तथा कोयला खान उद्योग स्थापित हुए। "1879 ई० तक भारतीय मिलों की संख्या 58 थी और 1886 ई० तक यह 90 हो गयी थी। 20वीं शती के प्रारंभ तक 200 मिलें स्थापित हो चुकी थी। जिनमें 17 करोड़ रुपया लगा था और दो लाख मजदूर काम करते थे। अधिकांश मिलें सूत कातने का कार्य करती थी। कपड़ा हथकरघे से ही बनकर आता था।"[1] इसी प्रकार "1882 में केवल 22 पटसन मिलें थी और उनमें से अधिकांश मिलें बंगाल में थी। इनमें लगभग 20,000 व्यक्ति कार्यरत थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि 1880 तक भारत में आधुनिक उद्योग का विस्तार अत्यंत स्वल्प था, यद्यपि यह स्वल्प विस्तार भारतीय नेताओं और उद्यमियों के दूरदर्शी वर्ग में आधुनिक उद्योग के प्रति रुचि उत्पन्न करने में तथा उनके प्रलोभन को बढ़ाने में पर्याप्त समर्थ था। 1880 के उपरान्त देश में औद्योगिक विस्तार ने मंद होने पर भी निरंतरता ग्रहण की और इसके फलस्वरूप 1901-02 में भारत में 1,14,795 व्यक्तियों को सेवारत करने वाली 36 पटसन मिलें, 1904-1905 में 1,96,369 व्यक्तियों को आजीविका देने वाली 206 सूती कपड़ा मिलें और 1906 में लगभग 99,000 लोगों को काम देने वाले कोयला खान आदि उद्योग अस्तित्व में आए। इस अवधि में तुलनात्मक कम विस्तार से पनपने वाले अन्य उद्योग थे: रुई बेलन यंत्र, चावल, आटा और इमारती लकड़ी की मिलें, चमड़ा कमाने के कारखाने ऊनी कपड़े की, मिलें, कागज और चीनी मिलें तथा नमक, अभ्रक, शोरा, पेट्रोल तथा लोहा जैसी धातुओं के उद्योग, छोटी सी इंजीनियरी और रेलवे कर्मशालाएं तथा लोहे और पीतल की ढलाई करने के कारखाने भी अस्तित्व में आए।"[2] इसके पश्चात देश में औद्योगिक विकास पर तीव्र

- -

1. डा० ज्योतिप्रसाद जैन - भारतीय इतिहास : एक दृष्टि - पृ० 680

2. बिपन चंद्र - भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास-पृ० 9

सरकार विशेष ध्यान देने लगी । जिसकेपरिणाम स्वरूप 1918 ई0 में सरकारी इण्डस्ट्रियल कमीशन की रिपोर्ट में औद्योगिक उन्नति के अनेक उपाय सुझाये गये । "1924 से 1929 ई0 के बीच भारतीय मिल उद्योग मे अपूर्व उन्नति की । वैज्ञानिक अनुसंधानशालाओं और कई स्थानों में पानी से तैयार की जाने वाली विद्युत शक्ति ने भी इस कार्य भारी सहायता की । प्रत्येक प्रान्त में एक औद्योगिक विभाग खुल गया । सरकार ने सहायता, प्रश्रय और कुछ द्रव्य प्रदान किया। रेल मोटर, तार डाक आदि के यातायात की सुगम सुविधा भी अत्यन्त सहायक हुई ।"[1]

वस्तुतः भारत में औद्योगीकरण प्रक्रिया से देश का विकास अवश्य हो रहा था । कुछ अच्छे परिणाम सामने आ रहे थे । देशवासियों की आर्थिक स्थिति सुधर रही थी । शिक्षा का प्रचार और प्रसार, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास देशी पूंजी की खपत, यातायात के साधनों में सुधार सिंचाई साधनों के मशीनीकरण, उर्वरकों के उत्पादन तथा उपयोग, सुविधाओं और विलासपूर्ण वस्तुओं का निर्माण, और रोजगार में वृद्धि जैसे कुछ सुपरिणाम निकले । किन्तु इस औद्योगिकरण के कारण भारतीय समाज काफी प्रभावित हो गया था । सुपरिणाम की अपेक्षा कुपरिणाम ही अधिक मिले । जिसके कारण भारतीय सामाजिक व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन आ गए । गांव की सामाजिक संरचना जर्जर होने लगी और नगरीकरण होने लगा । जिसके साथ ही अनेक सामाजिक आर्थिक दुष्प्रभाव भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर पड़ने लगे । हालांकि अंग्रेजी सरकार

- -

1: डा0 ज्योतिप्रसाद जैन - भारतीय इतिहास : एक दृष्टि - पृ: 68।

देश के औद्योगीकरण को सकारात्मक दृष्टि से समझ रही थी किन्तु राष्ट्रवादी नेता इस सकारात्मक दृष्टि के पीछे की शोषण प्रवृत्ति को उजागर कर रहे है। उदाहरण के लिए "1844 में भारत में रेलों के अग्रदूतों में प्रमुख जान चैपमैन ने निम्नलिखित टिप्पणी में भारतीय रेलों के उद्देश्य का समर्थन प्रस्तुत किया : "राजमार्गों का अभाव दरिद्रता का अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट कारण है और रेलें भारतीयों को दरिद्रता से समृद्धि की ओर लाने का साधन है।" 1884 की संसदीय प्रवर समिति ने इस तर्क पर रेलों के द्रुत विस्तार का समर्थन किया कि इससे देश के दुर्भिक्षों से संरक्षण मिलेगा, बाहरी और भीतरी व्यापार को गति मिलेगी, उपजाऊ प्रदेश और कोयले की खाने खुलेंगी और कुल मिलाकर जनता की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। 1896 में गवर्नर जनरल लार्ड एलगिन ने बड़े ही आत्मविश्वास के साथ घोषणा की कि रेलों का निर्माण कृषि पर निर्भर भारत की बहुसंख्यक जनता की भौतिक स्थिति में एक निश्चित और निरंतर सुधार का साधन है।"[1] दूसरी ओर "भारतीयों के अनुसार भारत में रेल निर्माण को गतिशील बनाने वाला एक महत्वपूर्ण कारण भारत के शासकों की यह इच्छा थी कि भारत के आंचलिक प्रांतों में एक विस्तृत और वास्तव में अब तक न दोही गई एक ऐसी मंडी खोली जाए जो एक ओर ब्रिटिश उद्योग के उत्पादनों को खपाए और दूसरी ओर ब्रिटेन की भूखी मशीनों और प्राणियों के लिए क्रमशः कच्चे माल और खाद्यान्नों के निर्यातों की सुविधाएं जुटाए। इस प्रकार भारत को ब्रिटेन के लिए कच्चे माल का संभरण करने वाले

---

1. बिपन चन्द्र : भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास पृ: 157

कृषि उपनिवेश के रूप में परिवर्तित करना ही भारत के शासकों की इच्छा थी ।"[1]

भारत का शोषण हो या भारत का विकास हो चाहे जो भी हो भारत में औद्योगिक विकास निरंतर गतिशील होते जा रहा है । अंग्रेजों के शासन काल में कुछ गिने चुने क्षेत्रों में ही औद्योगिक विकास हुआ था किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक नीति में काफी फेर बदल होने के कारण औद्योगिक विकास में अभूतपूर्व तेजी आ गई और पंचवर्षीय योजनाओं में भी औद्योगिक व्यवस्था को अद्वितीय स्थान दिया जाने लगा । देश के सभी प्रान्तों में औद्योगिक विकास होने लगा । जहाँ पर जो कच्चा माल उपलब्ध है उसी के अनुरूप उस प्रान्त में कल-कारखाने लगाये गये । इस कारण निश्चित रूप से आर्थिक क्षेत्र में देश की काफी प्रगति हुई किन्तु सामाजिक दृष्टि से बहुत क्षति भी हुई । यहाँ पर औद्योगीकरण का सामाजिक व्यवस्था पर पड़े प्रभाव को संक्षेप में चर्चा की जायगी ।

4. भारतीय समाज पर औद्योगीकरण का प्रभाव :

भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर औद्योगिकरण का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा । इसके कारण सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों में अनेक परिवर्तन आने लगे । सामाजिक स्तर पर उत्पन्न मुख्य समस्याएँ है - मिल की समस्याएं, नैतिक मान्यताओं में परिवर्तन, दुर्व्यसन एवं अपराधीकरण गंदी बस्तियों का निर्माण, गाँवों का पतन, नगरों के प्रति आकर्षण, नगरों से ऊब जाना आदि ।इसी प्रकार आर्थिक परिवर्तन में

- -

1. विपन चंद्र - भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास पृ. 164

मिलों का शोषण, मजदूर की दैनिक दीन परिस्थिति को देख सकते है । राजनैतिक परिस्थितियों के अंतर्गत मिल की राजनीति का शिकार होते मजदूरों की दशा आदि देखी नही जा सकती है ।

4·1· सामाजिक परिस्थिति :

4·1·1· मिल के अंदर बाहर की समस्याएं :

औद्योगीकरण के कारण मनुष्य को अपना जीवन निर्वाह करने के लिए मशीनों पर आधारित होना पड़ा । जिसके कारण जहाँ वह हस्तोद्योग का मालिक था वह यहाँ मजदूर बनने में विवश हो गया । मिलों, कल-कारखानों में मालिक और मजदूरों के बीच संघर्ष होता ही रहता है, मालिक चाहता है कि मजदूरों का श्रम शोषण करके पूंजी का अधिक लाभ कमाए और मजदूर चाहता है कि अपने श्रम का वेतन ठीक से मिले और जो लाभ मिल से मालिक को आता है उसमें लाभांश उन्हें भी मिले । इसी मुद्दे पर संघर्ष होता है । राजनैतिक दलों से सम्बद्ध मजदूर संघों का इस संघर्ष में प्रवेश होता है जिसके कारण हड़तालें तालाबंदी आदि होते है । कभी कभी मशीन ठीक न चलने से दुर्घटना हो जाती है या फिर कभी कभी मजदूर की लापरवाही से मशीन खराब हो जाती है । इस कारण भी मिल के मालिक और मजदूरों के बीच संघर्ष होता है ।

4·1·2· नैतिक मान्यताओं में परिवर्तन :

औद्योगीकरण के कारण नैतिक मूल्यों में परिवर्तन आ गया है । मनुष्य आर्थिक विवशता के कारण अपने रिश्ते-नाते तोड़ने लगा । मनुष्य को "अर्थ" ही मूल्य हो गया है । इसी कारण ग्रामीण व्यवस्था में जो

संयुक्त परिवार विधान था वह यहाँ नगर में एकाकी परिवार में परिवर्तित हो गया । अर्थात् संयुक्त परिवार का विघटन हुआ है । इसका एक और कारण शहरों में आवासिक समस्या भी है । धर्म, न्याय, नैतिकता आदि मूल्यों का पतन औद्योगीकरण के कारण होने लगा । मनुष्य को सबसे महत्वपूर्ण वस्तु "धन" होने लगा जिसको अर्जित करने के लिए वह जी तोड़ कोशिश में लगा रहता है । इस कारण मानवीय मूल्यों का भी पतन होने लगा । क्रमशः मनुष्य में धर्म, न्याय, दया, ममता, प्रेम, क्षमा, परोपकार आदि भावनाओं का ह्रास होने लगा ।

4·1·3· दुर्व्यसनों तथा अपराधों में वृद्धि :

औद्योगिक विकास के कारण नगरों के विकास के साथ साथ नगरों में दुर्व्यसनों का तथा अपराधों का काफी मात्रा में वृद्धि होने लगी । मजदूरों को वेतन मिलते ही उसका गलत उपयोग करना या शराब आदि नशीले पदार्थ का सेवन करना आदि किया करते है । कभी कभी पैसे न होने के कारण चोरी आदि भी करते रहते है । इसके अतिरिक्त वेश्या वृत्ति आदि का भी कारखानों के पास स्थित बस्तियों में प्रचलन होते रहता है । इस प्रकारमजदूर अपने श्रम से आये हुए "धन" का दुरुपयोग दुर्व्यसनों के लिए करते है । जब पूरे पैसा खत्म हो जाता है तब चोरी करने से भी बाज नहीं आते ।

4·1·4· नगरों में गंदी बस्तियों का निर्माण :

औद्योगीकरण के फलस्वरूप नगरों का निर्माण बहुत ही द्रुतगति से होने लगा । नगरों में कल कारखानों की स्थापना अधिक से अधिक होती गई । और कल-कारखानों में काम करने मजदूर गाँवों से आने लगे ।

कारखानों में मजदूरों का शोषण होता था उनको उनकी मेहनत के अनुरूप मजदूरी नहीं मिलती थी । इस कारण वे नगरों में कहीं अच्छे मकानों को किराये पर न ले पाते थे और कारखाने भी शहर के बाहर रहने के कारण यातायात की समस्या से मजदूर वहीं कारखाने के पास ही झोपड़ियों को निर्मित करके बस जाते थे । इस प्रकार एक योजना बद्ध इन झुग्गी झोपड़ियों का निर्माण न होने के कारण वहाँ पर गंदगी फैल जाती थी । जहाँ पर न प्रकाश होता था और न ही गंदा पानी जाने के लिए नाले । इस के कारण इन गंदी बस्तियों में अनेक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं उत्पन्न होती है । किन्तु इसकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता । जैसे जैसे औद्योगिक विकास होते गया वैसे वैसे गंदी बस्तियों का भी विकास होने लगा ।

4·1·5· गाँवों का पतन और नगरों के प्रति आकर्षण :

औद्योगीकरण के कारण न केवल कुटीर व दस्तकारी उद्योगों की अवनति हुई है बल्कि इसके परिणामस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था पंगु बन गयी है । क्योंकि भारतीय अर्थ व्यवस्था का मूलाधार ग्रामीण संरचना है जो इकाई के रूप में काम करती थी । कृषि तथा दस्तकारी ही ग्रामीण व्यवस्था को आर्थिक दृष्टि से परिपुष्ट करते थे । किन्तु औद्योगीकरण के कारण शिल्पकार तथा दस्तकार बेकार हो गये तथा रोजी रोटी के लिए तरसने लगे । कृषि के क्षेत्र में भी इसका प्रभाव पड़ने के कारण किसान खेती को छोड़ कर अन्य दस्तकारों के साथ नगर की ओर चल पड़े । इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बनने की चाह ने लोगों को नगरों के प्रति आकर्षित किया ।

4·1·6· नगरीकरण से उपजा दुःख और अलगाव :

जिन आशाओं और आकांक्षाओं से ग्रामीण जनता नगरों की ओर चल पड़ी थी । उनके हाथ निराशा ही लगी । जो - जो अपनी जिन्दगी के बारे में सोचे थे वह सब बिखर गया । इसका कारण यह था कि नगर में जितना कमाते थे उससे ज्यादा खर्च होता था । प्रत्येक क्षण बेचैन से रहना पड़ता था । हमेशा जीवन से संबंधित समस्याएँ रहती थी । कभी आर्थिक समस्या कभी राजनैतिक समस्या तो कभी सामाजिक । जिसके कारण ग्रामीण वातावरण में पले मजदूरों को शहरी वातावरण ठीक नहीं जचा होगा । इस कारण वे वापस गाँव की ओर भी नहीं जा सके क्योंकि जो मजदूरी यहाँ पर मिल रही है वह भी गाँव में नहीं मिलती । इस कारण विवशता से शहर में ही उसी गंदी बस्ती के झुग्गी झोपड़ी में अनेक समस्याओं को झेलते हुए लोग रहते है किन्तु उनकी चाह गाँव में रहने की होती है ।

4·2· आर्थिक परिस्थिति :

औद्योगिक सभ्यता सामंतवादी सभ्यता को पूँजीवादी सभ्यता में परिवर्तित किया । ग्रामीण प्रान्तों में जो बड़े बड़े सामंत और भूस्वामी थे वे सभी अपनी पूँजी को औद्योगिक क्षेत्र में लगा दिये । जिसके कारण भूस्वामी किसान का संबंध पूँजीपति मजदूर में परिवर्तित हो गया । किसान अब मिल में काम करने लगा । उसका शोषण होने लगा । मजदूर जितना श्रम करता है उसको उतना पारिश्रमिक नहीं मिलने लगा । जिसके कारण मजदूरों की परिस्थिति बहुत ही दयनीय होती गई । उनको न रहने के लिए घर है, न अस्पताल है और न बच्चों के लिए पाठशाला है । इस प्रकार पूँजीपति समाजमें मजदूर की परिस्थिति विशेषतः उनकी आर्थिक दशा बहुत ही हृदय विदारक है ।

4.3. राजनैतिक परिस्थिति :

औद्योगिकरण के पश्चात संसार में शिक्षा आदि का प्रचार-प्रसार होने के कारण जनता में जागृति आने लगी । इसके परिणाम स्वरूप ही जनता के प्रति जो अन्याय, अत्याचार शासकों के द्वारा होता था उसका प्रतिरोध किया गया है । यही एक प्रकार से राजनैतिक अचेतना है । औद्योगिक क्षेत्रों में भी राजनैतिक चेतना आ गई है जिसके कारण मिलों में मजदूर संघों की स्थापना हुई । इन मजदूर संघों के माध्यम से मजदूरों के समस्याओं को मिल मालिक के सामने रखा जाता था तथा समस्या का समाधान किया जाता है । ये मजदूर संघभी किसी न किसी राजनैतिक दल से सम्बद्ध रहने के कारण राजनैतिक दलों के इशारे पर ही काम करते है जिसके कारण मजदूर के असली समस्याओं को अनदेखी करके राजनैतिक दृष्टि से मिल में हडतालें आदि करवाते है । इस कारण मजदूर अपनी रोजी रोटी गवाँ देता है । इस प्रकार मजदूर मिल मालिक का शोषण तथा मजदूर संघों का स्वार्थ के बीच पिसते जाता है ।

5. डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में औद्योगीकरण और अमनवीकरण का चित्रण :

औद्योगीकरण द्वारा उत्पन्न होने वाले समस्याओं का तथा औद्योगीकरण का समाज पर पड़ने वाला प्रभाव का चित्रण हिंदी उपन्यासों में होता रहा है । वास्तव में उपन्यास का संबंध गाँव के साथ साथ नगर से और नगर के समस्याओं से भी है । ऐसी स्थिति में औद्योगीकरण के कारण उत्पन्न होने वाले सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण उपन्यासों में होना स्वाभाविक ही है । "औद्योगीकरण के विकास एवं प्रसार ने नगरीकरण की प्रक्रिया एवं नगरवाद के प्रसार को अत्यधिक तीव्र गति प्रदान की है जिससे सम्पूर्ण समाज की संरचना प्रभावित हुई है ।

यद्यपि गाँव की भाँति ही नगर समुदाय एवं नगर संस्कृति अत्यधिक प्राचीन है किन्तु आवागमन के साधनों, औद्योगिक अर्थव्यवस्था, अत्यधिक प्राचीन है किन्तु आवागमन के साधनों, औद्योगिक अर्थव्यवस्था, प्रौद्योगिकी एवं यांत्रिकी के विकास ने नगरों एवं उसकी संस्कृति को एक नये रूप में प्रस्तुत किया जिसने संबंधों के परम्परागत स्वरूपों समूहों की संरचना एवं व्यवस्था, विभिन्न संस्था एवं समितियों तथा सामाजिक प्रक्रियाओं को प्रभावित कर एक नये पर्यावरण एवं जीवन पद्धति को जन्म दिया।"[1] इन्हीं का चित्रण उपन्यासों में होने लगा है। उपन्यास औद्योगिक व्यवस्था के द्वारा प्रभावित होने वाले सभी समुदायों का यथार्थपूर्वक प्रस्तुत करने की क्षमता रखता है। फ्रान्सिस्को के अनुसार - "औद्योगिक समाज की प्रमुख साहित्यिक विधा के रूप में उपन्यास को राज्य, परिवार, राजनीति के साथ मानव की सामाजिक दुनिया के पुनर्सृजन के रूप में देखा जा सकता है।"[2]

डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में औद्योगीकरण के द्वारा समाज में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का चित्रण यथार्थ दृष्टि से किया गया है। औद्योगीकरण से नगर का विकास, अमानवीकरण आदि के संबंध में पाठक को यथार्थ का बोध कराने में सफलता को हासिल किया है। डा० माचवे के उपन्यासों में औद्योगीकरण तथा तद्द्वारा उत्पन्न होने वाला अमानवीकरण का चित्रण मुख्यतः "साँचा" और "धूत" नामक उपन्यासों में हुआ है।

वस्तुतः डा० माचवे जी की दृष्टि में औद्योगीकरण मानव सभ्यता का अभिशाप है। वह एक कीट है जो सभ्यता के फल को खा रहा

---

1. डा० विश्वम्भरदयाल गुप्त - उपन्यास का समाजशास्त्र - पृ० 62
2. -वही- पृ० 65

है । वे "सांचा" उपन्यास में एक जगह लिखते हैं -"मनुष्य की निरंतर अच्छा और अपने अनुकूल खोजने की टोह का ही नाम है सभ्यता । और इस सभ्यता के आनन्दरत फल में पहला कीट यदि आकर लगा - अनजाने घुसा तो वह था मशीन । यंत्र सभ्यता में आकर मनुष्य का मन भावना, शरीर, विचार, राग - द्वेष - सब जैसे धुन से हो गए । वह चाहता कुछ है, करता कुछ और है ।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि माचवे जी मनुष्य में मनुष्यता का ह्रास होने का जिम्मेदार मशीन को मानते हैं ।

"सांचा" और "सूत" उपन्यासों के माध्यम से माचवे जी औद्योगीकरण के द्वारा उत्पन्न होने वाले प्रभावों का बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण किया है । मिलों में काम करने वाले मजदूरों की शारीरिक मानसिक सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों का अंकन यथार्थ के साथ किया है ।

इनके उपन्यासों के माध्यम से हमें गाँव से मजदूरी करने आने वाले श्रमिकों का संपूर्ण जीवन वृत्त स्पष्ट रूप से अवगत होता है । मजदूर गाँवों से किस जिजीविषा के साथ शहर आते हैं ? और मिलों में वहाँ के परिस्थितियों के अनुकूल अपने आप को किस तरह "फिट" करा देते हैं ? अपने जीवन के आकांक्षाओं को अपने आँखों में बसा कर किस तरह मेहनत करते हैं ? मिल के मालिक उनके श्रम का शोषण किस तरह करता है ? राजनैतिक दृष्टि से बने मजदूर संघों द्वारा किस प्रकार मजदूरों को अपने स्वार्थ के लिए उपयोग किया जाता है ? और मशीनीकरण द्वारा इस पूरे शोषण में पिसता जाने वाला मजदूर किस प्रकार खोखला बनता जाता है ? आदि प्रश्नों का उत्तर माचवे जी के उपन्यास एक यथार्थ

- -

1. सांचा - पृ. 31

जाता है। आदि प्रश्नों का उत्तर माचवे जी के उपन्यास एक यथार्थ गाथा के समान प्रस्तुत करते हैं। विशेषत: "भूत" उपन्यास में डा० माचवे जी ने औद्योगीकरण रूपी "भूत" पूरे सामाजिक संरचना को किस प्रकार प्रभावित कर सकता है अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर निर्मित "इस्पात नगर" के माध्यम से दर्शाने का सफल प्रयास किया है। भविष्य में यंत्रीकरण के द्वारा होने वाले खतरों का भी खुलासा इसमें दिया है। एक आम भारतीय गांव में इस्पात कारखाना लगाने से तथा अत्याधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग करने से उस गांव का रूप किस प्रकार समूल परिवर्तन हो जाता है इस उपन्यास में स्पष्ट दिखाया है।

वस्तुत: माचवे जी द्वारा चित्रित औद्योगीकरण से उत्पन्न परिस्थितियों या समस्याओं को स्थूल दृष्टि से हम दो भागों में विश्लेषित करने का प्रयास कर सकते हैं - एक मजदूर का बाहरी पक्ष। दूसरा मजदूर का आन्तरिक पक्ष जिसे अमानवीकरण के दृष्टि से देख सकते हैं।

मजदूर के बाहरी पक्ष के अन्तर्गत हम मजदूर का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक पक्षों पर विचार करेंगे कि उस पर औद्योगीकरण का क्या प्रभाव पड़ा है तथा इसी प्रकार मजदूर के आन्तरिक पक्ष में उसकी मानसिक परिस्थिति तथा अमानवीकरण पर विचार करेंगे।

5.1. सामाजिक स्थिति पर औद्योगीकरण का प्रभाव :

व्यक्ति की सामाजिक परिस्थितियों में औद्योगीकरण के कारण काफी उथल पुथल हो गयी। सबसे बड़ा या मुख्य परिवर्तन तो यह हुआ कि वह अपने घर के कारोबार समाप्त करके मशीन पर निर्भर होने घर से निकल पड़ा। संयुक्त परिवार को बड़ा धक्का लगा। उसका

विघटन होनेलगा । गाँव की वह भाई चारा, आत्मीयता अनुराग जैसे मनुष्यता के गुण क्रमशः लुप्त होने लगे । मनुष्य का शोषणहोने लगा । नगरों में जन संख्या की वृद्धि के कारण अनेक समस्याएं उत्पन्न होने लगी । उनमें प्रबल समस्या थी आवास की । इस कारण गंदी बस्तियों का निर्माण जहाँ देखो वहाँ होने लगा । जिसके फलस्वरूप स्वास्थ्य पर काफी प्रभाव पड़ने लगा । दुर्व्यसनों की तथा अपराधों की संख्या में वृद्धि होने लगी । मिल के अन्दर नाना प्रकार की समस्याओं से दम घुटता हुआ मजदूर काम करता है । इस प्रकार औद्योगिक विकास के कारण संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था पर बुरा असर पड़ा है । इसी का चित्रण डा० प्रभाकर माचवे ने अपने उपन्यासों में बहुत ही नजदीक से किया है । जिसके फलस्वरूप हमें श्रमिकों के जीवन का यथार्थ बोध होता है ।

औद्योगीकरण पूंजीवादी व्यवस्था की देन है । औद्योगीकरण का एक मात्र ध्येय है कि उत्पादन को कम समय में अधिक करना और उत्पादनों को बेचकर पूंजी कमाना । इस व्यवहार के कारण सामाजिक व्यवस्था में किस प्रकार का बदलाव आता है उसे कोई चिन्ता नहीं है । "धूल" उपन्यास में डा० माचवे जी गाँवों को औद्योगीकरण क्षेत्रों के रूप में बदलने के खिलाफ नजर आते हैं । इसीलिए इस उपन्यास में "इस्पात नगर" जो माचवे जी के कल्पना के आधार पर निर्मित है, के पूर्व गाँव-वासियों - हेडमास्टर ब्रह्मानंद और धर्मराज के बीच इस्पात कारखाना लगाये जाने पर वाद विवाद चलता है । ब्रह्मानंद जी इस्पात कारखाने का समर्थन करता है तो धर्मराज उसका विरोध करता है । हेडमास्टर ब्रह्मानंद जी कहते हैं - "जैसे बारह बरस में घूरे के दिन भी फिरते हैं, अच्छा ही है कि गाँव का भाग्य खुल जायेगा । इस छोटे से देहात के नसीब पलट जायेंगे । यहाँ आर्थिक परिवर्तन इसी प्रकार आयेगा कि सब

लोग खुशहाल और मालामाल हो जायेंगे । यहाँ बहुत बड़ा इस्पात कारखाना बन जायेगा तो उसमें बुरी बात क्या है ? मेरा हाईस्कूल डिग्री कालेज हो जायेगा । मैं प्रिंसिपल कहलाऊँगा । उसमें और बड़ी लाइब्रेरी और लेबोरेटरी बन जायेगी । इस गाँव के बच्चे वैज्ञानिक बनेंगे ।"[1] वास्तव में यह आकांक्षा एक कोरा आदर्श है । क्योंकि औद्योगिक विकास का मुख्य ध्येय पूँजी कमाना है न कि सामाजिक परिस्थितियों को सुधारना । इसीलिए धर्मराज इस्पात कारखाने से उत्पन्न होने वाले दूरगामी परिणामों से सतर्क करते हुए उसका विरोध करते हैं । वे कहते हैं - इससे तो गाँव की सारी शांति नष्ट हो जायेगी । ये छोटा बहुत कुछ दूध छाछ यहाँ मिल जाता है, वह भी नहीं मिलेगा । यह गाँव शहर बन जायेगा । यहाँ हर चीज में मिलावट आ जायेगी । सच में भी नकली प्रतिष्ठा कुछ की मिलावट हो जायेगी । x x x यहाँ तो कारखाने आये कि सारी कुदरती चीजें खत्म हो जायेंगी । इस सारे आपके हिसाब से विकास और प्रगति के तथाकथित कार्यक्रम में बहुत बड़ी जोखिम है । x x x यहाँ तो भारतीय जीवन प्रणाली बदल जायेगी । सब विश्वास ढह जायेंगे, लोग भूल जायेंगे कि गाँव भी कोई चीज थी, जहाँ सकून था, संतोष था, सुन्दरता थी ।"[2] यह तो पूरे सामाजिक व्यवस्था पर पड़ने वाला दूरगामी प्रभाव था । जब व्यक्ति मजदूर हो कर मशीन के पास जाता है तो क्या वह व्यक्ति मनुष्य के ही रूप में रहता है ? डॉ० माचवे जी के अनुसार वह व्यक्ति मनुष्य नहीं बल्कि एक आंकड़ा या नम्बर मात्र रह जाता है । उसका अस्तित्व, उसकी स्वतंत्रता समाप्त होती है - "आंकड़ों के पीछे आदमी है । मशीन आदमी को आंकड़ों में परिवर्तित करती है ।"[3]

- -

1. दूत - पृ० 98 - 99
2. दूत - पृ० 99-100
3. सांचा - पृ० 32

वस्तुत: मशीन एक भूत है। जो व्यक्ति उसके पास जाये उसकी शक्ति को वह खा जाती है और उसे खोखला बना देती है। "साँचा" उपन्यास में नागवे जी ने मशीन का चित्रण इसी प्रकार किया है। केशो सोचते रहे —"उनके दिमाग में मिल एक विशाल काय अहिरावण-महिरावण का रूप ग्रहण करके सामने आ रही थी, उसके लाल-लाल जबड़े है, कराल - विकराल उसके दन्त है, लपलपाती जिह्वा है। त्रिनेत्र है - नौ भुजाओं में परशु, पाश, खड्ग, चक्र, त्रिशूल, दराती, हथौड़ा और राजदण्ड भी है। इस यंत्र दानव का प्रिय पेय है - गाँवों का स्वास्थ्य रस। केशों के सामने यह यंत्र दानव मोटे मोटे ग्रंथ पढ़ रहा है - देखते देखते वह चश्मा पहनने वाले गंभीर वकील का रूप धारण करता है। इसके हाथ में एक "पिरानी" जैसे लोहे का काँटा है जो "जिड़ जिड़" करके इन मजदूर मानवों की त्वचा में चुभोते जाता है - कुछ रक्त जो बाहर निकलता है, उसे देख देखकर वह खुश होता है - वह उस रुई पशु रुई राक्षस यंत्र रूपी विशालकाय वस्तु के नीचे पिसता जा रहा है।"[1] सच भी है कि मशीन मनुष्य को खाने वाला एक शैतान है। वह उसे पीस पीस कर खाता रहता है किन्तु उस मनुष्य को इसका आभास नहीं होता। यदि आभास होता भी है तो विवशता के साथमें काम करने के लिए वह व्यक्ति मजबूर है।

मिल में मनुष्य के जीवन के किस प्रकार से यांत्रिकता में परिवर्तित होना पड़ता है। भगीरथ जी जो केशों का मित्र है, बताता है - "जब आँख भी नहीं खुलती तब जोर से मिल की सीटी बोलती है - भोंपू ऐसा डरावना होता है कि याद रखो - अभी से भागे भागे पहुँचो तो मिल में वक्त सही पहुँच जाओ। नहीं तो फिर फाटक बन्द। फाटक

---

1. साँचा - पृ: 36

पर वह लंबूतरा तगड़ा पठान खड़ा खड़ा रहता है । कभी उसका सोटा देखा नहीं होगा ? देर हो गई तो टेम्कीपर उसका हिसाब रखता है । पगार में से पैसे कट जाते हैं - समझे । और फिर छेद जाकर अलग से आँखें दिखाता है ।"[1]

यह औद्योगीकरण की विडम्बना है कि मनुष्य समय सीमा में नियम उपनियमों में बंधते जा रहा है । उसका कोई अस्तित्व बच नहीं पा रहा है । समाज में जीने के लिए चार पैसे कमाने के लिए हर एक के साथ व्यक्ति को समझौता करना पड़ रहा है । मनुष्य में यांत्रिकता की स्थिति को जो औद्योगीकरण की देन है । "धूल" उपन्यास में माचवे जी ने और अधिक स्पष्टता के साथ कल्पना की है । इस उपन्यास में एक नम्बर दूसरे नम्बर को बताता है - जहाँ पर व्यक्ति भेद, लिंग भेद से ऊपर उठने के लिए नामों की जगह नम्बरों का प्रयोग होता है - कि "अब हम देखिये कितने स्वतंत्र हैं । सबेरे सीटी बजाते ही सब लोग कारखाने की तरफ खिंचकर चले जाते हैं, एक एक सा काली लिबास । और एक एक चौपतिया अखबार चार समाचार" । जिनको पढ़ने की फुरसत नहीं उन्हें आध आध घंटे से रेडियो पर समाचार पत्र का संपादकीय धीरे धीरे, प्रवचन की तरह सुनाया जाता है । कारखाने में लाउडस्पीकर लगे हैं - उन पर उसी की पुनरावृत्ति होती है ।"[2] इस प्रकार यांत्रिकता मनुष्य पर हावी हो जाती है तब मनुष्य का संबंध बाहरी संसार से टूट जाता है । वह सामाजिक संबंधों से विच्छेद हो जाता है । मनुष्य केवल यंत्र से ही जुड़ा रहता है समाज में होने वाली घटनाओं या हलचलों से उसका कोई

- -

1. साँचा - पृ. 35

2. धूल - पृ. 119

मतलब नहीं रह जाता । उस मनुष्य का जीवन एक व्यवस्थित समय सारणीबद्ध रह जाता है । न वह कुछ आनंद उठा सकता है न किसी अन्य विषयों के बारे में सोच सकता है । बस, उसके लिए मात्र एक वस्तु है - चाहे सोचने के लिए हो, या आनन्द के लिए - यंत्र । यदि कोई व्यक्ति कुछ आराम करना चाहता है तो वह भी कारखाने वालों की मर्जी पर आधारित है - "धुंत" में कहा गया है कि "इस्पात नगर चाहता है तब हमें चाहे जितनी छुट्टी मिल जाती है । समुद्र किनारे स्वास्थ्य गृह में हम चार दिन के अवकाश मना सकते है ।"[1]

इसी प्रकार मनोरंजन आदि भी यंत्र के अधीन होने लगते है जैसे अपने कल्पना के आधार पर माचवे जी के द्वारा निर्मित इस्पात नगर में होता है - "इस्पात नगर के मनोरंजन के लिए जो फिल्म बनाई जा रही थी उसमें कृष्ण कालिया का लोह नृत्य बिजली के संगीत के सहारे होने वाला था । न किसी साजिंदे की जरूरत थी, न आरकेस्ट्रा की । सब काम स्वयंचालित यंत्रों से होते है ।"[2] इसी प्रकार मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होने वाले नव रसों को भी यंत्रों के माध्यम से उत्पन्न करने लगे है जैसे कौन सा रंग कितने मात्रा में दूसरे रंग से मिलाने पर हृदय में अमुक रस उत्पन्न होगा आदि । "शब्दों की भी प्रभावान्विति को नाप लिया गया है । कितने शब्द काम में लाने से कौन से संचारी और व्यभिचारी भाव निर्मित होंगे, यह सब मशीन से जान लिया गया है ।"[3] इस्पात नगर के लोग कभी सैर करने के लिए चांद मंगल ग्रह आदि पर जाकर आते है । इस प्रकार माचवे जी ने औद्योगीकरण से उत्पन्न

- -

1. धुंत - पृ. 119
2. धुंत - पृ. 120
3. धुंत - पृ. 120

होने वाले आगामी परिणामों की कल्पना के आधार पर अपने उपन्यास में चित्रित किया है जिससे यह हमें विस्मय या आश्चर्य नहीं लगता की ऐसा होगा । क्योंकि यान्त्रिकता का उपयोग जिस तरह से आज के युग में हो रहा है तो निश्चित है कि "इस्पात नगर" यथार्थ में परिवर्तित होने में देर नहीं है । साहित्यकार अपने अनुभव ज्ञान और दृष्टि के माध्यम से न केवल अतीत और वर्तमान के बारे में बताता है बल्कि भविष्य की भी कल्पना करने में सक्षम होताहै ।

जहाँ तक वर्तमान का प्रश्न है मिल में मजदूरों की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए डॉ० माचवे जी "साँचा" उपन्यास में उनके जीवन का यथार्थ चित्रण करने में सफल हुए है - केशो सबेरे सबेरे उठकर किसी तरह मिल के फाटक के अन्दर पहुँच गये --"अपने खाते तक पहुँचने में देर लगी । रास्ते में कोयले से भरी छोटी - छोटी ट्रालियों रातपाली के बच्चे अपने से कहीं अधिक बोझा उठाये हुए ले जा रहे थे । वैसे कागज में कानून थे - बच्चे में अमुक उम्र तक के लड़कों को मेहनत का काम न देने का आदेश था । पर बात यह थी कि कई तरह के ये आवारा छोकरे यहाँ वहाँ अपराध करते और सब पापों का प्रक्षालन करने यहाँ पहुँचते । लेबर इन्सपेक्टर से बचने के लिए इनके नाम रजिस्टर में दर्ज नहीं कराये जाते । ज्यों ही इन्सपेक्टर के आने की भनक पड़ती इन्हें भगा दिया जाता था ।"[1] यह स्थिति मजदूर बच्चों की थी । मिल में महिलाएँ भी काम करती थी किन्तु उनकी भी कुछ अच्छी हालत नहीं थी । उनके बारे में माचवे जी लिखते है -"ज्यादातर बहुत छिचपिच साँचों पर काम करती - सालखाते में भी कुछ थी पर उनकी कोई जिन्दगी नहीं थी वैसे ही पुरुषों से

- -

1: साँचा - पृ: 53

कम मजदूरी यहाँ भी उन्हें मिलती और तिसपर अपमान के झिड़की, सब तरह की बुराइयाँ उन्हें घेरे रहती । उन पर जाबर की बुरी नजर थी ही । साथ ही उन्हें काम पर लगाने वाला ठेकेदार अव्वल नंबर का का शराबी और जुआरी था । उसकी अंटी में इनकी गाढ़ी कमाई का बहुत सा पैसा जाता । लछमी को उसके धनी ने छोड़ दिया था । पारवती दो पतियों को छोड़ चुकी थी । रबदा का पति शराबी था और उसकी आय घर में आती ही नहीं थी । गीता का बाप बहुत बूढ़ा था- इसलिये जवानी में ही उसे नौकरी करनी पड़ती थी । इन सब औरतों की कमजोरियों और मजबूरियों से उनके नौकरी दिलाने वाले सुपरिचित थे और वे उनसे पूरा फायदा उठाते है ।"[1] और जहाँ तक महिलाओं के लिए आवश्यक सुविधाओं का प्रश्न है, वह न के बराबर है । "माताएं जो अपने बच्चे लाकर बाहर एक पेड़ की डाल से कपड़ा टांगकर उसमें रख जाती उनके लिए कोई "क्रेश" भी नहीं थे ।"[2] इसी प्रकार से अन्य कोई सुविधा भी नहीं थी - "दिन में जो आध घंटे की छुट्टी होती उस वक्त खाने के लिए न कोई मिल की ओर से चलाये जाने वाले अच्छे खाने के होटल थे । x x x अब ये थियेटर और व्यायामशालाएं और लाइब्रेरियां तो बहुत बाद की चीजें है- उन दिनों ऐसी कोई सभ्यता सूचक वस्तु उन मिलों के जंगल जैसे "एरिया" के आसपास नहीं थी ।"[3] ऐसे मिल में विधाता से मजदूरी से जिने की जिवीविषा से "हर खाते में चीटियों की तरह से आदमी काम करते रहते । इन चीटियों की चीनी का दाना था हफ्ते या महीने के बाद मिलने वाली पगार ।"[4]

- -

1. सांचा - पृ. 53-54
2. सांचा - पृ. 54
3. सांचा - पृ. 54-55
4. सांचा - पृ. 54

नैतिक मूल्य व्यक्ति के चरित्र को निर्धारित करते है । भारतीय संस्कृति के अंतर्गत नैतिकता का महत्व अत्यधिक है । कहा जाता है कि नैतिकता के आधार पर ही किसी देश का विकास होता है । किन्तु औद्योगीकरण के पश्चात देश में नैतिक मूल्यों का पतन होने लगा है । सभी लोगों में एक मात्र आकांक्षा रह गई है कि "धन" कैसे कमाए ? इस "अर्थ" के चक्कर में पढ़कर मनुष्य नैतिक मान्यताओं को तिलांजली दे रहा है । न उसे भगवान से डर है और न उसे धर्म, न्याय उपकार की भावना का ख्याल है । मनुष्य दिन ब दिन स्वार्थी बनता जा रहा है । "आधुनिक समाज में, सभ्यता की नवीन उपलब्धियों के कारण धनी और निर्धन व्यक्ति के बीच की दूरी बहुत अधिक बढ़ गयी है । एक वर्ग इतना संपन्न है कि वह धरती पर रहकर भी स्वर्गिक सुखों का उपयोग कर रहा है और दूसरा इतना विवश कि उसे धरती के सुख भी नसीब नहीं । सुखों की बात तो दूर उसकी मौलिक आवश्यकताओं तक की पूर्ति नहीं हो रही है । इस वर्ग वैषम्य ने आज संस्कृति और नैतिकता का आधार ही भंग कर दिया है ।"[1] इस प्रकार नैतिक मूल्यों का ह्रास होने के संदर्भ में "सांचा" उपन्यास के पात्र मांगीराम के वक्तव्यों को देख सकते है । वह अपने देहाती मित्र केशो जो मजदूरी करने शहर आ रहा है उसे कहता है कि "पाप" नाम की कोई चीज नहीं है । मांगीराम देवता की चढ़ाई में से चोरी से उठा लेने पर केशो कहता है कि यह महापाप है । मांगीराम कहता है --"इसमें कौन सा पाप है । केशो तुम बुद्धू रहे - शहर में तो यह आम रिवाज है । एक आदमी दूसरे की जेब के पैसे अपनी जेब में कैसे ले आए - उसकी आंखों में धूल फेंककर, हाथ की सफाई से दूसरे की जेब

- -

1. डा० श्रीचन्द्र सिंह - आधुनिक हिंदी उपन्यास साहित्य में चित्रित समस्याएं - पृ. 309

से पैसा निकाल सकता है, उतना ही बड़ा डाक्टर कहलाता है । यहाँ पढ़ाई - लिखाई सब सही बात की होती है । समझे ।"[1] एक इसी उपन्यास में एक और जगह मांगीराम केशो से समाज में नैतिकता के ह्रास होने के बारे में दर्शाता है । वह केशो से कहता है - "अब पैसा ही देखो सब के सब गांजा, चरस, अफीम, भंग शराब में पैसा खर्च करते हैं । ये ये भगत लोग समझते हैं कि बड़े अवतारी पुरुष हैं और बड़े सिद्ध और औलिया हैं, और जरूर मान्नता पूरी करेंगे । पर यह सब गलत है । ये खुद अपना ही पेट नहीं भर सकते । दूसरों का क्या कल्याण करेंगे ?"[1] मांगीराम अपने दोस्त को सलाह देते हैं -"इसलिए मैं कहता हूं दोस्त केशो - कहाँ के धर्म - अधर्म, पाप - पुण्य के चक्कर में पड़े हो । खाओ-पियो - मौज मौज करो । ये सब काम बुढ़ापे के हैं कि दुख-सुख की फिकर खाली पेट नहीं हुआ करती ।"[2] इस प्रकार नैतिक मान्यताओं की परिभाषाएं बदलती हुई देख कर केशो एकदम हताश हुआ । उसे "आज पता चला कि यहाँ पाप और पुण्य की सीमा रेखा मिटाई जाती है, विवेक की धार थोरी की जाती है स्वार्थ की रोटी दूसरे की चिता पर से की जाती है, गला काटने की कमाई का नाम ही परोपकार है । केशो को शहर में पद पद पर अपने मन में बड़ी जतन से संभाल कर रखी हुई व्याख्याएं और परिभाषायें समूल बदलती दिखाई पड़ रही थी । वह नहीं सोच पाता था कि आदमी भी इतना बुरा हो सकता है ।"[4]

औद्योगीकरण के कारण समाज में अपराधों एवं दुर्व्यसनों की वृद्धि हुई है । इसके पीछे अनेक कारण हो सकते हैं जैसे मजदूरों को कम

- -

1. सांचा - पृ. 25
2. सांचा - पृ. 26
3. सांचा - पृ. 29
4. सांचा - पृ. 26

वेतन मिलना, गंदी बस्ती के बच्चों को ठीक शिक्षा उपलब्ध न होना, मजदूर अपनी व्यथा को दूर करने के लिए दुर्व्यसनों में पड़ जाते है।
डा० रघुराज गुप्त के अनुसार "औद्योगीकरण और तज्जनित नगरों के विकास ने प्राचीन परम्पराओं को नष्ट कर दिया है तथा व्यक्तिगत व्यवहार के नियंत्रण के पुराने साधनों - परिवार, धर्म, रिवाज इत्यादि के प्रभाव को बहुत कम कर दिया है। इसके अतिरिक्त, नगरों में व्यक्ति किसी एक घनिष्ठ समुदाय का सदस्य न होने से कठिनाई में पड़ने पर अन्य लोगों द्वारा सहायता न पाने, अधिक प्रलोभनों के होने, आसानी से पकड़े जाने और पहिचाने जाने तथा अपने लोगों के सामने अपमानित होने के भय के अभाव व तथा अपराध को छुपाने की सुविधा होने के कारण, सरलता से अपराध की ओर अग्रसर होता है। ग्राम और नगरों में हुए विभिन्न प्रकार के अपराध के आँकड़े इस बात को सिद्ध करते हैं कि नगरों में ग्रामों की तुलना में अधिक अपराध होते है। अपराधों का उन्मूलन नगरों की एक प्रमुख सामाजिक समस्या है।"[1]

"धूत" उपन्यास में "दादा" नामक पात्र को पता चलता है कि गाँव में इस्पात कारखाना खुल रहा है तो वह बहुत आनन्दित होता है और कहने लगता है कि "मैं तो अब फिर से शराब की दुकान खोलूगा। और जुए के अड्डे के लिए भी ग्राहक कम नहीं मिलेंगे। जहाँ पैसा आया कि ये लोग, मेहनत से थके और क्या चाहेंगे? क्षणिक राहत, क्षणिक दिलचस्पी। सब रंजों को भुला देने का कोई रास्ता..."[2] इस प्रकार मजदूरों का शोषण करने वाले शराब खाने, जुए के अड्डे आदि पूरे समाज को नाश करते है। मजदूर की कमजोरी को ऐसे दुर्व्यसन और अधिक कमजोर कर देते है। "साँचा" उपन्यास में केशो के भाई पुरुषोत्तम किस

---

1. डा० रघुराज गुप्त - भारत में सामाजिक कल्याण और सुरक्षा - पृ 26।
2. "धूत" - पृ० 100

किस प्रकार दुर्व्यसनों का शिकार हुआ और उसकी परिवार की स्थिति कैसी है । उसकी पत्नी गौरी केशो को बताती है -"मिल की नौकरी बहुत ही खराब है । कभी मत करना । एक तो आदमी घर पर नहीं रहता । रात रात भर जागना पड़ता है । और बाद में वहाँ नशा पत्ता भी बहुत होता है । पैसा बहुत कम हाथ में आता है । बुरी सोहबत में पुरुषोत्तम पड़ गया है और अब तो ताड़ी के बिना भी उसका काम नहीं चलता । घर में कोई बाल बच्चा नहीं है । पर अड़ोस पड़ोस के वामन पाण्डे बहुत बदमाश है और पुरुषोत्तम का एक दोस्त "हिसारी" शराब खाने में शराब शाम को मुफ्त में दे दी जाती है । इनके मुँह लग गयी है । और घर आकर सोते रहते है मारपीट करते है । हालत बहुत बुरी है ।"[1]

गौरी अपने पति के बारे जिस बात को विस्तार से कहती है वही बात केशो स्वयं अपन आँखों से इन्दौर में जहाँ जिस मिल में काम करता है वहाँ पर देखता है और आश्चर्य चकित होता है —"जिस दिन केशो पहुँचा था पगार का दिन था और जब शाम को वह मिल से बाहर निकला तो दूसरा ही नजारा दिखाई दिया । मिल के फाटक पर पठान, कर्ज देने वाले खान और कई तरह के चपड़कनाती लोग खड़े थे । मिल के फाटक के बाहर पास में ही लाली की दुकान थी । बहुत सा मिल में मिला रुपया उस लाली में उड़ेल दिया जाता, जैसे ठर्रा ज्यादा पीकर बाद में होने वाली कै हो । कुछ भद्दी, जिनकी आँखों में शर्म का पानी मर चुका है, ऐसी औरतें भी फाटक के बाहर थी । मेहनत के पैसे का यह सब उपयोग अजब था । लॉटरी सट्टे वाले भी बाहर पैसे उगाहने के लिए खड़े रहते थे । इतनी सब आँखों के पिंजड़ों से कोई बचाव नहीं था, पगार

---

1. साँचा - पृ. 28

इधर से आती, उधर चली जाती । मजदूर मानों सिक्कों के मैल को बहाने वाली नालियाँ थे ।"[1] इस प्रकार औद्योगीक विकास के साथ साथ नगरों में दुर्व्यसनों तथा अपराधों में वृद्धि होने लगी । केशों के भाई पुरुषोत्तम की हालत बिल्कुल खराब हो चुकी थी । दुर्व्यसनों के कारण बुरी तरह से उसका स्वास्थ्य खराब हो गया था । "पुरुषोत्तम की भी कोई जिन्दगी थी ? जिसमें काया घिस चुकी थी । अफीम के सहारे किसी तरह चल रही थी गाड़ी ।"[2]

कुछ लोग चोरी चकारी भी करने लगते है कारण यह कि जिनके पास मजदूरी के पैसे मौज मस्ती में खर्च हो जाते है वे लोग अन्य खर्च के लिए चोरी करने लगते है और अपने इस कार्य का समर्थन भी करते है । मांगीराम उज्जैन में एक गुजराती महिला के हाथों से पर्स छुरा लेता है । और शहर के बारे में केशो को समझाता हुआ कहता है -"गावदू । ये शहर है शहर । यहाँ सब कुछ जायज है । यहाँ पढ़े लिखे जेंटलमैन लोग भी यही धंधा करते है । सुना है जेबें काटते है ।"[3] इस प्रकार औद्योगीकरण से जो आर्थिक विषमता उत्पन्न होती है उसके कारण मजदूरों में अपराध करने की भावना जाग उठती है ।

मजदूरों का जीवन वास्तव में दुर्बल होता है । न रहने के लिए आवास होता है न बच्चों के लिए स्कूल । रोज - रोज जीवन संकट स्थिति से गुजरता रहता है । कितने ही युनियन या मजदूर संघ आते है । मजदूरों का भाग्य सुधारने का वादा करते है किन्तु मजदूर संघ के नेताओं का वो

- -

1. साँचा - पृ. 54

2. साँचा - पृ. 63

3. साँचा - पृ. 23

भाग्य खुलता है , मगर मजदूर जहाँ का वहीं रह जाता है । वहीं गंदी बस्ती वहीं अंधकारयुक्त झोंपड़ी । "पर वह जो अपनी जिन्दगी बराकर गंदी चालों में टीन की छतों के नीचे, बदबूदार नालियों के पास सीलन भरी, अंधेरी कोठरियों में पीढ़ी दर पीढ़ी बिताते जाते थे - या कहें कि जिन्दगी को किसी तरह मरियल कुत्ते की तरह घिसट रहे थे - उनका सच्चा हिमायती कौन था ? सब ही आठ आठ आंसू बहाते थे । कितनी ऊँची मानवता की बातें करतेथे । पर मनोहर बराबर देख रहा था कि एक यूनियन जो सन 35 में थी उसकी सन 47 तक आते-आते चार यूनियन हो गयी थी - लाल झंडा अलग था, सोशलिस्ट अलग थे । नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस अलग थी, बालेशेविक रिवोल्यूशनरी पार्टी और भी और .... न जाने कितनी क्या यूनियनें थीं । मजदूरों की एकता के नामपर वह छोटी छोटी सबाज मोत , सभाएं और एकताएं उसी बड़ी एकता को खंडित कर रहे थे । तिल तिल तोड़ रहे थे ।"[1]

नगरीकरण की प्रक्रिया आरंभ होने से सामाजिक व्यवस्था में अनेक परिवर्तन आने लगे । इन परिवर्तनों में से एक है संयुक्त परिवार का विघटन । पहले गांव में कुटीर उद्योग हो या कृषि घर के सभी लोग मिलकर किया करते थे । आमदनी पर घर के मालिक या स्वामी जो अक्सर परिवार का बुजुर्ग व्यक्ति हुआ करता था, के हाथों रहता था । किन्तु जब परिवार के लोग घर से बाहर अर्थात शहर जा कर कमाने लगे तो स्वार्थ की भावना उत्पन्न होने लगी और परिवार में फूट के बीज पड़ने लगें । डा० रघुराज गुप्त ठीक इसी बात की ओर इंगित करते हुए लिखते है कि -"आधुनिक प्रभावों और प्रवृत्तियों के आगमन से पहले भारतीय ग्राम परिवारों का रूप प्रायः संयुक्त ही था । सभी भाई

- -

1. सांचा - पृ: 86 - 87

और निकट संबंधी मिलकर एक सम्मिलित परिवार में रहते हैं । प्रत्येक सदस्य अपनी योग्यतानुसार कार्य करता था और उनमें से प्रत्येक को अपनी आवश्यकतानुसार सुविधाएं प्राप्त होती थी । इस प्रकार सम्पत्ति पर संयुक्त स्वामित्व था । व्यक्तिवादी विचारधाराओं, उद्योगीकरण और परिणामतः नगरों की ओर निष्क्रमण, पूर्वकालीन संयुक्त और बृहद परिवार व्यवस्था पर आघात कर रहे हैं ।"[1] डा० प्रभाकर माचवे ने इसी समस्या की ओर इंगित करते हुए "साँचा" उपन्यास में केशो के परिवार का विघटित होता हुआ है बताया है - "केशो के छः भाई और चार बहनें थी और जब तक वह सबसे छोटा लड़का केशो सयाना हुआ तो उसकी किस्मत में गाय - भैंसें और रेवड़ चराना ही बाकी था। घर की हालत बहुत खस्ता हो चुकी थी। एक भाई सन 14 की लड़ाई में परदेश चले गये थे । और लौटकर आये तो फूट के बीज साथ में ले आये । अब उनसे देहात में रहा नहीं जाता था । यों पुश्तैनी खेत बिके । बैल बिके । मकान के भी टुकड़े-टुकड़े हो गये ।"[2]

औद्योगीकरण के कारण देश में नये आर्थिक ढांचे का निर्माण होने लगा और इस कारण सामाजिक व्यवस्था में भी बदलाव आने लगा । गाँवों का महत्व घटने लगा और नये नये नगरों का निर्माण होने लगा । नगरों में औद्योगिक विकास का परिणामही यह सब है । वस्तुतः "सामुदायिक जीवन के विकास में नगरों का उदय काफी बाद की घटना है । जिस प्रकार कृषि के प्रारंभ होने के साथ ग्रामों का बसना शुरू हुआ उसी प्रकार उद्योग खाद्य वस्तुओं तथा पक्के माल को ले जाने की सुविधाओं के बढ़ने परिणामतः व्यापार की उन्नति और वृद्धि के साथ नगरों का उदय

- -

1. डा० रघुराज गुप्त - भारत में सामाजिक कल्याण और सुरक्षा - पृ. 198
2. साँचा - पृ. 12

हुआ । नगर दस्तकारों की वस्तुओं के निर्माण और क्रय विक्रय तथा खाद्य पदार्थों के क्रय विक्रय के केन्द्र बने इस प्रकार उन स्थानों पर जहाँ यातायात की सुविधाएं थीं वस्तुओं की पर्याप्त माँग थी अथवा आसपास कच्चे माल के मिलने की पर्याप्त सुविधाएं थीं, अथवा जहाँ राजधानियाँ थीं, छोटे छोटे नगर बन गये । वह स्थान और बन्दरगाह जहाँ से माल देश देशान्तरों को भेजा जाता था बड़े व्यापारिक नगरों के रूप में विकसित हो गये । इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की वस्तुएं बनाने वाले उत्पादन केन्द्र औद्योगिक नगरों में विकसित हो गये ।"[1]

औद्योगिकरण के कारण नगरों में जीविका के नये रास्ते निकल आये जिस कारण ग्रामीण जनता में जीविका के प्रति एक नयी आशा जागी और वे अपने जीवन निर्वाह हेतु नगरों की ओर निकल पड़े । इस कारण भारतीय गाँव शिथिल पड़ने लगे और नगरों में औद्योगिक सफलता के कारण बाढ़ सी जनता आकर बसने लगी । इस प्रकार गाँव शिथिल पड़ने का मूल भूत कारण औद्योगीकरण के द्वारा कुटी उद्योगों को पूरी तरह से तबाह करना है । "बड़े - बड़े औद्योगिक संस्थानों ने भी उन सभी उत्पाद का उत्पादन प्रारंभ कर दिया जो परम्परागत रूप से अधिकाधिक कुटीर उद्योगों द्वारा उत्पादित होते थे और इन वृहद औद्योगिक प्रतिष्ठानों में बड़े पैमाने पर उत्पादन के परिणाम स्वरूप वस्तुओं का मूल्य कम होता है साथ ही प्रचार के विभिन्न माध्यमों तथा अन्य कारकों द्वारा बड़े-बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठान, अपने उत्पाद का बाजार

- -

1. डा० रघुराज गुप्त - भारत में समाज कल्याण और सुरक्षा - पृ.250

में एकाधिकार स्थापित कर लेते है ।"[1] अत: गाँवों की आवश्यकताओं को पूर्ति करने वाले कुटीर उद्योग एक दम ठप्प पड़ गये । कारीगर बेकार हो गये । उनकी जीविका दुर्लभ हो गयी । इस कारण विवश होकर गाँव के कारीगर किसान, मजदूर जीविका कमाने शहर के गिरफ्त में आने लगे । इसके फलस्वरूप शहरों में अनेक जटिल समस्याएं उत्पन्न होने लगे । शहरी मनुष्य व्यस्तता में रहने लगा । "धूप" उपन्यास में डा० माचवे जी लिखते है -"शहर में आपको कदम कदम पर पंखों, वाहनों से बचना पड़ता है । आसमान की ओर देखने की फुरसत किसे है ? सिनेमा में या चित्रशालाओं में चटख रंगों की शाम देकर शहरी लोग "हाय - हाय" करते है - ओह, क्या आसमान है । उनके लिए आकाश एक अमूर्त शब्द है ।"[2]

वस्तुत: शहरी व्यक्ति अपने जीवन को यांत्रिकता में बदल दिया है ।इसका कारण यह है कि शहर में आवासीय समस्या, पेय जल समस्या, रोजगार की समस्या आदि से मनुष्य ऊब गया है ।

इन समस्याओं के अतिरिक्त एक बड़ी संख्या में जनता के नगरों में आकर बसने के कारण नगरों की नयी नयी समस्याएं उत्पन्न होने लगी । इन समस्याओं से जूझता हुआ ग्रामीण मजदूर मिलों में काम करने लगा अपना श्रम बेचने लगा । कुछ पैसे कमाने लगा ।इसी पैसे कमाने की आकर्षण चुम्बक जैसे ग्रामीण जनता को नगरों की ओर खींचती है । जिसके कारण धन के मोह में जीविका के सहारे के लिए ग्रामीण मजदूर नगरों में आने लगे है ।

- -

1. डा० वीरेन्द्र प्रताप सिंह एवं डा० रवि प्रकाश पाण्डेय -समकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति - पृ. 43

2. धूप पृ. 96

औद्योगिकरण के इस प्रभाव को डा० माचवे ने अपने उपन्यासों में यथार्थ के साथ सुन्दर चित्रण किया है। "साँचा" उपन्यास में "केशोराम" नामक एक देहाती किसान जिसके पास न खेत है और न बैल है, अपने मित्र मंगीराम की सलाह पर मिल में काम करने हेतु नगर के लिए निकल पड़ता है। उस किसान "केशो" को यह नहीं मालूम की शहर में कितने समस्याएं होते है और वहाँ पर रहना कितना मुश्किल है। किन्तु उसे उस मिल का आकर्षण, जो धन कमाने का केन्द्र है, शहर की ओर खींचता है और वह शहर जाने निकल पड़ता है। उसे हमेशा शहर की ही याद आती रहती है और उसी के दिवास्वप्न देखने लगता है -"तब उसके मन में कितने सपने थे। कितनी बड़ी बड़ी उम्मीदें। कितने बड़े-बड़े इरादे। शहर के बारे में जो कुछ सुन रखा था वह "अरब की रातों से" कम जादू भरा और दिलचस्प नहीं था। वह मसलन उसने दोस्त मंगीराम से यह सुना था कि शहर में ऐसी एक कल होती है कि उसको जरा सा घुमा दो, तो उसमें से जो चाहिए वह चीज गिर पड़े। बिस्कुट चाहिए हो तो बिस्कुट, पान चाहिए हों तो पान, नोट चाहिए हो तो नोट।"[1] इस प्रकार अबोध ग्रामीण शहर के बारे में आकर्षक बातें सुन सुनकर चकित हो जाता है। केशो शहर जाने का निश्चय लेता है। उसको रेल में बैठने का यह दूसरा या तीसरा मौका था। वह रेल से प्रत्येक दृश्य को देखकर आश्चर्यचकित होता था। जब रात हो गई, बहुत कोशिश करने पर भी नींद नहीं आई। "उसकी आँखों के सामने शहर तैर रहा था। जादू का देश बनकर। नागकन्याएं - राजकन्याएं पन्ने के और मूंगी के राजा - अशर्फियों के ढेर के ढेर सोने की थाली - चाँदी की धोती और मखमल की पाग पहने वह घोड़े पर बैठा ऐसी ही मूंछों को मरोड़े दिये जा रहा है

- -

1. साँचा - डा० प्रभाकर माचवे - पृ. 11

जैसे कहानियों में डाकू धर्मसिंह की सुनी थी - और फिर दृश्य बदलकर एक सफेदपोश बाबुआ जिन्दगी का नक्शा सामने खिंच जाता - वह शहर से गाँव को लौट रहा है - एक बड़ी सी गुड़िया चम्पा के लिए लाया है । जसमन्ती (पत्नी को) मुट्ठी बंद करके पूछता है - बूझो, तेरे लिए क्या लाया हूँगा ? x x x शहर में मिलने वाली सुन्दर होने की दवा थी x x x - और गाँव भर में बड़ा रोब है । अब केशो निरे केशो नहीं रहे, अब बाकायदा श्री केशवराम बनकर बम्बई हवा लगाकर शहर से लौटे हैं । कपड़ों में भी कलफ लग गया है, कुर्ता नये काट का है और अब अगले ही बरस सपरिवार शहर जाने वाले हैं....".[1] इस प्रकार शहर के प्रति केशो जैसे ग्रामीणों में एक प्रकार का मोह और आकर्षण उत्पन्न होता है और कुछ कमाकर जीवन में अपने कष्टों को दूर करके एक स्तरीय व्यक्ति बनना चाहते हैं । किन्तु जब शहर जाते हैं वहाँ की विकराल परिस्थितियाँ इन्हें वहाँ रहने नहीं देती । या तो वहीं जीवन से संघर्ष करते हुए घुट घुट कर मरना होता है या फिर जीवन के संघर्ष में पराजित सा होकर गाँव की ओर पलायन करना होता है ।

शहरों में अनेक प्रकार के कामों पर विभिन्न प्रान्तों से लोग आते रहते हैं । वे यहाँ आकर शहर की रौनक देखकर दंग हो जाते हैं । डॉ0 प्रभाकर माचवे का प्रथम उपन्यास "परन्तु" की नायिका "हेमा" भी ऐसे ही शहर को देखकर चकित होती है । हेम अविनाश को ढूँढने कलकत्ता को अपने मामा के साथ आती है । तो वह कलकत्ते के सड़कों, यहाँ के दुकानों आदि को देखकर मैं दंग हो जाती है । एक अबोध कन्या की तरह उत्साह से इधर उधर देख रही थी । उनके "मन पर कलकत्ते का

- -

1. साँचा - पृ. 15 - 16

पहला असर बहुत अच्छा हुआ जैसे बच्चे को कोई नया खिलौना मिल गया हो, जो ऊपर से रंगीन हो और वह न जानता हो कि उसके भीतर कितना खोखलापन है ।"[1]

इस प्रकार नगर के खोखलेपन की किसी को परवाह नहीं । सभी लोग उसके चमक दमक को देखकर आकर्षित हो जाते है । इसी कारण आज गाँवों में युवक कम रह पा रहे है और शहरों की ओर जाने की होड़ सी लग गई है । औद्योगीकरण की सभ्यता ने इस प्रकार प्रशान्त, सुदृढ़ ग्रामीण वातावरण को एकदम विचलित कर दिया है ।

जहाँ पर कारखाने लगते है वहाँ पर रोजी रोटी कमाने हाथ में पेट लेकर गाँव गाँव से मजदूर आते है । कारखानों में काम करने लगते है किन्तु उनको रहने के लिए न अच्छा घर होता है, न स्वास्थ्य के लिए अच्छा अस्पताल । इस कारण वे दिन-दिन घुट घुट कर मरते रहते है । "साँचा" उपन्यास में भी केशो का हाल ऐसा ही था । "केशो मिल के यांत्रिक जीवन से ऊब गया था उसे इंदौर का पानी बुरा लगता था । खाना बुरा लगता था । हर चीज में जैसे एक नकलीपन था । मिलावट और बनावटीपन । उसको भूख कम लगने लगी । उसका स्वास्थ्य गिरने लगा । जिस परिवार के लिए वह यह सब कुछ कर रहा था - उससे बरसों में भेंट नहीं होती । जसमन्ती (पत्नी) में अलग दुःखी थी । उसको जचगी के समय से ही पेट का ऐसा विकार हो गया था कि अच्छा नहीं होता था । तिस पर घर का सारा काम-काज । उसकी सेहत गिरती जा रही थी । आखिरी खबर दे जाने की बात उसने लिखी थी ।"[2] इस

- -

1. परन्तु - पृ. 69

2. साँचा - पृ. 82

प्रकार मजदूर दोनों ओर से दुखी है । वह स्वयं दुखी है और दूसरी ओर उसके घर है पत्नी अनेक समस्याओं से दुःखी है । गाँव से वह शहर इसलिए आया था कि कारखाने में कुछ मिल सके जिससे आमदनी अच्छी होगी और परिवार सुखी से रहेगा । इस प्रकार सोचकर आये मजदूर की शांति को छीनकर उसे अशांत और विचलित, बेचैनी कर दिया गया। मजदूर की हालत ठीक करने की वादे कितने ही नेता दे चुके हैं । मगर मजदूर की जिन्दगी जैसी की वैसी ही है । वे "मिल में काम करते करते जब ऊब गये थे। कभी इस यूनियन वाला उन्हें बनाता था, कभी उस संघ वाले को चंदा देना पड़ता । हालत ज्यों की त्यों रहता ही । नेता लोग आते । व्याख्यान देकर चले जाते । फूलमाला, पेम्फ्लेट, शब्द, शब्द····बाढ़ की तरह सेनिकल जाते । मजदूरों की दुनियाँ उसी तरह ठंडा पीटता रहता । मजदूर औरतों की अस्मतें पान की पीक की तरह सुबह शाम सड़कों पर कलंकवती बनती, मजदूरों के बच्चे उसी तरह बिना दवा दारू के मर जाते ।"[1] इस प्रकार कारखानों में काम कर रहे मजदूरों का जीवन बहुत ही हृदय विदारक है ।

वस्तुतः वर्तमान युग में औद्योगिक सभ्यता का विकास मजदूरों के शोषण के आधार पर चल रहा है । मजदूर पिसता जा रहा है और पूँजीपति लाभ कमाते जा रहे हैं । पूँजीपति ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाने के प्रयत्न में रहता है । यदि औद्योगिक विकास और अधिक हो गया तो संसार कैसा होगा । इसकी कल्पना डा० माचवे जी "धुंध" उपन्यास में इस प्रकार करते हैं - "वहाँ पर "यंत्रों के सहारे बहुत छोटे बच्चों की ही शरीर और बुद्धि की परीक्षा ले ली जाती थी। उन्हें आगे

- -

1. साँचा - पृ. 62

चलकर देश के किस काम में हाथ बंटाना है । यह निश्चित कर दिया जाता था । अब तो व्यापक गर्भ निरोध से कोई बच्चा पैदा होने की बात ही नहीं थी । पर गई पीढ़ी तक यह नियम था कि बच्चे की बहुत बचपन से कड़ी जांच और परीक्षा होती थी । उसमें कहीं कोई इस्पात विरोधी व्यतिक्रम (हीविकार) दिखाई देता था, तो उस बच्चे को जलावतन कर देते थे । जलावतन यानी माता-पिता सहित देश निकाला । बेचारे गई पीढ़ी के कई माँ-बाप यों अज्ञातवास कर रहे थे। चौदह बरस तक उनके बच्चे फौज में काम करने लायक तो हो ही जाते थे ।"[1]

5.2. आर्थिक परिस्थिति पर औद्योगीकरण का प्रभाव :

औद्योगीकरण के कारण देश की आर्थिक परिस्थितियों में अनेक मूलभूत परिवर्तन हुआ है । सबसे प्रमुख परिवर्तन यह हुआ है कि भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था जो कुटीर उद्योग और कृषि पर निर्भर थी, उसमें कुटीर उद्योगों का नाश होने के कारण उद्योग पर आधारित नगरीय अर्थव्यवस्था का निर्माण होने लगा । इस के फलस्वरूप गाँव वासी जीविका हेतु गाँवों को छोड़कर नगरों की ओर प्रस्थान करने लगे । इस प्रकार भारतीय सामंती व्यवस्था क्रमशः पूंजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत परिवर्तित होने लगा । शहरों में पूंजीपति कल-कारखानों का निर्माण करते है और गरीब श्रमिक उसमें अपना श्रम बेच कर जीविका की रोजी रोटी कमाते है । इस तरह से औद्योगीकरण के कारण समाज में नये रूप से वर्ग विभाजन हुआ एक पूंजीपति वर्ग, दूसरा मजदूर वर्ग । "विश्व में पूंजीवाद को

---

1. "धुन्ध"- पृ. 128

सामाजिक एवं राजनीतिक अर्थों में जन्म देने का श्रेय औद्योगीकरण को है। औद्योगीकरण ने जहाँ एक ओर गरीबी दूर की, रोजगार के अवसर बढ़ाए पुराने और सड़े गले जीवन मुल्यों और शैलियों के स्थान पर नवीन मुल्य और जीवन शैलियाँ दी, वहीं ऐसे साधनों का विकास भी किया जिनके कारण वे सारी बुराइयाँ उत्पन्न हुई और बढ़ी जिन्हें दूर करना औद्योगीकरण का अभीष्ट था।"[1]

डॉ० प्रभाकर माचवे ने अपने उपन्यास "साँचा" में श्रमिकों के शोषण की प्रक्रिया को बहुत ही स्पष्ट रूप से चित्रित किया है। माँगीराम केशो से कहता है कि अब धार्मिक विश्वासों को त्याग दो भगवान या अन्य कोई शक्ति हमें रोटी नहीं देगी। वह कहता है --"भगवान कोई मदद नहीं करते। हमें तो इन्दौर में चलकर पन्नालाल मिल के भगवान से मिलना है। वही हमारा रोटी देने वाला है। तुम अब अपने महाकाल और गणेश जी भूल जाओ। इनसे निकम्मे पंडों तक को रोजी नहीं मिलती, वे भी अब कहीं किसी राजा महाराजा के यहाँ कुंडलियाँ देखते फिरते है, हाथ बाँचते हैं।"[2] इस प्रकार औद्योगीकरण के प्रभाव के कारण धार्मिक भावनाओं पर से विश्वास उठ गया है। प्रत्येक व्यक्ति को रोजी रोटी की तलाश में संघर्ष करना पड़ रहा है। प्रत्येक ग्रामीण को औद्योगिक प्रभाव के कारण रोजी रोटी के लिए शहर की ओर विवशता के साथ जाना पड़ रहा है। "इस मशीन स्पीटेम्टेलस का आकर्षण प्रबल है। इस मोहिनी ने कई मानवों को भीमातुर बना दिया। केशों भी बड़े शहर इन्दौर की ओर खिंचता हुआ जा रहा है। जहाँ दर्जनों मिले है। हजारों मजदूर है जहाँ पैसा श्रम में से यों झरता है, जैसे

---

1. डॉ० श्रीचन्द्र सिंह :आधुनिक हिंदी उपन्यास साहित्य में चित्रित समस्याएं - पृ० 12
2. साँचा - पृ० 30

प्राकृतिक क्रिया हो ।"[1] किन्तु वहाँ पर भी जाते ही मिल में मजदूरों को काम नहीं मिलता । वहाँ बिचौलियों को पैसे देना पड़ता है ।वहाँ भी भगवान बाबर की चाँदी की दक्षिणा चढ़ाए बिना नौकरी छोड़े ही मिलती है ।"[2] इस प्रकार मजदूर का मिल में दोहरा शोषण होता है । एक ओर से तो श्रम का मूल्य कम मिलता है । दूसरी ओर से बीच के दलाल मजदूर के श्रम का पैसा हड़प लेते हैं । इस प्रकार मजदूर आर्थिक शोषण के चक्की में पिसता जाता है । न इसकी मदद सरकार करती है और न ही मजदूर संघ । यह स्थिति केवल मिल या कारखाने में ही नहीं है । ऐसी शोषण वृत्ति अन्य जगह पर भी है । साहित्यिक क्षेत्र भी पूँजीपतियों के कब्जे में है । उनके मन बहलाने के लिए साहित्य की रचना होती है ।इस प्रकार मजदूर और कवि में कोई अंतर नहीं रह गया है । एक शारीरिक श्रम बेचता है तो दूसरा बौद्धिक श्रम । डा० माचवे जी कहते है - "जो गाढ़ा पसीना किसीकाले मिट्टी के खेत में कपास और गेहूँ उगाता - आज मशीनाय स्वाहा होने जा रहा था । जो कविता कभी वाल्मीकि के अश्रु आँसुओं से उसके पापी मन को धोती थी, वह आज पण्य बन चुकी थी - एक अत्यन्त हेय मुद्रा में बैठी हुई घिघियाती दीन भिखारिणी ।"[3]

मनोहर के माध्यम से डा० माचवे कहना चाहते हैं कि गांधी जी के विचार आज किसीको भी प्रभावित नहीं कर रहे है । गांधी जी गरीबी मिटाने के लिए धनवानों में हृदय परिवर्तन अस्वीमानते हैं है ।

- -

1• व 2• साँचा - पृ• 31

3• साँचा - पृ• 39

वह आज संभव नहीं है । मनोहर सोचता है --"इस प्रकार से भला कभी अमीरों का हृदय परिवर्तन हुआ है ? मनुष्य एकबार पैसा कमाने के चक्कर में एकदम सांचे की तरह यांत्रिक भाव से काम करता है । वह भला कभी बदल सकता है । परिवर्तन तो तब हो जब इसमें हृदय के तत्व बचे हों । बार बार मनोहर इसी दुविधा के सामने आकर टकराता था कि मनुष्य की मनुष्यता इस स्वार्थ यंत्र की विराट भट्टी में झुलसकर जो भस्मप्राय हो गई है, उनमें कहाँ से हरकत फिर से पैदा की जा सकती है ।"1

शोषण की चक्की में पिसते चले जाना ही मजदूर का काम है । उसकी आशा और आकांक्षा का कोई मूल्य नहीं है । उस काम पसंद आया या न आया । इससे कोई संबंध नहीं । यदि मजदूर को काम चाहिए पैसे चाहिए तो मशीन में काम करना आवश्यक है । मजदूर एक तुच्छ प्राणी है । उसका शोषण रोज होता ही रहता है । इस विचार को डॉ० माचे जी ने "सांचा" उपन्यास में केशो के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान किया है । "पहले ही दिन केशो इस महा सांचे की माया से आतंकित हो गया । उसकी तो जैसे बोलती बंद हो गई । यह नया काम कोई खास उसे पसंद नहीं आया । पर पसंद आना न आना गौण बात थी, मुख्य बात थी महावार मिलने वाले निश्चित पगार के सिक्के । सांचा...आदमी....सिक्के । यह सीधा अंकगणित था । दो बड़े यंत्रों के बीच में आदमी बहुत छोटी सी क्षुद्र चीज थी । उसकी इच्छा आकांक्षा के कोई माने नहीं है- अब हम कुछ राजा जनक के जमाने के रामराज में थोड़े ही रहते हैं । इस्पात युग मे रहते हैं । यहाँ आदमीका हृदय सम्राट वाल्मीकि या तान सेन नहीं - आदमी के हृदय पर एक छत्र

- -

1. सांचा - पृ. 43

साम्राज्य शक्ति का है ।"[1]

मिल मालिकों की शोषण प्रवृत्ति को उजागर करते हुए माचवे जी ने "सांचा" उपन्यास में केशो का चरित्र चित्रण किया है । मिल में मजदूरों का शोषण निरंतर होता था । उनके वेतन मेंकोई वृद्धि नहीं होती थी । इसी का उल्लेख डा० माचवे जी करते हैं -"दस बरस बहुत असा होता है । केशो ने जिस मिल में जिस तनखा पर काम शुरु किया था दस बरस में वह चींटी की तरह आगे रेंगा था कोई तरक्की उसने नहीं की थी । इस बीच में महंगाई बढ़ी थी और मिल में हड़तालें भीज्यादा होने लगी थी जिनमें केशो के आगे बढ़ बढ़कर हिस्सा लिया था ।"[2] स्पष्ट है जब जीवन में आर्थिक सुधार नहीं होता तो मनुष्य निराश हो जाता है । वह कुण्ठाग्रस्त होजाता है । अनेक समस्याओं में उलझ जाता है ।इसलिए मजदूर को उसके श्रम का ठीक वेतन या मुल्यमिलना चाहिए ।

कुछ व्यापारी वर्ग भी ऐसे होते है कि जनता की शोषण करने के नये नये तरीके ढूंढते रहते है । "सांचा" उपन्यास में अहमदाबाद के व्यापारियों के संबंध में माचवे जी लिखते हैं कि वे सोचते रहते हैं कि तीसरा विश्व युद्ध कब शुरु होगा और परिस्थितियां कब विकट होगी जिसके कारण अपना व्यापार जोरों से चल सके । माचवे जीलिखते हैं - "शीघ्र श्रीमंत व्यापारी वर्ग बड़ी ताक लगाये था कि तीसरा युद्ध बाहर विलायत में कब शुरु हो, और इसीलिए गत युद्ध में मुनाफा कमाने की जिन्हें चाट पड़ गई थी, वे तीसरे महासागर की खबरें उड़ा - उड़ा कर हारे ।

- -

1. सांचा - पृ: 55
2. सांचा - पृ. 99

जब बाहर युद्ध होता नहीं दीखा, तो देश में ही शुरू करा दिया, जितनी अस्थिर परिस्थितियाँ होंगी – चीजें मनमाने दामों पर बिकेंगी । मुनाफा-खोर मजे में रहेगा ।"[1]

5.3. राजनैतिक परिस्थिति पर औद्योगीकरण का प्रभाव :

औद्योगीकरण से देश के राजनैतिक परिस्थितियों पर काफी प्रभाव पड़ रहा है । विशेषतः नगरों व शहरों में राजनीतिक गतिविधियाँ अधिक सतर्क थी । पाश्चात्य विचार धाराओं को अपनाना भी इस के पीछे का एक कारण हो सकता है । मिल तथा कारखानों में मजदूर के समस्याओं को मिल मालिकों तक पहुँचाने के लिए तथा उन समस्याओं का हल करने के लिए मजदूर संघों की स्थापना होने लगी । 27 अक्तूबर सन 1905 को 10 शिव नारायनदास लेन में प्रेस श्रमिकों की एक सभा हुई । यहीं पर वक्तव्य प्रकट किया गया कि 21-10-1905 को "बंगाल प्रेस वर्कर्स यूनियन" के नाम से देश की प्रथम ट्रेड यूनियन की स्थापना की जा चुकी है ।"[2] इसके बाद भारत में कई मजदूर संगठनों ने अपने-अपने मिलों या कारखानों में हड़तालें आदि करने लगे थे किन्तु कहीं पर भी व्यवस्थित यूनियन का निर्माण अभी नहीं हो पाया था । "मद्रास लेबर यूनियन की स्थापना 1918 में बी.पी. वाडिया ने की । यह यूनियन भारतीय ट्रेड यूनियन आंदोलन का प्रारंभिक बिन्दु मानी जाती है । संभवतः इस धारणा का आधार यह है कि यह आधुनिक सुव्यवस्थित ट्रेड यूनियन संगठन का प्रथम प्रयास था ।"[2] 1920 ई.वी. क में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना हुई । इसके पश्चात देश में

---

1. सुकोमल सेन – भारत का मजदूर आंदोलन – पृ. 31
2. –वही– पृ. 52

अनेक मजदूर संघों की स्थापना हुई । मजदूर यूनियनों की स्थापना होने से औद्योगिक क्षेत्रों में काम कर रहे श्रमिकों की सभी समस्याओं का हल तो नहीं कुछ समस्याओं का समाधान निकल आया । जैसे महंगाई के अनुसार वेतन वृद्धि, काम के घंटे कमकरना । बोनस देना आदि । इस प्रकार यूनियनों से मजदूरों के अधिकारों की रक्षा करने हेतु भरसक प्रयास करने लगे । किन्तुकुछ यूनियन के नेता ऐसे भी थे जो अपने स्वार्थ के लिए मजदूरों का उपयोग करते थे । मिल मालिकों से अच्छे संबंध अपने स्वार्थ के लिए रखते थे । डा० प्रभाकर माचवे जी जो अनेक साल तक मजदूरों के साथ रहे और यूनियनों की गतिविधियों पर नजर रखे हुए थे, अपने यूनियन नेता जो स्वार्थी और भ्रष्टाचारी है उनका भंडा फोड़ा है । अपने उपन्यासों में इनका चरित्र उजागर किया है । स्वार्थी और भ्रष्टाचारी मजदूर नेताओं के कारण ग्रामीण गरीब मजदूर कितने यातनाओं का शिकार होता है "साँचा" उपन्यास में उन्होंने यथार्थ के साथ चित्रित किया है ।

केशो जो ग्रामीण प्रान्त से मजदूरी करने इन्दौर आता है । वह एक मिल में काम करता है । काम के पहले ही दिन जब वह शाम को काम से लौटने लगता है तो कुछ व्यक्ति उसे रोककर एक फार्म देते हैं और कहते हैं कि तुम्हें यूनियन का मेंबर बनना चाहिए । केशो को जो पढ़ा लिखा नहीं है, कुछ समझ में नहीं आता । वे कहने पर चार आने देकर पीछा छुड़वा लेना चाहता है । वे लोग चार आने लेकर वहीं उसे एक लेक्चर देने लगते हैं — "आज से तुम हमारी लाल झंडेवाली यूनियन के मेम्बर बने । तुम जानते हो - लाल झंडा ही दुनिया के मजदूरों को मुक्ति देने वाला है । बाकी सब जितनी मजदूरों की जमाते हैं देशद्रोही

हैं, गद्दार हैं, पूंजीपतियों से मिली हुई हैं ।"[1] इस प्रकार मजदूर यूनियनें मजदूरों को बातों में फुसलाकर उन्हें अपने स्वार्थों के लिए उपयोग कर लेती है । उनका शोषण करते हैं । मजदूर नेता भी ऐसे होते है कि वे अपना स्वार्थ ही सिद्ध करते है । वे ऐसे ऐसे भाषण देते है कि अबोध मजदूर समझ लेता है कि वे अपने हित में काम कर रहे है । वास्तव में मजदूर नेता स्वयं के हित का ध्यान अक्सर रखते है । केशो जिस मिल में काम कर रहा था । एक बार उसमें एक दुर्घटना हुई । चलते हुए सांचे में एक मजदूर की बांह आ गई और बांह कंधे से अलग हो गयी । इसी बहाने को लेकर एक कर्ी के मजदूर यूनियन ने हड़ताल शुरू कर दी । "देखते देखते मिल के फाटक के बाहर कामरेड बाबूराय ने एक सभा ले ली । बड़े गर्मागर्म भाषण हुए । पर यह सब जोश उस मौके लिये तो तपते लोह को पीटने की तरह लाल झंडे वालों नेअपने काम में लाने के हिसाब से जमा किया ।"[2] किन्तु इस लाल झंडे वाले मजदूर यूनियन से उस दुर्घटना ग्रस्त मजदूर को कुछ भी फायदा न हो सका । तब मनोहर जो भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन काँग्रेस नेता है वे उस मजदूर को "कम्पेन्सेशन" दिलवाया मोकाके में कई सौ रुपये इलाज के लिये और उपर से माहवार रकम बंधी हुई मिली ।"[3]

स्वार्थी नेता किस प्रकार दलबदल करते हैं माचवे जी ने मजदूर नेताओं को उदाहरण स्वरूप दर्शाया है । माचवे जी कहना चाहते हैं कि इन नेताओं को विचार धारा मुख्य नहीं है, मुख्य तो उनका अपना

- -

1. सांचा - पृ. 56
2. सांचा - पृ. 58
3. सांचा - पृ. 58

स्वाई है । "साँचा" उपन्यास में ऐसे ही एक नेता का चरित्र चित्रण करते हैं - "जैसे यह किस्सा सुनने में आया था कि कामरेड सामंत जो पहले राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कट्टर गुप्त कार्यकर्ता थे एक जगह एक श्रीमती केळकर के घर में ट्यूशन करने जाते थे - धीरे धीरे वहाँ प्रेम बढ़ा कि श्रीमती केळकर अपने बच्चों [पति को छोड़कर अलग आ गई।] और लाल झंडे वाले दफ्तर में शरण पाई । यहाँ यह नहीं सुझाया जा रहा है कि लाल झंडे वालों का लड़कियों को फुसलाने या भगाने का ऐसा कोई सोशल फ्रंट पर प्रोग्राम था । पर यह चिन्ह है कि कामरेड सामंत का घोर मत-परिवर्तन हो गया । वे कट्टर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघी से कट्टर कम्युनिस्ट बन गये । एक मताग्रह से वे दूसरे मताग्रह तक पहुँच कट्टरता दोनों तरफ थी । जो उनकी अव्यवस्थित जिन्दगी में बड़ा अच्छा मानसिक सांत्वना का काम करती ।"[1]

डा० माचवे जी कहते है कि जिस प्रकार मशीन मनुष्य को उभरने नहीं देता और उसके व्यक्तित्व को तथा स्वतंत्रता का हनन करता है वैसे ही मजदूर यूनियन या संस्था भी व्यक्ति स्वतंत्रता को नष्ट कर देते हैं । वे कहते हैं --"मजदूर संघ भी एक तरह का साँचा था जैसी और संस्थाएं होती है । व्यक्तित्व वहाँ कुचल कर मिट जाता है, उभरता नहीं । संस्थावाद और व्यक्तिमत्ता का जैसे ३ और ६ का संबंध है, यह कारण है कि हमारे देश में हजारों संस्थाएं कुकुरमुत्तों सी पनपती है - उत्पहोते किसीयन्से व्यक्तित्व यहाँ बहुत थोड़े हैं ।"[2] मजदूरों की भलाई सोचने वाला मनोहर भी यही सोचते रहता है कि राजनीति में स्वार्थ शक्तियाँ बढ़ गयी है । वह अपनी डायरी में लिखता है --"हम जब राजनीति

---

1. साँचा - पृ. 59
2. साँचा - पृ. 80-81

की बात करते है तो उसके छिछलेपन के पीछे कितनी शक्तियां है नहीं जानते । हमारे कितने अवरुद्ध कुंठित भाव क्रांति का नारा बनकर उभरते हैं । वस्तुत: क्रान्ति की बात जब हम करते है तो सबसे अधिक क्रांति हम अपने भीतर करना चाहते हैं ।"[1] इस प्रकार की राजनीति से ऊबकर "मनोहर ने मजदूर संघ छोड़ दिया । वह चुपचाप एक देहाती स्कूल में मास्टर बन गया ।"[2]

मजदूर का कल्याण एवं सुरक्षा चाहने वाली मजदूर यूनियनों ने अपना विकृत रूप धारण करके अपने स्वार्थों के लिए मजदूरों की स्वास्थ्य की भी अवहेलना करनी शुरू कर दी है । इस तथ्य की पराकाष्टा केशो नामक मजदूर की मृत्यु है । केशो का मिलमें काम करते करते स्वास्थ्य बिगड़ गया था । उसे टी.बी. रोग हुआ था । दवा दारू के लिए उसके पास पैसे नहीं थे । यूनियनों से मांगने पर वे आपस में लड़ने लगे थे । जब वक्त आया तो दोनों आपस में लड़ने वाली यूनियनों ने उसकी दवा दारू के लिए पैसे देने से इन्कार कर दिया । एक बोला- वह तो कम्यूनिस्ट था । उसको वैसे ही मर जाना चाहिए । कम्यूनिस्ट यूनियन बोली - हमारे पास क्यों आते है ? गांधी जयंती के दिन वह आई एन टी यू सी में गया था । वहां से आपको मदद मिल जायेगी । धन्ना सेठ उनको खूब पैसे देता है, उनकी यूनियन को ।"[3] इस तरह से विवाद काफी लम्बा चला । "इसी बहस में एक दिन मुफ्त वार्ड में से केशो का शव उसकी पत्नी के हवाले कर दिया गया । शायद मुर्दा फूंकने लायक पैसा मिल वालों ने दे दिया था ।"[4]

- -

1. सांचा - पृ: 83
2. सांचा - पृ: 84
3. सांचा - पृ: 122
4. सांचा - पृ: 122

इस प्रकार मजदूर यूनियनों का असली रूप को पाठक के सामने प्रस्तुत करने में डा० माचवे जी सफल हुए है । लगभग सभी मजदूर संघों का यही उद्घोषणा रहता है कि हम मजदूर के हम दर्दी है उसकी सुरक्षा और उन्नति केलिए हमेशा लड़ते रहते है । किन्तु यथार्थ कुछ और ही है । यूनियन के नेता मजदूर को भलाई या उन्नति के लिए नहीं लड़ते बल्कि अपनी उन्नति के लिए लड़ते है । प्राय: यह भी देखा गया है कि प्रत्येक यूनियन किसी न किसी राजनैतिक पार्टी से सम्बद्ध रहता है । इस प्रकार जहाँ मजदूरों के अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ता है वहाँ पर राजनैतिक मतभेदों के कारण आन्दोलन को बिगाड़ देते है या शांत कर देते है । इस प्रकार कोई भी मजदूर यूनियन सब से पहले अपना स्वार्थ देख लेता है और बाद में मजदूर का । इस का प्रमाण डा० माचवे जी ने "सांचा" उपन्यास में बहुत ही विस्तार के साथ चित्रित किया है जो यथार्थ पर आधारित है ।

5.4. औद्योगीकरण और अमानवीकरण :

औद्योगीकरण के कारण भले ही अनेक लाभ पहुँचे हो किन्तु मनुष्यता का हनन अवश्य हुआ है । इस विषय पर दो मत नहीं हो सकता । औद्योगीकरण के कारण चाहे वह मशीनों के द्वारा हो, चाहे पूंजीपतियों के द्वारा हो या चाहे साम्राज्यवादी शक्तियों के द्वारा हो, मनुष्य का व्यक्तित्व और स्वतंत्रता का नाश हुआ है । मनुष्य अन्य वस्तुओं के समान एक वस्तु बन गया है । मनुष्य के अद्वितीय गुण सहानुभूति दया, ममता, न्याय, सहिष्णुता, परोपकार आदि भावनाओं का इस औद्योगीकरण के कारण पूरी तरह से सफाया हो गया है । मनुष्य में विवेक

ह्रास होना ही सभ्यता का लक्षण जैसा दिखाई पड़ रहा है क्योंकि यदि उसमें विवेक है तो उसमें मानवीय गुण उपस्थित होते हैं । इसलिए यांत्रिक सभ्यता ने मनुष्य के विवेक को ही नष्ट कर दिया है । इस प्रकार अमानवीय प्रवृत्तियों का विकास होने के कारण मनुष्य में इमानदारी भी क्षीण होती गई है । इसके फलस्वरूप मनुष्य का सामाजिक स्तर पर, आर्थिक स्तर पर और राजनीतिक स्तर पर खोखलापन सामने आ रहा है । जब तक मनुष्य केअन्दर स्थित मानवीय गुणों का आदर नहीं होता तब तक मनुष्य का पतन होते जाना निश्चित है ।

डा० माचवे ने अपने उपन्यासों में इन्हीं स्थितियों को उजागर करते हुए स्पष्ट किया है कि यांत्रीकरण ने मनुष्य को अपना कठपुतला बनाया है । वे अपने उपन्यासों में अनेक स्थानों पर और पात्रों के चरित्र चित्रण के आधार पर अमानवीकरण का बोध पाठक को करवाते हैं ।

"धूल" उपन्यास में धर्मराज गाँव में इस्पात कारखाने का निर्माण का विरोध करता है । वह कहता है कि इस्पात कारखाना आने से गाँव में बचा हुआ प्रेम, ममता भी नष्ट हो जायेगा । वह कहता है -"गाँव वालों में जो कुछ बची खुची त्याग भावना है, एक दूसरे के लिए कुछ कर गुजरने की इच्छा है - जब यहाँ एक बड़ा दैत्याकार कारखाना आ जायेगा तब वह भी जाती रहेगी, तब सभी लोग अंधों की तरह एक दूसरे को मारेंगे, एक दूसरे का लहू पियेंगे और उसे सभ्यता कहा जायेगा ।"[1] और कुछ लोग गाँव में इस्पात कारखाना खुलना अभिशाप मानते हैं । "गाँव के जीवन में वे सब बाहर के तत्व आयेंगे, जो प्रदूषण फैलायेंगे । आज जो थोड़ी बहुत एक दूसरे के लिए आत्मीयता की भावना है वह नष्ट हो जायेगी । सब एक दूसरे से अजनबी हो जायेंगे । सबके सब आत्म निर्वासित

- -

1. धूल - पृ० सं०101

से उस अनात्म के पीछे घूमेगी, जो कभी किसी को प्राप्त नहीं हुआ है, होगा ।"[1] इस प्रकार मशीनीकरण होने से प्रेम भावना और आत्मीयता खत्म होने की भावना निरी कल्पना नहीं बल्कि यह यथार्थ है ।

मानवता का ह्रास होना हम यथार्थ दृष्टि से "सांचा" उपन्यास में देख सकते हैं, उस उपन्यास में केशो गांव से शहर को रोजी रोटी कमाने आता है । वह किसी मिल में काम करता रहता है । मगर वह काम उसे पसंद नहीं है फिर भी मजबूरी से करना पड़ रहा है । उसके अपनी गांव की याद आती है । "केशो रात को आसमान में तारे देखते तो घरवाली की याद आती । बच्चे का सोचते । भाई बंदो का सोचते । बस कत गांव में होते तो आनन्द से नीम के नीचे खाट बिछाये पड़े रहते । दूर से कोई गोठे की गाय रंभाती या बैलगाड़ी के बैलों के गले की घंटी बजती ।कोई शोर गुल नहीं और यहां हाल है कि गटर की बदबू, मच्छरों का भिन्नाना और खोल-पटोल की बक-बक में शाम कब निकल जाती है, और रात को तारे भी चांदी के सिक्कों की तरह मुंह चिढ़ाते दूर जाकर बैठे हैं, पता नहीं, तारे है या आशा का उड़ा हुआ भाग है, जो वहां दूर जाकर जम गया है ।"[2] यह अनुभूति तो केशो जैसे आत्मीयभावना जिसके हृदय में संजोये हुए रहता है उनका है । पर जिनके हृदय में ममता न हो, मस्तिष्क में विवेक न हो जो औद्योगीकरण का परिणाम है वे तो मस्त मौला रहेंगे जैसे -- मांगीराम । "वह मौला जीव ठहरे - उनकी एक रात फूलवालों के साथ कटती, तो दूसरी चाहा बाजार में । आज थेटर देख रहे हैं तो कल अ मार ढंटरवाली - छोड़ा बेटा पंजाब का छ - छ - छ - छड़मस्टेट पिक्चर देख रहे है । उनका विवेक मर चुका था । जिन्दगी के सांचे में सुख का रस बराबर निकलता जाता था । गन्ने के बदले हड्डियां पेरी जा रही थी तो क्या ?"[2]

- -

1. सांचा - पृ. 62

2. सांचा - पृ. 62

"धूत" उपन्यास में मशीनीकरण के कारण उत्पन्न अमानवीकरण का शीर्षस्त रूप को प्रस्तुत किया गया है। वैसे, डा० माचवे जी की यह कल्पना मात्र है तो भी यह यथार्थ से दूर नहीं है। जो बाधाएं या यातनाएं मजदूरों को भोगतना पड़ता है। उसके पद्धति में कोई फर्क हो सकता है। "इस्पात नगर" जो अत्याधुनिक औद्योगिक क्षेत्र है जहाँ पर सब कुछ यंत्रों के माध्यम से चलता है। "किसी कारीगर की गलती से बिजली धार बन्द हो गया। और सारी मशीनें रुक गईं। अब तो बड़ी मुसीबत आ गई। आदमी चलना भूल गये थे। सब स्वयंचालित जूते पहनकर उठते, चाहे जितनी तेजी से सरपट भागते थे। अब वह शक्ति का स्रोत ही बन्द हो गया। एक घण्टे भर के लिए ऐसा लगा कि इस्पात नगर अँधेरी खोह में कहीं डूब गया है। वह विराट यंत्र दानव ठण्डा प्रेत बन गया है। ऐसे वक्त उस कारीगर को खोजा गया जिसकी गलती थी। उसे गरम लोहे की भट्टी में, उठाकर फेंक दिया गया। किसी को कोई दुःख नहीं हुआ। एक कील निकल जाने पर या पुरानी पड़ जाने पर उसे फेंक ही देते हैं न। सारे आदमी और सारी औरतें इस्पात नगर के व्यवस्थित चलने के लिए मात्र कीलें थीं। उनसे ज्यादा उनका मूल्य नहीं था।"[1] इस प्रकार औद्योगीकरण सभ्यता में मनुष्य का मूल्य नहीं रहता। उसे कीड़े कीट की तरह अपनी जिन्दगी बिताना पड़ता है।

"साँचा" उपन्यास के मनोहर इसी विषय पर हमेशा सोचता रहता है कि किस प्रकार मजदूरों की जिन्दगी को सुधारा जाये। वह अनेक काम मजदूरों की भलाई के लिए करता है मगर उनमें (मजदूरों) तनिक भी सुधार नहीं आता। उसने मजदूरों के लिए रात की पाठशालाएं अनवरत चलाईं, शराब की दुकानों पर पिकेटिंग की और मजदूरों को कहा कि साहूकारों से चोरी - चुपके से कर्ज मत लो। किन्तु सभी निष्फल

- -

1. धूत - पृ. 122

रहे । समस्याएं जहाँ की वहीं रहे । मनोहर उदास हो गया । वह अपने मित्र "किरा" को पत्र लिखता है - "क्या हमारे मजदूरों की आत्मा मर गई है ? या हमारे उपदेशों के पीछे वह सच्चे सिक्के की सच्ची झन्नाहट नहीं है ? कहीं न कहीं कुछ हुआ है कि आदमी के चिंतन और भावना में एक बड़ी दरार पड़ गई है और यह खंडित मानव किसी खोखला में जैसे चक्कर काट रहा है । भंवर में पड़े हुए तिनके सा, निराधार भविष्यहीन आवर्त प्रताड़ित, निस्संग, दयनीय.....

तुम्हारे देशों में क्या क्या है पता नहीं । पर औद्योगिक सभ्यता का क्या यह अवश्यम्भावी परिणाम है ? अधिक अवकाश, अधिक फुरसत, अधिक आलस्य, अधिक उत्तेजक पदार्थ, अधिक नींद लाने वाले पदार्थ भाग दौड़ और अन्त में एक मूर्च्छना....

हमारी जिन्दगियाँ सांचे में जैसे बंध सी गयी है । चीनियों में पुराने जमाने में बच्चों के पांव लकड़ी के चौखट में बांध रखते थे, वैसे ही । विविध किस्म के ये चौखटे, सांचे, दरबे, दराज, छोटे-छोटे खाने और बिल । क्या हमारी इच्छाएं और हमारे इरादे कोई पालतू पक्षी है या चिड़िया खाने में कैद, बोतलबंद, जंतु कीट ?

इस यंत्र युग ने मनुष्य को कीड़े मकोड़े से भी बदतर बना दिया है ।"[1]

विवेच्य विषय के संदर्भ में हिंदी के प्रख्यात साहित्यकार श्री जैनेन्द्र कुमार का वक्तव्य यहाँ पर उल्लेख करना समुचित होगा - वे कहते है - "उद्योग, यंत्र, विज्ञान, ये सब चीजें गलत नहीं है । इनके उपयोग की गुंजाइश ही नहीं, उपादेयता भी है । लेकिन जिसको औद्योगीकरण कहते है, वह कुछ अपने में अलग चीज है । वह है उत्पादन का मुनाफे के खातिर

- -

1: सांचा - पृ: 88 - 89

होने लगना और जीवनोपयोगी की सीधी आवश्यकता के संदर्भ से उसका टूट जाना। जब यह फल आने लगता है, तो मशीन और मनुष्य का संबंध उलट जाता है। मानो मशीन मनुष्य पर सवार हो जाती है। मनुष्य का काबू फिर उस पर नहीं चलता। मनुष्य खुद उसके काबू में आ जाता है। मुनाफावाद उद्योगवाद का प्रतिफल होता है और उससे सामाजिक संबंध जर्जर होने लग जाते हैं। व्यक्तिगत रूप से कैपिटलिज्म के नाम से उसकी अनिष्टता से हम बहुत अच्छी तरह परिचित हो चुके हैं। लेकिन इस मोह में पड़ गये हैं कि उसके आगे राष्ट्रीय पैमाने पर आकर वही चीज सही बन जायेगी। जो पिण्ड के लिए अनिष्ट ठहर चुकी है, वह नीति ब्रह्माण्ड के लिए भी अनिष्ठ ही होगी, इसमें सन्देह नहीं है।"[1] स्पष्ट है औद्योगीकरण मानवीय मूल्यों पर सतत प्रहार करने वाला भाला है।

इसी प्रकार मानव सभ्यता को विकृत रूप देने में पाश्चात्य देश किस प्रकार होड़ लगाये है। हम द्वितीय विश्व युद्ध के समय का इतिहास को देख सकते है। मनोहर की विदेशी मित्र "लिजा" इस युद्ध के समय घटित अनेक अमानवीय कृत्यों का हवाला देते हुए मनोहर को पत्र लिखती है। जिसमें वह लिखती है - "वहाँ मानवता की दुहाई देने वाले आदर्शवादियों की एक न चली। क्रूरता सचिवद ढंग से आदमियों के प्राणों को कुचलती चली गई।"[2] आगे रूस का उदाहरण देते हुए लिखती है - "रूस दुनिया को कहते फिरता है - वह सबकी मुक्ति करेगा - गुलामों को सिवा बेड़िया के और क्या खोना है ? पर जब जर्मन युद्ध कैदियों को साइबेरिया और दूसरे अज्ञात स्थानों पर ले जा रहे थे - तब

---

1. जैनेन्द्र कुमार - समय और हम - पृ. 408

2. सांचा - पृ. 91

तब, तुम जानते हो उन बन्दियों की नाम सूचियां भी नहीं रखी। गाजर मूली की तरह उन्हें गारत कर दिया। ट्रेन में मानो डिब्बे में जितनी संख्या में वे चाहिए थे, वह संख्या पूरी नहीं हुई तो उन्होंने जहाँ से गाड़ी जाती थी, वहाँ आसपास के किसानों को पकड़कर ठूंस दिया - संख्या पूरी कर ली।"[1] लिजा यंत्र सभ्यता से ऊबने की बात करते हुए लिखती है —"युद्ध में और प्रेम में सब कुछ जायज है? कैसे यह कहावत सच मानी जाए? क्या मनुष्य इतना गया गुजरा हो गया कि उसे इस बात का बोध नहीं बचा रहा कि आज जो दूसरे के साथ कर रहा है, कल वही उसके साथ भी बीत सकता है। उफ्! यंत्र सभ्यता से कभी कभी मेरा मन ऊब उठता है और हिमालय की किसी कंदरा में जाकर शेष जीवन एकान्त में, चुपचाप बिताने का मन होता है।"[2]

यंत्रों के कारण उत्पादन बढ़ने से उत्पन्न परिणामों की चर्चा करते हुए लिजा लिखती है - "यंत्र से अधिक उत्पादन बढ़ा। अधिक उत्पादन से खपत बढ़ाने के लिए और मंडियों की जरूरत बढ़ी और मंडियों को प्राप्त करने का मतलब हुआ साम्राज्य विस्तार और साम्राज्य विस्तार का मतलब है शस्त्रास्त्रों की होड़ाहोड़ी। और इस होड़ाहोड़ी का अन्तिम परिणाम है मनुष्य के हृदय का स्वयं मेव यंत्रवत् हो जाना। इस्पात का उपयोग क्या आदमी ने इसीलिए सीखा था? इस बात के लिए?"[3]

इस संदर्भ में जैनेन्द्र कुमार का कहना है - "यंत्र एक तरह हमारे इन्द्रियों के उपकरण का अगला परिणामी है। बल्कि मनुष्य की पहुँच उससे विस्तार पाती है, उसकी क्षमता बढ़ जाती है। एक हार्सपावर

- -

1, 2, 3 - सांचा - पृ. 92

दस मनुष्यों की शक्ति के बराबर होता है तो कहना चाहिए कि एक हार्सपावर की मशीन से एक आदमी ग्यारह जितना हो जाता है । यंत्र का मानव जीवन में ठीक यही शक्ति संवर्धन का काम और स्थान होना चाहिए इससे अधिक जब होने लगता है, तो यंत्र काम का नहीं रहता, वाद का हो जाता है । अर्थात यंत्रवाद उत्पन्न होता है । आदमी अनुपयोगी, बेकार और बेरोजगार होने लगता है । यंत्र में जब यह अनर्थ और अनिष्ट पड़ने लग जाता है, तब यंत्र के साथ सोच विचारपूर्वक चलना चाहिए । ध्यान में इतना रखना है कि जैसे मनुष्य के पास यंत्ररूप में यह शरीर है, अंगोपांग है, बुद्धि विज्ञान से प्राप्त हुए अन्य यंत्र भी इसी तरह मनुष्य के अंग रूप होकर उसे विस्तार देने वाले हैं । उसे काटने और कम करने वाले वे न बनें ।"[1]

लिजा अपने पत्र में धार्मिक संस्थाओं पर भी व्यंग्य करती है । वह कहती है कि जो प्रत्येक पल शांति का जप करते हैं वे ही लोगों की हिंसा करने लगे हैं । वह लिखती है - "और फिर सबसे बड़ा व्यंग्य तो देखो कि हम ईसाई कहलाते हैं । हम सब से बड़े परोपकारी और सबसे बड़े दाता कहलाते हैं । वह सलीब पर यह दुआ मांगते मांगते मर गया - "पिता क्षमा करो ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं ।" और हम उसको करोड़ों नालायक अनुयायी हैं - जर्मनी में और रूस में, स्पेन में और इटली में, चीन में और जापान में, अमरीका में, और कहां नहीं - जिनका पेशा ही हर मिनट, हर लमहे पर उस परमपिता को तिल-तिलकर कीलें ठोंक ठोंक कर मारना बन गया है ।"[2]

अन्त में लिजा कहती है कि कट्टरपन से मनुष्यता का हनन होना निश्चित है । वह लिखती है - "कट्टरपन, चाहे जिस रंग और कोटि का

---

1. जैनेन्द्र कुमार - समय और हम - पृ० 41।

2. सांपा - पृ० 92-93

हो मनुष्य का बहुत बड़ा शत्रु है । मजहबी कट्टरपन, कौमी कट्टरपन, ये नाजी और गैर नाजीयत के नारे, यह दुनियाभर को आर्य बना देने की चिल्लपों, यह सारी दुनिया को "सभ्य" और "मुक्त" करने का दावा, यह लालच और गिद्धों की सी छीना झपटी - यह सब आदमी की आत्मा में लगे हुए घुन है । ऐसा विकृत इन्सान कोई बड़ी कलाकृति कभी नहीं निर्मित कर सकता ।"[1]

शिक्षा के पक्ष में उपरोक्त सभी सूक्तियों को यदि सूक्ष्मता से विश्लेषण करने से पता चलता है कि आज का मनुष्य दिन ब दिन गौण होते जा रहा है उसका महत्व कमहोते जा रहा है । यंत्रों का महत्व बढ रहा है । इस कारण मनुष्य को स्वयं जीने के लिए संघर्ष करना पड रहा है । इस संघर्ष में दया, ममता, प्रेम, परोपकार आदि मानवीय गुणों का ह्रास होते जा रहा है । इसके फलस्वरूप मनुष्य मात्र एक प्राणी के रूप में बच गया है । इस प्रकार औद्योगिक विकास बौद्धिक एवं भौतिक रूप से भले ही संसार को सुख-सुविधाओं को उपलब्ध किया हो परन्तु मनुष्य को मनुष्यता के साथ रहने नहीं दिया ।

वस्तुतः मनुष्य मनुष्यता रहित होना उसकी मजबूरी है । वह विवशता केकारण ही अपने सर्वोच्च गुण दया, ममता, प्रेम, क्षमा और परोपकार को त्याग देता है । जीने की जिजीविषा के कारण ही स्वार्थ भावना को ग्रहण करता है । किन्तुकितने ही कष्ट और दुःख आने पर भी मनुष्य अपने सर्वोच्च गुणों से वंचित नहीं होता उन गुणों को वह अपने अंदर कहीं नकहीं छुपाये रखता है । एक समय ऐसा भी आता है कि हम

- -

1: सांचा - पृ: 93

कल्पना भी नहीं कर सकता कि मानवता क्या इतनी भी गिर सकती है। वह आदमी को विक्रय वस्तु के समान बेच सकता है? विवशता कुछ भी कर सकती है। डॉ० माचवे ने अपने उपन्यास "साँचा" में इस समस्या का चित्रण यथार्थ के साथ किया है। कलकत्ता में जब अकाल पड़ा था तब वहाँ बच्चों को बेचा जाता था। कई गुंडे ऐसे है जो कहीं से लड़के-लड़कियों को उठाकर लाकर बेच देते है। ऐसी ही एक घटना है जिसमें लड़की और बच्चे को एक गुंडा बेच रहा है - "किस्सा मुख्तसर में यह था कि वह गुण्डा इस लड़की और बच्चे को, जिन्हें वह भुखमरी से बचाकर किसी तरह फुसलाकर, यहाँ ले आया था, महंगे से महंगे दामों में बेचना चाहता था। उनकी मुफलिसी का फायदा उठाकर यह भलामानस बीसवीं सदी में, और सभ्यता के इस युग में जब कि दुनिया भर की आजादियों की दुहाइयाँ दी जाती है, ऐसा पाप करने जा रहा था जिसकी कोई मिसाल नहीं, और जिसके ख्याल से ही रूह काँपती है।"[1]

यांत्रिक सभ्यता ने मनुष्य को भावशून्यता कर दिया है। "धूत" उपन्यास में, इस्पात नगर में जो उपन्यासकार डॉ० माचवे जी के कल्पना से निर्मित है, "मनुष्य की चार पशु प्रवृत्तियों आहार, निद्रा, भय, पर इस्पात नगर के अधिकारियों ने पूरा अधिकार कर डाला था। यों मनुष्य उनकी निगाह में इस्पाती होता जाता था। जितना ज्यादा इस्पाती उतना ही कम जज्बाती।"[2]

"धूत" उपन्यास में जिस गाँव मे इस्पात कारखाना लगने से गाँव इस्पात नगर में परिवर्तित हो जाता है उस गाँव के सेठ धन्नेमल के पुत्र अमेरिका में रहता है। वह [illegible] इस्पात नगर को देखकर चकित

- -

1. साँचा - पृ० 97
2. धूत - पृ० 123

होता है, वहाँ पर मानवीय गुणों का ह्रास हुआ है । वह तत्कालीन गाँव के महंत, हेडमास्टर, कलिया द्रौपदी आदि से बात करते हुए इस बदले हुए परिस्थितियों पर गहरा दुःख व्यक्त करता है । वह कहता है - "क्या यहाँ के इस सारे व्यापक प्रमाण और बड़ी मात्रा में हुए औद्योगिक विकास के पीछे कोई मानवीय हिंसा हुई ही नहीं ? या यह कीमत जो चुकानी पड़ी, उचित ही थी, ऐसा मान लिया गया है ।"[1] वह आगे कहता है कि यांत्रिक सभ्यता के कारण मनुष्य का व्यक्तित्व खण्डित हो गया है । "यंत्र मनुष्य को खण्डित व्यक्तित्व वाला बना देता है । जितने बड़े यंत्र, उतना बड़ा खण्डित व्यक्तित्व । पूर्व का मनुष्य पश्चिम में इसी तरह फड़फड़ाता रहता है जैसे पिंजरे में पंछी । एक आबो हवा के पंछी दूसरी आबो हवा में थोड़े दिन मौसम के हिसाब से घूमने जाते है और लौट आते है । वे भी बस नहीं पाते । मैंने कोशिश की, और क्या हाथ लगा ? न वहाँ दिल लगा, न यहाँ ।"[2]

द्रौपदी श्याम बाबू से बात करती हुई कहती है कि कल्पना किसी फार्मूले की तरह बंधी बंधाई नहीं होती । वह मनुष्य के सोच और सृजन पर आधारित होती है । उसके कहने में यह भी निहित है कि औद्योगीकरण से कल्पना साधि हल नहीं जायेगी । वहकहती है -"अनिश्चय शायद निर्माण या रचना का पहला और अंतिम बिन्दु है । सब लोग कोरे कागज पर ही कविता लिखना या चित्र बनाना शुरू करते है । स्वर का संधान सूने में या नीरवता में ही किया जाता है । पत्थर आकारहीन होता है जिसमें से सुंदर स्वरूप बनाया जाता है । सब मनुष्य की कल्पना का आरोपण है और कल्पना गणित के फार्मूले की तरह बंधी बंधाई नहीं होती ।"[3]

---

1. वही - पृ. 134
2. वही - पृ. 135-36
3. वही - पृ. 139

6. निष्कर्ष :

अंतत: यह कहा जा सकता है कि डा० प्रभाकर माचवे अपने उपन्यासों के माध्यम से यह स्पष्ट करना चाहते है कि औद्योगीकरण के परिणाम स्वरूप मनुष्य स्वतंत्रता खोता जा रहा है । वह अपने व्यक्तित्व के विकास के बदले, उसे संकुचित बनाता जा रहा है । आज मनुष्य का व्यक्तित्व खण्डित होता जा रहा है । मशीन का महत्व बढ़ गया है और मनुष्य का न्यून हो गया है । वह गंदी नाली के कीड़े की तरह अपना जीवन बिताने में विवश है । वह जहाँ रहता है उस झुग्गी - झोपड़ी में न रोशनी होती है, न पानीकी व्यवस्था होती है और न ही स्वच्छता होती है । ऐसे परिस्थितियों में वह मजदूर जिन्दगी जीते रहते है । उसके लिए न मनोरंजन का साधन है न स्वास्थ्य की समुचित व्यवस्था । वही एक कोटरीवाली जो सीधे ठहरने पर छत लगती है - झुग्गी झोपड़ी ही उसके लिए सब कुछ है ।

वस्तुत: सांचा, और "धुत" जैसे उपन्यासों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि डा० माचवे जी मनुष्य के सृजनात्मक एवं स्वस्थ्य विकास में औद्योगीकरण को बाधक मानते हैं । क्योंकि वेअपने उपन्यासों में अनेक स्थानों पर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था ही मनुष्य को स्वास्थ्य, सृजनात्मक एवं क्रियाशील बना रखता है और उसके मानवीय विशिष्ट गुणों, दया, प्रेम ममता परोपकार आदि को विकसित करता हैं । ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था का नष्ट होना मानवीयता का हनन हैं । मानवीय गुणों के मनुष्य से लुप्त होने का दोष भी वे औद्योगीकरण को ही देते हैं । भले ही औद्योगीकरण से अनेक सुख-सुविधायें उपलब्ध हुए हों तथा उत्पादन अधिक मात्रा में हुआ हो किन्तु मानवीय गुण जैसे दया, प्रेम, ममता, क्षमा परोपकार आदि पर उसका कटु प्रहार हुआ है ।

अध्याय - पाँच

डॉ० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में समकालीन यथार्थबोध : सामाजिक परिदृश्य में

अध्याय - पाँच

डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध :

सामाजिक परिदृश्य में

1. प्रस्तावना

2. डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण

2.1. नारी जीवन का यथार्थ

2.1.1. नारी विषयक अवधारणा

2.1.2. नारी की असहायता

2.1.3. पुरुष प्रधान समाज और नारी

2.1.4. समान अधिकार और नारी

2.1.5. दहेज समस्या

2.1.6. विवाह

2.1.7. प्रेम और धोखा

2.1.8. परित्यक्ता नारी

2.1.9. वेश्या समस्या

2.1.10. देवदासी प्रथा

2.1.11. सती प्रथा

2.1.12. विधवा समस्या

2.1.13. तलाक और भरण पोषण

2.1.14. प्रताड़ना और बलात्कार

2.1.15. कन्याओं की बिक्री

2.2. रंगभेद बनाम वर्णभेद - पाश्चात्य एवं भारतीय जीवन का यथार्थ

2.2.1. रंगभेद समस्या का ऐतिहासिक विवेचन

2.2.2. "जो" उपन्यास में रंगभेद बनाम वर्णभेद का चित्रण

2·3· पीढ़ियों का अंतराल और बदलते जीवन मूल्य

- 2·3·1· पुरानी पीढ़ी
- 2·3·2· बीच की पीढ़ी
- 2·3·3· नई पीढ़ी

2·4· युवावर्ग : समसामयिक यथार्थ

- 2·4·1· "किशोर" तथा "लापता" उपन्यासों में युवा वर्ग का चित्रण

2·5· समाज और राजनीति में फैली अनैतिकता

- 2·5·1· "आँखें मेरी बाकी उनका" उपन्यास में समाज और राजनीति में फैली अनैतिकता का चित्रण

3· निष्कर्ष

अध्याय - पाँच

डॉ० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध:-

सामाजिक परिदृश्य में

1. प्रस्तावना :

बहुत पुरानी उक्ति है - "साहित्य समाज का दर्पण है" । अर्थात साहित्य एक ऐसा दर्पण है जिसके अंतर्गत तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का चित्र हमें दिखाई पड़ता है । रचनाकार और समाज का संबंध अन्योन्याश्रित है । रचनाकार सबसे पहले समाज का एक सदस्य है, एक सामान्य साधारण आदमी है, रचनाकार बाद में । इस कारण रचनाकार सामाजिक गतिविधियों का आकलन एवं अनुभव एक साधारण व्यक्ति के रूप में करता है । इस अनुभव को वह अपने ज्ञान, एवं दृष्टि के आधार पर एक रचना का रूप देता है । इस प्रकार साहित्य का सृजन करना भी एक सामाजिक कर्म है । जैसे दूसरे कर्म रोजमर्रा जिन्दगी के लिए किये जाते है वैसे ही साहित्य का सृजन भी एक कर्म है । यह कर्म भी सामाजिक परिवर्तन के लिए किया जाता है । समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों और तरह - तरह के शोषणों से जनता को मुक्त कराना तथा उनमें चेतना उत्पन्न कराना साहित्य का लक्ष्य है । इस प्रकार साहित्यकार समाज को बेहतर दिशा की ओर ले जाने का प्रयत्न सतत करता रहता है । इस कार्य के लिए वह समाज में व्याप्त अन्तर्विरोध

को पहचानने की कोशिश करता है । जो रचनाकार इस प्रक्रिया में सफल होकर अपनी रचना में इस अन्तर्विरोध का चित्रण यथार्थ के साथ करता है वह रचनाकार महान माना जाता है । अक्सर समाज के अन्तर्विरोध की पहचान करते समय अनेक प्रकार के दबाव पड़ते हैं जिसके कारण वह ठीक से पहचान नहीं कर पाता ।

सामाजिक परिस्थितियों का आकलन करते हुए उसमें निहित समस्याओं को उजागर करना रचनाकार का कर्तव्य माना जाता है । इसके लिए रचनाकार का जीवनानुभव रचना करते समय अत्यंत सहायक होती है । वह रचना करते समय अपने जीवन में घटित छोटे-छोटे अनुभवों तथा स्थितियों को व्यापक फलक प्रदान करता है । जिसके कारण रचना में यथार्थ का चित्रण सही मायने में प्रस्तुत होता है और रचना में जीवंतता झलकती है । ऐसी रचना कालजयी कृति भी हो सकती है ।

रचना में सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण स्वाभाविक रूप से होने का कारण रचनाकार अपने समाज तथा युग से केवल प्रभावित ही नहीं होता बल्कि साक्षी भोक्ता भी होता है । वह एक साधारण जनता के समान सामाजिक अनुभव को प्राप्त करता है ।

आधुनिक हिंदी साहित्य में विशेषतः उपन्यास क्षेत्र में सामाजिक परिदृश्य का चित्रण अधिक व्यापकता के साथ हुआ है । सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण करने में प्रेमचन्द प्रेरणास्रोत रहे हैं । उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज में व्याप्त सभी प्रकार के समस्याओं का चित्रण किया है । अपने उपन्यासों के माध्यम से वे विशेषतः नारी संबंधी समस्याओं का विस्तार से उल्लेख करते हैं । प्रेमचन्द के बाद अनेक उपन्यासकारों ने

अपने उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण यथार्थ के धरातल पर सशक्त रूप से चित्रित किया है । ऐसे उपन्यासकारों में यशपाल, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव आदि प्रमुख है ।

2. डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण:

डा० प्रभाकर माचवे ने अपने उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया है । इन के उपन्यासों में समाजके अनेक पहलुओं पर विचार किया गया है । समाज के प्रत्येक अंग, प्रत्येक वर्ग का चित्रण यथार्थ के धरातल पर किया गया है । सामाजिक समस्याओं को चित्रित करते समय डा० माचवे ने प्रत्येक समस्या का मूलभूत कारण खोजने का प्रयास किया है । इनके उपन्यास अधिकतर शहरीय परिप्रेक्ष्य में लिखे जाने के कारण शहरीय समस्याओं का चित्रण अधिक होने का आभास होता है । किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि इनके उपन्यासों में ग्रामीण सामाजिक समस्याओं का चित्रण नहीं हुआ । इनके उपन्यासों में ग्रामीण सामाजिक समस्याओं का चित्रण भी वैसे ही हुआ है जैसे शहरी समस्याओं का चित्रण हुआ है ।

वस्तुत: माचवे जी के उपन्यासों में चित्रित सामाजिक समस्याओं को हम पांच भागों में बांट सकते हैं । ये है - एक नारी संबंधी समस्याएं, दूसरा पीढ़ियों का अंतराल, तीसरा युवावर्ग की समस्या, चौथा रंगभेद बनाम वर्णभेद समस्या और पांचवां - अन्य सामाजिक व राजनैतिक समस्याएं । इन समस्याओं को हम निम्नलिखित शीर्षकों के आधार पर माचवे जी के उपन्यासों का विवेचन करेंगे ।

1• नारी जीवन का यथार्थ

2• रंगभेद बनाम वर्ग भेद – पाश्चात्य एवं भारतीय जीवन का यथार्थ

3• पीढ़ियों का अंतराल और बदलते जीवन मूल्य

4• युवावर्ग : समसामयिक यथार्थ

5• समाज और राजनीति में फैली अनैतिकता

2•1• नारी जीवन का यथार्थ :

आधुनिक काल में गद्य साहित्य के विकास में उपन्यास का योगदान सर्वाधिक रहा है । ऐसा कहना भी अतिशयोक्ति न होगी कि गद्य का विकास मात्र उपन्यास विधा से ही हुआ है । उपन्यास विधा का लोकप्रियता के पीछे अनेक कारण हो सकते है किन्तु सबसे महत्वपूर्ण कारण शायद यही होगा कि विशेषत: भारत के संदर्भ में उसमें महिलाओं की भागीधारी अधिक रही । अर्थात उपन्यासों को पढने वाले पाठकों में और उपन्यासों में चित्रित घटनाओं में महिलाओं का वर्चस्व रहा । इसी कारण भारतीय समाज में नारी की स्थिति एवं गति को बहुत ही सूक्ष्मता से देखने का अवसर पाठकों को मिला है । जहाँ तक हिंदी उपन्यासों का संबंध है – कई उपन्यासकारों ने महिलाओं के समस्याओं के संदर्भ में अनेक प्रख्यात उपन्यास लिखा है । प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्द्र, अज्ञेय, अमृतलाल नागर, मन्नूभण्डारी यशपाल आदि विख्यात उपन्यासकारों ने अपनी अपनी दृष्टि से भारतीय समाज में स्त्री के स्थान के संबंध में उसकी समस्याओं के संबंध में व्याख्यायित किया है ।

डा० प्रभाकर माचवे भी इसी ही कोटि के साहित्यकार है जिन्होंने अपने लगभग समस्त सोलह उपन्यासों में से कुछ में प्रमुख रूप से तथा कुछ में गौण रूप से नारी जीवन के यथार्थ से पाठक को अवगत कराया है । डा० माचवे ने अपने उपन्यासों में नारी जीवन के प्रत्येक पहलू को उजागर करने का प्रयास किया है जिसमें वे सफल भी हुए है । नारी जीवन पर आधारित उनके उपन्यासों में "परन्तु", "एकतारा", "दाभा", "दर्द के पैबन्द", "लक्ष्मीबेन", "दशभुजा" और "अनदेखी" प्रमुख है । इन उपन्यासों में भारतीय नारी के जीवन में घटित होने वाली समस्याओं का चित्रण यथार्थ के साथ किया गया है । कुछ कुछ उपन्यासों में भारतीय नारी का पाश्चात्य नारी से भी तुलना करके देखा गया है ।

डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में चित्रित नारी संबंधी विचारों को हम निम्न प्रकार विभाजित करके अध्ययन कर सकते है । वैसे तो नारी की समस्याओं को और उसकी सामाजिक स्थिति को खण्डित करके तो देखा नहीं जा सकता । सभी समस्याएं एक दूसरे से पिरोये हुए रहते है । इसलिए अलग अलग सिर्फ अध्ययन की दृष्टि से देखा जा रहा है । जो इस प्रकार हैं–

भारत में नारी की स्थिति, नारी का सहज स्वभाव, अविवाहित नारी, असहाय या दुःखीयारी स्त्री, पुरुष वर्चस्व वाले समाज में नारी, समान अधिकार का प्रश्न: स्त्री – पुरुष संबंध, आर्थिक स्वतंत्रता और स्त्री समस्याएं जैसे – दहेज, ववाह, बाल विवाह, सती, विधवा, वेश्या देवदासी, अत्याचार, प्रेम धोखा आदि ।

माचवे जी ने महिलाओं की समस्याओं का चित्रण सामाजिक यथार्थ के अनुकूल किया है । उन्होंने विशेषत: आधुनिक नारी के साथ समाज में घटित होने वाली समस्याओं को उजागर किया है । वे नारी को स्वतंत्र व्यक्तित्व के साथ आगे बढ़ने की कामना करते हैं । वे मानते हैं कि देश के निर्माण में नारी का पूरा - पूरा सहयोग होना चाहिए । "नारी का क्षेत्र केवल "चक्की-चूल्हा, जच्चा-बच्चा, मंदिर (कीर्तन विहार चर्चा) तक ही सीमित नहीं है । हमारे देश में आधी शक्ति को हम इस तरह जाया कर रहे हैं जबकि विदेशों में वही ताकतों ने उसका पूरा उपयोग कर लिया है ।"[1]

2.1.1. नारी : विषयक अवधारणा :

आधुनिक भारत में "स्त्री" की जागृति में कोई खास परिवर्तन अभी नहीं आ पाया है । वह नारी वैसे ही है जैसे मध्यकालीन समाज में शोषित हुआ करती थी । सब से विचित्र बात यह है कि अपने देश में स्त्री को देवी समान मानते हैं किन्तु उसके साथ आदमी का बर्ताव पशु के समान होता है । ऐसे आदमियों के बीच रहने वाली एक स्त्री की दयनीय स्थिति का चित्रण माचवे जी ने अपने उपन्यास "द्वाभा" में किया है । "द्वाभा" उपन्यास की भूमिका में वे लिखते हैं -"भारत में नारी देवी है, शक्ति है, भारत "माता" है । और उसी देश में जहाँ योगी अरविन्द ने महाशक्ति के तीन रूप - महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली बताये थे - वहीं उस आधी शक्ति का हमने क्या कर डाला

---

1. आशारानी व्होरा - भूमिका - डॉ0 प्रभाकर माचवे : भारतीय नारी: दशा और दिशा

है । आधी दुनिया रसोई घर, जच्चा-बच्चा और अंधे अन्धरूढ़ियों में जकड़ी पड़ी है । स्त्रियों की साक्षरता, स्वतंत्रता के तैंतीस वर्ष बाद और एक दशक से ऊपर एक महिला प्रधान के होते हुए अभी भी नारी दयनीय और शोचनीय अवस्था में है । यह उपन्यास उसी आक्रोश का एक चित्र है, एक असहाय स्त्री की दृष्टि से"[1] इस प्रकार माचवे ने अनेक उपन्यासों में स्त्री संबंधी समस्याओं तथा उसके आवश्यकताओं के संदर्भ वास्तविकता के साथ समाज का चित्रण किया है ।

माचवे ने न केवल स्त्री के समस्याओं तथा आवश्यकताओं का ही चित्रण नहीं किया बल्कि स्त्रीके सहज गुणों का तथा उसके प्रति आदमियों का रुख का भी यथातथ्य चित्रण करने का प्रयास किया है । "एकतारा" उपन्यास में नारी को मोम तथा एकतारे की उपमा दी गयी है । पुरुष के बिना स्त्री को अधूरा मानने की संस्कृति अभी बची हुई है । इस उपन्यास में "तारा" की विमाता चाची कहती है - "तारा अभी तू नादान है । इज्जत फिज्जत कुछ नहीं । सब पुरुष स्त्री की ओर एक ही नजर से देखते हैं । वह उनके लिए मौज का एक साधन है एक शिकारी की ओर किस नजर से देखता है ? आज तू भरम में है तारा, पर पुरुष के प्रेम के संगीत के कई तरह के साज होते हैं, स्त्री का प्रेम एकतारे की तरह है । उस एक तार को तोड़ दो, तो काठ बचा रहेगा ।"[2] इसी उपन्यास में एक जगह "तारा" सोचने लगती है "पुरुष उस वादक की तरह है कि जिसके पास जलतरंग की सात कटोरियां है, इस राज के कई तार है, यूनानी वीणा के इक्कीस तार है । मगर ? यह तो एकतारा है,

- -

1. डा० प्रभाकर माचवे - भूमिका - एकतारा - (प्रकाशित सन 19)
2. एकतारा - पृ० 22

जिसका तार टूट जाने पर काठ बचा रहता है । पर यह उपमा सचमुच ठीक है क्या ? क्या स्त्री वीणा नहीं है ? क्या काठ का भी वाद्य नहीं बनता ?"[1] इस प्रकार "तारा" स्वयं सोच रही थी कि क्या स्त्री हमेशा किसी पर निर्भर ही रहना है ? उसमें अपने प्रति उदास की भावना जागृत हुई ।

डा० माचवे जी ने "स्त्री" के संबंध में संसार के विद्वानों के विचारों को "छाया" उपन्यास में एक जगह प्रस्तुत किया है । ये विद्वान पश्चिमी हैं और स्त्री को कुछ नकारात्मक दृष्टि से देखा है । "छाया" उपन्यास में "श्यामा" अपनी डायरी में इन विद्वानों के उद्धरणों को लिखी है - उसमें से कुछ इस प्रकार हैं -

"मेरा ख्याल है कि मनुष्य जो चीजें सुधार सकता है उनमें स्त्री अंतिम वस्तु है - मेरेडिथ"

स्त्रियों की हाँ और नहीं में एक आलपिन भी घुस नहीं सकती
- सर्वांतीस

स्त्रियाँ जब अकेले में होती हैं, तब कैसे समय बिताती है यह यदि पुरुष जान ले तो वह कभी शादी ही न करें -ओ हेनरी

ईश्वर ने स्त्री बनायी और उसी क्षण से जीवन की नीरसता नष्ट हुई परन्तु उसके साथ ही साथ कई चीजें नष्ट हो गईं । स्त्री ईश्वर की दूसरी गलती है - नीत्शे"

"परन्तु स्त्रियों से नफरत करने वाले इन सब पुरुषों के मन में स्त्री के प्रति गहरा नकारात्मक आकर्षण होता है" - श्यामा ।"[2]

- -

1. एकतारा - पृ. 28

2. छाया - पृ. 36

इसी उपन्यास में दूसरी ओर एम पी साहब को जो परम्परावादी है और स्वयं को भारतीय संस्कृति के रक्षक मानते है, रात में नींद नहीं आई तो "कल्याण" मासिक का एक पुराना मोटा विशेषांक (नारी अंक) उठाकर पढ़ने लगते है "जहाँ जहाँ उनकी नजर अटकी वे अंश यों थे: "स्त्री की सृष्टि जगत को मुग्ध करने के लिए नहीं, अपने पति देवता को सुख देने के लिए हुई है - एडमंड बर्क।

हिन्दुओं में स्त्रियों को जितना सम्मान दिया जाता है, उतना संसार की और किसी प्राचीन जाति में नहीं दिया जाता।" विल्सन

"स्त्रियों के बाहर के कार्यों में लगे रहने से काम नहीं चलेगा। हमारे देश की प्रत्येक महिला को गृहिणी और जननी बनना पड़ेगा।"
- हेर हिटलर

"स्त्रियों को किसी भी वय में स्वाधीन छोड़ना उचित नहीं" : हेरसमैन

"पुरुषों के अधीन रहने में ही स्त्रियों की सबसे बड़ी शोभा है -
ड्यूकसमारिस"[1]

इस प्रकार से "स्त्री" के संबंध में भिन्न भिन्न व्यक्तियों के भिन्न भिन्न विचार हो सकते है। "आभा" उपन्यास में आभा को परित्याग करने वाला "श्री" भी नारी के संदर्भ में कुछ ऐसे ही विचार रखता है - "प्रेमी श्री, चित्रकार श्री, अन्न विभाग में काम करने वाला सरकारी नौकर श्री सोचा रहा था कि नारी के विषय में और चाहे कोई उपमा सही हो या न हो, यह निश्चित है कि वह नदी की भांति है। यह स्रोतस्विनी है, जलप्रपात की यूनानी देवी इगेरिया, वेगिनी, तटिनी

- -

1. आभा - पृ. 40

पयस्विनी, वाहिनी, सरि, इन सब नामों से पुकारी जाने वाली सदा नदी•••नारी भी वही है।"[1] "नदी, नारी और कवि तीनों केवल देने के लिये निर्मित हुए है। उन्हें याचक मत बनाओ, संस्कृति के ठेकेदारों। ये दाता है। श्री सोचता रहा:••••"[2] उपन्यासकार शंकरन से नारी का सर्वोच्च परिभाषा दिलवाता है। शंकरन मीनाक्षी से जो आभा की मित्र है, कहता है –"नारी क्षण भर की प्रेयसी परन्तु अनन्तकाल की माता है।"[3] "लक्ष्मीबेन" उपन्यास में मुग्धा कहती है कि "पुरुष भूल जाते है कि नारी के लिए प्रेम सर्वस्व दान है। पुरुष के लिए यह मात्र क्षणिक उन्माद और शारीरिक काम पूर्ति•••"[4]

वस्तुत: डा० माचवे ने नारी के सहज गुणों को उजागर करने के लिए अपने उपन्यासों में महान उक्तियों को यथावत् स्वीकार किया है और कहीं कहीं उनके उक्तियों को उपन्यास के पात्रों के माध्यम से कहलवा दिया है। कुल मिलाकर माचवे जी यही कहना चाहते है कि स्त्री के स्वभाव को देखकर संसार के अनेक लोगों ने अपने अपने नजरिये से व्याख्यायित किया है। भारतीय संस्कृति के अनुसार वह "क्षण भर की प्रेयसी परन्तु अनन्तकाल की माता है। इस भावना को ही स्थापित करने की चेष्टा की गई है।

2•1•2• नारी की असहायता :

डा० प्रभाकर माचवे ने अपने उपन्यासों में स्त्री को दु:खी, असहाय अन्यायित बेसहारा दिखाया है। इस प्रकार स्त्री का चित्रण

- -

1• आभा – पृ• 41–42

2• आभा – पृ• 42

3• आभा – पृ• 108

4• लक्ष्मीबेन – पृ• 87

करते हुए स्त्री क्यों इस प्रकार अपने दुख को झेल रही है ? इस दुख को दूर करने का मार्ग क्या नहीं है ? आदि प्रश्नों पर गंभीरता पूर्वक सोचने के लिए विवश किया है । उपन्यासों में अनेक स्थानों पर स्त्री की दुःखद स्थिति को बहुत ही मार्मस्पर्शी संवेदनाओं के साथ चित्रित किया गया है ।

"एकतारा" उपन्यास में माचवे ने एक ऐसी स्त्री का चित्रण किया है जिसमें समाज को बदलने का उत्साह है, उमंग है किन्तु उस स्त्री के साथ समाज में हर समय प्रतिरोध होता रहता है । "तारा" इस उपन्यास की नायिका है जो क्रान्तिकारी विचारधारा की है । वह क्रान्ति करनाचाहती है इसके लिए घर से सभी बन्धन तोड़ कर निकल पड़ती है । किन्तु जब वह पुलिस वैन देखकर सोचने लगती है - "बचो, पुलिस के पंजों से बचो । एक ओर पुरुष, दूसरी ओर जेल । क्या क्रान्तिपथ का अनुसरण करने वाली एक ऐसी नारी के लिए तीसरी कोई राह ही नहीं है ?"[1] वह सोचने लगती है -"क्या नारी आज के समाज में, या कभी भी अकेली नहीं रह सकती ?"[2] फिर आगे विचार करने लगती है -"स्त्री का जब तक विवाह नहीं होता तब तक वह पिता की विवाह होने पर पति और पति के मरने पर पुत्र की सम्पत्ति है । छिः ऐसी संस्कृति पर जहाँ स्त्री को ढोल शूद्र, दास और पशु की भाँति एक अधिकार में रखने योग्य वस्तु मान लिया गया है ?"[3] तारा नारी के जीवन के बारे में सोच सोच कर बहुत ही दुखी होती है । वह ऐसे स्थिति से नारी को ऊपर उठाना चाहती है । किन्तु वह असहाय रह जाती है । यह कार्य

---

1. एकतारा - पृ० 29
2. एकतारा - पृ० 34
3. एकतारा - पृ० 34-35

उसके शक्ति से बाहर का है । ऐसा महसूस करती है । तारा सोचने लगती है --"भारतीय नारी की जीवन सार्थकता अंत तक किसी जोगी के अंग पर मलने की भस्मी होने में ही है क्या ? क्या वह रजकण है निरी धूल की ढेरी, कि जो चाहे आवे उसे पैरों से रौंदे और ठुकराता चले । या वह धरित्री है, वह मृत्तिका जिसमें से लाख लाख शस्यांकुर फूटते हैं । जो फूल और सुफल से भरी है । वह जिससे शंकित मुद्रा में कवि पूछते है "माँ, तुझे किसने कहा कि तू अबला है ?"[1]

तारा सोचती है कि नारी अपना अस्तित्व स्वयं रखती है । उसको लगा कि "यह सब कविजन मक्कार हैं, झूठे हैं । नहीं है नारी लता, नहीं है मोमबत्ती । वह स्वयं अपना अस्तित्व रखती है । वह अग्नि की चिनगारी है, वह स्वाहा है । वह सप्तसरिताओं की वेगवान बाढ़ है वह गंगोत्री है, वह मोम और मधु की निर्मात्री मधुमक्खी है, जो कि निरी चींटी की तरह बाहर से जमा करके अपना घर नहीं बनाती, न निरी मकड़ी की तरह अपने अंदर से बाहर तंतु काट कर जाली बनाती है - वह फूलों से पराग लाती है और उसे अपने मोम से ढ़ककर जमा कर मधु बना देती है ।"[2] किन्तु तारा का सांसारिक जीवन जब अस्त व्यस्त हो जाता है उसके पति बेकार हो जाता है तब उसे लगता है कि स्त्री बिल्कुल असहाय है, वह एकाकी है । "तारा के जीवन संगीत का सम टूट गया था । जैसे उसे लगता था कि कुछ अंतरे पर ठाठ खिंच रहा है - मगर आलाप विस्तार होने से पहले ही अंतिम भैरवी की मांग आ गयी । वह इन बोल तानों की तरह उलझा देनेवाले दो निरीह जीवों की माँ, एक शराबी और गुमराह गवैये की पत्नी तारा, इस दस बीस लाख की बंबई में अकेली पड़ी है । वैसे उसके कमरे के ऊपर पाँच

1· एकतारा - पृ· 68

2· एकतारा - पृ· 68

मंजिले और है, मगर जैसे उसके ऊपर कोई साया नहीं है, सहारे का आँचल नहीं है, सिर्फ खुला आसमान है, तूफानी बादल मंडरा रहे है और बिजली कौंध रही है ।"[1] इस प्रकार माधवे जी ने नारी की आश्रयहीन भावना को बहुत ही मर्मस्पर्शी ढंग से चित्रित किया है । सामाजिक परिस्थितियों से संघर्ष करते करते "तारा" थक जाती है और वह स्वयं को आश्रयहीन महसूस करने लगती है । यही स्त्री की विडम्बना है ।

"आभा" उपन्यास में "आभा" नामक परित्यक्ता का चित्रण किया गया है । आभा को बार बार अपने अतीत का याद आने लगता है जिसके कारण वह बहुत दुःखित होकर जाती है । उसे ऐसा लगता है कि यह स्मृति की अपना दुःख है । उस का मन स्थिर नहीं रहता। वह कभी यादों में कभी दिवा स्वप्नों में खो जाती है । "दिवा स्वप्नों में यों डूबते डूबते वह सहसा सोचने लगी कि मनुष्य की सबसे बड़ी शत्रु स्मृति है । यदि यह सहज संभव होता कि पुराना सब भूल सके तो कितना अच्छा होता । तब कोई मुश्किल ही नहीं रहती । सब चीजें जैसे आप से आप होती रहती - जैसे बच्चे हर चीज जल्दी भूल जाते है । पर स्मृति का यह उनसे चिपटे रहना क्या दुःख से जुड़ा हुआ है । पर उत्कट प्रेम के क्षण भी याद आते है और उत्कट दुःख के भी । तो स्मृति उत्कटता से जुड़ी है ।"[2]

---

1. फलतारा - पृ. 72
2. आभा - पृ. 70

"छाया" में आभा अपने होस्टल में बैठकर कहानी लिखती है । इस कहानी में "गमले की बेल जो बड़े बड़े लोगों के सुसज्जित बंगलों में ड्राइंगरूम में रखी जाती है । वह अहाते के पेड़े के सुदृढ़ तने से लिपटी वल्लरी बहन से मिली । वल्लरी गमले से कहती है - क्या तुम्हें पानी की जरूरत नहीं होती ? तुम यों ही फूल फूली रहती हो ? तो गमले की बेल उत्तर देती है - "नहीं, नहीं, बहन, गमले की बेल को भी पानी लगता है - सहानुभूति का जल, कुछ थोड़ी मात्रा में क्यों न हो, उसे भी चाहिए । नहीं तो वह सूख जाएगी...." वल्लरी भी कहती है - "सहानुभूति का जल तो मुझे भी चाहिए । बिना "जीवन" के कौन सी बेल बढ़ी है ?"[1] इस रूपक के माध्यम से आभा ने नारी जीवन की व्यथा को स्पष्ट किया है । वह कहना चाहती है कि नारी को विकास करने में सहानुभूति की आवश्यकता होती है ।

"आभा का मन अपने प्रति निष्ठा और लोक निष्ठा की द्विविधा जिम्मेदारियों में खण्डित हो उठा । जैसे दो दिशाओं के परस्पर विरुद्ध प्रकाश हों, "स्व" और "सर्व" । पर दोनों क्या एक ही के प्रत्यावर्तन नहीं है ? आभा छाया हो उठी । कौन कौन सा लोक मंगल है जो आत्म कल्याण नहीं तो आत्मानन्द का कारण नहीं है, और कौन सी आत्म सिद्धि है जो सबके लोक सन्तोष की कुछ प्रेरणा नहीं ? बेतुकी की बहस बेकार है; क्या फल कर्म का निर्णायक नहीं ।"[2] इस प्रकार आभा ने अपने ही अन्दर "स्व" और सर्व के बीच चल रहे द्वन्द्व के प्रति विचार किया है । वह समझ न ही पा रही है कि कौन सा कार्य लोक मंगल है ? और कौन आत्म कल्याण ? यह भी समझ नहीं कर पा रही है कि

- -

1. छाया - पृ. 87-88

2. छाया - पृ. 88

क्या "स्व" और "सर्व" एक दूसरे के विपरीत है ? इस प्रकार परित्यक्ता नारी में एक असहाय और आश्रयहीन भावना मस्तिष्क में घर कर लेती है। निराशा चारों ओर आवरित होती है।

"स्त्री" की सुरक्षा की भावना न केवल भारतीय समाज में महत्व रखती है, बल्कि अमेरिका में भी नारी की सुरक्षा की चिंता की जाती है। वहाँ पर भी माँ-बाप अपनी पुत्री की देख भाल की चिंता करते है। माचवे जी ने "नीग्रो" जाति के जीवन पर आधारित उपन्यास "जो" में इस तथ्य का जिक्र किया है। रामन के साथ बात करते हुए मिस्टर स्मिथ अपनीबेटी डोरा की चिन्ता करने लगता है - "मेरी यही एक चिन्ता है : लडकी डोरा। सयानी हो गयी। अब वह अपनी इच्छा से अपना जीवनसाथी चुने। तुम जानते हो यह बड़ा संगीन वक्त होता है जीवन में - कभी कभी एक जरा सी गलती लड़की के समूचे जीवन को बरबाद कर देती है।"[1] समाज में "स्त्री" के अंदर आश्रयहीनता की भावना लोगों ने भर दिया है। उसके सामने बार बार यह कह देते है कि वह पुरुष के बिना अकेली है और अधूरी है। इस प्रकार कहकर नारी में एक हीन भावना को पैदा किये है साथ ही उसमें पुरुष के सहारे के बगैर अस्तित्वहीन की भावना पैदा की गई है। इस बात को "तीस चालीस पचास" उपन्यास में उषा कहती है - "मैं यहमानती हूँ कि स्त्रीके जीवन में ये दूसरीइच्छाएँ बहुत प्रबल होती है। वे ही उसके सारे कर्म को नियंत्रित प्रेरित, नियोजित करती रहती है। पुराने लोग उसे माँ होने की इच्छा कहते है। बाद में लोग उसे प्रणय या काम कहने लगे। पर कुछ ऐसा जरूर उसके मन में युग युग से भर दिया गया कि पुरुष के बिना वह अकेली है, अधूरी है, आधी है।"[2]

- -

1. "जो" - पृ. 28

2. तीस-चालीस - पचास - पृ. 40-41

"दर्द के पैबन्द" उपन्यास में पूर्व और पश्चिम की दो नारियों का अन्तर्द्वन्द्व और विवशता का सुन्दर चित्रण किया गया है। इन दोनों स्त्रियों में एक जैसा ही त्रासदी अन्तर्निहित है। दोनों की मूक वेदना है। वे असहाय है। उनकी आशाएँ बिखर गयी है। इनमें से एक नारी है श्वेता जो कालगमन में इटली के डा० रोबर्टो से विवाह कर लेती है। उसको एक लड़का आनंद भी होता है। डा० राबर्टो पुत्र आनंद को लेकर भाग जाता है। इस प्रकार श्वेता धोखा खाने से एकदम हताश हो जाती है। उसका प्रेम, पति पुत्र सब खोया था। वह पुत्र के लिए तड़पती है। वह कहती है "मेरा सारा ध्यान मेरे दो वर्ष के पुत्र आनंद में अटका हुआ था। डाक्टर के साथ फिर से बसने, या उनके दिल को जीतने या हृदय परिवर्तन का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। उनके साथ मेरा जीवन में कोई संबंध नहीं हो सकता था। मैं यह मानकर चल रही हूँ कि मेरा नारीत्व मातृत्व तक पहुँचा। परन्तु शायद मेरे भाग्य में पत्नीत्व लिखा ही नहीं था। अब यह मातृत्व आजीवन टिका रहे। मेरा पुत्र मुझे मिल जाये तो काफी है। उसी के सहारे मैं यह आगे के जीवन का लक्ष्य समझता रहे। वही मेरे भटके हुए जीवन की एकमात्र सार्थकता, एकमात्र दिशादर्शक आनंद है।"[1] श्वेता आनंद के लिए तड़पती रहती है। वह पुत्र इटली के किसी अनाथालय में था। उसे श्वेता दूर से देख सकती थी किन्तु बोल नहीं सकती थी। यहाँ पर आनन्द दो अर्थों प्रयोग हुआ है। एक श्वेता का पुत्र, दूसरा सुख। उपन्यासकार ने श्वेता के भावनाओं को दार्शनिक रूप देने का प्रयास किया है। श्वेता कहती है - "जीवन में आनन्द की खोज कितनी कठिन है। यह यदि मिल भी जाता है तो केवल कुछ क्षणों

---

1. दर्द के पैबन्द - पृ॰ 85

के लिए उसे हम दूर से देख सकते हैं, उसे छू भी नहीं सकते। वह हमारी अमूर्त ईश्वर कल्पना की तरह है। अपने अस्तित्व के अंगने की छड़ी की ओट हम उसे दूर से किसी लान में गेंद उछालते हुए देखते हैं, थोड़ी दूर में वह गेंद भी नजर से गायब हो जाती है और वह आनन्द भी। हम उसे पुकार भर सकते हैं, पर वह हमारी भाषा नहीं समझता, न पहचानता है। कैसी मजबूरी है मानो यह पकड़ी तितली स्वप्न है, ऐसा नाजुक कि जिस तितली को पकड़ने जाओ, सिर्फ उसके पंखों पर का परागकण हमारी उंगलियों में रह जाय, स्मृति, चिह्नशेष के रूप में। कई बार हम अपनी ही सृष्टि से बेगाने हो जाते हैं।"[1] इस प्रकार उपन्यासकार मालती ने मातृ-हृदय की वेदना का चित्रण किया है।

"किसलिए" उपन्यास में भी स्त्री को किसी के सहारे जीने की परिस्थिति पर आक्रोश व्यक्त किया गया है। समाजवादी विचार धारा को मानने वाले प्रो० त्रिवेदी कहते हैं -"यह तो हिन्दू धर्म ने मनु महाराज के बाद स्त्री को गुलाम बनाकर रखा है - उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं। बचपन में पिता का संरक्षण, शादी होने पर पति का, पति के मरने पर पुत्र का और इसी मार उसे सदा सहनशीला, धैर्य की पुतली पृथ्वी और सब समाने वाली नदी की उपमाएं दी।"[2]

"लक्ष्मीबेन" उपन्यास में भी "स्त्री" अपना आश्रय खोजने में परेशान है। इस उपन्यास की नायिका "लेखा" इतिहास की लेक्चरर है। "लेखा, जो अतीत पढ़ाती है पर अतीत भूलना चाहती है। लेखा, जो

- -

1. दर्द के पैबन्द - पृ० 89-90

2. किसलिए - पृ० 113

अध्यात्म के नाम पर ढोंग फैलाने वाले मिथ्या गुरुओं से बेहद नाराज है - उसका बस चले तो आर्डिनेंस निकालकर वह सारे मंदिर और देवालय मस्जिदें और दरगाहें, गिरजाघर और गुरुद्वारे, अग्नि मंदिर और सिनेगोग, मठ, और धर्मस्थान, आश्रम और अखाड़े एकदम "राष्ट्रीयकृत" कर डाले - और वही अब भीतर भीतर गहरे में कहीं इतनी टूट और बिखर गई है कि किसी मेले में खोये हुए बच्चे की तरह वह अपना आश्रय खोज रही है ।"[1] लेखा का जीवन मानों अर्थ हीन हो गया हो । वह सोचती है कि जीवन में आखिर बचा ही क्या है ? "इतिहास की अध्यापिका, पति परित्यक्ता, विनोद नामक एक मेधावी बेटे की माँ, उपेक्षिता, एकाकिनी समाज सेविका ये सब भूमिकाएं कहीं एकएक कर गिर जाती है । मानों पर्त पर पर्त कोई उसे छील रहा हो । भीतर क्या बचा रहता है ? क्या वह केवल शून्य है ?"[2]

"दरारें" उपन्यास में पति द्वारा पत्नी किस प्रकार प्रताड़ित होती है । माचवे ने अत्यंत भावुकता के साथ चित्रण किया है । पत्नी को हर वक्त यही डर सताते रहता है कि पति न छोड़ दे । उस पति का आश्रय उसको परम आवश्यक है । इस उपन्यास की नायिका अदिति अपने सोमनाथ से परित्यक्त होने से उसके मन में स्मृतियाँ आ जाती है । वह किस प्रकार छोड़ देने की धमकियाँ देता था । उसके मन में पति के शब्द स्मरण आते है । "मैं तुम्हें छोड़ दूंगा । बेकार का बोझ हो तुम । तुम किसी कामकी नहीं । बच्चा भी नहीं पैदा कर सकी । घर से इतना सोना क्यों नहीं ले आई कि जन्म भर खाती रही...

- -

1,2, लक्ष्मीवेन - पृ. 28

मैं तुम्हें छोड़ दूंगा । तुम ज्यादा पढ़ी लिखी क्यों नहीं हो ? मैं ही खटता कमाता हूँ । मेरी ही जिम्मे सब घर बाहर, परिवार वालों की चिंता संभाल है । तुम्हें क्या है ? दो जून भात पकाकर रख दो और सिंगार बनाव करके गाती बैठो। हर वक्त गाना, गाना, गाना । मैं तो अघा गया ऐसे गाने से....

मैं तुम्हें छोड़ दूंगा· चूंकि तुम उस दिन पड़ोस के उस युवक के साथ हंसकर बोली ही क्यों ?

मैं तुम्हें छोड़ दूंगा, क्योंकि कल तुम्हारे हाथ से दाल में नमक क्यों कम पड़ गया था...

मै तुम्हें छोड़ दूंगा, चूंकि तुम कल सवेरे कुमकुम लगाना क्यों भूल गई थी ? क्या मै मर गया था ?...

मैं तुम्हें छोड़ दूंगा, चूंकि तुम मेरे मित्र जब पीने के लिए आये तो सामने आकर उन्हें गर्म तली हुई आलू की कटलेट क्यों लाकर नहीं दी ? क्या बोली, वे गन्दे मजाक करते है ? वह चाहे जो कुछ करें, मेरे मित्र है और तुम हो ही किसी लायक...हम भी तो उनके घरों में जाते है । पत्नियां साथ में पीती भी है.। तुम्हीं एकसती साध्वी हो...

मैं तुम्हें छोड़ दूंगा चूंकि तुमने वह लाल रंग की साड़ी क्यों नहीं पहनी ? मुझे तो वही प्रिय है ....[1]

लापता उपन्यास में सेठ मक्खनलाल अपनी बेटी उषा का विवाह वालवारकर नाम एक अजनबी से करना चाहते है । उषा सोचने लगती है - जैसे उसका अपना कोई मन नहीं है । बाप ने धकेला, वर के पास फेंक दिया । वर ने फेंका, पुत्र के पास रहने लगी - स्त्री को स्वतंत्रता नहीं

- -

1. दसमुखा - पृ. 12-13

वहमानो निरी गेंद है ।"[1] इस प्रकार स्त्री को अपनी व्यक्तित्व और स्वतंत्रता के लिए जीवनान्त तक पुरुष पर ही निर्भर रहना पड़ता है । यह सोचकर वह बहुत दुखित होती है । इसी विषय के संबंध में "शशी" भी क्षुब्द है । "शशि" बहि मेरी बाकी उनका" उपन्यास के पात्र पंडित कृष्ण जी शुक्ला जी की पड़ोसिन है । वह गंगा नदी के प्रवाह को देखते हुए उसके बारे में सोचते सोचते अत्यन्त उदास हो उठती है । "क्या यही एक पक्ष है ? क्या नारी का मोक्ष केवल पितृसेवा, पति सेवा, और पुत्र सेवा में ही है ? क्या उसकी अपनी कोई अलग से हयत्ता नहीं ? क्या वह केवल दूसरे के लिए ही जन्मी है ।"[2]

"अनदेखी" उपन्यास में नायिका दर्शना भी आश्रयहीन और सहाराहीन भावना से दुखित होती है । वहअपने जीवन में तीन पुरुषों को देख चुकी है । तीनों के तीनों निठल्ले, बेइमान निकले, पहलासंस्कृत पढ़ाने वाला 40 वर्ष आयुवाला रत्नाकर, दूसरा वामपंथी पत्रकार आनंद और तीसरा विनोद जो दर्शन शास्त्र में एम ए कर के अंधों की समाज सेवा के केन्द्र से जुड़ा हुआ है । फिर भी "विनोद" बाकी दोनों से अलग है वह अंधों की सेवा में लग्न है उसकी बढ़ती हुई प्रतिष्ठा को देखकर उस केन्द्र के व्यवस्थापक व प्रबंध कमेटी उसे निकालदेती है । जिससे दर्शना को बहुत दुख हुआ । दर्शना की दृष्टि चली जाने के बाद वह बेसहारा हो गई । अपनी इस बेसहारे की भावना को अपनी मित्र "दृष्टि" जिसे दिव्या कह कर पुकारी है से कहती है - "मैं एक भारतीय निम्न मध्यवर्ग की गरीब नारी, अकेली, उपेक्षिता, विश्वास घात का शिकार बनी साधारण स्त्री - न मुझ में कोई विशेष रूप न गुण न विद्या न प्रतिभा । क्या उसका भी ऐसी असहाय स्थिति में कोई भविष्य हो सकता है ? सिवा अंधकार के उसके लिए क्या है ?"[3]

---

1. लापता - पृ. 28
2. बहि मेरी बाकी उनका - पृ. 147
3. अनदेखी - पृ. 75

2.1.3. पुरुष प्रधान समाज और नारी :

भारतीय समाज में अभी स्त्री पुरुषों में समानता की भावना नहीं आ पायी है। अभी भी समाज के सभी क्षेत्रों में पुरुष का वर्चस बना रहा है। पुरुष के सहानुभूति दया और कृपा की पात्र स्त्री बनी हुई है। कितनेही सैधांतिक या कानूनी अधिकार स्त्री को मिलने पर भी स्त्री पुरुष क समान हो नहीं पा रही है। पुरुष हमेशा उसका शोषण कर रहा है। उसे दबा कर रखा है। पुरुष की अहं भावना को बहुत ही स्पष्ट रूप से अरविंद जैने अपनी पुस्तक "औरत होने की सजा" में चित्रित किया है। पुरुष कहता है -"मैं आदमी हूं यानी पुरुष, मर्द, स्वामी, देवता मंत्री, संतरी, सामंत, राजा, महाधीश और न्यायाधीश - सब कुछ मैं हूं और मेरे लिए ही सब कुछ है या सब कुछ मैंने अपने सुख सुविधा, भोग विलास और ऐयाशी के लिए बनाया है। सारे धर्मों के धर्मग्रंथ मैंने ही रचे है। धर्म, अर्थ, समाज, न्याय और राजनीति के सारे कायदे कानून मैंने बनाये है और मैं ही समय समय पर उन्हें परिभाषित और परिवर्तित करता हूं। घर, खेत,खलिहान, दुकान, कारखाने, धन, दौलत, सम्पत्ति, साहित्य कला, शिक्षा, सत्ता और न्याय सब पर मेरे अधिकार हैं। सभी धर्मों का भगवान मैं ही हूं और सारी दुनिया मेरी ही पूजा करती है। तुम औरत हो यानी मेरी पत्नी, वेश्या और दासी - जो कुछ भी हो, मेरी हो औरमेरे सुख, आनंद, भोग और ऐश्वर्य के लिए सदा समर्पित रहना ही तुम्हारा परम धर्म और कर्तव्य है। मेरे हुक्म के अनुसार चलती रहोगी, सम्पूर्ण रूप से समर्पित होकर वफादारी के साथ मेरी सेवा करोगी तो "सीता", सावित्री" और "महारानी" कहलाओगी। सुख, सुविधाएं कपड़े, गहने, धन, ऐश्वर्य, मान, सम्मान और प्रतिष्ठा पाओगी। मगर मुझ से अलग व मेरे विरुद्ध आंख उठाने कीकोशिश भी करोगी तो कीड़े-मकोड़े की तरह कुचल दी जाओगी। कोई तुम्हारी मदद के लिए आगे नहीं आयेगा

समाज धर्म, कानून, मठाधीश, मंत्री, नेता और राजा सब मेरे हैं, बल्कि ये ही वे हथियार हैं जिनसे मैं इस दुनिया में ही नहीं, दूसरी दुनिया में भी तुम्हें नहीं छोड़ूंगा। पहली और दूसरी दुनिया मैं हूँ। तुम महज तीसरी दुनिया हो, तुम्हारी न कोई दलील सुनेगा, न अपील।"[1]

वस्तुतः प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में भी पुरुष की इसी अहं भावना का चित्रण किया गया है। नारी पुरुषाधिपत्य को विवशता के साथ स्वीकारती है। पुरुष प्रधान समाज में "नारी" का किसी पर भी अधिकार नहीं है। वह सिर्फ पुरुष के हाथ में कठपुतली मात्र है। "एकतारा" उपन्यास में तारा कोई आश्रय नहीं देता। वह सोचने लगती है - उसमें मुझ जैसी घर से प्रताड़ित, समाजनिन्दिता की तो बात ही दूसरी है। उसके लिए प्रेम किसी के पास नहीं है। भारत में स्त्री भोग्य है जिस पर पुरुष का एकाधिकार है। जिस चीज से हम आनन्द उठाना चाहते हैं, उससे प्रेम अनावश्यक बात है। आनंद मिले इतना ही काफी माना जाता है। प्रेम का स्वांग भी अन्ततः अपनी कलाई खोल देता है, और उसमें से विद्रूप भोगलिप्सा झांक पड़ती है। जैसे हरियाली के नीचे सांप दुबका हो, वैसे पुरुषों का तथाकथित प्रेम जहरीली भोग लिप्सा मात्र है। मैं भयानक पुरुष द्वेषिनी बनती जा रही हूँ।"[2]

"द्वाभा" उपन्यास में नायिका आभा जो परित्यक्ता नारी है। होस्टल में रहती है। उसके पास एक मित्र मीनाक्षी "स्त्री" मासिक पत्रिका लाती है और उसमें परित्यक्ता स्त्रियों की कहानियाँ पढ़ कर सुनाती है इसके बाद वे दोनों में वाद विवाद होता है और दोनों पुरुष को कोसने

- -

1. अरविंद जैन - औरत होने की सजा - पृ. 26

2. एकतारा - पृ. 46

लगती है । स्त्री को अन्याय करने वाले पुरुष पर गुस्से से मीना कहने लगी -"पुरुष निसर्गतः बहुपत्नीवादी होता ही है । उसके शब्द कोश में एक निष्ठा का नाम का शब्द नहीं है ।"[1] इस प्रकार पुरुष स्त्रियों को खिलौने समझ कर अनेक स्त्रियों से संबंध रखता है । इस संबंध में यदि कोई स्त्री द्वारा पुलिस में शिकायत करने पर भी कानून पुरुषों का पक्ष ही लेता है । अरविंद जैन लिखते है - "अदालत कहेगी - कोई जवान लड़की शादी के वायदे को सच मानकर संभोग की सहमति देती है और इस प्रकार की यौन क्रीड़ाओं में तब तक लिप्त रहती है जब तक गर्भवती न हो जाये । तो भारतीय दंड संहिता की धारा 90 कोई मदद नहीं कर सकती और लड़की को करतूतों को माफ करके लड़के को अपराधी नहीं ठहराया जा सकता ।"[2]

"द्वाभा" उपन्यास में ही श्री से श्री पुन कहती है कि "स्त्री आज पुरुष की क्रीतदासी है । आर्थिक दृष्टि से उसकी गुलाम है । इसलिए पुरुषों नेअपनी अबोध कामेच्छा के लिए और स्वार्थपूर्ति के लिए पतिव्रत का ढकोसला युग युग से चलाया । उसे धर्म के मंत्र जल से अभिर्सिंचित किया और पवित्र संस्कार बनाया ।"[3] इस प्रकार पुरुष अपनी स्वार्थ दृष्टि से धर्म का आड़ लेकर युगों युगों से स्त्री को वह अपनी दासी बना लिया है । वह भी सर्वमान्यता के आधार पर । स्त्री की विवशता यह है कि वह पुरुष जो पति है उससे अलग होना चाहे तो भी नहीं हो सकती है । इसके लिए पति की सम्मति आवश्यक है । वह स्वतंत्र रूप से पति से अलग नहीं हो सकती । "औरत होने की सजा" में पुरुष का दृष्टिकोण स्पष्ट होता है -"पत्नी हो तो पत्नी बनकर रहो - जैसे मैं चाहूं, जहां-चाहूं,

- -

1. द्वाभा - पृ. 45
2. अरविंद जैन - औरतहोने कीसजा - पृ. 27 (जयंती राम पंडा 1984 क्रिमिनल ला जनरल 1535 (कलकत्ता) से उद्धृत)
3. द्वाभा - पृ. 90

पत्नी का पहला फर्ज है अपने पति की आज्ञा के सामने आज्ञाकारी ढंग से अपने आप को समर्पित कर देना और उसकी छत के नीचे उसकी सुरक्षा में रहना {ए आई आर 1966 मध्य प्रदेश 212} तुम्हें बिना उचित कारण बताये अलग से घर बसाने का तब तक अधिकार नहीं है जब तक मैं न कह दूं कि मैं तुम्हें नहीं रख सकता {या रखना चाहता} फिर भी अगर तुम नहीं मानोगी तो मुझे विवश होकर कोर्ट से मेरे साथ रहने की डिक्री लानी पड़ेगी {भारतीय विवाह अधिनियम की धारा 9 ए आई आर• 1983 आंध्र प्रदेश 356 के अनुसार यह प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के विरुद्ध है। लेकिन अपील में सुप्रीमकोर्ट ने हाई कोर्ट के इस फैसले को रद्द कर दिया। ए आई आर 1984 सुप्रीमकोर्ट 1962 }"[1]

"तीस चालीस पचास" उपन्यास में मोहन भी यही बात कहता है कि "हमारे यहां सिर्फ किताबों में लिखा है कि स्त्री को देवी मानो, पूजो, और हर जिन्दगी में हकीकत यह है : इतना बड़ा जुल्म जितना हिन्दू नारी के साथ हुआ है, शायद ही हुआ हो।... हमने स्त्री को चक्की चूल्हे और उच्चे बच्चे से बांधकर रख दिया है। हिटलर ने भी यही कहा था - स्त्री का आदर्श है चर्च, बच्चे, रसोईघर।"[2] इस प्रकार पुरुष ने स्त्री को अपनी दासी बना लिया है।

"दर्द के पैबन्द" में डा० रेमतों द्वारा को धोखा देकर चले जाने पर सीता माणिक्यम कहती है - "देखो गरीब बेचारी सुता का क्या हुआ। उसकी जिन्दगी को उसने इस तरह जुठला कर फैंक दिया, जैसे यहूदी शादी के बाद जिस एक प्याले से शराब वधू वर एक साथ पीते हैं, उसे तोड़ डालते हैं। मनुष्य को किसी भी अन्य को इस तरह "उपयोग वस्तु" की

1• औरत होने की सजा - पृ• 32

2• तीस चालीस पचास - पृ• 47

तरह "ट्रीट" करने का क्या अधिकार ?"[1] इससे स्पष्ट होता है कि पुरुष स्त्री को कुछ वस्तु समझता है और उसे कभी कहीं पर भी छोड़कर जा सकता है । इसी उपन्यास की एक अन्य नायिका रीटा जो विदेशिनी है भारत की गौरवशाली सांस्कृतिक परम्परा की गाथा सुनकर यहाँ देखने आयी है । रीटा भारतीय सामाजिक जीवन में स्त्री पुरुषों की समानता को देखकर अत्यन्त आश्चर्य चकित हो जाती है । वह कहती है - "नारी के प्रश्न का एक मात्र उत्तर पुरुष के पास होता है - ज्यादा प्रश्न मत पूछ । तेरा सिर तेरे कंधों पर नहीं रहेगा । इसलिए भारत में अपने अनुभवों की तरह की कहानी सुनाने से पहले यह मन ही मन प्रतिज्ञा कर लेती हूँ कि मैं अंतिम प्रश्न नहीं पूछूंगी । अंततः पुरुष प्रधान समाज में प्रथम भी पुरुष ही है, अंतिम भी पुरुष ही । प्रश्न भी पुरुष ही है, उत्तर भी पुरुष ही है ।"[2] इस तरह से पुरुष प्रधान समाज स्त्री के प्रति एक आंतक मचा रखा है कि स्त्री उसे प्रश्न भी न पूछें । वह जो कहता है वहीं करना मात्र स्त्री का कर्तव्य रह गया है ।इस प्रकार पुरुषाधिकय समाज का अवलोकन एक विदेशी महिला के माध्यम से सशक्त रूप से माधवे ने अपने उपन्यास में चित्रित किया है ।

भारतीय समाज में परिवार में ही यह धारणा को उपजाती है कि स्त्री और पुरुष के कार्य क्षेत्र अलग है । पुरुष जैसा करता है वैसा स्त्री नहीं कर सकती । इस प्रकार परिवार में ही पुरुष का वर्चस्व अनायास स्थापित होने लगता है । "किसलिए" में भी "वल्लरी अपने पिता सुब्रह्मण्यम के मना करने पर भी कश्मीर में एक रेडियो स्टेशन पर आर्टिस्ट के रूप में चली जाती है । उसके बाद छोटी बहन ने पंजाबी युवक से प्रेम

- -

1. दर्द के पैबन्द - पृ: 65

2. -वही- पृ: 97

विवाह कर लिया और माँ की मृत्यु हुई। उनके पिता इन सब घटनाओं का दोष कल्लरी को देते है। पिता जी पुरानी परम्परा के आदमी है वे स्त्रियों को अंग्रेजी साहित्य आदि पढ़ने भी नहीं देते। इस पर कल्लरी कहती है कि पिता जी आप तो विदेश गए और आपने भी अंग्रेजी साहित्य पढ़ा होगा तो वे सुब्रमण्य कहते है -"पुरुषों की बात और है। वे सब कुछ पचा लेते है। शिव ने हलाहल पी लिया था। पार्वती ने नहीं। उसके कर्मों में तो सती बनकर मूर्च्छित होना और अंग-अंग टूटकर सारे भारत पर गिर पड़ना ही बदा था। देवी जगदंबे। मेरी बेटियों को कुछ बुद्धि दे।"[1]

अपने समाज में यह कुरीति चली आ रही है कि लड़की का जन्म अशुभ है। इस समस्या को माचवे जी ने अपने उपन्यास "लक्ष्मीबेन" में उजागर किया है। लक्ष्मीबेन अपने विद्यार्थियों को लेकर बस्ती वालों की समस्याओं को सुलझाने के लिए निकल पड़ती है। वह एक झोपड़ी के पास जाती है। वहाँ एक स्त्री को लड़की हुई थी। घर की बुढ़ी ने कहा -"फिर बेटी हुई। मेरी बेटी की तो किस्मत ही फूटी हुई है।"[2] और यह कहकर वह दहाड़ मारकर रोने लगी। इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उपन्यासकार माचवे जी लिखते है - "यानी आज, 1976 में भी (उपन्यास का प्रकाशन काल 1977) यानी नारी मुक्ति दशक का एक बरस पूरा होने पर भी स्त्रियों को लड़की का जन्म अशुभ लगता है। हद हो गई और ऐसे अज्ञान पीड़ित घर सैकड़ों होंगे। यह सारा "यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता" वाला देश है।"[3] "औरत होने की सजा" में पुरुष नारी से कहता है -"मुझ से ब्याह किया है तो पत्नी होने का धर्म निभाओ, आओ, मेरे सम्पत्ति के वारिसों को जन्म दो, पुत्र जन्मोगी

- -

1. किसलिए - पृ: 36

2. व 3. लक्ष्मीबेन - पृ: 43

तो भाग्यशाली और लक्ष्मी कहलाओगी, छत पर चढ़कर ननद थाली बजायेगी और सारे शहर में लड्डू बाँटे जायेंगे - पर याद रखना बेटियाँ जन्मी तो कुलक्षणी और अभागी मानी जाओगी क्योंकि छोरियाँ होने की खुशी सिर्फ वेश्याओं के यहाँ मनायी जाती है । मैं तो पैदा होते ही गला गला घोंट दूँगा, गड्ढे में दबा दूँगा या गंगा में प्रवाहित कर दूँगा । वैसे अब तो बच्चे होने से पहले ही "एमनियोसेंटीसिस" टेस्ट करवा लो । लड़की है तो गर्भपात सारे झंझटों से ही मुक्ति ।"[1] यह अपने वर्तमान समाज में स्त्री के प्रति पुरुष का रूप है ।

"लक्ष्मीबेन" उपन्यास में लेखिका कहती है कि पुरुष लेखक स्त्रियों के प्रति सही दृष्टिकोण नहीं रख पाते हैं । वे हमेशा स्त्रियों को अपने से नीचे ही रखना चाहते हैं । वह कहती है -"पर पुरुष लेखकों का उनके (स्त्री लेखिका) प्रति देखने का रवैया मुझे जरा भी नहीं भाता था । कुछ लोग तो यह मान कर चलते हैं जैसे कि उनके सामंती और प्राचीन मतवादी संस्कार है कि मानो वे स्त्रियों को अपने से नीचा, कुछ कम, कुछ क्षुद्र और पशु के समान मानते हैं । यह दृष्टिकोण बहुत गलत है । शास्त्रों में एक ही रथ के दो पहियों की बात कही जाती रही है । दोनों की समानता के आधार पर ही इतने विराट शिव अर्द्धनारीश्वर के बने और आज के पुरुष ने उसे इतना दयनीय और सहानुभूति का पात्र बना दिया ।"[2] इसी प्रकार पुरुष स्त्री को हमेशा अपना दासी बनाकर रखना चाहता है । इसी उपन्यास में लेखिका की मित्र सीमा की ऐसी ही कहानी है - सीमा एक कवि कलाकार कहलाने वाला मनोहर के प्रेम जाल में फंस गई और ऐसी दशा आ गई कि सीमा मनोहर के बिना जीवित नहीं रह सकती थी । दोनों का विवाह होगया । तब वह मनोहर ने अपना पुरुष रूप दिखाना शुरू किया । वह पत्नी को दासी और यौन गुड़िया के रूप में उपयोग करना

---

1. अरविंद जैन - औरत होने की सजा - पृ. 31
2. लक्ष्मीबेन - पृ. 97

चाहता था । अपने दोस्तों के साथ घर में बैठकें करता था और सीमा उनका आतिथ्य करती थी । मनोहर की कमाई कुछ भी नहीं थी । "धीरे धीरे शराब के नशे में धुत उसने सीमा को पीटना शुरु किया । सुसंस्कृत परिवार की सीमा घर की अच्छी थी और अपने मैके से वह और पैसा क्यों नहीं लाती, यही उसकी समस्या थी । मनोहर उसे पीटता और चाहता था कि वह जितना उसके साथ जंगली सलूक करे, उतनी ही वह एक दासी की तरह उसकी सेवा करे। पुरुष प्रधान समाज की इस बर्बरता को वह चुपचाप सहन करती । अपना दुख वह किस बताती ? यह पति सारा अन्न खा जाता । उसे भूखे रखता । घर में खर्च करने के लिए पैसे भी नहीं देता । अपने पैसे सब बैंक में जमा रखता । अपनी मौज और चैन के लिए विलास और व्यसनों के लिए चाहे जितना खर्च करता । और यह बेचारी केवल की ठंडे पानी के घूंट पिये, अपने आंसु सबकी आंखों से छिपाये रात रात भर छत की छतें या आसमान के तारे गिनती हुई, अकेली सूनी रातें बिताती । पति पता नहीं कहां कहां रहता और देर रात तक लौटता । मनोहर की इस जीवन पद्धति को वह बदल नहीं सकी । और तलाक लेने की भी हिम्मत नहीं थी । अंत में वह धीरे धीरे अस्वास्थ्य की शिकार बनी । उसे टी.बी. हो गया और वह एक दिन मर गई । पति ने श्मशान से अंतिम क्रिया की और दो माह के भीतर दूसरी शादी कर ली । यही से भारत थे जिन्होंने अनन्य प्रेम पर लंबी लंबी भावविह्वल कविताएं लिखी थी ।"[1] ऐसी कितनी ही घटनाएं इस पुरुष प्रधान समाज में हो रही है । किन्तु कोई ऐसी घटनाओं को रोक नहीं पा रहा है । जब तक पुरुष में अहं की भावना तथा स्त्री के प्रति

- -

1. लक्ष्मीबेन - पृ. 97-98

घृणा की भावना रहती है । तब तक ऐसे घटनाएं समाज में होती रहती है । अपने स्वार्थ के लिए स्त्री को लुभाकर, मोहित करके उपयोग कर लेते है । और बाद में उसे आश्रयहीन करके छोड़ देते है । तब उसके लिए स्त्री घुट-घुट कर मरना ही शेष रह जाता है ।

भारतीय स्त्री की कैसी विडम्बना है । वह अपने पति की रक्षा के लिए उसके सुख - संतोष के लिए पूजा करती है हालांकि खुद को पति कहलवाने वाला पुरुष शराब पीकर पत्नी को पीटता है । फिर भी जन्म जन्म में उसे ही पति के रूप में स्वीकारने की चाह व्यक्त करती है । यहपुरुष प्रधान समाज की रीति है । इसका चित्रण "दामुजा" में माचवे ने अदिति के माध्यमसे करवाया है । अदिति के पति सोमनाथ हमेशा उसके और नफरत और घृणा का रुख अपनाए हुए रहता है । फिर भी अदिति सब दोष अपने ऊपर डाल देती है । वह काली माँ के चरणों में आँखें मूंदकर अत्यन्त श्रद्धा से प्रार्थना करती है - "ऐसा पति और स्वामी मुझे जन्म जन्म में मिले । वह मुझसे अप्रसन्न रहता है तो क्या ? मुझे सन्तान नहीं हुई, विवाह होकर तीन वर्ष बीत गये, इसी से शायद वह अधिक शराब पीने लग गया है । देवी माँ ! तू मुझे शीघ्र एक सन्तान दे । पति को सुबुद्धि दे कि वह पत्नी को रात-बेरात देर से आकर न पीटे । सारी कमाई शराब के अड्डे और दोस्तों में न उड़ा दे । माँ, तू सबकी कामना पूरी करने वाली है । मेरी भी गुहार सुन..."[1]

"अनदेखी" उपन्यास में नायिका अनिता एक प्रोफेसर से बहस करते हुए कहती है कि व्यक्ति स्वातंत्र्य ही असली सुख है । स्त्री के इस सुख को पुरुष अपने नियंत्रण में ले लिया है और स्त्री कोअपने वश में कर लिया है ।

---

1. दामुजा - पृ. 10

वह कहती है - "हर व्यक्ति अपनी स्वाधीनता चाहता है । वही सुख है । पुरुषों ने स्त्री की स्वाधीनता को अपने हाथों में लेकर उसे पराधीन बना दिया । स्त्री के सुख का नियंत्रक बनने का अधिकार पुरुष को किसने दिया ?"[1]

इस प्रकार प्रभाकर माचवे ने अपने उपन्यासों में सामाजिक धरातल पर स्त्री के प्रति होने वाले अन्यायों को विशेषतः पुरुष प्रधान समाज में उसके प्रति होने असमानीयता का चित्रण यथार्थ के साथ किया है । जिसे देखने से स्पष्ट होता है कि समाज में स्त्री के प्रति पुरुष की दमन नीति किस प्रकार चल रही है ।

2.1.4. समान अधिकार और नारी :

यह सर्वमान्य धारणा है कि संसार का विकास स्त्री और पुरुष के समान योगदान से ही होता है । प्रकृति में पुरुष का जितना महत्व है उतना ही महत्व स्त्री का भी है । दोनों जीवन रूपीगाड़ी के दो चक्र है । किन्तु यथार्थ दृष्टि से देखने से पता चलता है कि इस संसार में पुरुष ने हमेशा स्त्री को अपने स्वार्थों के लिए उपयोग किया है । उसे अपनी दासी की तरह इस्तेमाल किया है और उस पर नियंत्रण रखा है कि कहीं उसके विरुद्ध वह आवाज न उठाये । इस प्रकार पुरुष के दमन नीति के कारण स्त्री अपने अधिकारों से वंचित होती रही है । इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव के विचार बड़े महत्व रखते है - "साहित्यिक और सांस्कृतिक गरिमामय शब्द जाल (सरस्वती या दुर्गा जगज्जननी, संहारिणी, भैरवी पराशक्ति) से आदमी ने औरत को जिस एक चीज को मारा, कुचला या पालतू बनाया है वह है उसकी स्वतंत्रता । आदमी हमेशा से नारी की

---

1. अनदेखी - पृ. 101

स्वतंत्र सत्ता से डरता रहता है, और उसे ही उसने बाकायदा अपने आक्रमण का केन्द्र बनाया है । अपनी अखंडता और संपूर्णता में नारी दुर्जेय और अजेय है । वहाँ वह ऐसी शक्ति है जो स्वतंत्र और स्वच्छंद है, कामी और स्वैरिणी...इसलिए आदमी ने उसे ही तोड़ा है । तोड़कर ही किसी को कमजोर और पालतू बनाया जा सकता है । आदमी ने लगातार और हर तरह कोशिश की है कि उसे परतंत्र और निष्क्रिय बनाया जा सके...तभी बोहवा कहती है कि "औरत पैदा नहीं होती बनाई जाती है ।"[1]

इस प्रकार आदमी द्वारा बनायी गई औरत अब आधुनिक काल में अपने अधिकार के लिए लड़ना चाहती है, संघर्ष करना चाहती है । भले ही अपने पूरे अधिकार उसे न मिले, कम से कम आवश्यक अधिकारों के लिए वह संघर्ष कर रही है । "महिलाओं ने अभी तक जो लड़ाई जीती है, वह केवल वैधानिक स्तर पर अधिकार प्राप्ति भर है । यों इस उपलब्धि के फलस्वरूप आज शासन, राजनीति, विज्ञान, शिक्षा, समाज कल्याण, उद्योग, व्यापार, नौकरियां, ट्रेड यूनियन तक सभी जगह न केवल स्त्रियों की पहुंच है, वे महत्वपूर्ण और जिम्मेदारीपूर्ण पदों पर भी आसीन है और उन्होंने इन सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा योग्यता का परिचय देकर सदियों पुरानी धारणाओं को भी बदल दिया है कि नारी पुरुष से हीन मानसिक स्तर की या दूसरे दर्जे की नागरिक मानी जाए । यह उपलब्धि अगली उपलब्धियों के द्वार खोलने वाली है इसलिए अपने आप में कम नहीं ।"[2]

---

1. राजेन्द्र यादव - भूमिका - औरत होने की सजा - पृ. 13
2. आशारानी व्होरा - नारी शोषण: आइने और आयाम - पृ. 239-40

वस्तुत: डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में भी चित्रित स्त्री पात्र अपने अधिकारों को प्राप्त करने की इच्छा रखती है और पुरुष प्रधान समाज के विरोध में प्रतिक्रियाएं भी व्यक्त करती है । इन उपन्यासों में चित्रित नारी पात्र स्वतंत्र अस्तित्व रखना चाहती है और पुरुषों के साथ समानाधिकार प्राप्त करना चाहती है ।

"दर्भा" उपन्यास में मीनाक्षी से उसका मित्र शंकरन भी यहा कहता है कि स्त्री को पुरुषों के समान अधिकार एवं मान देना चाहिए उसे दूसरे श्रेणी की दर्जा कतई पसंद नहीं है । वह कहता है - मैं मातृ सत्ता पितृ सत्ता कुछ नहीं जानता । मैं केवल यह जानता हूँ कि नारी को उचित स्थान समाज में दिया जाना चाहिए । आज अके बहुत से दु:ख इसी कारण है कि हमने स्त्री को उसका आदर स्थान नहीं दिया है ।वह कवि और कलाकार उसे भोग सामग्री मात्र समझते रहेंगे - संस्कृति विकृति ही बनी रहेगी ।"[1] स्पष्ट है समाज में जब तक स्त्री को उचित स्थान नहीं दिया जाता तब तक समाज का परिपूर्ण विकास नहीं होगा समाज का आधा हिस्सा नारी वर्ग शोषित दमित होता ही रहेगा ।

"तीस चालीस पचास" उपन्यास में मोहन कहता है कि स्त्री पुरुष संबंध मानवीय संबंध है । वह कहता है -"मैं स्त्री पुरुष संबंधों को केवल "ग्लास आफ वाटर थियोरी" नहीं मानता था । मैं लेनिन से सहमत था और हूँ कि स्त्री पुरुष संबंध केवल वासना के पशुवत प्राणिशास्त्रीय संबंध नहीं, मानवीय संबंध है । अत: मैंने स्वमाना का वरण किया, स्वेच्छा से पूरी जिम्मेदारी समझकर ।"[2] इसी प्रकार इस उपन्यास में उषा सोचती

- -

1. दर्भा - पृ. 97

2. तीस-चालीस-पचास - पृ. 20

है जैसे पुरुष का अलग व्यक्तित्व है वैसे ही स्त्री का । दोनों दो इकाइयाँ है । कोई किसी पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है । वह कहती है -"स्त्री का वैसा ही स्वतंत्र व्यक्तित्व है जैसे पुरुष का । मैं हूँ, अनिरुद्ध है । मैं और अनिरुद्ध कार्य कारण भाव से जुड़े नहीं है कि एक के बिना दूसरा जिंदा ही नहीं रह सकता हो । दो स्वतंत्र इकाइयाँ है ।"[1]

"किसलिए" उपन्यास में लेखक "अ" प्रश्न उठाता है कि हिन्दू धर्म में सिर्फ नीति नियम स्त्री के लिए ही क्यों है पुरुष के लिए क्यों नहीं है ? यह भेद भाव क्यों ? वह कहता है -"पतिता" किसे कहते है ? पतित के बिना पतिता कैसे संभव है ? पर पतित पर कोई दुख दरसाने नहीं जाता ? उस पर काव्य नहीं लिखे जाते ? न समाज की करुणा का वह इच्छुक न अधिकारी होता है ?"[2] इस प्रकार स्त्री पर उसके बिना गुनाह के लांछन लगा कर समाज में दोषी ठहरा दिया जाता है । वास्तव में तो दोषी पुरुष है जिसने औरत को "पतिता" बनाया है । किन्तु कोई भी पुरुष को बुरी दृष्टि से नहीं देखते बुरी दृष्टि सिर्फ औरत पर होती है ? यह कैसा न्याय है ?

"लक्ष्मीबेन" उपन्यास की नायिका लेखा सोचती है कि स्त्री पुरुष समान है । "लेखा आधुनिका है । कामकाजी, अकेली औरत है । पति ने छोड़ दिया - या उसी ने पति को छोड़ दिया - तो उससे क्या फर्क पड़ता है ? स्त्री पुरुष समान है । आधे-आधे फाँरा की अर्धनारी नटेश्वर की मूर्ति - बहुत पहले यह बहस हमारे यहाँ डेढ़ हजार बरस पहले इस तरह सुलझा दी थी, नारी मुक्ति दशक से बहुत पहले । आधी स्त्री, आधा पुरुष, कौन कम, कौन ज्यादा ? दोनों एक प्राण एक काया ।"[3]

---

1. तीस-चालीस-पचास - पृ. 41
2. किसलिए - पृ. 125
3. लक्ष्मीबेन - पृ. 10

फिर आगे सोचती है -"क्या पुरुष और नारी के लिए दो अलग अलग नीति - संहिताएं हैं ? क्या दोनों की भूख और प्यास अलग-अलग नीति ढंग की होती है ? यह सब बकवास है ?"[1] इस प्रकार वह तर्क के साथ सोचती है कि जब स्त्री पुरुष दोनों को भूख प्यास एक जैसा है और दोनों की मूलभूत आवश्यकताएं एक जैसी है तो दोनों को अलग अलग नीति संहिताएं क्यों ? क्या पुरुषों से महिलायें किसी मायने में कम है ? ऐसी भेद भाव क्यों होता जा रहा है ? आगे लेखा कहती है कि महिलाओं के लिए प्रति समाज में अनादि काल से भेद भाव अपनाया जा रहा है । वह कहती है -"सारे इतिहास साक्षी है तराजु का पलड़ा भारी होता है, जब बुराई दोष, कलंक या बदनामी मढ़ी जाती है, तो वह नारी के ही सिर, उसी का हिस्सा भारी है । पैर उसी का फिसलता है और भारी भी उसी का होता है ।

"लक्ष्मीबेन" उपन्यास में लेखा लेखिका के रूप में कहती है कि "मैं पूछती हूँ, किस बात में पुरुष हमसे बड़े है ? शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय ने "नारी मूल्य" में प्रथम वाक्य में ही कहा था : हीरा, पन्ना, मोती इन सब का मूल्य आंका जाता है । पानी की बूंद का मूल्य कोई नहीं आंकता । वह एक ओर आंख से ढलने वाले मोती की तरह है, जो गहरे आत्ममंथन के, घनीभूत पीड़ा के रूप में हृदयों के मरुस्थलों को सिंचित करता है और दूसरी ओर घनघोर सूखे और अकाल में वह धरती की उस आशा भरी उसांस के रूप में व्यक्त होता है, जो पृथ्वी को उपजाऊ बनाती है । उस बूंद की अगर कोई कीमत है, तो नारी का भी वही मूल्य है ।"[3]

- -

1. लक्ष्मीबेन - पृ. 30
2. -वही- पृ. 31
3. -वही- पृ. 97

"दाम्पुआ" उपन्यास की नायिका अदिति की समझ में अब आने लगा कि क्यों दुर्गा के एक के बदले दस हाथ है। उसके आयुध हमें बदलने होंगे। क्या हम नारी जागरण की बात करने वाले स्त्रियों के हाथों में सिलाई की मशीन, चरखा-करघा, ऊन बुनने की मशीन, हस्त शिल्प के अनेक प्रकार, ललित कलाओं के चौसठ रूप इस तरह दे नहीं सकते कि "अन्नपूर्णा" शक्ति स्वरूपा बन जाये। है यह कठिन मार्ग वह स्वयम् उस पर चलकर अनुभव कर ही है कि "शक्ति" की साधना कितनी कठिन है। जब ऊर्जा के सारे स्रोत सूख जायें, तब वह भीतर से प्राप्त होती रहती है।"[1] इस प्रकार अदिति स्त्री का रूप बदलना चाहती है। पारस्परिक ढंग से यदि नारी रहती है तो उसका उद्धार इस पुरुष प्रधान समाज में नहीं होगा। इसके लिए स्वयं में आत्म निर्भरता प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने की कामना करती है।

2·1·5· दहेज समस्या :

नारी जीवन की समस्याओं में सबसे जटिल समस्या दहेज की है। दहेज की समस्या के कारण कितनी ही कन्याओं का विवाह होते होते रुक जा रहा है। वास्तव में दहेज प्रथा हिन्दू समाज के लिए एक कलंक है। इस कुप्रथा के कारण अनेक अन्य सामाजिक एवं आर्थिक समस्यायें उत्पन्न हो रहे है। दहेज प्रथा के बारे में डॉ० महेन्द्र भटनागर को उद्धृत करते हुए डॉ० प्रेम रस्तोगी लिखते है - "हिन्दू समाज में वैवाहिक

- -

1· दाम्पुआ - पृ· 83

समस्या को सबसे अधिक जटिल बनाया है। दहेज प्रथा ने। अनेक सुंदर सुशिक्षित और सुसंस्कृत लड़कियाँ समुचितदहेज के अभाव में असुन्दर, मूर्ख और असंस्कृत लड़कों से ब्याह दी जाती है।"[1] हिंदी उपन्यासों में इस समस्या का व्यापक चित्रण हुआ है। डा०प्रभाकर माचवे ने भी अपने उपन्यासों में यत्र तत्र दहेज समस्या को उजागर किया है।

"अनदेखी" उपन्यास में दहेज प्रथा के संबंध में विस्तार के साथ विश्लेषण किया गया है। वे लिखते है - "रोज अखबारों में दहेज न लाने की वजह से स्त्रियों को नयी, बहुओं को जलाने की, कहीं-कहीं भूखा मारने, दूसरी मंजिल से नीचे फेंक देने और अनेक प्रकार की यातनाएं देने की कहानियाँ पढ़ी जाती है। कुछ मामले ही पुलिस तक पहुंच पाते है। ज्यादातर लोग इन्हें आत्म हत्याएं कह देते है। और इसमें मानसिक यातनाएं जो नववधू को ससुराल वाले, सास ससुर, ननद, देवर भौजाई और स्वयं पति देता है उनकी तो गिनती ही नहीं। धन का उपहार में मिलने वाले ऊपर के पैसे या वस्तुओं का ऐसा लालच और विकराल लोभ सबमें घर कर गया है कि गाँव गाँव में पहले साइकिल नये वर को चाहिए थी, तो उसमें अब ट्रांजिस्टर आ गया। नया सूट और साफा पगड़ी और चादर ही काफी नहीं, अब जहाँ बिजली पहुंच गई उसे चाहिए फ्रिज और टी॰वी॰ और वी॰सी॰आर।"[2] इसके आगे वे लिखते है - "इस चीज का कोई अंत नहीं है। लड़का नया नौकर या भावी पति साइंस में बड़ी डिग्री पा रहा है-इंजीनियरी या डाक्टरी की पढ़ाई का खर्च दो। विदेश में भेजने का खर्च दो। नौकरी कर रहा है तो उसके नाम जमीन खरीद दो, फ्लैट खरीद दो, किस्तों में रकम दो। कुछ नहीं तो उस

- -

1• डा० शैल रस्तोगी - हिंदी उपन्यासों में नारी - पृ• 308

2• अनदेखी - पृ• 111

लड़के की बड़ी बहन है, उसकी शादी पहले होनी चाहिए, उसका खर्च दो। कुल मिलाकर बस - दो दो, दो। यह इसलिए कि परंपरा से "वर" उच्च पक्ष है, ऊपर वाला है। वधू और उसके पक्ष को दबते ही जाना है, वह सदा गौण है।"[1] दहेज प्रथा के कारणों के बारे में चर्चा करते हुए माचवे जी लिखते हैं -"समाज में स्त्री की इतनी अवनत अवस्था बना देने में हमारी परंपरा, हमारे रूढ़िवादी अंध धर्म, नेता, हमारा सारा सोचने का ढंग बनाने वाली शिक्षा व्यवस्था - यहाँ तक की हमारे राजनेता भी जिम्मेदार है। बड़े व्यापारी, नेता, सब लोग उतारते है। वे ही उनके माडल है।"[2] इस के संदर्भ में एक उदाहरण देते हुए वे लिखते हैं - "हाल में देश में बड़े रजवाड़ों के विवाह के निमंत्रण पत्र लाखों रूपयों में छपे। राज्य सभा सदस्य जनवादी चित्रकार मकबूल फिदा हुसैन के विशेष चित्र उन निमंत्रणों पर छापने के लिए विशेष फीस दी गई। शादी न हुई फिल्म स्टारों की "स्पेशल मार्केट" हुई।"[3]

इसी उपन्यास में नायिका दर्शना दहेज से संबंधित हत्याओं के लिए पुरुष को जिम्मेदार मानती है। धर्मशास्त्र आदि ग्रंथ पुरुषों से बने होने के कारण स्त्री के प्रति भेदभाव की दृष्टि अपनायी गई है। ऐसा वह मानती है। वह कहती है कि "सती हो जाने का पुण्यकार्य उन्होंने (पुरुषों ने) ही बनाया। दहेज न लाने पर स्त्रियों को जलाना उन पुरुषों ने ही बहुत उचित और न्याय सम्मत माना।"[4] दर्शना अपने पास दहेज से मरने जलाने वाली स्त्रियों के भारत के एक ही अंचल और जाति की स्त्रियों के कई उदाहरण पढ़े थे। उनके बारे में विस्तृत समाचार उसने प्रोफेसर साहब को दे दिया था। इसमें लगभग 10 दहेज हत्याओं का

- -

1,2,3. अनदेखी - पृ: 111

3. अनदेखी - पृ. 101

समाचार था - "कृष्णा हत्याकांड 2. मंजु हत्याकांड 3. रेखा हत्याकाण्ड, 4. नाजु हत्याकांड, 5. पुष्पा हत्याकाण्ड, 6 पुष्पा दहन काण्ड, 7. सरोज हत्याकांड 8. किरण हत्याकांड, 9. मन्जु शर्मा हत्याकांड और 10 प्रभा हत्याकांड ।"[1] यह लेखा जोखा तो मात्र उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया गया है । वास्तव में देश के प्रत्येक प्रान्त में ऐसी घटनाएं अनेक होते रहते है जिनमें महिलाओं की जिन्दगी का तबाही होते रहता है ।

"लक्ष्मीबेन" उपन्यास में भी लक्ष्मीबेन जब झुग्गी झोपड़ी वालों की समस्याओं को सुलझाने के लिए निकल पड़ती है तो वहां भी उसे ऐसी ही समस्या देखने को मिली । लक्ष्मीबेन जो किस्सा सुना था यों था - "एक लड़की थी । नई नई शादी होकर यहां लायी गई । गांव से शहर में पहली बार पति बेकार था । उसके बदन पर से एक एक नकली गहने भी उतारकर ले गया । बेचकर शराब पी गया । वह रोज उसे मारता - पीटता था । कहता था - मैके जाकर पैसे लाओ । नहीं तो मैं घर से निकाल दूंगा ।"[2] इस प्रकार दहेज के कारण स्त्रियों के जिन्दगी संकटपूर्ण हो गयी है । माचवे ने ठीक ही कहा है कि बड़े बड़े धनवान अपने बेटे-बेटियों के विवाह में खूब धन खर्च करते है और खूब दहेज देते है, उसी के देखा देखी में समाज के अन्य लोग भी दहेज लाने के लिए वधु को विवश करते है । ऐसी घटनाओं का चित्रण माचवे जी ने बहुत ही यथार्थ के साथ अपने उपन्यासों में किया है । जिसे पढ़कर पाठक को सामाजिक व्यवस्था में फैली इस कुरीति के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है ।

कभी कभी दहेज के कारण वधुओं को वर का सही जोड़ मिलना मुश्किल हो जाता है । इसका चित्रण माचवे जी ने "दर्द के पैबन्द" उपन्यास मे किया है । उपन्यास की नायिका श्वेता अपने मित्र वसुबन्धु से कहती है

- -

1. अनदेखी - पृ. 102-104

2. लक्ष्मीबेन पृ. 40

कि उसके माँ-बाप उसकी शादी दहेज के कारण किसी विधुर से करना चाहते थे। किन्तु ऐसा न करने की जिद करने से विवाह नहीं हो पाया। कृता कहती है - "माँ ने पहले बहुत कोशिश की कि मेरा ब्याह किसी भले घर में कर दिया जाय। हमारी जाति में दहेज की समस्या थी। तो माँ उससे बचने के लिए इस पर भी राजी हो गई कि किसी पढ़े लिखे, कमाते विधुर के ही गले में बाँध दी जाऊं। पर मैं भी पक्की हो गई थी। मैं पुरुष मात्र से घृणा करने लगी थी। मेरे हर बार साफ घरवालों से कह दिया कि मेरे ऊपर आप अपने निर्णय मत लादो। मैं घर छोड़कर भाग जाऊँगी।"[1] इस प्रकार दहेज के कारण से कन्याएं प्राय: योग्य साथी को पाने से वंचित रहने की घटनाएं देखने को मिलती है।

सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने वधू दहेज के मामले पर अपनी गहरी चिन्ता व्यक्त की और उत्तेजनापूर्ण स्वर में स्वीकार किया - "हाल ही में हमारे देश में सामने आने वाला यह तथ्य दुर्भाग्यपूर्ण और चिंताजनक है कि वधू हत्या की घटनाएं खतरनाक रूप से बढ़ रही है। अगर समाज से यह बुराई दूर करनी है तो यह बहुत जरूरी है कि जब कभी इस प्रकार के कायरतापूर्ण अपराधों का पता लगे और मुलजिम पर अपराध साबित हो जाए तो अदालतों को ऐसे अपराधियों के साथ बहुत कठोरता से पेश आना चाहिए और ऐसा दंड देना चाहिए कि दूसरे लोग सबक ले (दिल्ली राज्य प्रशासन बनाम लक्ष्मण कुमार ए आई आर 1986 सुप्रीमकोर्ट 250)"[2]

2·1·6· विवाह :

"विवाह समाज की एक अनिवार्यता है, समस्या नहीं", किन्तु आज की विषम परिस्थितियों ने इस अनिवार्यता को भी एक समस्या

1· दर्द के पैबन्द - पृ· 58-59

2· औरत होने की सजा - पृ: 82

का रूप दे दिया है। विवाह प्रथा संसार के सभी देशों में प्रचलित है। संसार में अनैतिकता को देखने का प्रमाणिक उपाय विवाह ही है। इस तथ्य से मुख नहीं मोड़ा जा सकता है। प्रत्येक देश की अपनी परम्परायें होती है और आचार विचार होते है, उन्हीं के अनुसार लोग विवाह के संबंध में सोचते है। सामाजिक संगठन में विवाह का महत्त्वपूर्ण स्थान है।"[1] किन्तु आज के वर्तमान परिस्थितियों में स्त्रियों के लिए विवाह एक बन्धन हो गया है। वह एक जंजीर है। "एकतारा" उपन्यास की तारा के माध्यम से यह स्पष्ट होता है। "इसने फीलस की "ओरिजन आफ फैमिली" पुस्तक पढ़ी थी जिसमें प्रेम को शारीरिक वासना से उत्पन्न बताया गया था। समाज के विकास के साथ विवाह पद्धति भी बदलती जा रही है। जैसे पहले युथ विवाह होते थे, बाद में जोड़ों के बीच में और अब एक पत्नी विवाह चले है। अब इस संस्था पर भी प्रश्न चिह्न लगाए जाते है, क्या यह मातृत्व वृत्ति नारी के लिए आवश्यक है। आज इस संस्था को ही नकारा जाता है क्योंकि यह एक बन्धन है।"[2] कुमारी तारा के मन में भी यही समस्या उठ खड़ी होती है। वह सोचने लगी "क्या यह (विवाह) स्त्री के जीवन के लिए आवश्यक है ? क्या वह उसकी मातृत्व वृत्ति की, स्त्रीत्व की पूर्ति है ? या विवाह स्त्री के जीवन में एक बड़ी जंजीर है, एक रोड़ा है, एक बाधा है।

विवाह कैसा ? प्रेम विवाह या करार के तौर पर दो व्यक्तियों का किया हुआ समझौता ? या अग्नि ब्राह्मण देवताओं की साक्षी में किया हुआ पाणिग्रहण ? या.....

- -

1. डा० शैल रस्तोगी - हिंदी उपन्यासों में नारी - पृ० 306

2. डा० कृष्णा रेणा - प्रभाकर माचवे के हिंदी उपन्यास - पृ० 21-22

छि: छि: तारा के चेतन मन को फिर पुकारा की - विवाह बन्धन है । वह विवाह नहीं करेगी, वह समाज सेवा करेगी । वह राष्ट्र के स्वतंत्र हुए बिना विवाह नहीं करेगी ।"[1]

इसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय विवाह भी अनेक शंकाओं से भ्रमित होता है । माचवे ने अपने उपन्यासों में इस समस्या की ओर भी दृष्टि डाली है । उनका मानना है कि अन्तर्राष्ट्रीय विवाह स्थिर एवं दृढ बन्धन में नहीं रह पाती । वे एक न एक दिन टूट जाती । यह धारणा आज के आधुनिक युग में व्याप्त होगई है । "कहाँ से कहाँ" उपन्यास में जर्मन के क्लिन और भारतीय किशा इसी पर चर्चा करते हैं। क्लिन कहता है कि यदि मैं तुम से शादी करूं तो माँ कहती है कि तुम्हें धर्मान्तर करना होगा । यानी ईसाई बनना होगा । किशा कहती है कि यदि यही प्रस्ताव मेरी माँ सुनती तो शायद कहती शादी कोर्ट में कर लेना रजिस्टर्ड ढंग से । तलाक लेने में उससे आसानी होती है । क्लिन कहता है --"दोनों माएं सत्य को ज्यों का त्यों स्वीकार करने को तैयार नहीं दोनों ओर, ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय विवाहों की सफलता में शक है । शायद सभी माताएं अधिक स्थिति स्थापकवादी, रूढिप्रिय होती है ।"[2]

भारतीय समाज में कुछ ऐसे भी जातियाँ जिन में बहुपतित्व और बहु पत्नित्व की प्रथा है । इसी तथ्य को भी डा० प्रभाकर माचवे जी ने अपने उपन्यासों में उजागर किया है । "अनदेखी" उपन्यास में दर्शन और मनोविज्ञान को पढ़ाने वाले धर्मकीर्ति शर्मा से कवि कलाकारों की जिन्दगी की चर्चा करते हुए कहता है कि अनेक ऐसे लोग थे जो एक

- -

1. एकतारा - पृ. 51
2. कहाँ से कहाँ - पृ. 42

से अधिक स्त्रियों से संबंध रखते थे । वनिता कहती है कि "पर एक घर में रहकर यह दोहरी जिन्दगी कैसे जी पाते थे ? तो धर्मकीर्ति कहता है - "एक तो भारतीय स्त्री बहुत सहनशीलता है । कुछ पत्नियों ने यह स्थिति अपने भाग्य के दोष स बताई । कुछ पत्नियों ने यह सोचा कि उन्हें सन्तान नहीं है, इससे पुरुष ऐसा एक से अधिकस्त्रियों ने यह सोचा कि उन्हें सन्तान नहीं है, इससे पुरुष ऐसा एक से अधिक स्त्रियों से संबंध रखते है ।"[1] इसी उपन्यास में वनिता शिमला के पहाड़ी प्रदेश में घुमने जाती है तो वहाँ पर पता चला कि वहाँ के लोगों में एक स्त्री के साथ अनेक पति होते है । वनिता कहती है -"ऐसे ही खोज खोज में एक दिन मुझे पता चला कि जौनसार बाबर में जैसे होता था, एक ही स्त्री के अनेक पुरुष पति होते थे । यहाँ यह बुरा नहीं माना जाता था , कुछ जातियों में ।"[2] यहि बात "धूत" उपन्यास के गाँव का भी है । वहाँ पर समाज सेविका द्रौपती गंदी बस्ती में समस्याओं को सुलझाने के लिए निकलती है तो उसे एक स्त्री से बहुपतित्व की जानकारी हासिल होती है । द्रौपदी कहती है कि - "एक स्त्री के साथ दो तीन भाइयों का एक साथ रहना, यहाँ आम बात है । मेरे नामद्रौपदी को लेकर उस स्त्री ने कहा - पाहिव के बेटे पांच थे । और उनकी एक ही ब्याहता थी । सो क्या बुराई है ?"[3]

इसी प्रकार अपनी डायरी में इसी गाँव की एकऔर किस्सा द्रौपदी लिखती है जिसमें बहु पत्नियों की जिन्दगी का वर्णन है - "आज मैं और कलिया एक बढ़ई के घर में गये थे । उसकी दो बीवियाँ थी और

- -

1. अनदेखी - पृ. 63
2. -वही- पृ. 94
3. धूत - पृ. 95

दोनों के बच्चे थे । घर में औरतें सब मज़े में, एक सी गरीबी और जहालत में रहती पड़ी थी । किसी को यह अहसास ही नहीं था कि शाम को शराब पीकर यह मर्द उन्हें बुरी तरह पीटता है और वे विद्रोह नहीं करती । उसी में सुख मानती है । करवा चौथ रखती है और जन्म जन्मांतर तक ऐसे ही पति की पुनर्प्राप्ति की प्रार्थना करती है । ऐसी औरतों को क्या समझाया जाये ?"[1]

समाज को सुधारने के लिए अनेक प्रकार से कार्य करने पर भी उसमें शीघ्र परिवर्तन मुश्किल है । कारण यह कि परिवर्तन बहुत ही धीरे-धीरे होता है और साथ में समाज में फैले अज्ञान, अशिक्षा, अंधविश्वास और रूढ़िगत रीतिरिवाजों के कारण और अधिक समय लगता है जैसे, सामाजिक कुरीति बाल विवाह को रोकने के लिए सरकार ने कानून बनाया है मगर व्यवहारिक रूप में लागू बहुत कम हो रहा है । आए दिनों बाल विवाह होते ही रहे है । "बाल विवाह निरोधक अधिनियम 1929 और हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 5 (iii) में विवाह के समय दूल्हे की उम्र 21 साल और दुल्हन की उम्र 18 साल से अधिक होनी चाहिए । अगर शादी के समय दूल्हे की उम्र 18 साल या दुल्हन की उम्र साल से कम है तो (शिकायत होने पर) हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 18 के अनुसार दोषी व्यक्ति को पन्द्रह दिन तक कैद या एक हजार रुपया जुर्माना या दोनों हो सकते हैं ।"[2] किन्तु ये सब कानून बेकार हो गये है । व्यवहारिकता में विफल हुए है - अरविंद जैन लिखते हैं - "हर साल अक्षय तृतीय यानी आखा तीज के मौके पर उस दिन हजारों अबोध और नाबालिग (दूध पीते बच्चों समेत) बच्चों को विवाह के पवित्र बंधन

- -

1. वही - पृ. 94
2. अरविंद जैन - औरत होने की सजा - पृ. 43

में बांध दिया जाता है । "बाल विवाह" के खिलाफ कानून जितने निकम्मे साबित हुए हैं उसका दूसरी तरह से विरोध भी उतना ही निरर्थक साबित हुआ है ।"[1] ऐसे ही विचार लक्ष्मीबेन उपन्यास में सुलक्षणा सोचती है - "कानून एक उपाय है। बनते है, उनमें सुधार और तरमीम भी लायी जाती है । पर कई कानून किताब में बंद पड़े रह जाते है । जैसे धर्मग्रंथों के सुन्दर उपदेश । शादा कानून इस देश में बने कितने बरस हो गये । क्या बाल विवाह का चेचक की तरह पूरा उन्मूलन इस देश से हो गया ?"[2]

2·1·7· प्रेम और धोखा :

प्रेम तो हृदयों का पवित्र संगम है । इसमें न पुरुष ऊंचा होता है और न स्त्री नीची होती है । दोनों के भाव यहाँ पर आकर एक हो जाते है परन्तु ऐसी पवित्र भावना के पीछे भी पुरुष कभी अपने स्वार्थ का पक्ष लेता है । और प्रेम को उपहासास्पद बना डालता है । बेचारी नारी यहाँ भी धोखा खा जाती है, पुरुष जब तक अपने मन में स्त्री के प्रति समानता की सोच नहीं रखता तब तक ऐसे नारी अपने स्वभाव के अनुकूल पुरुष पर विश्वास रखते हुए धोखा खाते ही रह जाती है । जहाँ तक सरकार और कानून का सवाल है, वे इतने उलझे हुए है कि पुरुष आसानी से उससे निपट सकता है और अपने आपको निर्दोष साबित कर लेता है । नारी को सिर्फ अपमान की घूंट पीने के लिए बचा रहता है । पुरुष का तर्क है कि "मैं तो तुम्हारी सुंदरता की तारीफ करके, शादी के सपने दिखाकर और चिकनी चुपड़ी बातें बनाकर कुछ

- -

1· अरविंद जैन - औरत होने की सजा - पृ· 41

2· लक्ष्मीबेन - पृ· 68

दिन तुम्हारे साथ मस्ती और और फिर अचानक एक दिन तुम्हें किसी बेगाने शहर की अनजानी, अँधेरी बंद गली में छोड़कर भाग जाऊँगा । तुम्हीं संभालकर रखना प्यार की यादें, मैं तो भूल जाऊँगा सारी कसमें, सारे वायदे ।"[1] यही स्थिति डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यास "दशभुजा" में उत्पन्न होती है । दशभुजा उपन्यास में अदिति का विवाह सोमनाथ से होता है । वह पति का साथ कलकत्ता देखने जाती है । दोनों एक दिन काली दर्शन हेतु मंदिर जाते है । अदिति श्रद्धा के साथ प्रार्थना में निमग्न थी तो सोमनाथ गायब हो गया । अदिति मंदिर के पास खोजती है फिर जिस सस्ते होटल में ठहरे थे वहाँ जाकर देखती है परन्तु कहीं पर सोमनाथ का पता नहीं लगा । इस प्रकार सोमनाथ ने अदिति को धोखा दिया ।

ऐसे ही "दर्द के पैबन्द" उपन्यास में कृता को अपने सहपाठी रमेश से प्रेम हो जाता है । कृष्णा रमेश पर विश्वास करती है किन्तु रमेश उसे धोखा देकर अन्य लड़की से विवाह करता है । कृष रमेश पर विश्वास करती है किन्तु रमेश उसे धोखा देकर अन्य लड़की से विवाह करता है । कृष्णा सोचती रहती है - "रमेश और शायद सारे पुरुष स्त्री को युगों युगों से इसी तरह के वादे देते रहे है । वे एक क्षण में अनन्तता का आभास देने की क्षमता रखते है। और बाद में उन्हें बड़ी आसानी से कहीं शापित दुष्यन्त की तरह विस्मृति घेर लेती है, कहीं दमयन्ती की आधी साड़ी लपेट कर नल की तरह वे भाग निकलते है । कहीं वह अपनी ही वासना का आरोप बेचारी स्त्री के मत्थे डाल कर पुरुरवा की तरह उर्वशी के नाम से हाय हाय करते रहे और कहीं वे "गन्धर्व कन्या

- -

1. अरविंद जैन - औरत होने की सजा - पृ. 27

चित्रांगदा की इच्छा थी, मैं क्या क्या करता ? कह कर अर्जुन की तरह जिम्मेदारी से बचते रहते हैं । ऋषि विश्वामित्र ने तो मेनका को यहाँ तक कह दिया —"यह बच्ची तो मेरी ही नहीं" । "यह पुरुष प्रकृति का उद्दाम शरीर भाष्य है । उसी ने शास्त्र लिखे, नीतियाँ बनाईं । और नारी को इस तरह कोसा है कि जैसे वही सब अन्याय की जड़ हो ।"[1] सुता रमेश का अन्य कन्या से विवाह का निमंत्रण पत्र देखकर मन में कहती है - "तो ये सब जन्म जन्म तक साथ बंधने, रहने , मरने के वादे कोरे शब्द हैं । मनुष्य भावुकता की बाढ़ में और वासना के ज्वार में कैसे कैसे ढंग से शब्दों को झूठी झूठी तौलता, बिखेरता और फैलाता रहता है ।"[2]

इस उपन्यास में आगे सुता का विवाह एक विदेशी नागरिक डा० हैमलटों के साथ होता है । उन्हें एक लड़का भी होता है किन्तु वह भी कमीना ही निकलता है । एक दिन वह लड़के को लेकर विदेश भाग गया । सुता फिर एक बार धोखा खा गई । इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए सुता के मित्र ऋजुबन्धु अपने मन ही मन सोचता है कि ऐसा केवल विदेशी पुरुष ही नहीं, स्वदेशी भी करते हैं । "भारत में और हिन्दू रूढ़ियों में भी पुरुष स्त्री को 'वस्तु' पण्यवस्तु या दास की तरह नहीं मनवाता आया है ? क्या हमारे यहाँ पुरुष स्त्री को इस तरह उपेक्षित और जूठा करके छोड़ नहीं देता ? और फिर पर रही अकड़ से उस समाज में सफेद कपड़ों की कलफदार इस्त्री और खोल में अपने अपने अधिक नीतिमान और श्रेष्ठ कहता नहीं फिरता ? कितने ही उदाहरण हैं जिनमें ऐसे महानुभावों ने जिन्होंने दो दो और तीन तीन ब्याह एक साथ, या एक के बाद एक करके, समाज में "नैतिक मूल्य" और "मानवतावाद" और "स्त्री के समान अधिकारों" पर अपनी राय दी है और उनकी प्रतिष्ठा में कोई आंच भी नहीं आई है ।

- -

1. दर्द के पैबन्द - पृ. 37-38

2. -वही- पृ. 47

बेचारी वे ठुकराई हुई उपेक्षिता उर्मिलाएं और परित्यक्ता दमयन्तियाँ यों ही दम तोड़ती रही है ।"[1]

"अनदेखी" उपन्यास में भी प्रेम का नाटक बनाकर के धोखा देने की एक घटना का उपन्यासकार चित्रण किया है । उपन्यास की नायिका दर्शना जो बीच में अंधी होती है, आपरेशन के बाद दृष्टि प्राप्त करने के पश्चात अपने एक मित्र के कहने पर शिमला चली जाती है। वह मित्र जो दर्शना से सहृदयता के साथ रहता था (दर्शना का) उसके आँखों को देखते ही घबराने लगा, बेचैन होने लगा । इसका कारण यह था कि दर्शना के आँखें एक तिब्बती लड़की के थे । तथ्य यह था कि इस मित्र के घर में एक तिब्बती लड़की काम करती थी । मित्र साहब ने उससे प्रेम संबंधस्थापित कर लिया था । वह मित्र डरपोक था, उसके बीबी बच्चे, परिवार कहीं दूर पर थे । उसने इस लड़की से शादी न कर के धोखा दिया । वह तिब्बती लड़की को घर से निकाल देता है । दर्शना को याद में तिब्बती से पता चला कि "उस बदमाश ने उससे जबर्दस्ती की । जब उसे बच्चा पैदा होने की बात का पता लगा तो घर से निकाल दिया । कुछ रुपये दे दिये और कहा कि जा रफा दफा कर जा अपनी गलती ।"[2]

"आभा" उपन्यास में भी ऐसी ही एक घटना का उल्लेख हुआ है । आभा को सहेली मीनाक्षी "स्त्री" मासिक का एक पुराना अंक उठाकर लायी थी जो एक निंद अनाथ महिलाश्रम, पूना से संबंधित विशेषांक था । उसमें एक ऐसी सत्य कहानी थी जो स्त्री को मीठी मीठी बातों से लुभाकर धोखा दिया जाता है । कहानी इस प्रकार है – "तीस बरस की सुन्दर युवती । विवाह के बाद उसके माँ बाप मर गये । दो तीन बच्चे हुए । पति भी

- -

1. दर्द के पैबन्द – पृ. 86
2. अनदेखी – पृ. 106

गुजर गया । बच्चों में सिर्फ एक लड़का बचा । थोड़ी सी खेती और पैतृक घर था । कुछ कामकाज करके पेट पालती थी । आगे किसी की संगत से उसका पैर फिसल गया । गांव में शोर मचा । उसे फंसाने वाले आदमी उसे बच्चे के इंतजाम के लिए बम्बई ले आये । वहाँ, एक अस्पताल में उसे रखा और वह भाग ब गया ।"[1]

"धूल" उपन्यास में भी द्रौपदी नामक समाज सेविका जिस गांव को सुधारने जाती है । उस गांव की बुराइयाँ को अपने डायरी में लिखती है । इस डायरी में एक ऐसी घटना की भी उल्लेख है जिसके अनुसार गांव की युवती से शहरी युवक द्वारा प्रेम करके धोखा दे कर चले जाने के कारण वह युवती मर जाती है । वह डायरी में लिखती है -"गांव की एक और लड़की से भेंट हुई थी । शहर से आये एक लड़के से उसे गर्भ रह गया था । वह छिप नहीं सका । लड़का उसे धोखा देकर चला गया । लड़की को बदचलन कहकर घरवालों ने मारा पीटा । एक दाई का चुपचाप पेट गिरवाने के लिए पैसे भी दिये गये । उसने इस बुरी तरह कसाई जैसे काम किया कि लड़की बेहोश हो गई । उसके पेट में जहर फैल गया । वह मर गयी ।"[2]

2.1.8. परित्यक्ता नारी :

परित्यक्ता नारी का चित्रण डॉ० प्रभाकर माचवे ने अपने अनेक उपन्यासों में किया है । विशेषत "द्वाभा" "लक्ष्मीबेन" और "दशभुजा" में आभा, लेखा और अदिति के माध्यम परित्यक्ता की मानसिक वेदना का चित्रण बहुत ही मर्मस्पर्शी है । यह चित्रण उनके जीवन के यथार्थ का दस्तावेज प्रस्तुत करता है ।

- -

1. द्वाभा - पृ. 44-45

2. धूल - पृ. 95

"आभा" हाभा उपन्यास की नायिका है । उसकी विवाह "श्री" से हुआ था । "श्री" ने उसे एक पत्री देकर छोड़ दिया । "आभा का जीवन एक अंधी गली के समान नियति नटी के हाथों में एक कठपुतली मात्र रह गया । उसे लगा कि वह कभी किसी की पत्नी नहीं रही, वह नहीं जानती किसी को आत्मसमर्पण करना । वह निरी निश्चल नयनों वाली पत्थर की प्रतिमा है, जिस पर बहुत सी धूल जमी है । जिसका काम तटस्थ, अविचल, अनासक्त दृष्टि से दृष्टि व्यापार को देखते जाना भर है । उसका बाहर की इस संवेदन राशि में कोई साझा नहीं है । वह अभिशप्त अप्सरा सी कालेज में यंत्रवत् अपना पढ़ाने का काम कर रही है ।"[1] आभा हमेशा दुखी रहती है । वह अपने पति के संबंध में सोचती रहती है । उसकी प्रतिमा की पूजा करती है । और बेटी के "पिता जी कहाँ है ?" जैसे प्रश्न को टाल देती है । "उसी प्रतिमा को, उसी छवि को, सहसा उसका मन हुआ, क्यों न उठाकर फेंक दूं ? यह सब पूजा - अर्चा, यह सब युग युग का छलावा, यह जन्म जन्मान्तर की प्रवंचना की प्रवंचना, यह इकतरफा, प्रत्याशाहीन प्रतिदान रहित, निरंतर देते ही जाना..."[2]

आभा के मन में पुरुष मात्र से घृणा उत्पन्न होने लगी थी । सत्काम जब हंसता है तो उसे असहनीय होने लगता है । वह सोचती है - "सभी पुरुष एक से हंसते है । मनु महाराज ! आपने तो सभी स्त्रियों के भाग्य में एक सा आंसूओं का दीप जलाने का विधान पत्थर की लकीर की तरह लिख डाला । पुरुष का काम सिर्फ हंसते रहना और पुजापा लेना ही है क्या ?"[3]

आभा अपने मित्रों के साथ पिकनिक के लिए जाती है । वहाँ आभा की दोस्त मीनाक्षी एक गाना गाती है । जिसका भाव आभा के जीवन दर्शन से मिलता जुलता है । गाने का भाव यह है -"माना कि तुम मुझे नहीं चाहते,

- -

1. प्रभाकर माचवे के हिंदी उपन्यास - डा० कृष्णा रैणा - पृ. 24

2. हाभा - पृ. 12

फिर भी मेरे चाहने को तुम कैसे रोक सकते हो...। "वन तुलसी की मंदिर सुगंध काँटे की बागड से नहीं रुकती ।"माना कि तुमने अपने दिल से मुझे निकाल दिया है, फिर भी मेरे दिल मे जो तुम्हारी तस्वीर है वह पक्के रंगो से बनी है और वह आँसुओं से नहीं धुलती । "यह प्रतिमा तुम्हारी उपेक्षा के घन की चोट से भी नहीं टूटेगी, क्योंकि यह प्रतिमा स्मृतियों के सप्तधातु की है । विरह की आग से यह गलती नहीं और निखरती है ।"[1] अंततः आभा इसी मनोव्यथा से टी बी की रोगिणी बन गई और उसने अस्पताल मे दम तोड दिया ।

"लक्ष्मीबेन" उपन्यास की लेखा की भी ऐसी ही कहानी है । वह अपने पति से अलग रहती है । एक लड़का है । वह पति के साथ रहता है । वह अकेली रहती है । इतिहास के प्रोफेसर के नाते एक कालेज मे अध्यापन कार्य करती है । परित्यक्ता लेखा सोचती है कि "भारत मे एक परित्यक्ता, तलाकशुदा स्त्री की क्या हैसियत है ? अकेली, कामकाजी औरत के साथ लोग किस तरह पेश आते है ? कालेज की स्टेनोग्राफर लड़की बता रही थी - बहन जी, आप इन पुरुषों को नहीं जानती - इनकी पकी उम्र हो जाये और कब्र मे पाँव लटक रहे हो तो भी इनकी तृष्णा नहीं मिटती ।"[2] लेखा हमेशा अपने जीवन के बारे मे सोचती रहती है । उसकी हंसी भी दर्द को छिपाने का एक बहाना है । "लेखा जैसी स्त्री की हंसी भी एक बहाना या मुखौटा होती है ।"[3]

लेखा के जीवन एक असहनीय, अभिशाप जैसा लगने लगता है । "लेखा ऐसी नियतीवादी निराशावादी विचारों से जल्दी जल्दी छुट्टी पाना चाहती है और इसलिए उसने अपने आसपास कालेज की कई तरह की अन्य सामाजिक सांस्कृतिक कार्यक्रमावलियों का जाल बुन रखा है, जिसमे उसका मन छिप जाये ।"[4]

- -

1• आभा - पृ• 18

2• लक्ष्मीबेन - पृ• 14

3• लक्ष्मीबेन - पृ• 18

4• लक्ष्मीबेन - पृ• 22-23

"लक्ष्मीबेन" उपन्यास का निचोड़ प्रस्तुत करती हुई डॉ० कृष्णा रेणा जी लिखती है --"नारी का उतना श्रेय नहीं मिलता जितना उसे मिलना चाहिए था, आज उसका लेखन भी मजबूरी, विवशता बन गया है - उसी का नहीं, मानव मात्र की विवशता है । उसके सामने नारी के स्त्री पत्नी, बहन, बेटी, और माँ के परम्परागत रूप आ गये और दूसरी ओर अपना अन्तर्द्वन्द्व । कालिज मे इतिहास पढ़ाने वाली अध्यापिका प्रो॰ लेखा, गुप्ता, उसका बाह्य रूप है, घर मे वह एक परित्यक्ता पत्नी, एक पुत्र होकर भी पुत्रहीन माता, एकाकिनी है । वह समाज कल्याण हाथा की सक्रिय सदस्या लक्ष्मीबेन है, वह राजनीतिक क्षेत्र मे जाकर सुलक्षणा देवी एम एल ए भी बन सकती है और वही अन्ततः योगिनी अलखिता है परन्तु इन सब बाह्य रूपों के भीतर एक अंतर्धारा और बह रही है । एक अदृश्य सूत्र की तरह जो अलखवती है लेकिन वह है नैतिकता "न" परन्तु शान्ति कहीं नहीं है ।"[1]

"दशभुजा" उपन्यास मे नायिका अदिति के साथ सोमनाथ का विवाह हो जाता है । सोमनाथ कलकत्ते की काली मंदिर मे अदिति को छोड़कर चला । जाता है । अदिति अकेली काली मंदिर के पास और जहाँ पर ठहरे थे उस होटल के पास सोमनाथ को ढूढती है किन्तु वह कहीं भी नहीं मिलता । तब वह उस नये शहर मे अपनी मित्र महिमा के पास जाती है और अपनी कहानी सुना देती है । तब महिमा जीविका के लिए कुछ काम बता देती है । अदिति के मन मे हमेशा अपने पति के प्रति द्वेष की भावना रहती है । वह हमेशा दुखी रहती है । "अदिति कलकत्ते मे परिस्थितियों की चपेट मे आकर बसी । शरीर से वह जरूर उस महानगर मे थी । पर उसका मन वहाँ नहीं रम पाया था । जम सकता ही नहीं था । वह छोटे से देहात मे, कस्बे मे, जन्मी पली बढ़ी । जब नैहर का कोई पाश या बंधन नहीं बचा । जाये तो किधर जाये ?

- -

1· डॉ० कृष्णा रेणा - प्रभाकर माचवे के हिंदी उपन्यास - पृ॰ 85

और ससुराल का यह हाल कि पति ने अकारण उससे द्वेष करना शुरू कर दिया और अकारण उसे एक अब उसे मानवी संबंध मात्र पर संदेह होने लग गया था । हर पुरुष उसकी निगाह मे एक अहेरी थी और वह अपने आपको एक असहाय हिरनी की तरह अनुभव कर रही थी । और वह अपने आपको एक असहाय हिरनी की तरहअनुभव कर रही थी, जिसके सारे मार्ग अवरूद्ध थे ।"[1] इस प्रकार अदिति अनेक कष्टो को झेलते हुए छोटी मोटी नोकरियो को करते हुए जीवन निर्वाह करती है और अन्त मे वह अभिनेत्री बन जाती है । अभिनेत्री बनने के बाद वह सम्पन्न हो जाती है । और विदेश चली जाती है ।

2.1.9. वेश्या समस्या :

भारतीय समाज की एक गंभीर एवं ज्वलंत समस्या है - वेश्या समस्या । नैतिक मूल्यो का ह्रास तथा सामाजिक व्यवस्था मे अनुशासन हीनता इस प्रथा का के कारण है । मूलत: इस समस्या के पीछे आर्थिक कारण है । अर्थाभाव के कारण ही समाज मे यह समस्या फैली है । वेश्या वृत्ति पुरुष क अहंकार की प्रवृत्ति का ही एक प्रतीक है । डॉ० शैल रस्तोगी ने इस संदर्भ मे गांधी को उद्धृत किया --"यह बड़े दु:ख और अपमान की बात है कि मनुष्य की नियामक है। स्त्रियो का जो अपमान किया है...उसके लिए उसको कठिन दण्ड भोगना पड़ेगा । जब स्त्री अपनी पूरी शक्ति से पुरुष के जाल से बचकर उसके नियमो और संस्थाओ के विरूद्ध आन्दोलन करती है तो वह हिंसात्मक ही क्यो न हो, कम प्रभावशाली नहीं होता । भारतवर्ष के पुरुषो को चाहिए उन हजारो स्त्रियो के विषय मे गंभीरतापूर्वक विचार करे जो इनकी नियम विरूद्ध अनैतिक वासना के लिए अपना इज्जत बेचती है ।"[2]

- -

1. दशभुजा - पृ. 46

2. डॉ० शैल रस्तोगी - हिंदी उपन्यासो मे नारी - पृ. 299

डॉ० प्रभाकर माचवे ने अपने उपन्यासों में भी वेश्या वृत्ति का चित्रण किया है। माचवे जी ने इस वृत्ति के पीछे मूल कारण आर्थिक माना है। आर्थिक विपन्नता, दरिद्रता के कारण ही विवश होकर नारी इस वृत्ति को स्वीकार करती है। "परन्तु" उपन्यास में नारी के रूपों की चर्चा करते हुए उपन्यासकार ने नारी को भिखारिणी के रूप में भी दिखाया गया है और इसके पीछे भूख को कारण बताया है। "नारी वह जो कि कुलवधू है फिर भी भूख और दारिद्र्य से पीड़ित होकर, दिन में ही अपने आपको बेच रही है। चोरी से नहीं, धोखे से नहीं, खुलेआम, केवल छः आने पैसे के लिए, जिसमें वह रोटी भर खा सके।"[1] लेखक नारी का एक और रूप प्रस्तुत करते हुए लिखता है कि जीविका के लिए स्त्री अनेक कष्ट सहने पर भी व्यभिचार करने के लिए विवश हो जाती है। "नारी वह जो कि आधी रात तक सिलाई का काम करती है और एकदर्जन कमीज सीकर पांच आने वेतन पाती है। उन कोठियों से जिन्हें अपने शरीर बेचकर उनके मूल्य में दो आने पैसे अतिरिक्त और कोई घातक रोग पाकर कृतज्ञ भी हो जाती है।[2]

वेश्यालयों में लड़कियों की भर्ती कैसे होती है इस पर विचार करते हुए "दशभुजा" उपन्यास के नवयुवक मंडली सोचता है कि इसके पीछे मुख्य कारण "धन" है। नव युवक मंडली का एक युवक कहता है -"क्योंकि अमुक लड़की का भाई या अमुक लड़की का बाप भी उसके देर से आने या इस तरह पैसा कमाने को देखकर भी नहीं देखता, यानी जानता है कि लड़की बुरा काम कर रही होगी। पर उसे वह जो पैसा घर में लाती है, उससे मतलब है और बातों से क्या करना ?"[3]

- -

1. परन्तु - पृ. 83

2. परन्तु - पृ. 83

3. दशभुजा - पृ. 68-69

"किसलिए" उपन्यास में वल्लरी के धोखेबाज पति जगन्नाथ ने अपनी पत्नी से व्यभिचार कराने पर तुला है । यह जान कर वल्लरी अपने परिचित मि॰ सिंह के पास दिल्ली चली जाती है । लेखक के शब्दों में "बाद में उन्हें पता चला कि वह दुष्ट शराबी जगन्नाथ अपनी पत्नी से वेश्यावृत्ति कराने पर तुला था । वह उसे बाध्य कर रहा था कि उसके जो मित्र आएं उनका भी वह मनोविनोद करे । जब हालत इस सीमा तक पहुंच गई, वह बेचारी एकवस्त्रा वहां से भागकर चली आई ।"[1] जगन्नाथ जैसे पुरुषों को कानून द्वारा सजा मिलना चाहिए किन्तु अपने कानून सख्त, इतने सुदृढ़ नहीं है कि उन्हें पकड़कर सजा दी जा सके । भारतीय दंड संहिता (1860) की धारा 497 के अनुसार अगर कोई पुरुष किसी महिला के साथ महिला के पति की सहमति और अथवा सहयोग से यौन संबंध स्थापित करता है तो कोई बात नहीं । (यहां शायद यह मान लिया जाता है कि पति पर पुरुष को अपनी पत्नी के साथ संभोग की अनुमति दे देता है तो पत्नी भी सहमत होगी ही ।) मगर कोई पुरुष यह जानता हो कि उसकी प्रेयसी किसी और की पत्नी है और उससे यौन संबंध स्थापित करने के लिए उसके पति से ■ सहयोग - समर्थन नहीं जुटाता, तो वह व्यभिचार का दोषी होगा - भले ही महिला, परपत्नी या प्रेयसी लाख इच्छुक हो और लाख सहमत हो ।"[2]

"लक्ष्मीबेन" में "लेखा" जो समाज सुधार के लिए लक्ष्मीबेन के नाम से निकलती है । वह जिस बस्ती में गई थी वहां का किस्सा है -"एक अच्छा भला कमाता हुआ परिवार । दोनों पति-पत्नी मिल में जाते थे । एक दो बच्चे भी थे । घर में बूढ़ी मां थी । पर धीरे धीरे पति जब मेल की पाली में मिल में जाने लगा, उसकी बीवी का संबंध एक पड़ोसी गुंडे से हो गया । उसने पहले

- -

1. किसलिए - पृ. 48

2. अरविंद जैन - औरत होने की सजा - पृ. 92

उसे सहानुभूति दिखाई । बूढ़ी माँ को मंदिर ले जाना । धरम करम की बातें । छोटी मोटी चीजें बच्चों को ला देता । फिर तोहफा देने के बहाने एक दिन उसने उस बीवी को ही उड़ा लिया ।"[1] इसप्रकार के यौन संबंधों से भी समाज में व्यभिचार वृत्ति फैलने लगती है । इस कार्य के पीछे पैसा काम करता है । मनुष्यों के बीच जो संबंध मानवीय धरातल पर अब तक थे व अब अर्थ के आधार पर स्थिर होने लगे हैं । माचवे जी ने लक्ष्मीबेन उपन्यास में लिखा है -"मनुष्य संबंधों के बीच पैसा कैसा जहर घोल देता है । यहाँ इस बस्ती में देखा जा सकता था और उसमें मनुष्य की दो आदिम वासनाएं क्षुधा और काम रोटी की और साथी की तलाश - उसे किस हद तक अंधा बना देती है । एक ही आदमी की एक से ज्यादा औरतें, एक ही औरत के एक से ज्यादा पति और वे सब गैरकानूनी । जारटन, अवैध संतानें, बच्चों का अवारा हो जाना, अनैतिक काम के लिए छोटे लड़के लड़कियों का व्यवसाय, दलालियाँ कुटनियाँ, व्यभिचार के चोरी छुपके से चलने वाले अड्डे । बड़े शहरों में उन्हें पुश्य देने वाले अनेक "कवर" जैसे क्लब, होटल, डांसिंग क्लास, मालिश और स्नानघर, यहाँ तक कि धर्मांतर करके अपनी संख्या बढ़ाने वाले नेक इरादों के धर्म गुरुओं के मठ और आश्रम और पूजा स्थान, दफ्तरों में टाइपिस्ट, स्टेनोग्राफर और सेक्रेटरी के पद, प्रवासी, एजेंट, दुकान पर "सेल्स" बढ़ाने के लिए लड़कियाँ इत्यादि इत्यादि ।"[2]

यही समस्या "धूत" उपन्यास के गाँव की भी है । जहाँ पर भी मठ मंदिरों में व्यभिचार चलता है । गाँव की नौजवान विधवाएं और अन्य इस वृत्ति को चलाते हैं । समाज सेविका द्रुपदी गाँव के सर्वेक्षण के लिए कलिया के साथ निकलती है तो कलिया ही इन स्त्रियों से मिलती है । द्रुपदी अपनी डायरी में लिखती है -"मंदिर के पास की गली में कई नौजवान विधवाएं और दूसरी

- -

1. लक्ष्मीबेन - पृ. 41

2. -वही-

स्त्रियाँ रहती थी । कलिया उन्हे जानती थी । उनको आजीविका का एकमात्र आधार चोरी छुपके व्यभिचार ही था । धर्म की ऊँची नाक के नीचे इतना अँधेरा मैने कहीं नहीं देखा ।"[1] वह अपनी डायरी मे यह बात भी लिखती है --"इटली मे पोप महाराज विराजते है । पर रोम के वेश्यालयों की गिनती बेशुमार है । धर्म और सेक्स का यह संबंध बहुत पुराना है शायद । स्त्री को धर्म ने सबसे ऊँचे उठाया और धर्म के ठेकेदारों ने रूढिवादियों ने उसे सबसे नीचे गिराया ।"[2]

"किसलिए" उपन्यास मे तथाकथित समाज सेवक नेता, राष्ट्रीय विचारों के देशभक्त ठाकुर गुरुप्रसाद सिंह अपनी काम वासना की पूर्ति के लिए गरीब विधवा, एक बेटी नैना की माँ अंबा का शोषण करता है । उसकी आर्थिक कठिनाइयों को दूर करके अपनी यौन पिपासा को तृप्त कर लेता है । जब कभी "अंबा" मना करने पर ठाकुर जी "अर्थ" की लालच दिखा देते है और वह अर्थ-भाव की स्त्री झुक जाती है । ऐसे ही एक बार ठाकुर की इच्छापूर्ति के लिए अंबा मना करती है "तो ठाकुर ने अपना हमेशा का अस्त्र निकाला - ये ले और सौ रुपये । नैना के लिए तुझे पढाई की किताबे, नये कपडे और टॉनिक खरीदने है न । ये नहीं चाहिए हो तो चलो यहाँ से वापस चुपचाप चले । रुआसी सी अंबा ने सौ का नोट उठा लिया और अपने ब्लाउज की जेब मे रखा और बाद मे जो हमेशा, होता था वही हुआ ।"[3]

2·1·10· देवदासी प्रथा :

देवदासी प्रथा विशेषत: दक्षिण भारत मे प्रचलित है । यह प्रथा एक प्रकार से वेश्या वृत्ति का पूर्व रूप है । "राजाओं, जमींदारों एवं अमीरों मे यह प्रथा

- -

1· "धूत" - पृ· 95-96

2· -वही- पृ· 96

3· किसलिए - पृ· 99

थी कि उनके यहाँ किसी भी धार्मिक कार्य के प्रारंभ में देवदासी का नृत्य होना आवश्यक माना जाता था । महात्मा गांधी ऐसे धार्मिक वेश्या वृत्ति को समाज का नैतिक पतन मानते थे । यह लज्जापूर्ण, अपमान कारक तथा दुख की बात है कि ऐसी अनेक स्त्रियाँ सतीत्व का भंग करके किसी पुरुष से पाप वासना की इच्छा करती है ।"[1] डॉ० प्रभाकर माचवे ने भी अपने उपन्यास "द्राभा" में देवदासी प्रथा का उल्लेख किया है । आभा की मित्र मीनाक्षी श्रद्धानंद अनाथ महिलाश्रम पूना से प्रकाशित "स्त्री" मासिक पत्रिका का पुराना अंक पढ़कर उसे सुनाती है । जिसमें एक सच्ची कहानी "देवदासी प्रथा" से संबंधित है । कहानी इस प्रकार है - "सावंत वाडी की ओर की देवादासी जाति की लड़की देवदासी जाति में लड़कियों के विवाह नहीं किये जाते । किसी देवालय में देवता की सेवा करना और विवाहिता की भांति किसी पैसे वाले राजमान के यहाँ रहना, यह बात प्रसिद्ध है । इस लड़की की माँ उसके बचपन में ही मर गयी । वह पूर्ण यौवना हुई । उसके मामा उसके लिए पति खोजने लगे । परन्तु लड़की को देवदासी का जीवन बिना पसंद नहीं था । कोई उससे विवाह नहीं करता था और उसके पढ़ने की भी कोई व्यवस्था नहीं हो रही थी। आखिर उसके बड़े भाई ने उसे इस आश्रम में लाकर रखा । वह लिखना, पढ़ना, सीना, पिरोना सीखी । लड़की का रहन सहन किसी भी कुलीन घराने की भद्रकन्या की तरह से है ।"[2]

मंदिरों, मठों, गिरजाघरों और अन्य संस्थाओं में होने वाले अनैतिक व्यवहारों पर प्रकाश डालते हुए "दर्द के पैबन्द" की सुता कहती है - "जवान स्त्री पुरुषों को आजीवन अविवाहित रखने वाले सारे मोनॉटिक धर्म -बौद्ध, जैन, ईसाई, बाद में गांधी जी के ब्रह्मचर्य - विवाहेतर ब्रह्मचर्य पर आग्रह

- -

1. डॉ० विमल सहस्त्र बुद्धे, हिंदी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण - पृ. 79

2. द्राभा - पृ. 43-44

वाले संघ आतंकवादी क्रांतिकारी और कम्युनिस्टों के आरंभिक शुद्धिवादी {प्युरिटैनिक} समूह और ऐसे सभी समुदाय जो प्रकृति के विरुद्ध अपनी अकेली नैया खेते रहे है, बहुत सफल नहीं हो पाये । यह कहना गलत होगा कि सारे साधु मुनि, कैथलिक "मंक" और "नन" या गांधीवादी अविवाहिता कार्य-कर्ता या क्रान्तिकारी आतंकवादी सब मनोविकृत के शिकार हुए या उनमे कोई महान आदर्शवादी व्यक्ति निकले ही नहीं । पर इतना सच है कि यह मार्ग जन साधारण का मार्ग नहीं है । यह प्रवाह से विपरीत अपनी नैया खेना है ।"[1]

2.1.11. सती प्रथा :

"अनदेखी" उपन्यास मे "सती प्रथा" का उल्लेख है । नायिका "दर्शना" एक समाज सेवा केन्द्र की "साक्षरता" विभाग मे काम करती थी । एक दिन समाचार पत्र मे "सती प्रथा" का समाचार आया । जिसे पढ़कर वहाँ के स्त्रियों को उसने सुना था "देवराला, सितम्बर 16 {पु.ट्र.हिं} अठारह बरस की रूपकुंवर सितम्बर 4 को राजस्थान के सीकर जिले के इस गांव मे अपने पति की चिता पर बैठकर "सती" हो गई थी । उसकी "चूनरी" का समारोह देखने लाखों लोग जुट आये । x x x "सती स्थल से एक किलोमीटर दूर रूपकुंवर की "हवेली" एक तीर्थ स्थल की तरह बन गया था । सब लोग आकर अपना प्रणाम और श्रद्धा के सुमन चढ़ाने के लिए आगे बढ़कर होड लगा रहे थे । सब उस पवित्र स्थान का दर्शन करना चाहते थे । एक झलक मात्र । वहीं पर पूरा दुल्हन का साज श्रृंगार कर यह लड़की सती हो गई थी ।"[2] इस समाचार

- -

1. दर्द के पैबन्द - पृ. 58

2. अनदेखी - पृ. 40-41

को सुनने के बाद नवसाक्षरों में तर्क वितर्क होने लगा । एक महिला ने कहा कि "यह धार्मिक मामला है इसमें सरकार को दखल नहीं देना चाहिए" तो दूसरी महिला जो तेज तर्रार थी । वह बोली --"क्या बात करते हो आप लोग । राजा राम मोहनराय के प्रयत्नों से लार्ड बेंटिंग ने सती प्रथा को बंद कराया उसे एक सदी से ऊपर हो गया । हमारे कानून में कहीं भी सती के लिए कोई संदर्भ नहीं है । धर्म के नाम पर यह एक तरह की नाबालिग लड़की की हत्या है । कानून के पंजे से बचने के लिए चिता को अग्नि एक छोटे से बालक से दिलवाया । यह स्त्री की स्वतंत्रता के अधिकार का हनन है । यह बर्बर प्रथा है ।"[1] बाद में दर्शना सोचने लगी कि "सती काण्ड" के बाद कितने लोगों की कितनी कितनी प्रतिक्रियाएं थी । किसी ने कहा - "बेपढ़ी लिखी औरतें ऐसी बेवकूफी करें तो ठीक है - पर यह स्त्री उसका पति उनके मां-बाप सब पढ़े लिखे थे । उपाधिकारी थे । शिक्षक थे । बोलिये, अब आपको क्या कहना है ? किसी ने कहा - उसे नशा दे दिया था ।"[2] इस सती काण्ड पर प्रतिक्रियाएं आ रही थी । बाद में दर्शना "प्राचीन भारत में स्त्रियां और शूद्रों की गुलामी" पढ़ती है । इसके बहाने माचवे जी ने सती प्रथा का इतिहास पाठकों को बता दिया है । "वैशाली जनपद के लोग 725 ईसा पूर्व में कहीं सती होती थी ऐसा एक उल्लेख मिलता है । पर महावीर या बुद्ध के समय कहीं भी सती का नामोल्लेख नहीं है । न रामायण में न महाभारत में । केवल पांडु की पत्नी माद्री सती हो गई थी ऐसा ही उल्लेख है । वह बाद का भी हो सकता है । महाभारत में बहुत से श्लोक बाद में जोड़े गये "प्रक्षिप्त" है ।"[3] "मध्ययुग में राजपूतों में जौहर होने लगा वह धर्मांतर के डर से । या शत्रु इन स्त्रियों को भगाकर ले जायें या उनके साथ बलात्कार न करें इसी डर से शायद यह प्रथा चली ।"[4]

- -

1· अनदेखी - पृ· 41

2· -वही- पृ· 80

3·व 4· अनदेखी - पृ· 99

इस प्रकार डा० प्रभाकर माचवे ने उपन्यास के सृजन के समकालीन समस्याओं का भी यथार्थ के साथ पाठक को बोध कराया है ।

2·1·12· विधवा समस्या :

भारतीय समाज में नारी का मान मर्यादा पति के साथ जुड़ा हुआ है । जिस नारी का पति मर गया हो उस का ऐसे समाज में क्या गौरव हो सकता है, हम कल्पना कर सकते है क्योंकि भारतीय पुरुष प्रधान समाज में स्त्री का सब कुछ मान सम्मान, व्यक्तित्व स्वतंत्रता पति के आधार पर निर्धारित है । इससे स्पष्ट होता है कि विधवा की स्थिति भारतीय समाज में दयनीय है । वह समाज में घृणित मानी जाती है । उसे सामाजिक रीति रिवाजों में पूर्व एवं त्योहारों में दूर रखा जाता है । उसे अशुभ माना जाता है । उसके खाने पीने पर नियंत्रण रखा जाता है । वह मात्र प्राणी है, मनुष्य नहीं । "सधवा नारी के लिए पति उसका कवच ही नहीं ढाल भी है । परिवार उसका सहायक ही नहीं मुखापेक्षी भी है । सामाजिक परिपार्श्व में उसकी प्रतिष्ठा अनुमेय है । विधवा नारी समाज के लिए बोझ, परिवार के लिए एक अनपेक्षित दायित्व और अपने आप में एक अव्यक्त पीड़ा का साकार रूप है । परिवार के किसी भी धर्मांगलिक अनुष्ठान के अवसर पर विधवा की उपस्थिति अशुभ मानी गई अच्छा भोजन रस की लालसा और अच्छे वस्त्र की कल्पना भी उसके लिए वर्ज्य मानी गई । घर में विधवा की स्थिति एक ऐसी दासी की भांति थी जिसे बिना वेतन केवल रूखे भोजन एवं मोटे वस्त्र पर नियुक्त किया जाता है ।"[1]

- -

1· डा० स्वर्णकान्ता तलवार – हिंदी उपन्यासों में नारी समस्याएं– पृ· 161

डॉ० प्रभाकर माचवे ने अपने उपन्यासों में विधवा समस्या पर भी प्रकाश डाला है । विधवा की समस्याओं पर तथा समाज में उसके स्थान पर विचार विमर्श किया है । अपने पहले उपन्यास "परन्तु" में "हेम" का चित्रण विधवा के रूप में है । उसका विवाह एक उच्चवकील, बेकार, जमींदार के बेटे से हुआ था । उसका जल्दी ही देहान्त हो गया जिसके कारण अबोध "हेम" को "विधवा" रूप धारण करना पड़ा । उसके लिए सभी सुख और आनंद समाप्त हो गये ।

शोभा उपन्यास में सदानंद अनाथ महिला श्रम पूना से प्रकाशित "स्त्री" पत्रिका की एक सच्ची कहानी बाल विधवा से संबंधित है । कहानी इस प्रकार है - "उत्तर प्रदेश की एक बाल विधवा को पान खाने का शौक था । उसका जन्म तो बहुत ऊंचा कुलीन था इसलिए विधवा का पान खाना उसके रिश्तेदारों को पसंद नहीं था । उसकी आदत तो छूटनी असंभव थी इसलिए घर के लोग भी उसे अधिक बुरा भला कहते । अन्त में वह आत्महत्या के इरादे से घर छोड़कर बम्बई में आयी जहाँ वह गुंडों के हाथों में पड़ गयी । आर्य समाज की मारफत वह इस आश्रम में आयी और बाद में उसका पुनर्विवाह हुआ ।"[1]

"आँखें मेरी बाकी उनका" उपन्यास में उपन्यासकार ने एक बाल विधवा का वर्णन किया है । उपन्यास के नायक ने अपनी बहन बाल विधवा होने के बारे में बताता है - "बहुत बचपन में बड़ी बहन बाल विधवा हो गई । सबर आई बंबई में पति था , विवाह 12 वर्ष की आयु में हुआ । पति सात साल बड़ा था , उसे संग्रहणी से मौत प्राप्त हुई । अब घर में एक हंगामा । चूड़ियाँ फोड़ी गई, कपाल पर का कुंकुं मिटाया गया । नाना प्रकार के उस पर बंधन । वह रंगीन, किनारे वाली, साड़ी न पहने ।

- -

1. शोभा - पृ० 43

वह पान न खाये । उसे विवाह आदि उत्सवों में जाना वर्जित । एक ओर बड़ी बहन ऐसी ही बाल विधवा होने के पागल हो चुकी थी । अब यह "जीवन में ही मृत्यु" का दूसरा दौर । पिता और उनके सलाहकार भटजी भिक्षुक {पुरोहित} केशवपन कराना चाहते थे । माँ ने मना किया। सुंदर चेहरे के सुंदर बाल, इस तरह कटते कटते बचे । बहिन बहुत ही अभागी थी ।"[1] ऐसी बाल विधवाओं की जिंदगी सुधारने के लिए शायद उपन्यासकार यही सुझाव देते है कि स्त्री को शिक्षित होना चाहिए । यदि वह शिक्षित होती तो समाज में कुछ छोटा मोटा काम करके अपनी जीविका का निर्वाह कर सकती । इसीलिए उपन्यासकार ने इस उपन्यास में नायक के माध्यम से उसकी बहन को शिक्षित करवा के नौकरी दिलवाता है । उपन्यासका नायक कहता है -"मैं बड़ा हुआ, पढ़कर नौकरी करने लगा । तो पहला काम मैंने इस बहन को पूना में कर्वे जी के महिला विद्यालय में दाखिल करा दिया । कम से कम कुछ पढे तो जीवन सुध जाये । बहिन के ससुर ने भयानक रूप से विरोध किया । x x x बाद में वही बहन कमाने लगी । सास - ससुर उसकी कमाई के सहारे जी उठे। सारा क्रोध विरोध शांत हो गया ।"[2]

2.1.13. तलाक और भरण पोषण :

डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में परित्यक्ता नारियों की समस्याओं पर विशेष रूप से विचार किया गया है । वहाँ पति द्वारा प्रताड़ित व परित्यक्ता नारी अपनी जीविका के लिए अपने पति से गुजारा या गुजारा भत्ता पाने की कोशिश करती है मगर कानून इतने लचीले है कि बेचारी स्त्री को भरणपोषण का न्याय नहीं प्राप्त होता है ।"भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 में । अप्रैल, 1974 से यह प्रावधान

- -

1. बचि मेरी बाकी उम्रा - पृ. 23
2. -वही- पृ. 24

है कि अगर कोई साधन सामर्थ्य व्यक्ति अपनी पत्नी बच्चों [जायज या नाजायज] और माता - पिता की देखभाल या भरण पोषण करने में उपेक्षा करता है या उससे इन्कार करता है, तो पत्नी बच्चे या माता-पिता जो अपना भरण पोषण करने में असमर्थ है, उससे गुजारा भत्ता ले सकते है । लेकिन किसी भी स्थिति में यह राशि 500 रुपए महीना से अधिक नहीं हो सकती । यह राशि मिलने में भी बहुत से कानूनी किन्तु परन्तु है ।"[1]

"दरम्यान" उपन्यास में अदिति का पति उसे धोखा देकर चला जाता है तब वह अपनी मित्र महिमा के पास जाकर आगे कारवाई पर विचार विमर्श करती है । वे सोचने लगती है कि इस प्रकार पति धोखा देकर छोड़ जाता है तो क्या उसके विरुद्ध कानून कुछ नहीं कर सकता ? महिमा ने कहा " एक वकील मित्र से सलाह लेंगे । पति को नोटिस देंगे । वह अगर उसे छोड़ना चाहता है, तो उसे माहवार उसे कुछ "मुआवजा" कोई राशी देनी ही होगी । पर पति उस नोटिस को स्वीकार करे तभी तो यह हो सकेगा ? वह कई झूठी बातें कह सकता है कि पत्नी उसे "पीड़ित" करती थी..."पीड़ा को तुम में ढूंढा, तुम में ढूंढगा पीड़ा" तुममें ढूंढगा पीड़ा" भी तो हो सकता है ।"[2] इसी प्रकार के विचार विमर्श अदिति अपने पति की दूसरी पत्नी श्यामा से भी करती है । श्यामा अदिति पर सहानुभूति व्यक्त करते हुए कहती है कि सोमनाथ तुम्हें धोखा देकर मुझे भी धोखा दिया है । तुम कानूनी सहायता क्यों नहीं लेती ? तो अदिति कानूनी कारवाई को बहुत ही पेचिदा बताती है और कहती है - कानून बहुत मुश्किल है । यह सिद्ध करना कि वह [पति] मुझे शारीरिक यातना पहुँचाता है। या मानसिक - इसका साक्षी कौन होता ? और यह

- -

1. अरविंद जैन - औरत होने की सजा - पृ. 96

2. दरम्यान - पृ. 18

सिद्ध किये बिना कानून मुझे पत्नी के भरण पोषण के लिए दिया जानेवाला मासिक भत्ता कहाँ से दिलवाता ?"[1]

"किसलिए" उपन्यास में रेडियो स्टेशन में काम करने वाली वल्लरी जिसने (जर्मनी) कोरिया के जगन्नाथ के साथ प्रेम विवाह करके कटक लौट आती है। वह धोखा खा गई थी। उसका पति निकम्मा, धोखेबाज निकला। जगन्नाथ की शादी हो चुकी थी और उसके दो बच्चे भी थे। वह उन बच्चों को अपने साथ जबर्दस्ती से रखता था। वल्लरी के सभी गहने बेच कर खाने पीने में धन खर्च किया। आखिर स्वाभिमानिनी वल्लरी ने एक बच्चों के स्कूल में नौकरी कर ली। उसके कुछ बाद मिलने लगा। जगन्नाथ उसकी पहली पत्नी से दो बच्चे और स्वयम् का पालन पोषण उसने किसी तरह किया। किन्तु जगन्नाथ उसे और यातनाएँ देने लगा, व्यभिचार करने विवश किया तो वह अपने परिचित मि॰ सिंह के पास दिल्ली चली आयी। मि॰ सिंह और वल्लरी सोचने लगे कि जगन्नाथ से किस प्रकार तलाक लिया जाय। उन्हें सूझ नहीं रहा था कि किस मुद्दे के आधार पर तलाक लिया जाय ? क्योंकि भारतीय कानून के अनुसार पति पत्नी के साथ धोखा धड़ी करने के आरोप से तलाक नहीं लिया जा सकता। वे सोच रहे थे- "कानून में ऐसी कोई धारा नहीं है कि हिन्दू पद्धति से विवाहित स्त्री को पति यदि ठीक तरह से न रखे, तो वह इस बात पर तलाक ले ले। यदि पति पत्नी के साथ धोखा धड़ी करे तो भी कोई रास्ता नहीं है ?"[2] उपन्यासकार डा॰ माचवे जी ने तलाक किन-किन परिस्थितियों में मिल सकता है, विस्तार के साथ व्याख्यायित किया है वे कहते हैं -"और विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जब दोनों ने प्रेम विवाह

- -

1. द्वाभा - पृ॰ 100
2. किसलिए - पृ॰ 47

किया हो । सौगंध खा खाकर विदेश में जो प्रणय के बाद परिणय के एक सूत्र में स्वेच्छा से बंध रहो । जबकि स्त्री की उम्र काफी हो और वह माता बनने की इच्छा भी रखती हो । कानून के हिसाब से तीन बरस दोनों को एक दूसरे से अलग रहना चाहिए तभी विवाह विच्छेद संभव है । या फिर पति पत्नी को शारीरिक प्रताड़ना देता हो, जो सिद्ध की जा सके । मानसिक प्रताड़ना के लिए हिन्दू स्त्री क्या करे ? चुपचाप लहू के घूंट पीकर सहन करें । "अबला जीवन हाय, तुम्हारी यही कहानी ? आंचल में दूध चाहे हो न हो, आंखों में पानी तो जरूर उसका विवाहाधिकार है - जन्मसिद्ध अधिकार ।"[1] यही बात "लापता" उपन्यास में प्रशान्त उषा से कहता है । प्रशान्त अपने भाई को ढूंढ़ने निकला है उसे उषा मिलती है । उषा अरविंद से विवाह की है और वह उषा को छोड़कर चला गया है । तलाक के विषय में बहस करते हुए प्रशान्त कहता है कि "कानून यहां भी पुरुष के हक में है । तीन साल वह पत्नी से अलग रहे और सीधे "सैपरेशन" ले सकता है ।"[2]

2.1.14. प्रताड़ना और बलात्कार :

भारतीय समाज में नारी के प्रति प्रताड़नाएं एवं बलात्कार की घटनाएं दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है । नारी के मान सम्मान तथा सुरक्षा के लिए कितने ही कानून सरकार द्वारा बनाए गये है किन्तु नारी को समाज में मर्यादा के साथ जीने का आश्वासन कानून द्वारा नहीं मिल पा रहा है । नारी पर अत्याचार करने वाले लोग धन बल और वकीलों के बुद्धि बल पर तुरन्त कानून के बन्धनों से छूट रहे है ।

---

1. किसलिए - पृ. 47
2. "लापता" पृ. 64

घर में नारी जो पत्नी के रूप में रहती है उस पर जो अत्याचार पति के द्वारा होता है, उसका कोई समाधान नहीं है । उस स्त्री के लिए चुप चाप पति के द्वारा दिये जाने वाले यातनाओं को सहते जाना ही एक मात्र कर्तव्य है । इसका कोई हल तब तक नहीं होगा जब तक नारी में जागृति की भावना नहीं आती ।

डा० प्रभाकर माचवे ने अपने उपन्यासों में अनेक स्थानों पर स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों का चित्रण किया है । "आभा" उपन्यास में परित्यक्ता "आभा" द्वारा अपनी माँ को पिता द्वारा दिये गये यातनाओं का याद करवाकर गृहणी पर पति के द्वारा होने वाले अत्याचारों को दर्शाया है । आभा के स्मृति में आता है - "माँ भी इसी तरह तिल-तिल गल गलकर धरती से उठ गयी । भगवान ने दया की । पिता तो सदा शराब में धुत्त, निष्कंचन घर आने पर मरते दम तक मार मारकर माँ की छठी पसली एक करते रहते । एकाध बार आभा बीच में बचाने गई तो उसे भी उन बेतों का शिकार होना पड़ा । माँ ही थी कि चुप रह जाती । नील हाथ पैरों पर उभरते, पर उफ नहीं करती । और ऐसी कितनी माँओं ने यहाँ अपना जीवन पतिव्रता रूप पथरीली मंदिर देहली पर उत्सर्ग नहीं कर दिया ।"[1]

घर में स्त्रियों को जो यातनायें प्रताड़नाएं पति के द्वारा दिये जाते है उनसे कहीं अधिक कष्ट घर के बाहर होने वाले बलात्कार की घटनाएं है । "भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 375 (6) के अनुसार किसी भी पुरुष द्वारा सोलह वर्ष से कम उम्र की महिला की सहमति या असहमति से उसके साथ सहवास करना बलात्कार है, लेकिन धारा 375 के

- -

1. आभा - पृ० 11

अपवाद में प्रावधान है - अपनी ही पत्नी जिसकी उम्र पन्द्रह साल से कम न हो के साथ सहवास करना बलात्कार नहीं है ।[1] "1983 में हुए संशोधनों के बावजूद बलात्कार के संदर्भ में कानूनी प्रावधान दोषपूर्ण है । भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1983 में किये गये संशोधन के अनुसार 114 (ए) में यह प्रावधान किया गया है कि धारा 376 (2) की उप धारा ए.बी. सी. डी और जी के अंतर्गत बलात्कार के मामले में यदि महिला अदालत में यह कहती है कि उसकी सहमति नहीं थी, तो अदालत को यह मानना पड़ेगा । लेकिन यह प्रावधान सिर्फ पुलिस, सार्वजनिक सेवा में रत व्यक्ति जेल प्रबंधक, डाक्टर द्वारा बलात्कार या सामूहिक बलात्कार या महिला के गर्भवती होने की स्थिति में ही प्रभावी माना जायेगा । मगर इस हालत में भी "मर्जी" या "सहमति" के आधार पर अपराधी के बच निकलने के रास्ते मौजूद है ।"[2]

"लक्ष्मीबेन" उपन्यास में "नीटू" की बलात्कार की कहानी है । नीटू सोलह - सत्रह साल की इंटरमीडियट की छात्रा है जो प्रो. लेखा गुप्ता की प्रिय है । घर का वातावरण आधुनिक ढंग का था । पश्चिमी ढंग के कपड़े पहनती थी । "एक शाम को देर से वह अकेली घर लौट रही थी - घर दूर छावनी में या उप नगर में था, निर्जन बस्ती में बड़ा बंगला जहाँ तक बस नहीं जाती थी तो उस पर स्कूटर चालक ने बदमाशी से जंगल की राह की ओर ले जाकर अतिचार किया । पहले तो नीटू समझी कि यह आदमी पैसे चाहता है, तो उसने पर्स दिखा दी - उसमें दस-पाँच रुपये थे, कुछ "चिल्लर" या रेजगारी थी । वह आधुनिका होने से गहने ज्यादा नहीं पहनती थी । गले की नेकलेस, कान की बालियाँ नकली सोने की थी । वे भी दे दी । हाथ घड़ी दे दी । फिर भी वह नहीं

- -

1. अरविंद जैन - औरत होने की सजा - पृ. 54-55

2. -वही- पृ. 57

माना । उसने उस भोली लड़की से हाथापाई करनी शुरू की । नीतू ने जितना प्रतिकार किया, उस नराधम बन मानुस को और जोश चढ़ता गया । नीतू के कपड़े फाड़कर उसका मुंह और मुके बांधकर उस स्कूटर चलाने वाले ने उसके साथ मनमानी की । बलात्कार किया और वहीं छोड़ दिया । नीतू बेहोश हो गयी ।"[1] नीतू न स्कूटर नम्बर याद कर पाई थी और न स्कूटर वाले की चेहरे को पहचान पाती थी । इस कारण उसके माँ बाप रो धोकर चुप हो गये । पुलिस को इत्तला नहीं दी । चार पाँच महीने के बाद पता चला कि वह गर्भवती है । माँ बाप गर्भपात कराना चाहते थे किन्तु समय बीत चुका था । "नौ महीने पूरे हो भी नहीं पाये थे कि बच्चे का जन्म हुआ । बच्चा जन्मते ही मर गया । नीतू पागल हो गई । सारे होश हवास भुलाकर वह कपड़े फाड़ने लगी । पुरुष मात्र से वह नफरत करने लगी । अजनबी, दाढ़ी बेतरतीब बढ़ी, बाल बिखरे, जाकिट पहने व्यक्ति का गला घोटने वह भागती - हर ऐसा व्यक्ति उसे स्कूटर वाला ही लगता । माँ-बाप के लिए बड़ी मुसीबत हो गई - उन्होंने उसे पागलखाने में रख दिया ।"[2]

ऐसी ही एक दर्दनाक घटना बस्ती की युवती से "लक्ष्मीबेन" को सुनने में आयी । जिसने संरक्षण दिया पाला पोसा और बड़ा किया वही व्यक्ति उस लड़की के जीवन पर पानी फेर दिया । युवती अपनी दुःखद कहानी लक्ष्मीबेन को सुनाती है - "आप, हम लोगों की जिन्दगी कितनी मुश्किल होती है, समझ नहीं सकती । खानेवाला ही पत्तल में छेद करता है । बाप जन्म के बाद ही मर गये । जिस नजदीक के रिश्तेदार ने पाला पोसा, वही हम उम्र में आने पर हमसे क्या कर बैठा । पहले हम समझी कि बुजुर्ग है, पीठ पर हाथ फेरता है । जाने दो । पर मामला वहीं तक नहीं रुका । x x x "हमल रह गया । उसी नरपशु ने गिरवाया और जन्म

- -

1. लक्ष्मीबेन - पृ. 24 - 25

2. -वही- पृ. 26

भर केलिए अपने पहलवान के नीचे बांध लिया । हमसे काम करवाता था और हमारी मजदूरी भी छुड़ा ही पी जाता । बाद में साला अपनी ही करनी से बीमार पड़ा । मर गया ।"[1]

"दशभुजा" उपन्यास में भी एक बलात्कार की घटना का उल्लेख है । अदिति जिस मुहल्ले में रहती थी वहीं की एक हरिजन लड़की के साथ बलात्कार हुआ था । "सोलह वर्ष की उड़िया हरिजन लड़की सीता के साथ शाम के झुटपुटे में घटना हुई । वह बाजार की ओर गई थी, कुछ खरीदने । रास्ते में थोड़ा सुनसान हिस्सा पड़ता है । वहाँ गुंडों ने उसे घेर लिया । पैसे तो उसके पास क्या थे, गहने भी नहीं थे । उन्होंने कुछ नहीं तो उसकी इज्जत ही लूट ली ।"[2] अदिति द्वारा पुलिस थाने में रिपोर्ट लिखवाने पर भी न पुलिस गुंडों को पकड़ ली और न समाज वाले सीता के लिए कुछ कर पाये । सीता एक दिन अचानक अदृश्य हो गई । कोई नहीं जानता कि वह कहाँ गई है ? या फिर उसने आत्महत्या कर लिया ?

"आभा" उपन्यास में भी मीनाक्षी "स्त्री" पत्रिका की एक सच्ची कहानी पढ़कर आभा को सुनवाती है । कहानी इस प्रकार है - "पूना जिले के एक गरीब ब्राह्मण की लड़की । बाप पुरोहिती करता था । बारहवें बरस में उसका विवाह हुआ । दो तीन बरस में पति मर गया । उसके पीछे माँ - बाप भी मर गये। मौसी का आधार था । मौसी अकेली थी । परमार्थ साधन के लिए किसी गुरु की भक्ति में डूब गयी । उसकी कुसंगति

- -

1. लक्ष्मीबेन - पृ. 44
2. दशभुजा - पृ. 77

में वह लड़की भी गुरु की भक्तिन बनी । उम्र से युवती और रूप से सुन्दरी लड़की के प्रति गुरु के मन में पाप आया । परिणाम जो होना था वही हुआ । बेचारी श्रद्धानंद आश्रम में आकर प्रसूत हुई । गुरु जी ने परमार्थ का मार्ग न दिखाते हुए उस बेचारी को पाप की गर्त में धकेला ।"[1]

इस प्रकार नारी का पशु की तरह पुरुष द्वारा बलात्कार किये जाने के पीछे कारण क्या हो सकता है ? क्या मात्र पुरुष की काम भावना है ? इस प्रश्न पर विचार करते हुए डा० प्रभाकर माचवे ने दर्द के पैबन्द उपन्यास में अपने विचार प्रकट किया है -"क्या सारी हिंसा का मूल यह हविस है ? पुरुष की स्त्री के प्रति यर्वाधिकार जैसी दृष्टि ? वह फिर बढ़ कर दूसरों की भूमि, दूसरों की लक्ष्मी, दूसरों की पत्नी छपने की जिज्ञासा तक पहुँच जाती है ? हो सकता है, सारी बुराई की जड़ यह हथियाने की, छीनने की, बलपूर्वक अपनाने की, अपने सुख के लिए दूसरे का "उपयोग" करने की वृत्ति ही हो । इसी कृपा मैंसि दुख निकला.. पर फिर तथाकथित अनासक्त बैरागी, जोगी भी दुखी क्यों ।"[2]

2.1.15. कन्याओं की बिक्री :

"बेटी बेचने का तक किया जाय, उसके जवान होने की प्रतीक्षा का खतरा नहीं उठा सकता, क्योंकि उसकी संरक्षकता शायद बेटी की सुरक्षा कर पाने में सक्षम ही नहीं है । कुछ भी उल्टा सीधा होगया तो वह इस काबिल भी नहीं कि सालों न्याय के लिए कोर्ट कचहरी करता फिरे । करेगा तो खायेगा क्या ? और वकीलों को फीस देगा कहाँ से ? भूखा रहकर मुकदमेबाजी कर भी ले, लेकिन फिर भी क्या उसके साथ न्याय

- -

1. हमा - पृ. 44
2. दर्द के पैबन्द - पृ. 22

होगा ? शायद अमीना के गरीब माँ बापने भी इसीलिए अबोध बालिका का निकाह 60 वर्षीय सऊदी अरब के शेख समीह के साथ कर दिया होगा। अमीना पहली औरअकेलीलड़की नहीं जो इस तरह ब्याह दीगई हो। भारतीय कानून व्यवस्था की यह कैसी विडम्बना है कि अमीना कांड के मुख्य अभियुक्त सऊदी अरब के 60 वर्षीय शेख समीह को जमानत पर छोड़ दिया गया। काजी व अन्य लोगों के विरुद्ध अभी तक कोई कानून कार्यवाही नहीं की गई। लेकिन निर्दोष और अबोध ।। वर्षीय अमीना को दिल्ली के "बाल सुधार ग्रह" में रखने के अदालती आदेश दिए गए।"[1]

ऐसे घटनाए भारत में अब आम हो गयी है। कोई अपनी बेटी को सीदे सीधे बेच देता है तो कोई विवाहकी आड़ में उसे दूसरों के हाथ "धन" के लालच में सौंप देता है। नारी की यह सबसे दर्दनाक स्थिति है। नारी के प्रति होने वाले शोषणों की पराकाष्ठा है। "धन" के लिए नारी को "पण्य वस्तु" बना दिया गया है। मानवीय संबंधों का कोई अर्थ और मुल्य नहीं रह गया है। सबसे विचित्र बात यह है कि अपने कानुन ऐसी घटनाओं को रोकने में असक्षम है। इसी कारण चोरी चुपके कई अरब शेख या अन्य पुरुष भारत में आकर लड़कियों का एक प्रकार से खरीद कर के ले जा रहहे है।

डा० प्रभाकर माचवे ने ऐसी घटनाओं पर अपने उपन्यासों में प्रकाश डाला है। "किसलिए" उपन्यास में एक ऐसी ही घटना है जो एक वृद्ध बंगलादेश मे एक जवान लड़की के साथ ब्याह करके अमेरीका जा रहा था। इस घटना का ब्योरा बंगाली बाबु बेनर्जी के घर पर आए अतिथि

---

1. अरविंद जैन - औरत होने की सजा - पृ. 48

अर्जित देता है । उस सज्जन का नाम अमजद हुसैन था । उम्र उनसठ । जन्म चिट्गॉंग में । जो लड़की उनके साथ जा रही थी उसका नाम मैला था । उम्र बीस थी । मगर कम जान पड़ती थी । अभी उन्होंने उसके साथ निकाह किया था । अजित अमजद से यह पूछने पर कि यह आपकी पहली शादी है ? तो अजमद ने कहा – "नहीं जी, हमारा एक वाइट बीवी उधर था । उससे एक बेटा भी हुआ । पर दोनों हमको छोड़ दिया । x x x अब हम यहाँ से मेहर देकर यह हमारा नया गिन्नी [गृहिणी] ले जाता है ।"[1] इस प्रकार गरीब देशों से लड़कियों को खरीद कर ले जाने वाले पुरुष मानवता का परिहास उड़ाते है ।

"दर्द के पैबन्द" में भी गरीब पहाड़ी लड़कियों की बिक्री करने का उल्लेख मिलता है । माचवे जी लिखते है – "पहाड़ी लड़कियों की आम बिक्री, खरीद फरोख्त, नेपाल कोसीमा के कलकत्ता बम्बई के... चकलाखानों तक और वहाँ से पता नहीं किन किन देशों के गुलाम बाजारों तक उसी तरह चल रही है ।"[2]

स्पष्ट है आज मानवीय मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है । नारी के लिए क्रय वस्तुबना दिया गया है । इसके पीछे अर्थाभाव ही मूल कारण विदित होता है । इस प्रकार नारी का स्वतंत्र व्यक्तित्व का पूरीतरह हनन होने लगा है । इस परिस्थिति से नारी को न कानून उभार उठाया है और न ही सामाजिक संस्थाएं । आधुनिक काल में भी नारी अपनीजिन्दगी की यातनाओं को सहते हुए जी रही है ।

2.2. रंगभेद बनाम – पाश्चात्य एवं भारतीय जीवन का यथार्थ :

मनुष्य सामाजिक प्राणी है और वह समाज के एक दूसरे पर निर्भर रहता है । इस उक्ति में जितना सत्य है उतना ही सत्य यह भी है कि

- -

1. किसलिए – पृ. 168
2. दर्द के पैबन्द – पृ. 21

बलवान बलहीन का शोषण करता है। क्योंकि मनुष्य को बुद्धि का अहसास जब से होने लगा तब से जाति के नाम पर, धर्म के नाम पर, रंग के नाम पर, वर्ग के नाम पर, एक दूसरे का शोष करता आया है। इस तथ्य को हम कार्ल मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद मैटिरियलिज्म से स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। जिसके अंतर्गत आदिम साम्यवाद को छोड़कर बाकी सभी दास प्रथा, सामंतवादी और पूँजीवादी युगों में सामाजिक व्यवस्था वर्ग गत शोषण का शिकार हुई है। आशुतोष सिंह लिखते हैं - "यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि हमेशा ही अधिक शक्तिवान साधन संपन्न और और संस्कृति संपन्न लोगों और राज्यों ने कमजोर, साधनहीन, और निम्न संस्कृति वाले लोगों और राज्यों का इस्तेमाल किया। इसके लिए उन्होंने अपने हितों को ध्यान में रखते हुए सबसे पहले पिछड़े समाजों में अपनी आवश्यकता सिद्ध की। इसके बाद अपना विस्तार करना शुरू किया।"[1] आगे वे कहते हैं - "वर्ण व्यवस्था के नाम पर ब्राह्मणों क्षत्रियों और वैश्यों ने शूद्रों को अपनी श्रेष्ठता दिखाते हुए उनका भरपूर शोषण किया। इसी प्रकार का सलूक साम्राज्यवादी गोरी जाति के अश्वेतों के साथ किया।"[2]

वस्तुतः भारत में जाति प्रथा का जितना पुराना इतिहास है उतना ही पुराना इतिहास विश्व में रंगभेद का है। यदि हम दोनों समस्याओं का ऐतिहासिक विवेचन करते हैं तो स्पष्ट होता है कि इन समस्याओं के पीछे मूलतः आर्थिक तथा गौण रूप में सामाजिक राजनैतिक कारण दिखाई देते हैं। जाति की विशेषताएं बताते हुए डा० रामविलास शर्मा लिखते हैं - "जाति या बिरादरी की तीन विशेषताएं होती हैं।

---

1. आशुतोष सिंह (लेख) भेद और शोषण की श्वेत औपनिवेशिक नीति समकालीन सृजन (जाति भेद और रंगभेद विशेषांक) जुलाई-दिसंबर, 89 पृ: 190

2. -वही- पृ: 191

पहली विशेषता यह है कि बरादरी के सदस्य एक ही पेशे के होते है । दूसरी विशेषता यह कि पेशा वंशगत होता है, जो काम बाप करता है, वही काम बेटा भी करता है । तीसरी विशेषता यह है कि बिरादरी के सदस्य आपस में संबंधी होते है । किसी पेशे के सब लोग एक बिरादरी में शामिल हो जाए, इसका कारण यह है कि किसी काम में विशेष योग्यता प्राप्तकरने के लिए जरूरी है किआदमी हर तरह का काम करने की कोशिश न करे । जो आदमी किसानी करता है, वही जूते भी बनाए, वही घड़े भी बनाए, वही हल भी बनाए, तो जाहिर है कि वह कोई भी काम अच्छी तरह न कर सकेगा।"[1]

रंगभेद समस्या विश्व व्याप्त है । श्वेत और अश्वेतों में जो भेद भाव है वह साम्राज्यवादी पूंजीवादी मानसिकता के कारण उत्पन्न हुआ है । श्वेत जाति वाले हमेशा अश्वेतों को निम्न दृष्टि से देखते है । उन्हें नीचा दिखाने का प्रयत्न करते है । "दक्षिण अफरीका में गोरों की नीति इसी ढर्रे पर चली है । मूलतः उनका मानना था कि कि जातियाँ मानवता की मौलिक और प्राथमिक विभाजन है, अलग अलग जातियों के सांस्कृतिक और भौतिक गुण अलग अलग होते है और इस कारण श्रेष्ठ जातियां के सांस्कृतिक भौतिक गुण निम्न जातियों से उच्चतर है। वैज्ञानिक तर्कवाद पर आधारित नस्लवाद का सहारा लेकर उन्होंने अफरीकियों और अन्य अश्वेतों को यूरोपियन श्वेतों से हीन सिद्ध करना चाहा । डार्विन के विकासवाद का संबंध प्लेटो और अरस्तू की सोच की उपज ग्रेट चेन आफ बीइंग" के मिथक से जोड़ा गया, जिसमे मनुष्य बीच में आते है और मनुष्यों में श्रेष्ठ उपर और हीन नीचे होते है । इस श्रृंखला में श्वेत को सबसे उपर और अश्वेत को सबसे नीचे बताया गया है । कुछ अधिक परीक्षणों

---

1. रामविलास शर्मा - सामंती समाज मेंजाति प्रथा (लेख) समकालीन सृजन पत्रिका - पृ॰ 46

ने खोपड़ियों का अध्ययन करके यह निष्कर्ष दिया कि श्वेत लोग श्रेष्ठ है तो कुछ मनतत्वशास्त्रियों का निर्णय यह था कि बुद्धि परीक्षण के नतीजे श्वेतों को श्रेष्ठ सिद्ध करते है । दूसरी तरफ, अफरीकियों को असभ्य चोर, झूठे, सुस्त मंद बताया जाता रहा । इन पर मानवभक्षी होने और लंगूरों के साथ यौनसंबंध के आरोप भी लगाए गए । अल्जीरिया में रहने वाले एक फ्रांसीसी प्रोफेसर ने एक अमेरिकी मेडिकल पत्रिका में एक लेख लिखा । इस लेख में उसने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि मूल अल्जीरियाई जैविक रूप से अविकसित है ।"[1]

2·2·1· रंग भेद समस्या का ऐतिहासिक विवेचन :

रंग भेद या नीग्रो समस्या का उद्भव अफ्रीकी देशों में हुआ । अफ्रीका के देशों में नीग्रो जाति के लोग अधिक संख्या में रहते है । इस जाति के लोग अधिक पिछड़े हुए है । इस कारण अन्य देशों के समकक्ष नहीं हो सके है । यहाँ के लोग अविकसित होनेके कारण विकसित देशों के लोग इन्हें अपने दासों के रूप में खरीद फरोख्त किया करते थे । जिसके कारण अश्वेत लोगों की स्थिति दिन ब दिन गिरती जा रही थी । कुछ औपनिवेशिक, विकसित देशों ने अफ्रीकी देशों में शासन को अपने हाथ में लेकर उनका शोषण करने लगे । इस प्रकार संसार में रंग के नाम पर आदमी आदमी का शोषण करने लगा । इसी के परिणामस्वरूप आज संसार में रंगभेद समस्या एकगंभीर समस्या का रूप धारण किया हुआ है । फिर भी वर्तमान स्थिति में कुछ परिवर्तन हो गया है । 20वीं शती के छठवां, सातवां दशक तक रंगभेद समस्या अत्यंत गंभीर रूप धारण किया हुआ था । जिसके फलस्वरूप दक्षिण अफ्रीका अमेरिका, केनडा आदि देशों में में रंगभेद के आधार पर कानून तक बने हुए थेऔर उन्हें सख्ती से लागू भी किया जा रहा था । इन

1· आशुतोष सिंह – भेद और शोषण की श्वेत औपनिवेशिक नीति(लेख) समकालीन सृजन जुलाई-दिसंबर, 89 अंक – पृ· 191-92

कानूनों के विरोध में दक्षिण अफ्रीका और केन्या में अनेक आन्दोलन हुए, विरोध प्रदर्शन हुए और हिंसा हुई तब जाकर कहीं कानूनों में परिवर्तन किये गये ।

अमेरिका के प्रसिद्ध नीग्रो नेता एवं मार्टिन लूथर किंग के सलाहकार श्री बायार्ड रस्टिन के बारे में कहा जाता है कि "अगस्त 1963 में नीग्रो अधिकारों के लिए वाशिंगटन में जो ऐतिहासिक प्रदर्शन हुआ था उसके संयोजक रस्टिन ही थे । उनकी क्षमता का कमाल तब सारी दुनिया ने देखा जब उन्होंने अमेरिका के कोने-कोने से दो लाख प्रदर्शनकारियों का वाशिंगटन में इकट्ठा कर लिया और उस विशाल जुलूस का सफलता के साथ संचालन किया ।"[1]

नीग्रो आन्दोलन किस दिशा में आगे जायेगा ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री रस्टिन ने कहा - "यही सवाल तो हमारे सामने भी है । केवल हजारों लोगों का प्रदर्शन हो जाये, बसों और स्कूलों का अधिकार हो जाये, पिकेटिंग और धरने करते रहें, इतना ही पर्याप्त नहीं है । नीग्रो क्रांति जब तक समग्र राष्ट्रीय क्रान्ति का आधार नहीं बनेगी तब तक नीग्रो लोगों को उनके वास्तविक अधिकार प्राप्त नहीं होंगे, हालांकि यह प्रदर्शन और सत्याग्रह करते रहेंगे, पर जब तक आर्थिक क्रान्ति के लिए कोई पक्की योजना न बने और श्वेतांग समाज के हृदय को हम न बदल देंगे तब तक केवल सरकारी कानूनों के बदल जाने मात्र से हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकेंगे ।"[2]

अश्वेतों को अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए "रंग भेद" के विरुद्ध बगावत करने का ही निश्चय लेना पड़ा क्योंकि सत्याग्रह आदि का प्रभाव अमरीकी सरकार पर कम असर दिखाने लगा था । रस्टिन अपने

- -

1. सतीश कुमार - आदमी दर आदमी - पृ. 194

2. --वही-- पृ. 195

में "रंग भेद" के विरुद्ध बगावत करने की प्रबल भावना किस प्रकार उत्पन्न हुई - बताते हुए कहते है कि "यह भावना तो बचपन से ही मुझ में पैदा होने लगी थी । जब मैं अपने नगर वेस्ट चेस्टर की हाई स्कूल फुटबाल टीम के एक सदस्य की हैसियत से मेडिया नगर में गया हुआ था तो हम कुछ साथी एक रेस्तरां में खाने के लिये गये । वह रेस्तरां किवल श्वेतांगों के लिए था इसलिए वहाँ पर अन्य श्वेतांग मित्रों को तो खाने-पीने का समान दिया गया । परन्तु मुझे कोठा बता दिया गया । इस घटना ने मेरी चेतना को एड़ी से चोटी तक झकझोर दिया । मैं वहीं बहुत देर तक बैठा रहा और इस भेद भाव पर सोचता रहा । होटल मालिकों ने मेरी उपस्थिति को भी बर्दाश्त नहीं किया । मैं वहाँ से जबर्दस्ती निकाल दिया गया । उसी दिन से मेरे मन में भेद भाव का यह तेज और नुकीला कांटा चुभ गया । मैंने फैसला किया कि अब मैं इस रंग भेद को मिटाकर ही दम लूंगा । बचपन का यह फैसला अब तक मेरे साथ है ।"[1]

अमेरिका के प्रसिद्ध नीग्रो नेता तथा सन् 1964 के नोबेल शांति पुरस्कार को प्राप्त करने वाले डा० मार्टिन लूथर किंग पर महात्मा गांधी का प्रभाव अधिक रहा है । रंग भेद के विरुद्ध में उन्होंने गांधीवादी मार्ग को अपनाया था । इसलिए शायद नीग्रो आन्दोलन" के एक कार्यकर्ता ने ठीक ही कहा था कि - "गांधी जी मरने के बाद किसी हरिजन के घर में जन्म लेना चाहते थे, परन्तु बाद में शायद अमेरिका के नीग्रो लोगों की दुर्दशा देखकर उन्होंने अपना विचार बदल दिया और ऐसा लगता है कि श्री किंग के रूप में उनका कायाप्रवेश हुआ है । वे अमेरिका के गांधी है ।"[2]

डा० मार्टिन लूथर किंग ने अपने पर गांधी जी का प्रभाव कहाँ तक रहा है । इसकी चर्चा करते हुए कहते है कि -"एक हद तक गांधी जी

- -

1. सतीश कुमार -आदमी दर आदमी - पृ: 197-198

2. -वही- पृ: 200

ही मेरी प्रेरणा है । जब मैंने गांधी जी के सत्याग्रह के तरीकों को पढ़ा तब मुझे ऐसा लगा, मानो मेरे ही मन की बात को किसी ने भाषा दे दी हो । मुझे पहली बार इस बात का स्पष्ट दर्शन हुआ कि ईसा मसीह के सिद्धांतों को जीवन व्यवहार में अपनाकर गांधी जी के तरीके से सामाजिक तथा राजनीतिक विवादों को हल किया जा सकता है । खासतौर से नीग्रो स्वातंत्र्य की प्राप्ति के लिए गांधी जी का तरीका न केवल सिद्धांत के रूप में, बल्कि एक कारगर हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है । इस बात का सक्रिय अनुभव मुझे तब हुआ जब मोंटगोमरी में हमने दृढ़ता पूर्वक इस हथियार का प्रयोग किया और सफलता पायी ।"[1]

श्री मार्टिन लुथर किंग का कहना है कि –"यह सही है कि कानून पास हो जाने मात्र से नीग्रो गंदी बस्तियों को छोड़कर खूबसूरत मकानों में नहीं पहुंच जायेंगे । स्कूलों, सिनेमाओं और होटलों में बरता जाने वाला भेदभाव भी एक दिन में नहीं मिट जायेगा । शिक्षा का स्तर आसमान पर नहीं चढ़ जायेगा । बेकार नीग्रो काम पर नहीं लग जायेंगे । उनकी आर्थिक आय पलों में दुगुनी नहीं हो जायेगी और नीग्रो बच्चों को खूबसूरत कपड़े नहीं मिल जायेंगे । स्कूलों में पर्याप्त शिक्षक भी नहीं पहुंच जायेंगे और बीमार नीग्रो तुरन्त दवा नहीं पा जायेंगे । यह काम केवल कानून बन जाने से नहीं होगा । यह परिवर्तन तभी आयेगा, जब अमेरिका की जनता का दिल बदलेगा उनके मन में नीग्रो लोगों के प्रति सद्भावना पैदा होगी । पर कानून बन जाने से आज की हीनता की स्थिति पर हथौड़ा लगेगा । नीग्रो हीनभाव और दूसरी श्रेणी के नागरिक की सतह से उपर उठने के लिए तैयार हो सकेगा । इसीलिए कानून का भी इतना महत्व है ।"[2]

---

1. आदमी दर आदमी – पृ॰ 202
2. –वही– पृ॰ 206-207.

इस प्रकार अमेरिका में व्याप्त "रंगभेद" समस्या को खत्म करने के लिए अनेक महान नेताओं ने अपने प्राणों का बलिदान किया है। "अब्राहम लिंकन के बाद पहली बार स्वर्गीय राष्ट्रपति जान केनेडी ने नीग्रो जाति के गालों पर बहते हुए आंसू पोंछने का बीड़ा उठाया। काली और गोरी चमड़ी के नाम पर मनुष्य मनुष्य के बीच दुर्भाव घृणा और भेद पैदा करने वाले को उन्होंने जीवन के नये मुल्य अपनाने की अपील की तथा देश के समाने "नागरिक अधिकार कानून" उपस्थित किया। इसके पहले कियह कानून साकार हो पाता, केनेडी के सीने में बंदूक की तीन गोलियाँ दाग दी गयी। उनका सपना उनके रहते रूप नहीं ले सका। उनके उत्तराधिकारी राष्ट्रपति जान्सन ने कहा, "स्वर्गीय राष्ट्रपति को सच्ची श्रद्धांजलि देने का सबसे श्रेष्ठ साधन है - नागरिक अधिकार कानुन को यथावत् रखना। परन्तु गोरी चमड़ी को श्रेष्ठता का प्रतीक माननेवाले कुछ प्रतिक्रियावादी लोग केनेडी जान्सन की अपील को मानने के लिय राजी नहीं हो रहे थे।"[1]

वस्तुत: अमेरीका में रंगभेद समस्या का कारण पर प्रकाश डालते हुए मैक्स लर्नर का कहना है कि - "अमेरिका में काले गोरे का वर्ण द्वेष वास्तव में उत्तर और दक्षिण के झगड़े के कारण खड़ा हुआ। शुरू में जो नीग्रो या हब्शी मजदूर या गिरमिटिया बनकर आये जो लोग शर्तबन्द मजदूर बनकर आये या जो निर्वासन की सजा पाकर आये, वे धीमे धीमे समाज में लिए सस्ते मजदूरों कीब हुत जरूरत थी और अफ्रीका से पकड़कर लाये गए नीग्रो गुलामों के रूप में उन्हें ब बेदाम के या बहुत सस्ते मजदूर मिले। पर मनुष्य को गुलाम बनाना ईसाई धर्म के विश्वबन्धुत्व और लोकतंत्र की समानता दोनों के विरूद्ध था, इसलिए दक्षिण के गोरे जमींदारों ने अपने अन्त:करण को समझाने के लिए यह सिद्धांत निकाला कि गोरे लोग

- -

1. सतीश कुमार - आदमी दर आदमी - पृ. 204-205

शासक जाति के है और काले शासित जाति के । पर जातिगत ऊँच नीच का यह सिद्धांत न केवल अमेरिका के समता के आदर्श के खिलाफ था, बल्कि इससे अमेरिकन समाज का स्वरूप बिगड़ता था और उसकी गतिशीलता अवरूद्ध होती थी । फलत: गुलामों के प्रश्न को लेकर उत्तर और दक्षिण के राज्यों में युद्ध हुआ जिसमें दक्षिण की हार हुई और सभी गुलाम मुक्त हुए । पर हार जाने पर भी दक्षिण के गोरों ने वर्ण का अभिमान और नीग्रो लोगों को दबाये रखने की कोशिश नहीं छोड़ी ।"[1]

2·2·1· "जो" उपन्यास में रंगभेद बनाम वर्णभेद चित्रण :

डॉ० प्रभाकर माचवे ने अपनी अमरीका यात्रा के दौरान वहाँ की सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों पर दृष्टिपात किया था उसी के परिणामस्वरूप उन्होंने वहाँ की "रंगभेद" समस्या को उपन्यास का रूप देने का सफल प्रयास किया । डॉ० माचवे द्वारा लिखित इस उपन्यास का नाम "जो" है जिसमें अमरकीक नीग्रो जाति की सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है । इस उपन्यास के बीच बीच में भारती अछूत समस्या की तुलना अमरीका के काले गोरे लोगों की वर्ण द्वेष की समस्या तथा भारत में ब्राह्मण-अब्राह्मण या सवर्ण हरिजन की समस्या एक ही समस्या के विभिन्न पहलू प्रतीत होते है । वह समस्या है अज्ञान और दुराग्रह की सांचावादी चिंतन की जो हिंसा का मूल है ।"[2]

डॉ० प्रभाकर माचवे ने "जो" उपन्यास लिखने का उद्देश्य बताते हुए भूमिका में लिखते है - "1963 के जून में एक सप्ताह में मैने यह लघु उपन्यास लिखा । मेरा उद्देश्य अमरीका की राजनैतिक, सामाजिक, समस्या

- -

1· मैक्स लर्नर- अमेरिकी सभ्यता -(अनुवाद :आर पी एन सिंह) पृ·164

2· डॉ० विजय बहादुर-स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के संदर्भ में महाराष्ट्र की भूमिका - पृ· 61-62

काले गोरे के तनाव परकोई निषेधात्मक या समर्थनात्मक मत प्रदर्शित करना नहीं था । इस समस्या के मानवीय पक्ष को ही मैं देखता हूँ । x x x x मेरा उद्देश्य इस कहानी के लिखने में कुछ दूसरा था : मेरे मनको भारत की जाति भेद की समस्या सन् 1940 से ही, जब मैं सेवाग्राम में कई मास रहा, मथ रही थी । विदेश में जाकर यह समस्या और भी तीव्र रूप से मुझ कचोटने लगी । उत्तर दक्षिणादि भारत देश के विभाजनों पर अधिक जोर देते हुए पश्चिम के सामाजशास्त्री और नृवंशशास्त्री मिले । और मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि यदि मानवता एक है तो अमरीका के काले गोरे लोगों की वर्णद्वेष की समस्या को एक दृष्टि से और भारत के ब्राह्मण अब्राह्मण या सवर्ण हरिजन कीसमस्या को दूसरी दृष्टि से देखने से काम नहीं चलेगा । ये दोहरे पैमाने हम कब तक काम में लाते रहेंगे ? इसी व्यथा में से यह कहानी निकली है ।"[1]

यदि हम "जो" उपन्यास में रंग भेद" समस्या को विवेचनात्मक दृष्टि से देखें तो स्पष्ट होता है कि संसार में विकसित देश कहे जाने वाला अमरीका में भी मानवता के लिए आदर नहीं है वहाँ पर भी रंगभेद के आधार पर मनुष्य मनुष्य का शोषण कर रहा है । "जो" उपन्यास में अमरीकी नीग्रो जाति का यथार्थ जीवन चित्रण है जिसके अन्तर्गत उनका शोषण सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक दृष्टि से किस प्रकार होता है बताया गया है ।

अमेरिका में नीग्रो की रंगभेद" समस्या वैसी ही है जैसे भारत में अछूत समस्या ।" नीग्रो जाति को समाज में साधारण आदमी को मिलने

- -

1. जो: डा० प्रभाकर माचवे - पृ० 5 - 6 (भूमिका)

वाले अधिकार भी नहीं मिले थे । वे सभी मानव अधिकारों से वंचित एक प्राणी मात्र थे । इसी तथ्य का जिक्र करते हुए "जो" उपन्यास में रामन को मि॰स्मिथ बताता है कि यहाँ पर नीग्रो संगीतज्ञों की कोई सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं थी । वे आगे कहते हैं --"यह जो नीग्रो संगीतज्ञों की इतनी सामाजिक प्रतिष्ठा आज मैं देख रहा हूँ वह पहले से ही ऐसी बात नहीं थी । उसके लिए काफी संघर्ष उन्हें करना पड़ा । केण्टकी प्रदेश के लुईविल में राबर्ट होयस जब पहली बार उसी होटल में गाने आया, जहाँ कि वह पहले एक वेटर था, तो उसे एक परदे के पीछे खड़े होकर गाने के लिए कहा गया । वहाँ के गोरे श्रोताओं के लिए स्टेज पर एक काला आदमी का गाना एक ऐसा दृश्य था जो वे सहसा सह नहीं सकते थे ।"[1]

मि॰ स्मिथ की पत्नी वर्जीनिया भारत के युवक रामन को नीग्रो जाति के प्रति होने वाले भेदभाव का एक किस्सा सुनाती है - "वाशिंगटन में 1939 में मेरियन एण्डरसन को गाने केलिए वहाँ की स्त्रियों की संस्था "डाटर्स आफ रिवोल्यूशन" ने स्थान नहीं दिया । श्रीमती इलिओनोर रूजवेल्ट के बढ़ावा देने पर लिंकन स्मारक कीसीढ़ियों पर उसने अपना संगीत दिया ।"[2]

मि॰स्मिथ की पुत्री तथा भारतीय युवक रामन की सहपाठी डोरा ने एक और किस्सा सुनाया । जिसमें बेसी स्मिथ नामक नीग्रो स्त्री की दर्दनाक कहानी है । डोरा कहती है --"वह (बेसी स्मिथ) "ब्ल्यू" गाने वालों में सब से बड़ी औरत थी । जब वह मिसिसिपी प्रदेशों में दक्षिण में सफर पर गयी थी तो एक मोटर दुर्घटना की शिकार हो गयी और वह काली स्त्री होने से किसी ने अस्पताल में भर्ती नहीं किया । वह राह में ही मर गयी, जख्मों से खून उसका रिसता रहा ।"[3]

- -

1· प्रभाकर माचवे - जो - पृ· 8

2· -वही- पृ· 8-9

3· -वही- पृ· 9

उपर्युक्त तीन घटनाओं को यदि सूक्ष्मता के साथ आंका जाय तो स्पष्ट होता है कि नीग्रो की जिन्दगी भी वैसी है जैसे भारत में अस्पृश्य की हुआ करती है। माचवे जी ने इन तीन घटनाओं के माध्यम से यही स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि विकसित अमरीकी समाज में भी रंग के आधार पर भेदभाव बर्ता जा रहा है।

प्रभाकर माचवे "जो" उपन्यास में नीग्रो जाति के समस्याओं का यथार्थ चित्रण करने से पहले उस जाति का ऐतिहासिक विवेचन करना चाहते है। उपन्यास में भारतीय युवक जो कृषिशास्त्र का अध्ययन करने अमरीका आया है वह उपन्यासकार का स्थानापन्न ही है। रामन के विचार उपन्यासकार डा० माचवे जी के विचार ही है। इस उपन्यास के अन्तर्गत रामन नीग्रो जाति किस प्रकार गुलामी करने में विवश हुई इस की चर्चा एक पुस्तक में पढते है -"एक कहानी है कि पुर्तगालियों ने पन्द्रहवी सदी में एक गुलाम पकडा जो मुर यानी अफ्रीका का हब्शी थी। उसने अपने बदले में दस नीग्रो देकर गुलामी से अपना छुटकारा करा लिया। इसमें एक फायदा था, पुर्तगाली धर्मप्रचारकों को। मुर इस्लाम धर्मावलम्बी होने से उसका धर्म परिवर्तन पूर्णतः संभव नहीं था। "हीदन" होने से पांच आत्माओं को मुक्ति देने का पुण्य पुर्तगालियों को मिल गया। x x x xx x 1517 ईसवी में रेवरेण्ड बिशप लास कासासने कहा कि हर हस्पानी जो अमरीका की नयी कालोनी में जा रहा हो वह अपने साथ बारह नीग्रो ले जा सकेगा। 1540 तक अमरीका में हर साल दस हजार गुलाम आयात किये जाने लगे थे। अफ्रीका से। x x x x x x उन्नीसवी शताब्दी के आरंभ की कहानी है हयुप्पहस नाम के आशान्ती के एक अंगरेज कांउन्सलकी: बीस हजार गुलाम खरीदे। उनमें कई बडे खराब थे। अशान्ती सरदार ने कहा, इनमें से कइयों की बलि दी जाये। तो

जिस स्टूल पर बैठाकर उनका खून करना था उसे शुद्ध करने के लिए कुछ गुलामों को मारकर उनके खून से स्टूल नहलाया गया ।"[1] इन सारी कहानियों को पढ़कर रामन को ऐसा लगता है कि समाज में मानवता नाम की कोई वस्तु शेष नहीं है । धर्म के नाम, जाति के नाम पर, रंग के नाम पर मनुष्य मनुष्य का शोषण कर रहा है । उसे तुरन्त याद आता है कि क्या भारत में ऐसा नहीं हुआ है । वह सोचने लगता है -- "हम भारत को बड़ा दयाशील, न्यायशील देश मानते रहे हैं, पर क्या प्राचीन भारत में गुलाम नहीं थे ? देवदासियां नहीं थीं क्या जमींदारों के रियासती ठाकुरों के और छोटे बड़े राजाओं के अत्याचारों की कहानियां हमारे गांवों के लोकगीतों तक में नहीं गंथी चली आयी है ? तो आखिर हम किस मुंह से किसी देश के काले गोरे को लेकर कुछ कहें ? स्वपक्षदोषाच्च ।[2]

"जो उपन्यास में अमरीकी नीग्रो जाति के समस्याओं का चित्रण माचवे जी ने मर्मस्पर्शी वेदना के साथ किया है । अनेक ऐसे समस्याएं है जो रोजमर्रा जिन्दगी में इन लोगों को बाधा पहुंचाती है । इन अश्वेतों के पास न अच्छा घर है, न पैसा है और न पढ़ाई है । सभी लोग बहुत ही दरिद्रता में अपना जीवन व्यतीत करते है । इस उपन्यास में "डोरा" द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर देते हुए "जो" नामक संगीतकार कहता है कि - "आप जानते है हमारी जाति में पढ़ाई कितनी मुश्किल से नसीब होती है । अव्वल तो पैसा नहीं । दूसरे गोरों के स्कूलों में गालियां और घूंसे खाने जाये कौन ? खुदा बचाये उनसे ।"[3] "जो अपनी प्रेम कहानी बताते हुए कहता है कि प्रेम गोरी लड़की से नहीं करना चाहिए था ।

-- -5

1. जो- पृ. 10 - 11
2. जो - पृ. 11
3. जो - पृ. 17

वह गोरी लड़की मुझे छोड़कर केन्हा चली गई । वह कहता है - "मैंने प्रेम करने में भी बड़ी ठोकर खायी । आखिर काले आदमी को गोरी लड़की से इश्क लड़ाना ही नहीं चाहिए था । पर इश्क ही तो ठहरा वह रंग के मामले में अन्धा होता है - लव इज कलर - ब्लाइण्ड ।"[1]

रामन नीग्रो कवि फेन्टन जानसन की कविता पढ़ता है जिसमें सभ्यता के नाम पर नीग्रो पर होने वाले अत्याचारों का जिक्र है - कवि कहता है -

> "अपने बच्चों को नदी में फेंक दो, इस सभ्यता ने हमें जरूरत से ज्यादा बच्चे दे डाले है । आखिर बड़े होकर अपने को घिनौने काले हब्शी देखने से तो बचपन में ही मर जाना बेहतर है ।
>
> सितारों को आसमान से नोचकर फेंक दो । इन्हीं कम्बख्तों ने हमारी किस्मत बनायी है ।
>
> इस गोरी सभ्यता को देखकर मुझे उबकाई आती है ।"[2]

इस कविता को पढ़ने के बाद रामन सोचने लगता है कि नीग्रो जाति के प्रति अत्याचार कब तक होते रहेंगे ? वह सोचता है -"मैं उस गुलाम माँ को कैसे दूँ जिसकी छाती से चिपटे बच्चे को जबरदस्ती छीनकर आग में झोंक दिया जाता हो, मैं उस नीग्रो पुरुष का कैसे दूँ जिसके भाई को चुपचाप आधी रात सिर से पैर तक सफेद चादरों में लिपटे कु क्लुस क्लेनवाले पेड़ पर जिन्दा फांसी दे देते है , हाथ पैर मुश्कें बांधकर, मुंह में कपड़ा ठूंसकर, मैं उन सब अपने को "सभ्य" कहलानेवाले

- -

1. वही - पृ. 19
2. वही - पृ. 31

समूहों को कैसे समझा दूं जिन्होंने असभ्यों को सुधारने, अपने माफिक बनाने का ठेका ले लिया है ...।"[1]

इस प्रकार सभ्य देश कहा जाने वाला अमरीका में अश्वेतों के प्रति होने वाले अत्याचारों को देखकर रामन जो लेखक का ही स्थानापन्न है का अपने हरिजन मित्र की कहानी याद आती है औरअमरीका और भारत में व्याप्त भेदभाव की तुलना करता है । मगन पढ लिखकर समझदार आदमी बनने पर भी उसके प्रति समाज का हीन भाव नहीं जाता है । रामन कहता है - "मैंने सुना गुरुमन गांव से भाग था । पढ लिखकर बड़ा होकर वापिस आया, तो उसे काम कौन देता है ? वह हरिजन का हरिजन । उसकी मेज पर से फाइल उठा ले जाने से चपरासी ने इन्कार कर दिया । वह बोला - मैं उससे बड़ी जात वाला हूं ।"[2] रामन को एक और घटना छुआछूत की याद आती है कि परिचित हरिजन अजीत लाल की मां के मरने पर अरथी उठाने कोई नहीं आया था तो उस ने कन्धा लगाया । रामन कहता है - "श्मशान की ओर हम जा रहे है । सब हक्के बक्के है : अय्यंगार के लड़के को क्या हो गया है ? वेंकटरामन का बड़ा भाई पगला गया है - हरिजन की अरथी उठाकर ले जा रहा है - क्या हो गया है उसे ?"[3] इस प्रकार भारत में भी अमरीका की रंग भेद की स्थिति है । रामन के माध्यम से बाचवे कहते है कि अन्याय का प्रतीकार लेने के लिए क्या विद्रोही होना आवश्यक है ?" गुरुमन अब दक्षिण में द्रविड़ कषगम का छोटा मोटा नेता बन गया है । क्या यही परिणति है, अन्याय का जवाब मांगने की । जिम कह रहा है दक्षिण में अमरीका के कई नीग्रो मुस्लिम बन रहे है । वे अपना संबंध अब राष्ट्रों से, अफ्रीका की इस्लामी ताकतों से जोड़ रहे है । कहते है हमारा नीग्रोस्तान अलग बनेगा ? क्या यही परिणति है, अन्याय का जवाब मांगने की ।"[4]

---

1. जो - पृ. 31-32
2. जो - पृ. 37
3. जो - पृ. 37
4. जो - पृ. 58

श्वेत लोग अश्वेतों के साथ मिल जुलकर नहीं रह पाते । वे उनसे बातचीत भी करना पसंद नहीं करते । इसी बात का उल्लेख करते हुए "जो" कहता है कि "एक मिस्त्र साहब मेरे पास आये थे । उन्होंने बड़े सवाल वगैरह पूछे मेरे बारेमें - कितनी शादीयां हुई, बच्चे कितने है ? गाने से क्या कमाते हो ? कितना खर्च करते हो वगैरह - पच्चीसों सवाल । मैं समझा, सचमुच इस शख्स को मेरी जीवनी लिखनी है शायद । पर बाद में पता लगा कि शिकागो यूनिवर्सिटी में हजरत पढते थे और किसी प्रोफेसर के लिए यह सब काम वह कर रहे थे । गोरा प्रोफेसर कालों के बीच जाकर यह सब पूछने से डरता था और हिन्दुस्तानी न गोरे न काले मंझले रंग के अच्छे खप जाते थे - नीग्रो को लगे, ये अपने ही दूर के भाई बन्द है - गोरों को लगे, हां कहीं मेक्सिकों या ब्राजील कीतरफ से हजरत है ।"[1]

रामन अमरीका में रहकर यह भी महसूस करता है कि वहां के अनेक चित्र संग्रहालयों में सिर्फ गोरो के ही चित्र है । काले लोगों के संबंध चित्र बहुत क ही कम है । वहअपनोसहपाठी डोरा से पूछता है कि -"डोरा यह बताओ, मैंने इतने चित्र संग्रहालय देखे । बोस्टन में, वाशिंगटन में, केलिफोर्निया में । तुम्हारे यहां चित्रों में नीग्रो का चित्रण बहुत कम हुआ है । एक जगह एक नौकरानी किसी चित्र में दिखाई दी थी । और तो सब जैसे गोरी ही दुनिया है, गोरा ही विषय है इन चित्रों का ।"[2]

इस प्रकार चित्रों में भी पक्षपात का रवैया अमरीका में अपनाया गया है तथा श्वेत तथा अश्वेत में भिन्नता की भावना कायम रखने का प्रयास किया गया है ।

---

1. जो - पृ. 45

2. जो - पृ. 56

"जो" जो एक गोरी लड़की से विमल प्रेम किया था अपनी भांजी बेली जेम्स नाम गोरे लड़के द्वारा माँ बनने का खबर सुनकर बेली पर गुस्सा करते हुए कहता है कि – गोरे लड़के से भूलकर प्रेम मत करना । वह भाग जायेगा । वह कभी स्थिर नहीं हो सकता और जो हमारे घर में आज तक नहीं हुआ वह अब होगा ? एक "म्युलटो" पैदा होगा – और उसका आगे क्या भविष्य है ? खच्चरों का भी कोई भविष्य होता है, सिवा बोझा ढोने के ।"[1] इस प्रकार प्रेम भावना में भी श्वेत, अश्वेतों के बीच संदेह को बराबर स्थान मिलता रहा है । जिसके फलस्वरूप मानवता का विकास नहीं बल्कि ह्रास होने लगा है ।

इस प्रकार "जो" उपन्यास के माध्यम से डा० प्रभाकर माचवे ने अमरीकी अश्वेतों तथा भारतीय अस्पृश्यों के समस्याओं का चित्रण अनुभव के साथ किया है । इस उपन्यास में अश्वेतों तथा अस्पृश्यों में धधकती प्रतिकार की ज्वाला का भी चित्रण बड़े यथार्थता के साथ किया है । भारतीय अस्पृश्य युवक मुस्गन की प्रतीकार की भावना का चित्रण "जो" उपन्यास में हुआ है । मुस्गन मन्दिर के खिलाफ भाषण देते है । "ऐसे सवर्णों के भगवान हमें नहीं चाहिए । हम ऐसे मन्दिरों पर लानत भेजते है, जो सिर्फ सवर्णों के लिए खुले है । हम ऐसी संस्कृति को क्या करेंगे जो केवल समाज के एक हिस्से के लिए है ? हम ऐसी भाषा का क्यों करेंगे जो सबकी समझ में नहीं आती, जिसकी पढ़ाई शूद्रों को मना है, जो पुजारियों की ताल पत्र की पोथियों में बन्द पड़ी है । वह देववाणी हमारी वाणी नहीं है । मुस्गन मरीना के समुद्रतट पर गरज रहा था । उसके मंच के पीछे द्रविड़ कषगम का नीला झण्डा लहरा रहा था ।"[2]

इसी प्रकार अमरीका में अश्वेतों के विभिन्न आन्दोलनों का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास के अन्तर्गत डा० माचवे जी ने किया है । अश्वेतों

- -

1• जो – पृ• 69

2• जो – पृ• 92

में गोरों के साथ काले लोगों को बैठने का अधिकार नहीं था । इस विषय पर बेसी ने भी आन्दोलन में भाग लिया । बेसी ने डोरा को एक चिट्ठी लिखती है । जिसमें इस आन्दोलन का उल्लेख किया है - "दो साल पहले यहाँ बसों का "सिट - इन" (सत्याग्रह) चला । सब काले लोगों ने तय कर लिया कि हमारे लिए पीछे की ओर खराब अलग सीटें अलग क्यों होगी यह सेग्रिगेशन हमें पसन्द नहीं ।"[1] यह सत्याग्रह छः महीने तक चला अश्वेतों के मांग मान लिये गये । और सत्याग्रह समाप्त हुआ । बेसी अपनी चिट्ठी मे लिखती है कि - "ईसा की नज़र में "सब बराबर है ।" और फिर भी कालों के अलग चर्च है, गोरों के अलग । यह अलगाव कहाँ कहाँ नहीं है - स्कूलों में, तालाबों में, क्लबों में, स्टोअर हाउस में, केफेटेरिया में, पब में, ड्रग स्टोअर में...यानी हमारे ही पैसे से ये बड़ी बड़ी दुकानें चले, और मज़ा यह कि हमसे ही मुनाफा लें और हमारे लिए ही सब दरवाजे बन्द । यह कहाँ का न्याय है ?"[2]

डोरा को लिखे पत्र में बेसी अन्य स्थानों पर भी सत्याग्रह करने की बात कहती है --"बसों के अधिकार में विजय पाने के बाद लंच काउण्टरों के "सिटइन" का सवाल उठा । कुछ बड़े बड़े चेन स्टोअर है । उनके नाम सबको मालूम है । वहाँ हम नीग्रो लोगों को सोदा सूप नहीं लेने देते । उन पर लिखा रहता है - केवल गोरों के लिए । वैसे कुछ होटलों पर लिखा रहता है, कुत्ते, नीग्रो और इंडियन मना है ।"[3] इस प्रकार जहाँ जहाँ श्वेतों के प्रति भेदभाव किया जाता रहा है । वहाँ वहाँ सत्याग्रह करके अश्वेतों ने अपने अधिकारों को प्राप्त किये है । वह भी पूर्ण अहिंसक नीति के आधार पर । मार्टिन लूथर किंग का कहना था कि -"मैंने मॉण्टगोमिरी में बार बार कहा यह झगड़ा सिर्फ काले गोरों

---

1. जो - पृ. 103-104
2. जो - पृ. 104
3. जो - पृ. 107

के बीच नहीं है । यह लड़ाई न्याय और अन्याय के बीच है, प्रकाश की और अन्धकार की शक्तियों के बीच है । यह विजय केवल अमरीका के डेढ करोड़ और वहाँ के पचास हजार नीग्रो की ही नहीं होगी । पर यह न्याय और प्रकाश की विजय होगी । हम यहाँ किसी व्यक्ति से लड़ने नहीं आये हैं । हम स्थिति की लड़ाई लड़ रहे हैं ।"[1]

अपनी माँगों की पूर्ति के लिए अश्वेतों ने कई अपमानों को, कई लात घूंसों को सहकर सत्याग्रह किया । उनके माँग कुछ यों है – स्कूलों कालेजों तथा टैनेसी विश्वविद्यालय में नीग्रो छात्रों को प्रवेश नहीं है । बस ड्राइवरों की नौकरी, अस्पतालों में दवा दारू, नगर के सम्भ्रान्त श्रेय बस्ती में मकान तथा प्रसिद्ध होटलों में रहने की सुविधा, विभिन्न सरकारी संस्थाओं में सदस्य के रूप में स्थान नीग्रो व्यक्ति को नहीं है । इसी प्रकार कहीं खेल देखने, प्रदर्शनी देखने, लाण्ड्री में भी नीग्रो नहीं जा सकते । इन सभी क्षेत्रों में नीग्रो पर जो प्रतिबन्ध है, तुरन्त उठाया जा सके ।

मुस्कान अपने मित्र रामन को पत्र लिखता है जिसमें भारत में हरिजनों पर होने वाले अत्याचारों का चित्रण करते हुए प्रश्न करता है कि क्या यही मानवता है ? पत्र में कुछ अत्याचारों के उदाहरण इस प्रकार है – "हमारे गाँव के पास की एक बस्ती में शंकरन को पकड़कर पेड़ से बांधकर उसकी मूँछें जला दी सवर्णों ने । उनका कहना था कि इसे अन्त्यज होकर मूँछ रखने का क्या अधिकार है ? क्या यही मानवता और न्याय है । x x x अभी एक महीना पहले मेरे गाँव का एक तेज लड़का कोचिन शहर में गया था । तेल्लिचेरीकी एक ब्राह्मण अय्यर लड़की से उसे प्रेम

- -

1. जो – पृ॰ 108

हो गया । दोनों की रजामन्दी से वह उसे भगाकर ले आया । अब सारा तेल्लिचेरी उस शेखन परिवार झोपड़े को जलाकर भून देने के लिए जैसे मचल रहा है । क्या यही है समानता की ढोंग उस केरल में जहाँ दो साल तक समाजवादी शासन रहा ? x x x उस दिन नागप्पा के घर की बुढ़िया गलती से उस मुहल्ले से निकल गयी जहाँ आँबा का कोविल (मन्दिर) है । उसे मारने के लिए दौड़े पुजारी जब वह मन्दिर से सत्तर हाथ दूरी पर थी ।"[1] अन्तत: मुत्तन पत्र में लिखता है कि –"मैंने सुना अमरीका में काले हब्शी लोग भी बहुत मजे में है । उनके पास मोटरें है, सेण्ट्रल हीटेड मकान है, उत्तम तनख्वाह वाली नौकरियाँ है । क्या यह सच है ?"[2] मगर यथार्थ में अमरीकी अश्वेतों तथा भारत के अस्पृश्यों में कोई बड़ा भेद नहीं है दोनों की स्थिति समसामयिक परिस्थितियों के अनुसार बहुत ही दुर्लभ है । माचवे जी लिखते है – "भूखा नीग्रो बच्चा गार्बेज केन में से रोटी के टुकड़े चुन चुनकर खा रहा है । अस्तित्ववादियों यही तुम्हारी चुनने की स्वतंत्रता है । x x x भूखी हरिजन स्त्री विश्वनाथ के मन्दिर के बाहर कोढ़ियों की कतार में कटोरा खनखना रही है । कर पाओगे । यही तुम्हारी आर्य संस्कृति की या आसिन्धुसिन्धुपर्यन्ता" हिन्दूपदपादशाही है ।"[3]

डॉ0 माचवे यह भी स्पष्ट करते है कि भारत और अमरीका के स्त्रियों में मूलभूत अन्तर नहीं है । वे लिखते है कि –"बेसी डोरा कावेरी मार्था धुआन य्शोदा यह सब नाम उसी सुभद्रा के है जिसके हाथ नहीं है । यह सब नाम उसी माँ के है जो मर गयी है । यह सब नाम बहन के है जो बाल विधवा है और उसी अज्ञात शिशु के है, जहाँ कि लड़की न जन्मे इसके लिए गाँवों देहातों में मनौतियाँ रखी जाती है ।"[4]

---

1. वही – पृ. 119
2. वही – पृ. 120
3. वही – पृ. 126
4. वही – पृ. 126

डा० माचवे का कहना है कि रंग के द्वारा किसी व्यक्ति का स्वभाव परखा नहीं जा सकता । वैसे तो अच्छे लोग और बुरे लोग सभी जातियों में तथा सभी वर्णों में होते है । मनुष्य को अच्छा या बुरा सामाजिक व्यवस्था बनाती है । बेसी के माध्यम से डा० माचवे कहते हैं कि - "आद मी के बार के रंग से कुछ आता जाता नहीं । अच्छे बुरे लोग गोरे काले दोनों में होते हैं । मुझे तो लगता है कि यह "सिस्टेम" होती है - एक सामाजिक प्रणाली - जो आदमी को अच्छा या बुरा बनाती है । बहुत थोड़े लोग होते है, जो उस चक्की से घिस पिसकर बाहर आ जाते है । अधिकतर लोग तो। भेड़िया - धसानवाले ही होते है ।"[1]

इस प्रकार डा० प्रभाकर माचवे ने अपने "जो" उपन्यास के माध्यम से मनुष्य में स्थित भेदभाव का खुलासा प्रस्तुत किया है । "जो" की संरचना के दौरान लेखक के अन्तर्मन में भारत के वर्ग विशेष जाति भेद संदर्भ के रूप में रहे । एक सुना हुआ उपन्यास समाजशास्त्रीय अध्ययन का अच्छा सबूत होता है । शायद कोई एक स्टेडी वह सब एक साथ व्यक्त नहीं कर पाती है जिसे उस पृष्ठभूमि से संबंध कोई कथा कृति । "जो" एक तरह का समाजशास्त्रीय स्थिति का आलेख भी है । लेखक ने यद्यपि इस रूप में निष्कर्ष नहीं निकाले, मगर कथा स्थिति के सहारे पर एक बात अवश्य स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि रंगभेद के परे मानवता का स्तर कहीं अधिक दृढ है । नई दुनिया के लिए इसलिए सर्जनाकांक्षा बनी रहेगी । भारतीय जातीयवाद की कचोटें शायद इसीलिए वह बराबर अनुभव करता रहा है । अमरीका के अत्याधुनिक परिप्रेक्ष्य में वे और भी अधिक उभरकर सामने आई ।"[2]

- -

1. जो - पृ. 137

2. सं० भीष्म सहानी - आधुनिक हिंदी उपन्यास - {जो उपन्यास पर डा० श्याम परमार} - पृ. 238

इस उपन्यास के सृजन के संदर्भ में स्वयं उपन्यासकार डा० माचवे ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किये है । वे लिखते हैं - अमरीका और वहाँ के रंगभेद पर इतना कुछ अंग्रेजी में लिखा जा चुका था, कि उसमें मुझे कुछ जोड़ना जरूरी नहीं था । पर अपने आपको सबसे समृद्ध, धनाढ्य और आधुनिकतम सुसंस्कृत कहने वाले महादेश में भी मनुष्य को कितना अपमान सहना पड़ता है, केवल प्राकृतिक अश्वेत रंग के कारण (यह मेरी समस्या थी - जिसका कोई उत्तर मेरे पास नहीं था । और उसी की तुलना में मैं भारत में जड़ जाति भेद की समस्या को चुनना चाहता था । डा० अम्बेडकर कहा करते है कि "हिन्दू धर्म का सनातनी स्वरूप और प्रजातंत्र या लोकशाही में कोई समन्वय नहीं हो सकता । यदि आप जन्मना जाति भेद मानते है और मनु आपके विचार व्यवहार के आधार है, तो आप डेमोक्रेट" (प्रजातांत्रिक) कैसे हैं ? प्रजातंत्र मनुष्य मनुष्य में समानता में विश्वास करता है - आप शुरू से ही ऊँच नीच का बंटवारा लेकर चलते है । इसके लिए मैंने एक काल्पनिक तमिल ब्राह्मण विद्यार्थी चुना जो अमेरिका में पढ़ता है - उसकी सहानुभूति नीग्रो आंदोलन के साथ है, पर अपने ही घर में, अपने ही प्रदेश में डी एम के के बंधु के साथ नहीं । यह मत विरोध एक लेखक की दृष्टि से बहुत मनोरंजक आधार था, उपन्यास का चाहे समाजशास्त्री उसके अनेक कारण देता रहे ।"[1]

2.3. पीढ़ियों का अंतराल और बदलते जीवन मूल्य :

डा० प्रभाकर माचवे जी ने पीढ़ियों के अंतराल, द्वारा व्याप्त सामाजिक समस्याओं को परिप्रेक्ष्य में रखकर "तीस चालीस पचास" नामक उपन्यास का सृजन किया है । इस उपन्यास में बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों में तीन पीढ़ियों का एक दूसरे के प्रति व्यवहार तथा सोच

---

1. सं० भीष्म साहनी व अन्य - आधुनिक हिंदी उपन्यास- पृ.233-234
   (ओ: संस्मरण (लेख) - डा० प्रभाकर माचवे)

विचार का विश्लेषण किया गया है । उपन्यास की भूमिका में उपन्यास लिखने का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए वे लिखते है -"इस उपन्यास में मैंने दो खंड कल्पित किए है पहले छह अध्याय "काल" के अंतर्गत आते है : तीन पीढियों के तीन-तीन स्त्री पुरूष पात्रों की जबानी उनकी स्थितियों की परस्पर संघर्ष युक्त, समानता विषमता की कहानी । दूसरे खंड में, जिसे मैं "देश विदेश" मानता हूँ (बल्कि दिक कहना अधिक उचित होगा) पश्चिम का एक छोर अमरीका के सेनफ्रान्सिस्को, पश्चिम के ही दूसरे छोर सोवियत रूस के पड़ोसी बल्गारिया की राजधानी सोफिया, और तीसरे नव निर्मित बांगला देश में एक कल्पित स्थान सुवर्ण श्री के परिपार्श्व पर उन्हीं परिवारों और उनके परिवेशों की यह कथा है । समापन के लिए मैंने भारत का एक कल्पित गांव चुना है सेवापुरी । यह सारा उपन्यास "काल" और "दिक" के परिमाणों में कुछ मानवाकारों की अपने पन की खोज है ।"[1]

इस उपन्यास में चित्रित कहानी का विश्लेषण करते डा० विजय अथवा लिखती है - "कि तीस चालीस पचास" में लेखक ने कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए नवीन प्रयोग किया है । आचार्य वासुदेव और उनकी पत्नी सरला को अपने आदर्शों में अडिग आस्था थी लेकिन उनकी सन्तान संशयात्मा बनी । मोहन वैज्ञानिक बना और उसने मुसलमान लड़की रुखसाना से विवाह किया । मोहन के पुत्र अनिरूद्ध के लिए एक मात्र सत्य है । क्षणिकवादी भोग प्रधान जीवन । मोहन पुत्र अनिरूद्ध की पीढी अपने को त्रिशंकु मानती है, आस्था और अराजकता के बीच लटकते हुए अपने तर्क से भी उभर नहीं पाती । अनिरूद्ध का विवाह स्वीडेन मेंजन्मी उर्मिला से

- -

1. डा० प्रभाकर माचवे - तीस चालीस पचास - आरंभ में (भूमिका)

जिसका नाम सुविधा के लिए उषा रख दिया गया है । अनिरूद्ध की पीढ़ी का रूख निषेध विरोध और प्रत्याख्यान का है । इसे पीढ़ीयों का अंतर कह कर टाला नहीं जा सकता । "काल" शीर्षक के अंतर्गत लेखक ने तीन पीढ़ी के छह पात्र रखे हैं । सवाल है, क्या इन तीन पीढ़ियों में कोई मुक्ता नहीं रह गयी है ? इस बात को परखने के लिए "दिक्" शीर्षक के अंतर्गत लेखक छहों पात्रों को सैनफ्रान्सिस्को {पूंजीवादी} सोफिया {साम्यवादी} सुवर्ण श्री {हिंसावादी} स्थलों पर ले जाकर अन्त में भारत में सेवापुरी {अभावों में राह खोजने का प्रयास} में ले आता है और यह देखने की कोशिश करता है कि उन परिस्थितियों, जीवन पद्धतियों और समाज स्तरों से कहाँ तक तादात्म्य कर पाते हैं ? इन सब दिक और काल के विभिन्न कोणों में समस्याओं के सूत्र खोजता हुआ जिजीविषा के रूप में आशा की किरणों को देख पाता है ।"[1]

इस प्रकार प्रभाकर माचवे ने इस उपन्यास के अंतर्गत तीन पीढ़ियों के बीच होने वाले वैचारिक संघर्ष का चित्रण करने का प्रयास किया है साथ में सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव पीढ़ियों के मन:स्थिति पर किस प्रकार पड़ता है उसका भी विवेचन किया है ।

समाज में प्रत्येक नई पीढ़ी अपने को पुरानी पीढ़ी से श्रेष्ठ समझती है । नई पीढ़ी की बातों को अनसुनी करती है । ऐसी स्थिति समाज में हमेशा होती है । पुरानी पीढ़ी कभी नयी पीढ़ी के रूप में थी और उसने भी अपनी पुरानी पीढ़ी से विद्रोह किया था और आज नई पीढ़ी भी एक दिन पुरानी हो जायेगी तथा उससे भी विद्रोह करने एक और नयी पीढ़ी आ जायेगी । पीढ़ियों के परिवर्तन के साथ साथ मर्यादायें, मूल्य

- -

1. डा० विजय बापट - स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के संवर्द्धन में महाराष्ट्र की भूमिका - पृ. 63

तथा परम्परायें बदलना स्वाभाविक है ही फिर भी पुरानी और नई पीढ़ियों में संघर्ष इसलिए होता है कि पुरानी पीढ़ी अपनी मान्यताओं को नयी पीढ़ी पर लादना चाहती है तो नयी पीढ़ी पुरानी मूल्य एवं मान्यताओं को जड़ से उखाड़ कर फैंकना चाहते है और नये मूल्यों की स्थापना करना चाहते है ।

"तीस चालीस पचास" उपन्यास में इसी संघर्ष का चित्रण तीन पीढ़ियों - वासुदेव, सरला, मोहन स्वानाना तथा अनिरूद्ध उषा के बीच किया गया है ।

2·3·1· पुरानी पीढ़ी :

वासुदेव और सरला पुरानी पीढ़ी के है । इनके विचार और मान्यताएं परंपरागत है । इस पीढ़ी के लोग हमेशा यह चाहते है कि अपने बच्चे अपने द्वारा दिखा गया मार्ग पर चले । किन्तु बच्चे इनकी बात न मानने पर घोर निराश हो जाते है । वासुदेव गांधीवाद से प्रभावित व्यक्ति है । वह अपने लड़के को भी भी उसी दिशा में ले जाना चाहता है । किन्तु बेटा मोहन उसके विपरीत वासुदेव कहता है -"मैंने बहुत कोशिश की कि बच्चे को अपने आदर्शों पर ढालूं, पर वह असंभव लगा । उसके विचार उग्र थे । मुझ से बिल्कुल दूसरे ढंग के ।"[1] वासुदेव से बात करता हुआ मोहन अपने विचार आपे आप को वासुदेव का प्रतिद्वन्द्वी मानता है । वासुदेव का एक नहीं मानता । यही स्थिति वसुदेव के साथ वसुदेव के पिता की थी । "वासुदेव तब स्कूल में पढता था जब इसकी शादी हुई थी । इसके पिता की इच्छा थी कि लड़का अच्छी सी क्लर्कों का बड़ा अफसर बन जाता परन्तु

- -

1· तीस चालीस पचास - पृ· 9

वसुदेव को गांधी की हवा लग गई और अपने पिता के शब्दों में वह "बागी" हो गया और "बिगड़" गया । वास्तविक रूप से यहीं से अन्तराल आरंभ होता है नये और पुराने में । जो उसका पिता चाहता था वह पुत्र को स्वीकार नहीं । पुत्र ने एक प्रकार से विद्रोह का स्वर अपनाया और अपने विषय में स्वयं निर्णय ले लिया । प्रतिज्ञा की कि सरकारी नौकरी नहीं करेंगे, स्वदेशी वस्त्र पहनेंगे ।"[1]

वसुदेव सोचता है कि वह समय के साथ परिस्थितियों के साथ चले किन्तु वह विवश है । अपनी पुरानी मान्यताएं और मूल्यों को छोड़ नहीं पाता । वह सोचने लगता है ..."मैंने बहुत कोशिश की कि अपने संस्कारों को तोड़ूं, उनसे लड़ूं, उनसे परे जा सकूं । पर वे फिर चुपचाप कहीं से मेरे सिर पर आकर सवार हो जाता है। ज्यों, ज्यों उम्र बीतती है,उनसे निस्तार पाना बहुत ही मुश्किल है ।"[2]

वसुदेव को अपनी धर्मपत्नी सरला की याद आती है जो संस्कारों से संपन्न थी । "सरला धर्माचरणी, रूढ़िपूजक स्त्री थी । उसकी अपनी एक दुनिया थी । उसमें वह सुस्थिर थी । उसका दर्शन निःशंक था । पर उससे और मुझ से जो सन्तान पैदा हुई वह संशयात्मा बनी । वह देकार्त की तरह मैं संदेह करता है, इसलिए हूं, कहती हुई बढ़ी । उसने नेहरू और लेनिन और बरट्रेंड रसेल को अपना आदर्श माना ।"[3]

वसुदेव फिर सोचता है कि अपना बेटा मोहन क्यों इस प्रकार विद्रोह की भावना से युक्त है । वसुदेव अपने आप से प्रश्न करता है - "आखिर मैं मोहन के प्रति इतना चिन्तित क्यों हूं ? x x x - गांधी थे ।

- -

1. डा० कृष्णा रेणा - प्रभाकर माचवे के हिंदी उपन्यास - पृ. 5।
2. तीस चालीस पचास - पृ. 6
3. -वही- पृ. 16

पर उनका पुत्र हीरालाल उनकी प्रतिकृति नहीं था । हर मामले में वह उनसे अलग था । अलग ही नहीं, शायद उल्टा भी । पर उसके लिए क्या गांधी रुके ?"[1] वसुदेव अपने स्वयं के बारे में सोचता है कि वह कितना गांधीवादी था - "मैं गांधी जी को मानता रहा । पर मैं उनके नख रज के भी बराबर नहीं बन सका । यानी असका कई यह हुआ कि जिसका नाम हम प्रतिदिन लेते है, नाम जप भी करते है, उसका अंश भी हमारी जबान और स्वर से अधिक भीतर नहीं उतरता । हम तोते की तरह, यंत्रवत् रटते चले जाते है और "नाम" और "रूप" हमारे "अस्तित्व" को छू तक नहीं पाता ।"[2] इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए चंद्रकांत बांदिवडेकर का कहना है कि - आचार्य वसुदेव 1900 में जन्में है, गांधीवादका प्रभाव उन पर पड़ा है, आंदोलनों में वे सक्रिय रहे है, जेल गये है, त्याग कर चुके है । फिर भी उनका शील पूर्णतः गांधीवादी नहीं लगता । क्योंकि वे अपनी मुसलमान बहू का विरोध करते है । हो सकता है, और यही अधिक लेखक के साथ न्याय करने लायक माना जा सकता है कि माचवे ने इस पीढ़ी का इसी रूप में चित्रांकन करना चाहता है । यह पीढ़ी विचारों से गांधी वादी रही हो, गांधीवाद उनके खून का तकाजा नहीं बना । यह गांधीवाद के प्रभाव पर कठोर भाष्य है - परन्तु क्या यह सही नहीं है ? अन्यथा गांधी की मृत्यु के तुरंत बाद जो "अंतर्विरोध कथानक रूप में उभरे उसका राष्ट्रीयकरण क्या किया जा सकता है ?"[3]

कुल मिलाकर पुरानी पीढ़ी के प्रतीक वसुदेव के संदर्भ में इतना ही कह सकते है कि वहअपने मान्यताओं तथा मूल्यों को छोड़ना चाहता है परन्तु छोड़ नहीं पाता और जिन मूल्यों में विश्वास है उनको पूरी

1. तीस चालीस पचास - पृ. 14
2. -वही- पृ. 14
3. चंद्रकांत बांदिवडेकर - आधुनिक हिंदी उपन्यास: सृजन और आलोचना - पृ. 22

लगन के साथ निभा भी नहीं पाता । यही अन्तर्विरोध इस पीढ़ी का है । "वसुदेव कैंसर से पीड़ित है । पुत्र की पूरी सहानुभूति उसके प्रति है यदि उनकी पीढ़ी के गांधीवादी आज उपेक्षित है या समाज में कुछ परिवर्तन नहीं कर सके तो उसका क्रोध अपनी अगली पीढ़ी पर निकालना व्यर्थ है । वैसे सन् 1900 ईस्वी में जन्में लेखक और कवियों की रचनाएं कलाकृतियां कहां तक नई पीढ़ी के लिए सार्थक है ? यह भी एक प्रश्न है ।"[1]

2.3.2. बीच की पीढ़ी :

वसुदेव का पुत्र मोहन तथा पुत्र वधु स्वशाना वसुदेव के बाद की पीढ़ी के लोग है पर अनिरूद्ध और उषा के पीढ़ी से पहले के है अर्थात वे बीच पीढ़ी के लोग है । डा० माचवे ने इस पीढ़ी के बारे में विवेचन करते हुए कहते है कि ये न पुरानी पीढ़ी के अन्तर्गत आते है और न नये पीढ़ी की ओर जाते है । ये बीच के है और उनकी मानसिकता भी मध्यस्थता का है कोई स्थिर निर्णय इनके पास नहीं है । किसी मान्यता को पूरे विश्वास के साथ न ग्रहण करते है और न उसका विरोध करते है । माचवे ने इसी मनःस्थिति का चित्रण "तीस चालीस पचास" उपन्यास में मोहन तथा उसकी पत्नी स्वशाना के माध्यम से कहने का प्रयास किया है जो सफल रहा है ।

मोहन की पीढ़ी सन् 1930 की पीढ़ी है । बचपन से ही उसके विचार विद्रोही थे । वे अपने पिता के विचारों से सहमत नहीं थे । पिता के

- -

1. डा० कृष्णा रेणा - प्रभाकर माचवे के हिंदी: उपन्यास - पृ. 52

शारीरिक श्रम को वह मशीन से पूरा करना चाहता है । वह साम्यवादी सिद्धांतों के प्रति आकृष्ट था और उसने साम्यवाद प्रैक्टिकल ढंग से ओढ़कर विवाह भी मुसलमान धर्म की स्थलाना से किया । वह वैज्ञानिक बना और भारतीय संस्कृति के प्रति उसके हृदय में आस्था नहीं थी । मोहन के प्रति समाज ने बुरा व्यवहार किया । अन्तर्जातीय विवाह इसका कारण था । पिता ने उसे स्वेच्छाचारी कहा, पार्टी ने एनार्किस्ट कहकर निकाला । इस कारण उसके मन में प्रतिकार की भावना जाग उठी । वह चुन-चुनकर मार्क्सवाद विरोधी साहित्य पढ़ने लगा । ऐसी मानसिकता वाली पीढ़ी का समाज में मूल्य कम ही होता है ।

वसुदेव मोहन की पीढ़ी के बारे में ठीक ही कहता है कि "यह बीच की पीढ़ी ? यह मोहन ? ये सब क्या करते हैं ? हमारे आदर्शवाद और अनिरुद्ध के अराजकतावाद के बीच की इस त्रिशंकु पीढ़ी की क्या कोई जिम्मेदारी ही नहीं थी ? पता गिरता है, क्या धूल भरी आंधी का उसमें कोई हाथ नहीं ?"[1]

इस पीढ़ी के अन्य विशेषताओं तथा भिन्नताओं का सार संक्षेप प्रस्तुत करती हुई डा० कृष्णा रैणा लिखती हैं कि --"सन 30 में जो कार्य हुआ सन् 40 में उसकी हंसी उड़ाई गई । सन 50 में दोनों बातें पुरानी पड़ गई । परन्तु यह बीच की पीढ़ी - जिसका एक पुत्र मोहन है - दुःखी है । वे सोचने लगे कि उसके (बुजुर्ग) पिता भी ठीक थे । उन्होंने एक रास्ता अपने लिए निकाला था । वे दिन भर अंबर चर्खा कातते हैं । उसकी अगली पीढ़ी ने भी अपना रास्ता निकाल ही दिया । उसके पुत्र ने नित्य

- -

1. तीस चालीस पचास - पृ. 17

की अचानक परिवर्तित प्रवृत्ति देख वाली क्षणिकवादी भोग प्रधान जिन्दगी अपना ली । रात "सेलर" में बीत जाती है तो दिन किसी पढ़खाने में । कभी साहित्य भी पढ़ता है, कभी दर्शन, कभी राजनीति कुछ अंग्रेजी कवितायें भी करता है । गोली खाकर वह सारी चिन्ताओं और झंझटों से बच जाना चाहता है : उसके लिए दिन रात बराबर है । नहाना, न नहाना बराबर है । दुनिया के दु:ख कम करने की उसे फिक्र ही कहाँ है, दुनिया स्वयं एक मीठा सपना है परन्तु यह बीच की पीढ़ी त्रिशंकु की भाँति है । क्या इनकी कोई जिम्मेदारी नहीं ? इसके लिए सारी गली बन्द थी । आदर्शवाद और अराजकतावाद के बीच यह बीच की गैरजिम्मेदार पीढ़ी रही ।"[1] इस प्रकार मोहन की पीढ़ी जो बीच की है वह अपने आप में अस्थिरता, चंचलता, अकेलेपन कुंठा आदि भावनाओं से ग्रस्त है । डा० चन्द्रकान्त बांदिवडेकर का कहना है कि "मोहन के वैचारिक परिवर्तनों का लेखा जोखा देते समय मनोवैज्ञानिक पहचान का प्रमाण जितना मिलता है उतना चित्रांकन में उसके कलात्मक प्रयोजन का नहीं । एक पीढ़ी जो क्रांतिकारी दिखती है वस्तुत: उसकी क्रांतिकारिता पिछली पीढ़ी के प्रति घृणा की एक अभिव्यक्ति होती है - इस तथ्य को माचवे जी ने भली-भाँति रेखांकित किया है । साथ में यह भी कि हर तथाकथित क्रान्तिकारी पीढ़ी अपनी अगली पीढ़ी को समझ नहीं पाती और न उनकी भिन्न राह को सहानुभूतिपूर्वक झेल भी सकती है । वस्तुत: हर क्रान्तिकारी अपनी अलग राह के लिए छूट चाहता है । वह मनसा सही अर्थ में क्रान्तिकारी नहीं होता । इस तथ्य उपन्यास का एक सशक्त पक्ष है ।"[2]

---

1. डा० कृष्णा रैणा - प्रभाकर माचवे के हिंदी उपन्यास - पृ. 53

2. चंद्रकान्त बांदिवडेकर - आधुनिक हिंदी उपन्यास : सृजन और आलोचना - पृ. 22

2·3·3· नई पीढ़ी :

"तीस चालीस पचास" उपन्यास की तीसरी पीढ़ी या जिसे नयी पीढ़ी कहा जाता है के प्रतिनिधि पात्र है - अनिरुद्ध और उसकी पत्नी उर्मिला या उषा । इन दो पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार डा माचवे जी ने नयी पीढ़ी की मानसिक दशा का चित्रण किया है । इस पीढ़ी में न किसी विचार, मान्यता या मूल्य के प्रति विशेष प्रेम है और न लगाव है । यह पीढ़ी क्षण को महत्त्व देती हुई जीवन का भोग जितना हो सके उतना करना चाहती है ।

इस पीढ़ी के प्रति अभिभावक बहुत ही चिन्तित है । अनिरुद्ध के पिता मोहन भी अपने पुत्र की चिन्ता करता है --"मेरे पुत्र को क्या कमी है ? बचपन से ही जितने सुख, आराम, सुरक्षा में उसे पाला जा सकता है, मैने उसे पाला, पोसा, बढ़ाया । कोई ऐसी इच्छा उसकी नहीं थी, जो अतृप्त रही हो । फिर भी वह इस तरह से आवारा, असामाजिक बना, क्यों घूमता है ? क्यो वह खतरनाक और गन्दा विदेशी पुस्तकें पढ़ता है ? क्यों उसे ये सब शब्द और कार्य अश्लील नहीं लगते जो मुझे लगते हैं ? क्यों ? क्यों ?"[1]

इस पीढ़ी के लोग अधिकतर समय काफी हाउसों में व्यतीत करते है । "इनमें नपुंसक क्रोध और विचित्र असामाजिकता है । अक्रियावादी इनकी प्रवृत्ति है । लम्बे केश रखना, न नहाना, अजीब कपड़े पहनना यह इनकी व्यक्तिगत रुचि है । जीवन के प्रति इनका निरर्थकता बोध है । यह

- -

1· तीस चालीस पचास - पृ· 20

आत्महत्याएं अधिक करते है । इनका तर्क है कि सोचने विचारने से कुछ नहीं होगा । बुद्धिवाद अब एकदम फेल हो गया और इसका कारण है पुरानी पीढ़ी का बुद्धि विवेक और तर्क को रोमांटिक ढंग से आवश्यकता से अधिक महत्व देना ।"[1] इस पीढ़ी के स्त्रियों की अपनी शिकायत है - "केट मिलेट के सेक्सुअल पालिटिक्स" ने सारे संसार में धूम मचाई है । असमानता पर विद्रोह होने लगा परन्तु कोई पुरुष माता नहीं बनना चाहता है । स्त्री युग युग से माता, पत्नी, पुत्री रही है । स्त्री क्यों प्रेम चाहती है ? स्वयं मारलिन मनरो नींद की गोलियां खाकर क्यों मर गई ? उसके प्रति किसी का प्रेम नहीं था । यह नयी पीढ़ी प्रेम को भी पुरुषों को साजिश मानती है । नयी पीढ़ी इसे एक रासायनिक दैहिक प्रतिक्रिया की संज्ञा देती है, कुछ शरीर कुछ शरीरों को देखकर, निकट आने की कोशिश करते है । यह एक पुद्गल व्यापार है । इसमें न तो कोई आत्मा है न संस्कार ।"[2]

नयी पीढ़ी में भयावह स्थिति उत्पन्न हो गयी है । इनमें हमेशा आतंक, और अशान्ति के कारण मन स्थिर नहीं रह पाता । यह कारण इस पीढ़ी के लोग शान्ति जहाँ है वहाँ चले जाते है । प्रभाकर माचवे के उपन्यास "तीस चालीस पचास" में इस का चित्रण किया गया है । इस संबंध में डा० कृष्णा रैणा का कहना है -"नयी पीढ़ी में उन लोगों की अधिकता है जो विदेशी मशीनीकरण की ऊब से दुःखी है । इनमें से कुछ भारत वर्ष में शान्ति और अहिंसा की खोज में आते है । समस्त संसार में अणुबमों के गिरने के बाद सारा तंत्र ही बदल गया । यूरोप का

- -

1. डा० कृष्णा रैणा - प्रभाकर माचवे के हिंदी उपन्यास - पृ० 53-54

2. -वही- पृ० 54

वैज्ञानिक मानव समाज का दास नहीं है । कोई किसी के मामले में दखल नहीं रखता है । यहाँ व्यक्ति स्वतंत्र इकाई है । स्वीडन जैसे समृद्धशाली देश में एक ओर नोबेल पुरस्कार मुख्यालय भी है परन्तु यहीं सबसे अधिक आत्महत्याएं भी होती है ।[1]

इस प्रकार माचवे जी ने भारतीय मध्यवर्गीय परिवार में पीढ़ियों के अन्तराल के कारण उत्पन्न होने वाले सामाजिक तथा मानसिक समस्याओं को इस उपन्यास में यथार्थ के साथ चित्रित किया गया है । इस संदर्भ में डा० चन्द्रकान्त बाँदिवडेकर का वक्तव्य महत्त्वपूर्ण है - वे लिखते है - "माचवे जी के सामने एक भारतीय बौद्धिक समाज का चित्र है । यह बौद्धिक समाज स्वतंत्र, गांधीवाद, समाजवाद तरह तरह के संस्कार लेकर आगे बढ रहा है । यह वह बुद्धिजीवी वर्ग है जो किसी स्थिति को मन:पूर्वक न स्वीकारता है, न उसे अंतिम सीमा तक जाकर गहराई से जी लेता है । यह खास भारतीय मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी समाज है जिसकी रीढ की हड्डी ही कमजोर है, जो आत्मशक्ति से प्रतीतिपूर्ण परिचय से अलग पड गया है । सब पश्चिमी विचारधाराओं को वह अपना लेता है परन्तु ये विचार उसे कहीं भिगो नहीं देते - ऊपर से छिटककर खिसक जाते है ।"[2] आगे डा० चन्द्रकान्त बाँदिवडेकर , डा० माचवे जी के उपन्यास "तीस चालीस पचास" की चर्चा करते हुए कहते है कि - "विज्ञान टेक्नालजी, बुद्धिवाद, उद्योगीकरण, नागरीकरण, मूल्यभ्रष्टता से उत्पन्न दोष सभी आघातों से यह वर्ग बड़ी अनिश्चित अवस्था में है । वह कोयले में रत्नकण की खोज करना चाहता है, काले बादल की स्वर्णमय रेखा को देखना चाहता है । उसने अमरीकी के जीवन का सुख-सुविधापूर्ण और भयानक रूप देखा है, इसी

- -

1. डा० कृष्णा रैणा - प्रभाकर माचवे के हिंदी उपन्यास - पृ. 54
2. चंद्रकांत बाँदिवडेकर - आधुनिक हिंदी उपन्यास: सृजन और आलोचना पृ. 23

जीवन की अच्छाइयों, बुराइयों से वह परिचित हो गया है । उसके सामने प्रश्न है – उसकी सेवापुरी (भारत का अभावग्रस्त प्रान्त) में उसके लिए इनमें से क्या क्या लाभदायक और स्वास्थ्यप्रद हो सकता है । माचवे के पास भी उत्तर नहीं है । ये शून्य समाप्त होंगे । और उनमें पूर्ण जायेगा । या फिर अनेक शून्य मिलकर एक बड़ा शून्य बनेगा ।" – ये अंतिम दो वाक्य हैं । माचवे जी चाहते हैं कि हम उनका उत्तर खोजें ।"[1]

2.4. युवा वर्ग और समसामयिक यथार्थ :

मानव जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण अवस्था युवावस्था है । इस अवस्था में ही मनुष्य अपने भावी जीवन का स्वरूप निर्धारित कर उसके लिए संघर्षरत होने की कामना करता है । इसलिए ही शायद किसी ने कहा है कि युवावस्था मनुष्य का दूसरा जन्म है । साधारणतः 14 से 35 वर्ष के बीच की अवस्था को युवावस्था कहा जा सकता है । फिर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि 14 वर्ष आते ही बालक युवक बन जाता है और 35 वर्ष पूर्ण होते ही प्रौढ़ हो जाता है और न ही यह धारणा सर्वकालिक है । परिस्थितियों के अनुसार युवावस्था में परिवर्तन आ जाता है ।

इस अवस्था में ही मनुष्य के शारीरिक और मानसिक दृष्टि से काफी परिवर्तन होता है । यह अवस्था बचपन प्रौढ़ अवस्था के बीच की

---

1. चंद्रकान्त बांदिवडेकर – आधुनिक हिंदी उपन्यास : सृजन और आलोचना – पृ. 23

संक्रमण अवस्था है । इस काल में बालक में शारीरिक अंगों में विकास होता है । उसके गले में आवाज में परिवर्तन होता है । मानसिक रूप से युवावस्था मनुष्य जीवन का अत्यन्त अवस्था कही जा सकती है । इसी समय मनुष्य में जीने के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है संघर्ष करने की अदम्य साहस उत्पन्न होता है । इस कारण युवा वर्ग हमेशा संघर्ष करने में रुचि ज्यादा दिखाते है । इसीलिए इस अवस्था में होश की अपेक्षा जोश की अधिकता दिखाई पड़ती है ।

युवा पीढ़ी व्यक्त संवेगों जैसे प्रेम, भय और क्रोध आदि से परिचालित होता है । इस कारण इनके मन में अदम्य विश्वास और उत्साह भरा रहता है । इस अवस्था में साहसिक कार्यों को करने में युवक अधिक उत्साहित दिखाई पड़ते है । इनके अन्दर सहनशीलता का अभाव प्राय: हुआ करता है । इस कारण किसी भी कार्य में हो या किसी बात में हो आर या पार होना चाहते है । इस अवस्था में युवा बीच का रास्ता पसंद नहीं करते । इसके हृदय में आत्म प्रबुद्धता की भावना अधिक रहती है वह हमेशा यही सोचते रहता है कि समाज में उसकी अस्तित्व की कदर हो. यदि उसकी अस्तित्व की कदर समाज में न हो तो उसके अन्दर विद्रोह की भावना जागृत हो उठती है । उसके आत्म सम्मान को कभी ठेस नहीं लगनी चाहिए । यदि लगा तो वह प्रतीकार की भावना से मचल उठता है उसका हृदय उथल पुथल हो जाता है । इस अवस्था में किशोर महत्वकांक्षी होता है और ऊँचे ऊँचे स्वप्नों देखने लग जाता है जिसके कारण उसके हृदय में प्रबल उद्वेग उठते रहते है । इस तरह से वह महत्वकांक्षाओं के सपनों में जीते हुए भविष्य के प्रति आशा तथा आदर्श की भावना के साथ रहता है ।

युवावस्था में आदमी आस्था और अनास्था के बीच संघर्षशील रहता है । उसमें कभी जीवन के प्रति आस्था उत्पन्न होती है जिसके कारण

वह उत्साही और आनन्दित दिखाई पड़ता है तो कभीजीवन के प्रति अनास्थावान हो जाता है और संपूर्ण जीवन को घोर निराशावादी दृष्टि से आकलन करने लगता है । इस अवस्था में युवा मानस में सोचने की पूर्ण क्षमता होती है । किन्तु उसमें जोश अधिक रहता है । इस कारण प्रत्येक कार्य करने से पहले वह उस कार्य से संबंधित सभी पहलुओं पर ठीक से विचार नहीं कर पाता है और एक दृढ़ निर्णय पर आ नहीं पाता । किसीकार्य के सम्पन्न होने के बारे में वह जितना शीघ्र सोचता है वह उतना ही जल्दी व्यावहारिक रूप से कार्य सम्पन्न होना चाहता है । इस कारण युवा मानस को क्रान्तिकारी परिवर्तनों का आकांक्षी कहते है । समाज को जितनी तेजी के साथ परिवर्तन करने की बात मस्तिष्क में सोचता है उतनी ही तेजी से समाज परिवर्तन होना चाहता है । यह कार्य संभव नहीं है । जिसके कारण उसका विद्रोही मन समाज के प्रति उग्र रूप धारण करता है किन्तु सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में उसे धीरे-धीरे मालूम होने लगता है कि समाज में उसकीहैसियत, सीमा तथा नियति की स्थिति क्या है ।

किशोर के चरित्र की कुछ मुख्य विशेषताओं के बारे में पी डी पाठक लिखते है - कि -"चिन्ता उच्च आदर्श, शक्तिशाली कल्पना, आत्माभिमान स्वतंत्रता के प्रति प्रेम, धार्मिक रीति रिवाजों में विश्वास प्रतिद्वन्दिता की भावना, अधिकारियों के विरूद्ध विद्रोह, विचारों की चंचलता भावनाओं की प्रबलता और मनोभावों मेंअकारण एवं आकस्मिक परिवर्तन ।"[1] आदि किशोर के चरित्र को प्रभावित करते हैं ।

- -

1. पी डी पाठक - शिक्षा मनोविज्ञान - पृ॰ 168

युवावस्था के उपर्युक्त प्रमुख विशेषताओं के अलावा कुछ विसंगतियाँ भी उसमें पनपी हुई रहती है । इन विसंगतियों में पहला प्रेम और दूसरा पैसा है । प्रेम और पैसे के पीछे युवा पीढ़ी दौड़ लगा रही है उसे लगता है कि पैसे से सारे भौतिकसुखों को प्राप्त किया जा सकता है और प्रेम से मानसिक सुख को । इस कारण इन दो विसंगतियों के पीछे होड़ लगी हुई है । आज का युवा वर्ग इन दोनों को ही सबसे ज्यादा समझ रहा है । जिस युवक या युवती को ये दोनों मिल जाते है उनमें पर्याप्त आस्था, नैतिकता और आदर्श दिखाई देते है और जिन को ये दोनों नहीं मिलते उनके मन में निराशा, कुंठा, आक्रामकता, ईर्ष्या तथा हीनभावनाएं उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण पारिवारिक सामाजिक व राजनीतिक दृष्टि से उनमें विकृतियाँ उत्पन्न हो जाते है । और उनका जीवन दुखदायी हो जाता है । ऐसे समय पर उसके जीवन का लक्ष्य पथभ्रष्ट हो जाता है और समाज के प्रति उसके मन में विद्रोह की भावना जागृत होती है । उसके प्रति न आस्था होती है और न ही आदर्श की भावना । इस कारण वह घोर निराशा में डूब कर विध्वंसकारी हो जाता है । उसका मन में हिंसात्मक और ध्वंसात्मक कार्यों की ओर अग्रसर हो जाता है ।

आज की युवा पीढ़ी के संदर्भ में आशारानी व्होरा लिखती है - "उफान के बाद भी ठहराव नहीं' । दिशा खोजती एक सहज प्रवाही जीवन धारा जिसमें चट्टानों से टकराने की क्षमता के बावजूद विपरीत हवाओं से बचाव या पलायन की प्रवृत्ति ही प्राय: पनपती गई । यह प्रवृत्ति उसका स्थायी भाव न हो, पर संचारी भाव आक्रोश भी तो सब कुछ तहस नहस करने में ही अधिक व्यक्त हुआ , रचनात्मक दिशा के अभाव में इससे कुछ नया पाने, कुछ उजला लाने की ललक पैदा नहीं हुई । निरंतर हाथ लगती असफलता से निराशा के बाद हताशा ।"[1]

- -

1. आशारानी व्होरा - सरोकार - पृ. 170

2·4·1·"किशोर" तथा "लापता" उपन्यासों में युवावर्ग का चित्रण :

उपर्युक्त कतिपय विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में डा० प्रभाकर माचवे द्वारा लिखित "किशोर" तथा "लापता" उपन्यासों में चित्रित युवा पात्रों का विवेचन करेंगे।

वस्तुत: किशोर तथा लापता उपन्यासों में चित्रित युवा पात्रों की समस्या लगभग एक ही है। दोनों के मन में अकेलेपन, आत्म निर्वासन तथा परिवार के लोगों की प्रेम तथा सहानुभूति न मिलना आदि विशेषताओं को दोनों उपन्यासों के पात्रों में देख सकते है। हाँ यह सच है कि दोनों उपन्यासों में कथ्य की भिन्नता है और अंतत: परिणति भी अलग है।

"किशोर" उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार माचवे जी युवक की व्यक्तिगत समस्याओं, विश्वविद्यालय के छात्रान्दोलन की समस्या तथा जेल में अकेलेपन की समस्या को चित्रित किया गया है। मुख्यत: इस उपन्यास में उपन्यास के नायक किशोर आदि से अन्त तक समस्या से ग्रस्त है। "यह समस्या तीन रूप लेती है - मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और आर्थिक। उसकी मनोवैज्ञानिक समस्या है कि वह अकेला है। जितना प्यार उसे मिलना चाहिए था उसे नहीं मिल पा रहा है। उस पर भी सौतेली माँ का व्यवहार डाँट फटकार अत: उसमें कहीं विद्रोह की अग्नि जमा हो जाती है। सामाजिक स्तर पर उसे घृणा मिलती है। प्रात: काल जो उसका मुँह देखता है वहीं उसे फटकारता है क्योंकि वह नीच जाति का है। यहाँ भी वह तिरस्कृत है। जेल से छूटने पर वह बेकार है। उसे सौ रुपये की नौकरी कुछ महीनों के लिए मिलती है परन्तु स्थायी रूप से

वह बेकार है । उसे कोई अपने पास नहीं आने देता ।"[1] "लापता" उपन्यास के नायक अरविंद की भी स्थिति ऐसी ही है । उसे भी न घर और न ही समाज में समुचित आदर मिलता है । इस कारण वह घर से निकल जाता है और देश के अनेक प्रान्तों में अनेक रूपों में घूमते रहता है । उसके मन में अलगाव की भावना घर कर लेती है ।

युवा वर्ग देश की सच्ची तस्वीर हुआ करती है । उसमें देश का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिस्थितियों का रूप दिखाई पड़ता है । इसलिए महात्मा गांधी ने कहा था कि - "किशोर-कोंगिया परिस्थिति के दर्पण रूप है । उनमें न दंभ है न द्वेष । जैसा हो वैसा ही वे अपने को दिखाते है । उनकी हर बात एक दर्पण होती है । जो प्रतिबिंब अपने में लेती । किशोर-कोंगिया में अगर पुरुषार्थ न हो, सत्य न हो, ब्रह्मचर्य न हो तो वह दोष उन लोगों का नहीं । वह दोष माँ-बाप का है । वह दोष अध्यापक का, आचार्य का और राजा का है ।"[2] वर्तमान परिस्थितियों में दिशाहीन होकर युवक भटक रहे है । इसका कारण समाज, सरकार और परिवार है । यदि समाज और सरकार उन्हें एक सही राह नहीं दिखाता और परिवार हमदर्दी और सहानुभूति नहीं रखती तो निश्चित रूप से युवावर्ग में उनके साथ नकारात्मक भावनायें पनपेगी जिसके परिणाम स्वरूप समाज में विद्रोह या विध्वन्स न हो सही कम से कम खोखला पन जरूर उत्पन्न होगा जिसमें न उत्साह रहेगी और

- -

1. डा० कृष्णा रेणा - प्रभाकर माचवे के हिंदी उपन्यास - पृ. 47
2. प्रभाकर माचवे - किशोर (भूमिका से पहले)

न ही जिजीविषा रहेगी । बस, रहती है घोर निराशा । इस निराशा से हिंसक प्रवृत्तियाँ जाग उठेंगी । डा० प्रभाकर माचवे "किशोर" उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं - "मनुष्य में जो पशु अभी तक अदम्य शेष है, वही हिंसा का प्रेरक है, मनुष्य में का देवत्व या संपूर्ण अहिंसा अभी विश्व में अवतरित नहीं हुई है । वह एक सपना है, एक यूटोपिया । और हम सब ऐसे नींद में चल रहे हैं । यथार्थ को ठुकराते हुए यथार्थ से प्रपीड़ित, यथार्थ से घबराये घबराये । किशोर कुछ और समस्याएँ भी उभरता है - समाज में नेतृत्व की भावी दिशा की समस्या ।"[1]

अतः कहा जा सकता है कि डा० माचवे जी अपने उपन्यासों के माध्यम से यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि किशोरों में मानसिक विकृतियाँ पनपने से पहले ही उनका निदान करना चाहिए । इसके लिए घर में हो या समाज में उन्हें तिरस्कृत या अकेलापन की भावना से ग्रसित होने नहीं देना चाहिए । यदि उनके मन में ऐसी भावनाएँ घर कर लेती हैं तो वे अलगाव व हिंसक प्रवृत्तियों के प्रति आकर्षित होंगे जो कि समाज व देश के लिए खतरनाक साबित हो सकते हैं ।

"किशोर" उपन्यास का नायक किशोर नामक विद्यार्थी है । वह हमेशा समस्याओं से ग्रसित रहता है । उसकी सबसे बड़ी समस्या मानसिक है । उसे न घर में और न समाज में समुचित आदर मिलता है और न सहानुभूति । इसी कारण उसके मनःस्थित विद्रोह की भावना जाग उठती है। वैसे तो किशोर एक साधारण लड़का है जो कभी कभी हिंसक वारदातें

- -

1• डा० प्रभाकर माचवे - किशोर उपन्यास - लेखक का वक्तव्य

में शामिल नहीं हुआ है किन्तु जैसे जैसे समाज के प्रति और घर के प्रति उसमें घृणा की भावना उत्पन्न होती है तो उसके अन्दर अचानक हिंसक प्रवृत्तियाँ जाग उठती है। किशोर बस जलाने पर उपन्यासकार डा माचवे जी ने लिखा है - "वैसे तो किशोर बेहद डरपोक और दब्बू लड़का रहा है। वह स्कूल में आकर न किसी से लड़ा न किसी से हाथापाई करते पाया गया। न कभी किसी को गाली तक दी। पर आज सहसा उसने इतना बड़ा साहस का काम कैसे कर डाला ?"[1] आगे उपन्यासकार कहते है कि शायद उसके अन्दर कई दिनों से जमा हुआ गुस्सा एकदम विस्फोट होकर ज्वालामुखी के समान बाहर आ गया हो। "वैसे ही कुछ उसके भीतर हुआ। उसे एक क्षण भर लगा कि झूठे है सब रिश्ते नाते। घर में कोई नहीं है उसका। बाप दब्बू है। गरीब क्लर्क है। सात भाई बहनों को पालने के उसके पास साधन नहीं है। सौतेली माँ तो पूरी डाइन है। कभी खाने को भी ठीक से नहीं देती। न पहनने को कपड़ा। बस रात-दिन काम कराती रहती है। मानो किशोर कोई बिना मजूरी का बेगार मजूर हो। दूसरे भाइयों के लाड़ होते है। बहनों के लिए सब कुछ और वह अकेला सबसे बड़ा रात दिन ताने सुनते रहता है।"[2] यही स्थिति "लापता" उपन्यास में भी है। वहाँ पर भी नवयुवक अरविंद मल्होत्रा को घर में लाड़ प्यार न मिलने के कारण घर से चले जाता है। उसमें भी हीन भावनाएं उत्पन्न होती है। क्योंकि उसकी भी सौतेली माँ है। छोटे भाई को ज्यादा प्यार किया जाता है और उसे घर में कदर नहीं किया जाता। अरविंद मल्होत्रा कहता है कि "मेरी भी माँ नहीं रही। पिता ने दूसरी शादी कर ली। सौतेली माँ ने मुझे कभी प्यार नहीं

- -

1. किशोर - पृ. 1

2. किशोर - पृ: 2

दिया ।"[1] और एक भाई था । "वह मारपीट करता । घर पर आकर झूठ बोलता । सबकी सहानुभूति पाता । छोटा था न । मुझे सब दुरदुराते । सब चाहते थे कि मैं पढ़ाई पूरी करने से पहले ही कमाने लग जाऊं । यह कैसे संभव था ? मेरी किताबें वह चुराता । पन्ने फाड़ डालता मेरे होम वर्क के । मेरे अपमानित होने में उसे बड़ा आनन्द मिलता था ।"[2] इस प्रकार माचवे जी ने युवकों के मन में घर के प्रति, परिवार के प्रति उदासीनता और चिड़चिड़ाहट उत्पन्न होने के कारणों को स्पष्ट किया है । ऐसी अलगाव की स्थिति उत्पन्न होने के बारे में माचवे जी कहते है - "यों शुरू होती है एक बे पहिचाने बने रहने की दुनिया । एक तरह से सब चीजों से अलगाव । एक ऐसा बोध कि हम सबसे कटे हुए है । कहीं कोई छोटा सा भी, हल्का सा भी संबंधों का तंतु शेष नहीं है । नित्य प्रताड़ित, अपमानित, वंचित, एक कुचली हुई, कुम्हलाई हुई, आधी, अधूरी जिन्दगी में हम जीते रहते है । कुछ है जो समझौता कर लेते है । अर्धसत्य को ही पूरा सत्य मान लेते है । यह धोखा बड़े पैमाने पर लोगों को हो जाता है ।"[3]

घर में प्रताड़ना, अपमान आदि होने पर मनुष्य में घर के प्रति अपनापन की भावना खत्म होती है । इसी कारण "लापता" का नायक अरविंद मल्होत्रा घर छोड़कर चला जाता है तो "किशोर" का नायक किशोर अक्सर घर के बाहर ही अधिक समय व्यतीत करता रहता है । "रोज की जली कटी सुन सुनकर वह तंग आ गया । घर में ज्यादा देर रहना उसने छोड़ दिया । अक्सर वक्त बाहर ही बिताता । दोस्त भी उसके ऐसे ही मिल गये, जिन्हें समाज आवारा, शोहदा और बेकार

- -

1. लापता - पृ. 87

2. लापता पृ. 88

3. लापता पृ. 88

समझता था ।"[1] किशोर को घर में रोज अनेक काम करने पड़ते है । रोज सुबह दूध लाना पड़ता था । दूध के लिए उसे "क्यू" में खड़ा होना पड़ता था । घर में हाथ धोने के लिए भी "क्यू" था । कालेज जाने के लिए "बस" के लिए "क्यू" । इस प्रकार वह इस क्यू से ऊब चुका था । और इसके बाद आर्थिक अभाव की स्थिति जिसके कारण भी वह बेचैन रहा करता था । उसकी पढ़ाई अंग्रेजी माध्यम से हुआ करती थी । वह मैट्रिक तक हिंदी में पढ़ा था । यह और एक समस्या थी । डा० माचवे जी ने लिखा है - "आज "टेस्ट" का दिन था । किताबें जो प्रोफेसरों ने मोटी-मोटी बताई थी, उनके दाम भी उतने ही लम्बे चौड़े थे । वे खरीदने की ताब कहाँ ? कालेज लायब्रेरी में थोड़ा बहुत पढ़कर नोट बना लेता था, उसका पढ़क्कू दोस्त चिंतामणी । उसी के नोट्स वह नकल कर लेता था । पर सबसे बड़ी मुसीबत यह थी कि कितायत से लौटे लक्षण अध्यापक न जाने कैसी मुँह बना बनाकर अंग्रेजी बोलते थे । मैट्रिक तक सब विषय किशोर ने हिन्दी में पढ़े थे । अंग्रेजी का एक परचा किसी तरह रट रटाकर पास कर लिया था और यह सारी पढ़ाई अंग्रेजी में । उसका तो माथा ही भन्ना जाता था ।"[2]

किशोर के साथ एक और समस्या थी । उसका कम जात में जन्म हुआ था । सब लोग उसका मुँह तक देखना पसंद नहीं करते थे । जिसके कारण उसमें हीन भावना जाग उठी और वह हिन्दू धर्म में स्थित अस्पृश्यता के बारे में सोचने लगा । "तो किशोर यादव जाति में जन्मा यह उसका तो अपराध नहीं है । भगवान कृष्ण भी यादव कुल में जन्में थे । बाद में याद बड़े जोधा लोग भी हुए । पर अब उसे पता लग गया था कि हिन्दू समाज में चार वर्ण है । और ब्राह्मण, क्षत्रिय और बनिये सब यादव

- -

1. किशोर - पृ. 2

2. किशोर - पृ. 5

को निचली जाति का मानते थे । क्या आदमी इस तरह से दूसरे को नीचा ऊंचा मान सकता है ? उसने देखा था कि उसके मोहल्ले के पास ही गिरजे में लोग रविवार को जमा होते थे । उनमें कोई भेदभाव नहीं था । उसने किताब में पढ़ा था कि बुद्ध धर्म में भी ऐसा नहीं होता । मुसलमानों को तो उसने देखा है : तांगे वाले याकूब और उसके तांगे में बैठने वाले बड़े नवाब को एक साथ एक ही थाली में खाते हुए । फिर यह इस तरह का भेदभाव हमारे हिन्दुओं में ही क्यों है ?"[1]

घर में सौतेली माँ आग बबूला होती है । "बाजार से कोयले कौन लायेगा ? तेरा बाप ? सवेरे सवेरे लाट साहब मामा जी की पंचायत में पहुंच गये । ले ये पैसे और झोले से कोयले ही ले आ । उठाकर लाना । अगर कोयले जल्दी नहीं आये तो आज खाना नहीं मिलेगा ।"[2] जब वह कोयले "वधू" में ठहर कर लाया तो सौतेली माँ ने गरज कड़क कर कहा - "अब आये हैं ? शाहजादे ! जरासा कोयला लाने में इत्ती देर । जब से कॉलेज में दाखिला मिला है, मिजाज ही सातवें आसमान में है ।...अब अंगीठी जलेगी । तब कुछ पकेगा । आज खाना नहीं मिलेगा, समझे ?"[3] वह रात की सूखी रोटी और दाल खाकर बस के लिए जा खड़ा हुआ । वह चिड़चिड़ा होने के कारण उसकी बस वाले से लड़ाई हो गई । बस में स्थिति कुछ और थी । "वहाँ एक मोटीसी भद्र महिला आकर बैठी थी । पास खड़े किशोर से जैसे उसे "छूत" के बीमार की सी "फजी" (अप्रियता) थी । सो वह बार बार उसे धकिया रही थी । वह जहाँ खड़ा था वहाँ दोनों और दो मुस्टंडे लंबे चौड़े आदमी थे । उन्हें परवाह नहीं थी कि बीच में किसी कमजोर लड़के की कलाई या हाथ की किताबें दबोची जा रही है ।"[4]

---

1. किशोर - पृ. 3
2. किशोर - पृ. 6
3. किशोर - पृ. 10
4. किशोर - पृ. 10

इस प्रकार इन सारे समस्याओं के कारण किशोर के मन में जिन्दगी के प्रति निराशा की भावना जागने लगी । वह सोचने लगा कि जीवन का अर्थ क्या है ? क्या अपना जीवन व्यर्थ है ? किशोर मन में सोच रहा था - "कितना व्यर्थ है उसका जीवन ? घर में वह किसी की नजर में उपयोग नहीं, महत्व का नहीं । बाहर सब उसे हल्की जात का कहते हैं । गरीब है इसलिए दुकान वाले उसे पास नहीं फटकने देते । बस में भी सामान्य आदमी का वर्ग बोध कपड़े पर आश्रित है । जिसके लकदक साफ झक पकड़े हुए, उसे झट से जगह मिल जाती है । कंडक्टर भी उससे मीठी जबान से बातें करता है और किशोर जैसे साधारण मैले फटे कपड़े दीखे कि सब उसे तू तड़ाक से पुकारते हैं ।"[1]

ऐसे स्थितियों में उसे कभी कभी पड़ोसी आचार्य के पास जाकर अपने पढ़ाई के बारे में पूछ लिया करता था । एक और थी दया । "जिसने एक दिन बचपन में जब उसकी पैर की उंगली कील से लगकर कट गई थी और खून बह रहा था, तो उसकी मरहम पट्टी की थी ।"[2] दया धनवान की बेटी थी । उसके साथ वो कभी कभी बात किया करता था । बस, इस संसार में यही दो ही व्यक्ति विशेषतः दया - उसके प्रति सहानुभूति दिखाने वाले थे ।

"लापता" के अरविंद मल्होत्रा जो घर छोड़ कर चला जाता है उसे अकेलेपन की भावना सताती है । उसने भारत के अनेक प्रान्तों में वेश बदलकर नाम बदलकर घूमा और विदेशों में भी रह कर आया किन्तु उसे हमेशा अकेलेपन की भावना सताने लगती है । "कहीं न कहीं गहरे में उसके मन में यह पीड़ा थी कि वह बिना जड़ों का, निर्मूल, विच्छिन्न एक तरह

- -

1. किशोर - पृ. 7

की अमरेकल का सा जीवन बिता रहा है । फिर उसने यूरोप में गत महायुद्ध के बाद रेफ्यूजियों के जहाँ तहाँ लग गये और भिन्न-भिन्न देशों में विनाश के बाद पुनर्निर्माण का कार्य भी बड़े पैमाने पर हुआ वह देखा और उसके मन में यह एकाकीपन उसे और भी सालने लगा ।"[1] अरविंद मल्होत्रा अपना अस्तित्व मिटाने के लिए नाम बदलकर डॉ० सदानंद के रूप में अमेरिका को जाता है । वह अच्छी अंग्रेजी बोल लेता था । दुनिया भर की अवांतर बातें सीख ली थी । अच्छे कपड़े पहनता था । पर भीतर ही भीतर उसे एकांत बहुत खलता था । "अकेला होने पर उसका मन उसको खाने लगता था। बार बार उसे अपने परिवार की याद आती । सौतेली ही क्यों न हो माँ कैसी है, कहाँ है ? और सब रिश्तेदार ? आँधी आते ही पक्षी भाग नहीं जाते है ? दरिद्र का भी ऐसा ही होता है । फिर पेड़ पर पत्ते आये कि पक्षी चहचहाने आ जुटते है । पैसे वालों के पास लोग हर तरह जमा हो जाते है । जहाँ होंगे कण वहीं जुटेंगे जन ।"[2]

"किशोर" उपन्यास में किशोर कुछ शरारती तत्वों या विघटनकारी तत्वों के वश में आकर बस जलाता है । बस जलाते समय रंगे हाथ उसे पुलिस पकड़ लेती है और हवालात में बन्द कर देती है । उस समय उसे मिलने न मित्र आते है और न ही छात्र आन्दोलन के नेता । सिर्फ उसके आत्मीय लोग आते है । उसे अपने आप के अर्थहीन समझने लगा कि "सारा संसार घृणापूर्ण है । यहाँ प्रेम देने वाला, प्रेम करने वाला या जिससे प्रेम किया जा सके ऐसा कोई नहीं है । एक जलती हुई लाल लाल बस के बदले लाल लाल लोहे की छड़ें है और उन्हें लाल लाल आँखों से देखने वाला एक छड़ीधारी देहाती सिक्ख है । प्रेम के अभाव में सब सूना है और सूनेपन में

- -

1. लापता - पृ. 39
2. लापता - पृ. 45

किसी पर निर्भर करने की किसी से प्रत्याशा रखने की क्या आवश्यकता है ?"[1] किन्तु ऐसे ही उसे लाटरी में दो लाख रुपये मिलते है तो उसके लिए संसार ही बदल जाता है। पत्रकार, रेडियो वाले, टी॰वी वाले सब इन्टरव्यू लेने आये, उसकी मान प्रतिष्ठा बढ़ गई। "दया" के पिता ने जो पहले उससे नफरत करता था। दया का हाथ देना चाहा। किन्तु किशोर ने अभी शादी की उम्र नहीं हुई है कहकर टाल दिया। "उसे आश्चर्य हो रहा था कि समाज में उसके संबंध किस तरह से बदलते जा रहे है। आदमी का पैसे वाला बनना ही क्या उसे एकदम सर्वगुण संपन्न बना देता है। सारी योग्यता का आधार आज हमारे समाज में क्या सिर्फ आर्थिक ही रह गया है ?"[2] फिर एक बार "वह सोचने लगा कि यह दुनिया भी कैसी है ? कल तक वह गरीब था तो सब उसकी ओर धिक्कारत से देख रहे थे, मानो वह कोई कीड़ा मकोड़ा हो और आज सहसा सबकी नजरें बदल गयी। क्या दुनिया में पैसे को इतना अधिक मान है ? क्यों है ? x x x पैसा चीजें खरीद सकता है। आदमी को प्रतिष्ठा दिला सकता है। शायद वह झूठी प्रतिष्ठा है। वह क्षणिक है। अधिक स्थायी नहीं है। पर फिर भी उसका कितना अधिक मूल्य है ? जो लोग उसे बिल्कुल मूल्य नहीं देना चाहते थे, वे भी कहीं न कहीं उससे सूक्ष्म रूप से बंधे है। अब किशोर भी उसके बन्धन की चपेट में आ गया है। पुराना किशोर, किशोर नहीं रहा।"[3]

धनाभाव ने किशोर के मन में एक कुंठा का रूप धारण कर लिया था। इस कारण उसकी पढ़ाई में रुचि नहीं थी। "किशोर के मन में ऐसी

- -

1. किशोर - पृ॰ 26

2. -वही- पृ॰ 76

3. -वही- पृ॰ 82

पढ़ाई के लिए पहले से ही नफरत है, जिसमें कितने लोगों के आगे अनावश्यक झुकना पड़ा । वक्त पर फीस नहीं है, देने को गिड़गिड़ा रहे हैं । पाठ्यक्रम की पुस्तकें खरीदने को पैसे नहीं हैं, फिर दोस्तों के सामने याचना कर रहे हैं ।"[1]

युवकों में आक्रोश, जोश और उत्साह अधिक रहता है । इस कारण वे क्या कर रहे हैं इसके बारे में कम ही सोचते हैं । परिणामतः क्षणिक आवेश में अर्थ का अनर्थ हो जाता है । इसलिए कहते हैं कि होश की अपेक्षा जोश की अधिकता का नाम ही युवा मानस है । "किशोर" उपन्यास में किशोर ने दूसरों के बहकावे में आकर छात्रान्दोलन के समय बस को जला दिया । हालांकि किशोर के मन में ऐसा करना कदापि नहीं था । एक छात्र हितैषी कहे जाने वाले के बातों में आकर उसने ऐसा किया । किशोर से उसने कहा था - "कुछ नहीं करना है । उस गली से आकर यह जलता हुआ पेट्रोल का पलीता उस बस की टंकी पर छोड़ देना है । इसमें तुम्हें कोई देखेगा नहीं । तुम पर सन्देह कोई करेगा नहीं । उस गली से तुम चुपचाप खिसक आओगे । हमारे क्वार्टीयर तुम्हें अपने स्कूटर पर दूर पहुँचा देंगे, घर पर । किसी को कानोकान खबर तक भी न होगी । एक मिनट का काम है ।"[2] इन बातों में आकर किशोर बस जलाता है और रंगे हाथों पुलिस उसे गिरफ्तार कर लेती है ।

हवालात में बन्द किशोर से मिलने "दया" आती है और उसे सलाह देती है कि वह पूरी समस्या का बोझ अकेले मत लिया करो और कहती है कि पुलिसवालों से कह दे कि क्षणिक आवेश में ऐसा कियागया है और आगे नहीं करूंगा । उसने किशोर से कहा - "माँ बाप बच्चों को

- -

1. किशोर - पृ. 23

2. किशोर - पृ. 22

घर में प्यार नहीं दे पाते । सहन नहीं करते, स्कूलों कालिजों में ठेल देते हैं । वहाँ अध्यापक उन्हें सहन नहीं कर पाते, बाहर सड़कों पर ठेल देते हैं सड़कों पर कानून के रखवारे सहन नहीं कर पाते, जेलों में ठेल देते हैं । यह सब विशुद्ध पलायन है किशोर । यों कोई समस्या हल नहीं होती । बल्कि समस्या ज्यों की त्यों भी नहीं बनी रहती । उलझती जाती है ।"[1]

जेल में किशोर के पास दूसरे कोई भी मित्र हो या छात्र नेता मिलने नहीं आये । जिसके कारण किशोर को मनुष्यता पर से ही विश्वास उठ गया । बचपन से ही उसका ईश्वर पर विश्वास उठ गया । एक बार वह घर वालों के साथ कहीं तीर्थ गया था । वहाँ के मंदिर में हरिजन होने से एक सीमा तक ही प्रवेश संभव था और वहाँ पर देवी के आगे कोई मेमने को बली दिया जा रहा था । इसको देखकर किशोर का मन बहुत दुखी हुआ था ।

किशोर का बाप जमानत की व्यवस्था करके किशोर को हवालात से छुडा लिया । हवालात से छूटने के बाद उसने साहित्य लिखना चाहा । किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में साहित्य की क्या स्थिति है उसने तुरन्त समझ लिया और उससे ऊब गया । "साहित्य की राजनीति के इस रूप से किशोर एकदम ऊब गया और उसने निश्चय किया कि साहित्य क्षेत्र में हाथ पैर मारना बेकार है । उसके लिए बहुत ही ज्यादा मोटी जैसी खाल या मगर जैसा चमडा चाहिए । किशोर बहुत भावुक और संवेदनशील था । तो उसने लेखक बनने की बात मन से निकाल दी ।"[2] किन्तु जो साहित्यकार

- -

1. किशोर - पृ. 29-30

2. किशोर - पृ. 59

और पत्रकार उसे लेखक बनने में बाढ़े आये थे उन्होंने ही जब किशोर को दो लाख रुपये की लाटरी निकलती है तो पत्र पर आधा स्वामित्व देना चाहा ।

किशोर ने सभी प्रकार के छात्र नेताओं से छात्रों तथा और शिक्षा पर विचार विमर्श किया । हिन्दू पुनरुद्धारक, समाजवादी, साम्यवादी, गांधी वादी आदि विचारधाराओं के नेताओं से मिला किन्तु सभी अपने अपने राजनैतिक स्वार्थों से ग्रसित थे । इसलिए किशोर ने अधिक निराश हो गया । उसने सोचा कि छात्र स्वयं अपना रास्ता ढूंढ लें । "अपना उपयोग किया जा रहा है, अपनी इच्छा के विरुद्ध यह भावना कितनी भयानक है । वही इच्छा मर जाती है । छत्र चाहता है कि अपनी इच्छा से जीना मरना । वह शिक्षा पद्धति जो उसे ऐसा मौका नहीं देती, अन्धी है, जड़ है । और उसके नाश के बीज उसी में मौजूद है ।"[1]

किशोर ने सोचा कि छात्रों में आदर्श भावनाएं जागृत हो और अपने पैरों पर खड़े होने की सोच उनमें आये । किसी राजनैतिक नेताओं के गिरफ्त में छात्र न आवें । उसने यह भी सोचा कि पुलिस के पास जो कुछ छात्रोन्दोलन के समय हुआ था । सच सच बता दें और जो कुछ नुकसान हुआ है अपने लाटरी में मिले दो लाखरुपयों से दे । इस प्रकार - "किशोर ने बस फण्ड में काफी बड़ी रकम दी और छात्रों की सहकारी बस सर्विस शुरू हो गई । छात्रों, द्वारा छात्रों के लिए छात्रों की बस ।"[2] इस प्रकार की आदर्शवादी चित्रण करते हुए स्वयं उपन्यासकार नाचवे जी लिखते है कि - "ऐसा आदर्श क्या यथार्थ में जल्दी ही मूर्त होगा ?"[3]

- -

1. किशोर - पृ. 94
2. किशोर - पृ. 104
3. किशोर - पृ. 104

"लापता" में अरविंद मल्होत्रा भी अपनी पहचान मिटाना चाहता है और घर से घरवालों से दूर रहना चाहता है किन्तु उसे अकेलेपन की भावना सताती है। उसने जब आशुतोष के नाम से वेश बदलकर था तब एक डायरी में लिखा कि "आदमी अकेला रहना चाहता है। उसी में उसे सुख लगता है। पर वह अकेला रह रह ही नहीं सकता। बचपन से उसे परिवार जन, मित्र बड़ा होने पर पत्नी, पति, बच्चे और कितने कितने लोग घेरे रहते हैं। वह निस्संग रह ही नहीं पाता, और सोचता रहता है कि निस्संगता ही अन्तिम सुख है। यही अकेलापन, जिसे वह सुख की कुंजी मानता है, उसके दुख की जड़ है।"[1] वह हमेशा प्रयत्न करता था। कि अपनी पुरानी पहचान मिट जाये इसके लिए उसने देवीसेन, सदानंद वालाकुकर, महादेव शर्मा और आशुतोष पटेल जैसे नाम धारण कर वेश बदलकर घूमने लगा था। किन्तु उसकी पहचान मिट नहीं पा रही थी। "वह बेचारा लापता व्यक्ति एक अदना सा छोटा सा इन्सान अरविंद। उसकी एक अपनी पहचान थी। उसे वह मिटाने में लगा था। जितना वह मिटाने जाता, उतना ही अपनी करनी से ही उसी में उलझते जाता। वह अपने आपसे भागना चाहता था। जंगलों में, समुद्र किनारे देश में, विदेश में कहीं उसे शांति नहीं थी।"[2]

अन्त: वह हिमालय के प्रान्त में शिवलाल के नाम से वृत्ति कर रहा था पर वहाँ भी उसे चैन नहीं मिला। विनीता के कारण वह अपने घर आ लौट गया। "अरविंद अपने घर लौट गया। सब लोग चकित हुए। यहाँ तक कि उसकी सौतेली माँ, जिससे चिढ़कर वह घर छोड़कर भागा था उसे पहले तो अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। बाद में उसी

- -

1. लापता - पृ. 91

2. लापता - पृ. 104

ने आरती उतारी । उसे प्रणाम करने के लिए घर के छोटे बच्चों से कहा । मिठाई मँगवाई । जश्न किया गया ।"[1] बाद में विनीता बच्चों से कहती है कि अरविंद पर कभी गुस्सा मत करना । "यह छोटी सी बात नहीं है । अलगाव यहीं से शुरू होता है । स्नेह की कमी अजनबीपन की शुरूआत है ।"[2]

इस प्रकार इन दो "किशोर" और "लापता" उपन्यासों के माध्यम से डा० माथवे ने युवामानस का मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के धरातल पर चित्रण किया है । दोनों उपन्यासों में असंतोष की भावना छोटे-छोटे पारिवारिक छोटी ख्वाहिशों से शुरू होती है किन्तु उसका प्रभाव युवा मानस पर गहरी छाप छोड़ देता है । जिसके फलस्वरूप समाज में अकेलापन, अजनबीपन और अलगावपन पनपने लग जाते है जो कि समाज के लिए दीर्घकालीन हानी है । इस प्रकार युवा वर्ग के प्रति समाज में स्नेह, सहानुभूति देने की आवश्यकता पर डा० माथवे बल देते है ।

2.5. समाज और राजनीति में फैली अनैतिकता :

वर्तमान युग में सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में सेवा भाव का दृष्टिकोण क्रमशः लुप्त होते जा रहा है । समाज में व्याप्त पाश्चात्य उपभोगता संस्कृति ही शायद इसका एक प्रमुख कारण हो सकता है । उपभोक्ता संस्कृति भारत जैसे विकासित देशों में अथाभाव की परिस्थिति को उत्पन्न कर सकती है, क्योंकि समाज के सभी वर्ग अधिक सुविधाभोगी तथा सुखभोगी बनना चाहते है । इसके लिए धन की आवश्यकता होती होती है । धन तो समाज के सभी वर्गों के पास रहता नहीं । ऐसे

---

1. लापता - पृ. 130
2. लापता - पृ. 132

परिस्थितियों में कुछ अन्य मार्गों से धन कमाने की विचार उठ खड़ा होता है । फलतः समाज में अनैतिकता, बेईमानी और भ्रष्टाचार जैसे बुरे मूल्यों का पनपना शुरू हो जाता है ।

वस्तुतः समाज में अनैतिकता बेईमानी और भ्रष्टाचार आदि अन्याय पूर्ण मूल्यों परविकास क्रमशः होता है । जैसे जैसे समाज मेंआर्थिक संकट अधिक होने लगता है वैसे वैसे इन बुरे तत्वों का विकास होने लगता है । इस प्रकार जल्दी ही समाज के सभी क्षेत्रों में ऐसे लक्षण व्याप्त हो जाते है । समाज में कुछ ऐसे क्षेत्र है जिनका कार्यक्षेत्र पवित्र एवं सेवाभाव का माना जाता है जैसे शिक्षा संस्थाएं, अस्पताल आदि ऐसे क्षेत्रों में भी वर्तमान परिस्थितियों में भ्रष्टाचर जैसे बुरे लक्षण अधिक हो रहे है । यहां पर भी आजकल "सेवा" का "भाव" मांगा जा रहा है, सीधे नहीं तो छुपके से ।

इस प्रकार समाज के अनेक क्षेत्रों में बुरे मूल्यों का विकास हो रहा है । इतना ही नहीं राजनीतिक क्षेत्र में भी इस प्रकार के लक्षण दिखाई दे रहे है । वास्तव समाज मे फैले इन बुरे मूल्यों का जड़ राजनैतिक क्षेत्र ही है । राजनीतिक नेताओं के कारण ही भ्रष्टाचार आदि बुरे लक्षणों का विस्तार हो रहा है । "धन" और भाई भतिजावाद के व्यामोह में नेता लोग अपना स्तर तथा देश का स्तर दोनों को गिरा रहे है ।

2.5.1. आधि मेरी, बाकी उनका" उपन्यास में समाज और राजनीति में फैली अनैतिकता का चित्रण :

डा० प्रभाकर माचवे ने अपने अनेक उपन्यासों में भ्रष्टाचारी, बेईमानी और अन्यायी पूंजीपतियों, जमींदारों, मिल-मालिकों तथा नेताओं का चित्रण किया है । "आधि मेरी, बाकी उनका" नामक अपने

उपन्यास में विशेषतः समाज में व्याप्त बेईमानी तथा भ्रष्टाचार का यथार्थ चित्रण करते हुए राजनैतिक क्षेत्र में रहे सर्वोदयी, साम्यवादी, समाजवादी कांग्रेस दक्षिण पंथी, मुस्लिम तथा पारसी विचार धाराओं से संबंधित नेताओं तथा उनके महिला सहकर्मियों का ब लेखा जोखा प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है । इन राजनैतिक लोगों की खोखलेपन, स्वार्थपरता आदि लक्षणों का पर्दाफाश किया गया है ।

डा० प्रभाकर माचवे ने "आँखें मेरी, बाकी उनका" उपन्यास में कथा प्रस्तुतिकरण में एक नयी और वैचित्र्य पूर्ण शैली का चुनाव किया है । इस उपन्यास में सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों के गतिविधियों का विश्लेषण करने के लिए "दास" और राजा नामक पात्रों की कल्पना की गई है । दास दृष्टा है वह चार वर्ष के बाद मरने वाला है ऐसा उसके विश्वास-पात्र ज्योतिषी ने भविष्यवाणी बतलायी थी । और राजा यमराज है जो हमेशा दास के साथ रहता है । दोनों मिल कर इन चार वर्षों तक सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों को देखते जाते है । वास्तव में कई योजनाओं से गुजरते हुए आखिर दास ने तय किया कि वह समाज के विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन करेगा - "चार बरस बाद मौत । इस सच्चाई का सामना कैसे किया जाये ? और मेरे ख्याल से एक बात तो अपने हाथ में है, उसी पर अमल किया जाये, जो जो सामने घटित हो रहा है, वह "देखा" देखा जाये, "सुना" जाये, सूंघा, चखा छुआ भी जाये ।"[1] वह आगे कहता है कि "मुझे कोई ऐसी शक्ति प्राप्त हो गई है कि मैं वह सब देख सकता हूँ । जो सामान्यतः भौतिक आंखे देख नहीं पाती । इसी से मैं यह सब लिखने बैठा ।"[2]

---

1. आँखें मेरी बाकी उनका - पृ. 33
2. -वही- पृ. 34

इस प्रकार दास और राजा (यमराज) ने अतीन्द्रिय शक्ति के माध्यम से समाज में कैसीकैसी घटनायें घट रही है और जनता की प्रक्रिया कैसी है आदि को देख कर उसका यथार्थ चित्रण किया है। जैसे पहले ही कहा गया है कि जो कुछ देखा गया है उसी का यथातथ्य चित्रण किया गया है ।

अतः सबसे पहले एक ऐसा दृश्य देखा जाता है कि बन्द दरवाजे के आगे एक पिंजड़े में सुन्दर बच्चा है जो वस्तुतः अवैध सन्तान है । इस शिशु को देख कर वहाँ की भीड़ तरह तरह की प्रतिक्रिया व्यक्त करती है । दास को उनके साथ यमराज कहते है -"देखो, यह है जन्म । न नाम है न पता । न माँ, न बाप । न भाई, न बहिन । शुद्ध अस्तित्व । इस समय इसे कहाँ अहसास है किसी संबंध का । किसी और बात का । यह तो एकदम अतीत है । सब मायामोह से परे । सब बंधनों से परे । सिर्फ भूख है और प्यास है । नींद है और सुरक्षा की आस है ।"[1] वहाँ से उस बच्चे को ले जाने के लिए भीड़ में लड़ाई होती है । अंततः उस बच्चे को एक ईसाई नन उठाकर ले जाती है । इस घटना पर दुनिया में होने वाले तर्क वितर्क वाद-विवाद के बारे में भी मालवे जी ने दास और राजा के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है । भीड़ में उस बच्चे की धर्मांतरण होने की बात चलती है इस पर हिन्दूवादी औरअन्यों के बीच तीखी झड़पें होती है । इस वाद विवाद में एक हैड व्यक्ति हिन्दू धर्म पर प्रहार करता हुआ कहता है -"हिन्दू बने रहने से क्या लाभ है ? यदि मैं नीच वर्ण का हिन्दू हूँ - और राजनीति में नहीं हूँ - तो मुझे उच्च पद पर

- -

1. आँखें मेरी बाकी उनका - पृ. 36

पहुँचने में जितना समय और शक्ति लगेगी वह सब धर्मांतर से नहीं लगती। जादू से जैसे मेरा नाम जनक से जॉन हो जाने से मैं सब तरह की सामाजिक सुविधाओं के लिए अधिकारी हो जाता हूँ। जनक भंगी या जनक मेहतर के साथ आप आराम से बैठकर चाय नहीं पीयेंगे न खाना खायेंगे। पर वही आप जॉन साहब होते ही उसका दर्जा आपकी हैसियत, आपका रुतबा, आपका सामाजिक स्थान ऊँचा हो जाता है। यह क्या मजाक है? वही बात जनक से जान मुहम्मद या अब्दुल्ला हो जाने में है।"[1]

इस प्रकार समाज में अवैध रूप से पैदा होने वाले बच्चों की स्थिति और धर्मांतरण के कार्य पर समाज में व्याप्त धारणाओं को माचवे जी ने यथा तथ्य प्रस्तुत किया है।

जन्म और धर्मांतरण की समस्याओं के बाद माचवे जी इस उपन्यास में पाठशाला, कॉलेज, दफ्तर, अस्पताल आदि जगहों पर दृष्टि डाला है और वहाँ की परिस्थिति का आकलन प्रस्तुत किया है। जब वे पहले दास और राजा जिस स्कूल को देखने जाते हैं, उस स्कूल के बोर्ड पर माचवे जी व्यंग्य करते हुए लिखते हैं, कि "मैनगेट के ऊपर "दानवीर सेठ अमुकमल अमुकलाल, अमुक धर्म प्राथमिक तथा माध्यमिक पाठशाला, बोर्ड लगा था जिसका रंग उखड़ चुका था। अक्षर भी कंजूसी से लिखे गये थे।"[2] और वहाँ की पढ़ाई की बारे में डा० माचवे जी लिखते हैं - "मास्टर नामक प्राणी कोई सवाल या गणित "ब्लेक बोर्ड पर लिखकर खुद कुर्सी में ऊंघते या उपन्यास पढ़ते बैठे हैं। बीच बीच में बच्चों का शोर बढ़ जाने पर डंडा पीटकर बच्चों में अनुशासन पैदा करने का डर या दहशत पैदा करते

- -

1. किशोर मेरी बाकी उनका - पृ० 38
2. -वही- पृ० 40

हुए ।"[1] यह स्थिति केवल अमुक प्रान्त और अमुक स्कूलकी नहीं है । यह देश के सारे प्रान्तों की स्थिति है ।

स्कूल के बाहर दो छोटे बच्चे है- एक चाय की दुकान में काम करता है तो दूसरा जूता पालिश करता है । ये बच्चे भी स्कूल जाना चाहते है किन्तु धनाभाव से नौकरी करने के लिए विवश है । फिर भी जूता पालिश करने वाला बच्चा अपने साथी से कहता है कि -"पढ़ लिखकर भी क्या करेंगे ? बेकार डोलते फिरेंगे । काम कहाँ है ? हम तो अच्छे है । आजाद है । कमा रहे है ।"[2] इस प्रकार मजदूर बच्चों के माध्यम से माचवे ने आज की बेरोजगारी समस्या पर दृष्टि डाली है ।

दास और राजा स्कूल के पश्चात कालेज की स्थिति पर दृष्टि डालते हुए वहाँ की स्थिति का उजागर करते है । वहाँ की स्टाफ रूम में अप्रासंगिक बातें चल रही थी । "कुर्सियाँ टेबुल, टूटा फाटक, जोड़ तोड़ और टोधा किकरण, निन्दा-बुराई, यही सब उन बड़े मानवों का उपजीव्य था ।"[3] उदाहरण के लिए वहाँ पर चल रही बातचीत का एक कथन जो इस प्रकार है- "प्राइवेट कालेज में क्या प्रमोटेशन ? घर बैठा देंगे । रूआंसा मुँह लेकर बच्चू बैठ जाओ । सिटी के समय बहुतेरे मिलते है । अब तो पी०एच०डी भी गली गली मारे मारे फिर रहे है । जिस गति से डिग्रियाँ बँट रही है, उस गति से नौकरियाँ तो नहीं बढ़ रही है ।"[4] इसके बाद डाक कार्यालय में होने वाली लापरवाही तथा समय की पाबंदी न रहने की बात को भी उठाते है । अस्पताल की चर्चा करते हुए वहाँ पर होने वाले भ्रष्टाचार पर दुःख व्यक्त करते है । "अस्पताल में दवाइयों के नाम पर मिलावट भरी दवाइयाँ बेची जा रही थी । अस्पताल में "रक्त"

---

1. आंखि मेरी बाकी उनका - पृ. 41
2. -वही- पृ. 42
3. -वही- पृ. 44
4. -वही- पृ. 43

की आवश्यकता मरीज को होने पर ऐन आपरेशन के समय कह दिया जाता था- यहाँ इस तरह का "रक्त" जो आपके काम का हो, नहीं है। फिर गिड़गिड़ाता, घिघियाता मरीज उसी नर्स या असिस्टैंट के पास चुपके से पूछता और कहाँ पाया जाएगा ? वह चुपके से रास्ता बताता है- फलाफला ब्लड बैंक या सैंटर से ज्यादा दाम देकर मिलेगा। और यह जानकारी देने के लिए इतने मुझे चाहिए।"[1] इस प्रकार वहाँ पर सब जगह कमीशन था। जिस देश में वैद्य को भगवान मानते है उसी के मंदिर रूप अस्पताल में यह भ्रष्टाचार नीति पनप रही है। यह सामाजिक सेवाओं पर बहुत बड़ा आघात है।

इस प्रकार दास और राजा के माध्यम से समाज के कुछ संस्थाओं का सर्वेक्षण करते हुए उपन्यासकार स्पष्ट करना चाहते है कि कहीं पर भी अब न्याय, धर्म, सेवाभाव नहीं रह गया है। अब समाज में चारों ओर अन्याय, अधर्म, स्वार्थ, बेइमानी और भ्रष्टाचार फैला है। इस का यथार्थ चित्रण उन्होंने प्रस्तुत किया है और भ्रष्टाचार फैला है। इस का यथार्थ चित्रण उन्होंने प्रस्तुत किया है। आगे इस उपन्यास में अनेक विचारधाराओं से संबंधित नेताओं का स्वरूप प्रस्तुत किया है जिसमें उनका खोखलापन स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार और बेइमानी मुख्य रूप से उजागर हुए है।

दास ने राजनीतिक क्षेत्र की ओर देखा तो "वहाँ भी उसे जनता का नेताओं द्वारा शोषण और जनता द्वारा ढोंगी बाबाओं, स्वामियों महन्तों, महर्षियों, स्वयं प्रचारित भगवानों और उनकी ही प्रतिरूपा, देवियों, माताजियों, ब्रह्मचारिणियों की पूजा जो इस तबके तक ही नहीं वरन् ढोंगी सर्वोदयी, गांधीवादी, कट्टर कम्युनिस्ट, असामाजिक समाजवाद मुस्लिम प्रेमी हिन्दुत्व निष्ठ, दलितों, अल्पसंख्यक नेताओं और बुद्धि

---

1. आँखें मेरी बाकी उनका - पृ. 47

वादी, व्यक्ति स्वातंत्र्यवादी नेताओं को भी इस बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण न्योछावार हो रही है। जनता की इस भक्ति भावना विश्वास के चलते इन कर्णधारों द्वारा इस देश को किधर ले जाया जा रहा है, उसके बदलाव का वास्तविक स्वरूप क्या है? इन नेताओं के गुण दुर्गुण जो केवल एक व्यक्ति तक सीमित नहीं रह गये है - ये सब बुराइयाँ जमा हो कर "टाइप" बन चुकी है।"[1] इन्हीं "टाइप्स" नेताओं तथा उनके मंझला सहकर्मी मित्रों का व्यक्तित्व चित्र यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया गया है।

उपन्यास के प्रथम खण्ड के अन्तर्गत नेताओं का चरित्र तथा दूसरे खण्ड में उनके मंझला सहकर्मी मित्रों का चरित्र उजागर किया गया है। सबसे पहले सर्वोदयी नेता दादा जी के चरित्र का उल्लेख किया गया है। इनका "नगर में मान था। पर सभी उनको एकदम प्रभाव शून्य और एक अकिंचन की तरह जानते थे।"[2] यह नेता ठाकुर प्रताप सिंह को दंडित न करने के लिए हाईकमान से दरख्वास्त करता है। ठाकुर प्रताप सिंह ने हरिजनों की झोपड़ियों को जलाया था। दादा जी ठाकुर साहब का समर्थन इसलिए करते है कि वह दादा जी के गोशाला के लिए एक मुश्त रकम दान में देने को तैयार है। दादा जी के पास गोशाला का कामकाज देख लेने वाला जगुदत्त ने "गोवंश के आर्थिक महत्व पर शोध कार्य किया, चुपचाप उसे व्यवहारिक जीवन में उतारा। जहाँ कहीं यात्राएं कीं ग्वालों, घोसियों, अहीरों, गूजरों के बीच। उसे अपने शरीर की परवाह नहीं थी। तब दादा जी ने इसका लाभ उठाया। उसकी

- -

1. प्रकर (फरवरी 1985) में दुर्गा डाकरे की "आँखें मेरी बाकी उनका" पर समीक्षा - पृ. 18
2. आँखें मेरी बाकी उनका - पृ. 50

एक पाण्डुलिपि ली, अपने नाम से छाप दी ।"[1] इस पर जब जाम्बुवंत कड़ा विरोध किया तो दादा जी उस पर लांछन लगाया कि उसका चरित्र ठीक नहीं है । उसका सेठानी से संबंध है । इस प्रकार "उस बेबुनियाद की बात को मिथ्या को सत्य सिद्ध करके दादा जी ने अपने प्रतिस्पर्धी जाम्बुवंत को वहाँ से भगा दिया था ।"[2] यह सर्वोदयी नेता अपना वसीयत लिखते समय भी सब कुछ झूठ और ढोंग की शैली में बड़े लोगों का नकल करते हुए लिखता है - "मेरे बाद मेरी रचनाओं को जो अधिकांश अप्रकाशित है - संस्था को मुफ्त दिया जाये । मेरी निज की वस्तुएं बहुत कम है । कुछ किताबें जमा है । वे सर्वोदय संघ की लाइब्रेरी में दी जाये । और जो भी पैसे मेरे नाम से जमा है - समय समय पर मित्रों ने कृपा की है - वे सब एक ट्रस्ट के रूप में जमा करके उसमें से जो ब्याज मिले, किसी हरिजन कन्या की शिक्षा के लिए दे दिया जाये । वस्तुतः मैं बापूजी का अनन्य सेवक रहा, और मैंने कोई माया नहीं बटोरी । मेरे नाम से कोई संस्था न बनाई जाये, न मेरा चित्र, न शिलास्मृति, बुत या प्रतिमा कहीं लगाया जाये । न मेरी जीवनी लिखवाई जाये । न मेरे पत्र जमा करके छापे जाये । जब इस देश में गांधी जी का अनुगमन नहीं दिखता है, तो हमें कौन पूछता है जी ? मेरी वसीयत यही है कि सब सच बोलें, सब प्रेम से रहें । विश्व में युद्ध न हो । इति ।"[3]

इसी प्रकार दादा जी की अन्तेवासिनी कान्तिबेन भी छद्म सर्वोदयी है । वह दिखावा करती है । उसका जीवन अत्यंत विलासपूर्ण है । दाम और राजा कान्तिबेन के पास आते हैं । उनके घर का वर्णन

- -

1. बांधि मेरी आंखें उनको - पृ. 54
2. -वही- पृ. 54
3. -वही- पृ. 56

करते हुए बताते है कि "जब हम कान्स्टेन्स की एकाकी झोंपड़ीनुमा "काटेज" में पहुँचे तो वे एक बहुत कीमती कालीन पर खद्दर का आसन बिछाये, "यरवदा चक्र" नामक चरखे पर सूत कात रही थी । "काटेज" उनके मकान का उपनाम था । केवल बाहर स्थापत्य की शोभा को छत आदि वैसी रंगकर बना दी गई थी, खासा सीमेंट कांक्रीट का बंगला था । सुन्दर बागीचा चारों ओर था ।[1] इस प्रकार प्रत्येक विषय में वह दिखावे का प्रदर्शन करती थी । चाहे वह अन्तर्जातिय विवाह हो या उर्दू पढ़ाना हो सभी में तुष्टिकरण की नीति अपनाती थी ।

दूसरे नेता है कम्युनिस्ट विचारधारा में विश्वास रखने वाले कामरेड किशनचन्द । उनके बारे में कहा जाता है कि "कामरेड किशनचन्द कब कामरेड बन गए, उनको खुद याद नहीं । न तो उन्होंने कभी लाठी खाई, न जेल गये, न उन्हें "अण्डर ग्राउण्ड" जाना पड़ा, न उन्होंने किसी जुलूस का खुद कभी नेतृत्व किया, न कभी ऐसा कोई काम किया जिसका दूर दराज से भी "क्रांतिकारी कार्यक्रम" से सीधा संबंध माना जा सकता है । परन्तु उन्होंने हर ऐसी इंकलाबी हलचल, तहरीक और झगड़े का पूरे दिल और दिमाग से फायदा उठाया ।"[2] कामरेड किशनचन्द ऊँची-ऊँची बातें करता था । मार्क्सवाद पर बहस करता था किन्तु "अपने व्यक्तिगत जीवन में अत्यन्त घटिया था । शराब पी कर बीबी बच्चों को पीटता था । कर्ज लेता था तो कभी लौटाता नहीं था । फोटोग्राफी करने का बहाना करके नौजवान लड़कियों के पीछे घूमता था । उसे मित्रों से विश्वास-घात करने में कुछ भी बुरा नहीं लगता था ।"[3]

---

1. बाकि मेरी बाकी उनका - पृ. 98
2. -वही- पृ. 56-57

कामरेड किशनचंद की राजनैतिक सह प्रवासिनी किकिस जो पति द्वारा परित्यक्ता मुस्लिम महिला है। कालेज में अंग्रेजी साहित्य पढ़ती है। साम्यवाद की दुहाई देने वाली किस्लकिस कामन सिविल कोड (समान नागरिक संहिता) पर पूछे गये प्रश्न का उत्तर देते हुए कहती है कि -"परिवारों के शादियों के, रिवाजों के गठन अलग अलग के है। आदर्श तो यही होता कि सबके लिए कानून एक सा होता। पर दुर्भाग्य से हमारी सांस्कृतिक इकाइयाँ अभी इतनी उदार नहीं हुई है। सब आदिवासियों को एक से कपड़े पहनाने की बात जैसे जबर्दस्ती लगेगी, वैसे ही यह कुछ है।"[1] इस पर डा० माचवे जी ने प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा है कि - "दूसरों को भौतिकवाद और द्वंद्ववाद का उपदेश देना या उससे सारे इतिहास की गति को समझाना एक बात है और स्वयम् निज के जीवन में समस्याओं से उसी सिद्धांत के सहारे जूझना दूसरी।"[2]

इस प्रकार के कुंठित व्यक्तित्व वाले साम्यवादी रहने के कारण ही शायद माचवे जी ने प्रश्न उठाया है कि "कम्युनिज्म डेढ़ सौ वर्षों में एक भी आदर्श राज्य बना नहीं पाया। क्यों ?"[3]

तीसरे नेता है प्रजा समाजवादी पार्टी के भाई काले। यह बातों में समाज वाद की बखान करते है। कहता है कि "हमें समावाद को भारतीय संदर्भ में उतारना था। उसे भारतीय जामा पहनाना था। गांधी जी की अहिंसा से उसे अनुप्राणित करना था।"[4] किन्तु उनका व्यावहारिक रूप अलग है। वह उद्योगपतियों का सहयोगी है। वह उनसे एकान्त में लेन-देन

---

1. आंखि मेरी बाकी उनका - पृ. 114
2. -वही-
3. -वही- पृ. 63
4. -वही- पृ. 65

किया करता है। उद्योगपतियों का वह काम करता है और उनसे उसका उत्तम मोबावजा उसे मिलता है।

"भाई काले की मित्र किमया ताई राष्ट्र सेवा दल से बहुत बचपन से जुड़ी हुई थी। साने गुरूजी का साहित्य पढ़कर वह समाजवादी दल की ओर आकृष्ट हुई थी। x x x किमया ताई दिल की मरीज थी। उनका दिल वैसे तो अगस्त सन् बयालीस के समय ही टूट चुका था, यद्यपि वे उस समय बहुत छोटी थी। पर वे ऐसी बढ़ा चढ़ाकर बातें करती थी कि मानों सारा "भारत छोड़ो आन्दोलन" उन्हीं के इशारे पर हुआ था। जैसा कि ऐसे कुंठित लोगों का हो जाता है, वे बढ़ चढ़ बातें करती थी।"[1] जब दास और राजा उनके घर पर पत्रकार के रूप में उनका साक्षात्कार लेने जाते है तो उनसे किमया ताई कहती है - "देखिए मिस्टर दास कौन सी चीज रहती है। कायमी तौर पर। सब बदल जाता है। मुझे ही देखिए न, कालेज में जब पढ़ती थी, तब कितनी सुन्दर लगती थी आप मुझ पर लिखे तो यही तरूणी रूप का फोटो छापिए - अक्षय मैंने कुछ "कापी" भी बना रखी है, उस फोटो की। तो समाज वादी आन्दोलन वगैरह तो बहुत स्थायी चीजें नहीं होती। वे बदलती ही जाती है।"[2] इस प्रकार के नेता कोरे समाजवादी की आड़ में अपने जीवन को सुविधाभोगी बनाते जाते है।

चौथे नेता है सुविधाभोगी, स्वार्थी और कांग्रेस पार्टी के लिए सबसे ज्यादा चंदा देने वाले गोपीनाथ गुप्ता जी। वे ऐसे आदमी थे जिनका मत या विश्वास बहुत पक्का न था। "यानी जैसा सिंहासन हो, वैसी कुर्सी पर सरता हो उनके अनुसार इनका मत और विश्वास "जलवायु कुक्कुट (वेदर कौक) की तरह बदल सकता था। x x x गुप्ता जी इस

- -

1: अर्धी मेरी बाकी उनका - पृ. 119-120

2: -वही- पृ. 125

समय बहुत प्रभावशाली थे । कारण वे सत्ताधारी पार्टी के कोषाध्यक्ष के भाई थे । और नगर में उनकी अच्छी खासी प्रतिष्ठा थी । स्वयम का व्यापार था, लंबा चौड़ा । राजनीति तो महज एक हाबी थी । उनकी भाषा में "एक खेल है ।"[1] ऐसे व्यक्ति अनेक सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं में अपने व्यक्तियों के लिए सिफारिश भेज देते है । लोग इनके नाम का फायदा उठाते है । "फिर गुप्ता जी का नाम लेकर अखबार वाले बदनामी कराते है । अखबारवालों का मुँह बन्द करने के लिए दूसरी तरह का भ्रष्टाचार...एक सिलसिला शुरू हो जाता है, एक झूठ से बचने सौ झूठों का सहारा लेने का ।"[2]

"दानवीय सेठानी सीतादेवी, गोपीनाथ गुप्ता जी की पत्नी सिन थी । गुप्ता जी की वह बड़ी प्रशंसिका थी । इसलिए गोपीनाथ जी की जो भी राजनीति थी, वह उन्हें प्रिय थी ।"[3] सेठानी सीता देवी जी जो कहती थी बिल्कुल उसके विपरीत व्यवहार किया करती थी । "सीता देवी का घरेलू जीवन कैसा था ? ठीक जो बाहर प्रचार करती थी, उसके विपरीत । बाहर प्रचार करती थी सादगी का । घर में वे बहुत बन ठनकर, सज संवरकर, गहने पहनकर, नई से नई फैशन से लैस रहती । बाहर वे प्रचार करती थी कि "छोटा परिवार" सुखी परिवार" किन्तु उनके अपने छह बच्चे थे - चार पुत्र, दो पुत्रियाँ, बाहर वे कहती थी, मनुष्य को कोई व्यसन नहीं होना चाहिए । उनके पति सिगरेट और शराब के बिना नहीं रह पाते है । स्वयं हर मिनट पान मुँह में दबाये रहती ।

---

1. अभि मेरी बाकी उम्र - पृ० 69
2. -वही- पृ० 73
3. -वही- पृ० 132

बाहर से कहते गुरुकुल और आश्रम पद्धति की मातृभाषा माध्यम की शिक्षा ही श्रेष्ठ है । घर में सब बच्चे कान्वेंट में पढ़ने जाते थे । इस ढोंगीपन के कारण नेताओं की बात का विश्वास केवल वे ही करना चाहते हैं, या वे दिखाते हैं कि विश्वास कर रहे हैं, जिन्हें उन नेताओं से मतलब होता है ।"[1] ऐसी नेवाहन का एक मात्र लक्ष्य था अपनी पार्टी में सर्वोपरी होना । इसके लिए वे आवश्यक योग्यताएं अपने आप में विकसित कर रही थी । उनके लिए जनता की सेवा एक फ़ैशन मात्र था ।

पाँचवे व्यक्ति है दक्षिण पंथी विचारधारा वाले पं० कृष्ण जी शुक्ला जी । "पंडित कृष्ण जी ने चोटी रखी थी । चंदन लगाते थे । धोती कुर्ता पहनते थे । शाल ओढ़लेते थे सर्दियों में । शाकाहारी थे । मिठाई बहुत पसंद थी । चाय नहीं पीते थे । शादी ब्याह के मामले में बहुत सनातनी थे । अपने आपको कट्टर हिन्दू कहते थे । धार्मिक बातें करने में उनका कोई सानी नहीं था ।"[2] ऐसे कट्टरवादी के अपने कुछ मूल्य थे । वह सभी को अपने द्वारा अनुसरित मूल्यों को ही अनुसरण करने के लिए कहते थे-"शुक्ला जी अपने घर से सारी दुनिया को नापते थे । अगर उनके घर में पर्दा प्रथा है, तो वह सारे समाज और राष्ट्र के लिए वे उपयोगी मानते थे । यदि उनके घर में छुआछूत बरती जाती है, तो वही सारे समाज और राष्ट्र के लिए हितावह वे मानकर चलते हैं । यदि उनकी भाषा संबंधी धारणा हिंदी राष्ट्रभाषा सबके लिए मान्य न हो, तो वे ऐसा मानने वालों को देशद्रोही कहते हैं ।"[3]

---

1. कहीं मेरी बाकी उनका - पृ. 133
2. -वही- पृ. 73
3. -वही- पृ. 77

पंडित कृष्णा जी शुक्ला जी की पड़ोसिन शशी बचपन से ही समिति में सक्रिय कार्यकर्त्री थी । वह संघ के गुरूजी के आदर्शों पर चलती थी । गुरू जी ने यही सिखाया था कि "हिन्दू जाति को आत्मरक्षा के लिए सन्नद्ध हो जाना चाहिए । नहीं तो वह नष्ट हो जायगी । हिन्दू स्त्रियों ने ही संस्कृति की रक्षा अनादि काल से की है । सती, सावित्री, सीता के आदर्श सामने रखना है । सुकन्या, सुगृहिणी, सुमाता बनना है ।"[1] शशी इस संघ के एक कार्यकर्ता के साथ प्रेम करने लगी, जिसकी पहली पत्नी और उसके बच्चे भी थे । शशी ने उस कार्यकर्ता के साथ गांधर्व विवाह कर लिया था ।

छठे व्यक्ति है एडवोकेट सैयद अनवर हुसैन । वे अपने आपको "माडर्न मुस्लिम" मानते है । राजनीति में रूचि होने के कारण जो पार्टी सत्ता में आती है उसके साथ जुड़ जाते है । पुश्तैनी सम्पत्ति थी । "सब कुछ ठीक नजर आता था । मगर कुनबा मन में दुखी रहता था । उन्हें लगता था कि मुस्लिम होने की वजह से उनके साथ ठीक सलूक नहीं किया जा रहा है ।"[2] सैयद अनवर हुसैन का इसलिए बजन थी कि "कुछ वोट" इनके हाथ में थे । जानता उन्हें कोई न गांव में, न कस्बे में, न शहर में, कहीं पूछता नहीं था इसलिए अब वह अपना सारा गुस्सा बेकार की बातों पर उतारते थे । हिंदी के खिलाफ (स्व.) फिराक गोरखपुरी की भावनाएं दुहराते । मोरा जी ने जैसे उर्दू को अलग भाषा मानने से इनकार किया और नेपाली को भारत की भाषा नहीं माना यह सब कहते ।"[3] इस प्रकार वे इस जनतांत्रिक व्यवस्था में संतुष्ट नहीं थे । यह समस्या उनके मन में एक ग्रंथि का रूप धारण कर रही थी ।

- -

1. वाकि मेरी बाकी उनका – पृ. 142
2. –वही– पृ. 81
3. –वही– पृ. 86

सैय्यद अनवर हुसैन की हुस्ना कभी मित्र हुआ करती थी । वे कालेज में पढ़ाती है । "हुस्ना का यह विश्वास है कि मुस्लिम इस भारत देश में असुरक्षित है, महफूज नहीं है । पता नहीं कौन कोई उठकर उसको मार पीठ दे, क्या न कर दें ? यह डर उसे हमेशा लगा रहता है । इसलिए वह अपने साथ में एक अस्त्र, एक पैनी छुरी नुमा अस्त्र लेकर चलती है । यह ठीक है कि आज तक उसका इस्तेमाल करने का मौका नहीं आया था । साथ रखती थी । इस सारे इंतजाम के बावजूद शैतान की तरह हिंसा देश में फैलती ही जा रही थी । सो उनकी पहली दिलचस्पी मुस्लिम कौमीयत में है ।"[1] हुस्ना के पास जाकर मिलने के बाद दास कहता है कि "हुस्ना के पास जाकर हमें एक नई बात का ज्ञान हुआ है । भीड़ में भी अकेला, बहुसंख्यकों से घिरा अल्पसंख्यक कैसा असहाय है ? क्या कोई कोशिश उनके इस बेगानेपन को पाटने की कोई गई ? कौन करता ?"[2]

सातवें व्यक्ति पारसी के मिस्टर रूस्तम सोपवाववाला । "रूस्तम सोपवाववाला एक ऐसी जहनियत का नाम है, जो आप देश में एक खास तरह का नव धनाढ्य वर्ग पाल रहा है । उनके प्रिय अखबार है, उनके प्रिय लेखक है - देशी और विदेशी । उनके प्रिय आर्थिक सामाजिक प्रोग्राम है ।"[3] इनको संविधान पर विश्वास नहीं है । वे कहते है -"हमारा अन्तिम लक्ष्य अराजकवाद है । यानी गड़बड़ी और फसाना ।"[4]

मिस दारूवाला हिन्दुस्तान को अपना देश नहीं मानती थी । "भारत की एक भी बात उन्हें अच्छी नहीं लगती थी । यहाँ बहुत सी

- -

1. आधि मेरी बाकी उनका - पृ: 148
2. -वही- पृ: 154
3. -वही- पृ: 90
4. -वही- पृ: 90

पैतृक संपत्ति थी । वह छोड़ना भी नहीं चाहती थी । विदेशी नागरिकता लेना नहीं चाहती थी । x x x उन्हें सभी वे लेखक [अँग्रेजी में] अच्छे लगते, जो भारत की निन्दा करते है ।"[1] वह सोचती है कि उनके पारसी धर्म में कोई दखल अन्दाज कर रहे हैं । सभी अल्पसंख्यकों का "एलीमिनेट" और डिलीट [विनष्ट] हो रहा है ।

इस प्रकार समाज में सभी वर्गों के नेता तथा अन्य लोग अपने अपने दृष्टि से सुधारने की बात सोचते है । कोई भी समाज के बारे में कोई नहीं सोचता ।

3. निष्कर्ष :

डा० प्रभाकर माचवे सुप्रसिद्ध प्रयोगवादी कवि, उपन्यासकार एवं विचारक है । माचवे जी प्राय: किसी भी समस्या को संपूर्णता में देखने का प्रयास करते है । चाहे वह समस्या प्रमुख हो या गौण । प्रत्येक समस्या के समाधान के लिए, उसके विश्लेषण के लिए वे उसके अतीत को देखना चाहते है । इसका परिचय उन्होंने अपने उपन्यासों में दिया है । नारी जीवन के संबंध में उन्होंने अपने उपन्यासों में जो किया है उसमें भावात्मक पक्ष से ज्यादा समस्या का बौद्धिक पक्ष प्रबल रूप में उभर कर सामने आया है । नारी के जीवन में घटित होने वाली प्रत्येक समस्या को उन्होंने अपने बुद्धि की कसौटी पर कसके देखा है । हर समस्या का कारण क्या है ? समस्या का शुरू कहाँ से है, और समस्या की शुरूआत कैसे होती है आदि प्रश्नों के संबंध में उन्होंने अतीत के सहारे गहन अध्ययन करे विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है । ऐसे उपन्यासकार गिने-चुने ही है ।

---

1. आँखें मेरी बाकी उनका - पृ. 158-159

वस्तुतः नारी की जितनी भी समस्याएं है - प्रेम, दहेज, विवाह परित्यक्ता बलात्कार, सती तलाक भरण-पोषण, कन्याओं की बिक्री, पुरुष प्रधान समाज में समान अधिकार आदि को उन्होंने सिर्फ एक उपन्यासकार के रूप में उनका भावात्मक ढंग से चित्रण ही नहीं किया है बल्कि इन समस्याओं के पीछे स्थित वस्तुतथ्यों का भी पता लगाने का प्रयास किया है । इसके लिए उन्होंने सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों का उल्लेख किया है । और साथ में वर्तमान परिस्थितियों में इन समस्याओं का हल क्यों नहीं हो पा रहा है ? कानून एवं सरकार की सीमाएं क्या है ? आदि महत्वपूर्ण मुद्दों पर एक चिंतक व विचारक के रूप में गंभीरता के साथ सोचा है । इसी प्रकार शोषित पीडित तथा दमित नारी के हृदय में भी झांकर उसकी मानसिक स्थिति से तथा उसकी वेदना से पाठक को अवगत कराया है । इसके लिए उन्होंने ग्रामीण शहरी, शिक्षित, अशिक्षित कामकाजी गृहिणी देशी विदेशी, सम्पन्न विपन्न और बालिका, युवती तथा वृद्ध महिला आदि का सामाजिक आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का चित्रण किया है जिसमें सफलता भी प्राप्त हुई है । इस प्रकार माचवे जी ने पाठक के सामने नारी जीवन का यथार्थ रूप को प्रस्तुत किया है ।

"रंगभेद" समस्या के संदर्भ में माचवे जी ने अत्यंत विकसित देश माने जाने वाला अमरीका की पोल खोली है । पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति का शोषण अनेक प्रकार से हो रहा है किन्तु सभ्यता के चरम तक पहुंचने वाले अमरीका में मानवता को ही शर्मिंदा करने वाली "रंगभेद" नीति का पालन करना सभ्य समाज पर एक कलंक है । इस समस्या का उल्लेख किया है और उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि रंगभेद समस्या और अस्पृश्य समस्या में मूलभूत अंतर दिखाई नहीं देता ।

दोनों ही मानवता को कलंकित करने वाले है और दोनों को इस संसार से जल्द मिटा देना चाहिए । रंगभेद समस्या को नीग्रो गायक "जो" के जीवन के माध्यम से चित्रित किया है साथ में बीच बीच में मुरुगन के माध्यम से भारत की दलित समस्या पर प्रकाश डाला है । डा० माचवे का "जो" उपन्यास अमरीकी रंगभेद समस्या को जानने, समझने में सहायक कृति सिद्ध होती है ।

पीढ़ियों के अन्तराल के कारण आने वाली समस्याओं का चित्रण डा० माचवे ने अपने उपन्यास "तीस-चालीस-पचास" के माध्यम से किया है । इस उपन्यास में पुरानी पीढ़ी, नई पीढ़ी तथा इन दोनों की बीच की पीढ़ी का सुन्दर चित्रण किया गया है । पुरानी पीढ़ी के लोगों का कहना है कि अपने विश्वास, आस्था, मूल्य और मान्यताओं पर अपनी भावी पीढ़ी चलें किन्तु हर नयी पीढ़ी अपने पुरानी पीढ़ी के मान्यताओं और विश्वासों को ठुकरा देती है । यह एक लम्बी परम्परा है । हर पुरानी पीढ़ी के साथ उसकी अगली पीढ़ी की यही प्रतिक्रिया होती है । पुरानी पीढ़ी ने आदर्श सुधार आदि मान्यताओं के साथ अपना मार्ग चुन लिया है और नई पीढ़ी अराजकतावाद में पड़ गयी है और न कोई चिन्ता है और न दुःख । किन्तु इन दोनों के बीच में जो पीढ़ी है वह न किसी दिशा को अपनाती है और न किसी को छोड़ती है । वह दृढ़ता पूर्वक कोई निर्णय नहीं लेता । इस बीच की पीढ़ी का जीवन अस्थिर और त्रिशंकु के समान है । डा० माचवे का कहना है कि यह पीढ़ियों का अंतराल हमेशा चलता रहेगा । इस में कोई परिवर्तन कभी नहीं आयेगा ।

डा० प्रभाकर माचवे ने अपने उपन्यासों में विशेषतः "किशोर" और "लापता" में युवाओं के मानसिक समस्याओं के संदर्भ में विचार किया है । इन उपन्यासों में युवकों में बढ़ी हुई आत्मन्यूनता की भावना, अलगावपन

आदि के बारे में उल्लेख किया है । समाज की वर्तमान परिस्थितियों में युवक दिग्भ्रमित जैसा हो गया है । न उसके लिए एक राह है और न ही दिशा । दोनों उपन्यासों में परिवार के प्रति तथा समाज के प्रति युवकों में असंतोष और प्रतिकार की भावना तब जाग उठती है जब घर में छोटे-छोटे किस्सों पर इन पर गुस्सा किया जाने लगता है । इसी कारण ये युवक घर में रहना पसंद नहीं करते और कहीं जाना चाहते हैं किन्तु कहाँ जाए इनके लिए कोई दिशा नहीं है । "किशोर" उपन्यास का किशोर अहंभाव के कारण वैसे ही घर में अपमान सहन करते हुए रहता है किन्तु "लापता" का अरविंद बिना किसी को कहे घर से निकल जाता है । अरविंद देश के अनेक प्रान्तों का भ्रमण करता है, विदेशों में जाकर रहता फिर भी अपनी पहचान मिटाने की कोशिश में असफल होता है । और अकेलापन को महसूस करता है । अंततः वह घर लौट आता है । वह घर से इसलिए चला गया था कि घर में उसे स्नेह, प्यार, ममता और सहानुभूति नहीं मिलती है । इस कारण उसका विद्रोही मन ने घर छोड़ने का निश्चय किया था । दूसरी ओर "किशोर" में किशोर का मन घर में, तथा समाज में अपने प्रति होने वाले अपमान को सहन करने में अक्षम हुआ तो तब वह विद्रोही हो गया जिसकी पराकाष्ठा बस जलाने में हुई ।

इस प्रकार डा० माचवे ने वर्तमान परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में युवकों के अन्तर्मन के यथार्थ रूप का चित्रण उपर्युक्त उपन्यासों में सफलतापूर्वक किया है ।

"आँख मेरी बाकी उनका" उपन्यास के माध्यम से माचवे जी ने समाज में व्याप्त अनैतिकता, भ्रष्टाचार तथा सुविधाभोगियों का चित्रण अनेक सामाजिक संस्थाओं तथा समाज के विभिन्न राजनैतिक नेताओं और प्रतिष्ठित व्यक्तियों के माध्यम से किया है । लेखक सबसे पहले अनाथ शिशु की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालता है । जब कोई ईसाई नन उस

लड़के को ले जाती है तो जनता में धर्मांतरण पर वाद विवाद खड़ा हो जाता है । इसके बाद लेखक ने पाठशाला तथा कालेज में छात्र - छात्राओं तथा शिक्षकों की स्थिति पर कड़ा व्यंग्य किया है । जहाँ पर ज्ञान का दान दिया जाता है वहाँ पर व्यर्थ गपशप शोर शराबा हो रहा है । दफ्तरों में आलसी और लापरवाही का चित्रण डाक घर के माध्यम से किया। अस्पताल में फैली भ्रष्टाचार का भी उल्लेख किया गया है । इसके पश्चात सर्वोदयी, कम्युनिस्ट, समाजवादी, कांग्रेस, दक्षिणपंथी, मुस्लिम तथा पारसी विचारधाराओं में विश्वास रखने वालों तथा इनके महिला सहकर्मी मित्रों का भी लेखा जोखा प्रस्तुत किया गया है । इन सभी नेताओं में व्याप्त स्वार्थ की भावना को पर्दाफाश किया है ।

डा० माचवे ने आज की सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों में मनुष्य की बेबसी और सुविधाभोगी नेताओं के कार्यकलापों को बड़ी बेबाकी के साथ उद्घाटित किया है । इन नेताओं की सहकर्मी मित्र महिलाएं भी इन्हीं के नक्शे कदम है । नारी सदा प्रेरणा का स्रोत रही है उसे अपने सदाचरण और कार्यों द्वारा उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए । लेकिन ये भी किताबी ज्ञान के सहारे सुविधाओं के बीच जीती हुई देश सेवा की चिन्ता किया करती है । जिस दल से ये संबंधित है उनके सिद्धांतों को जानने समझने में इनको रुचि नहीं है । बस इसी एक बात की फिक्र है इन्हें कि सुविधा उन्हें कितनी मिल पा रही है ?

अध्याय - छ:

उपसंहार

अध्याय - छः

उपसंहार

डॉ० प्रभाकर माचवे आधुनिक हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ प्रयोगवादी कवि एवं लेखक है । उन्होंने हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में अपना योगदान दिया है । कविता, उपन्यास, कहानी, जीवनी, रेखाचित्र, संस्मरण, निबंध आदि के क्षेत्रों में उन्होंने सृजन किया है । प्रयोगवादी साहित्यकार होने के कारण उन्होंने साहित्य में नये नये प्रयोग किये है । इन्होंने अपने जीवन काल के अंतर्गत हिंदी, मराठी और अंग्रेजी भाषाओं में लगभग सौ से अधिक ग्रंथों को लिखा और संपादित किया । इनका लगभग दस हजार पृष्ठों का साहित्य विभिन्न पत्र - पत्रिकाओं में छपा है । वे केवल एक साहित्यकार ही नहीं थे बल्कि एक पत्रकार भी थे । अपने जीवन के अन्तिम दिनों में "चौथा संसार" पत्रिका के संपादक के रूप में काम कर रहे थे ।

वस्तुत: डॉ० माचवे जी का रचना संसार व्यापक एवं विशिष्ट है । विशेषत: इनके उपन्यास हिंदी उपन्यास साहित्य में अपना अलग महत्व रखते है । इनके उपन्यास सामान्यत: लघु होने पर भी विचारों की गंभीरता लिये हुए रहते है । इन उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण सफल रूप से हुआ है । उपन्यासकार का भी आशय यह है कि उपन्यास का सृजन मुख्य विषय पर हो और वह विषय सामाजिक यथार्थ से जुड़ कर रहे । इस कारण ही डॉ० माचवे जी के उपन्यासों में कहीं पर भी अधिक कल्पनापूर्ण वर्णन या

आदर्श का चित्रण नहीं मिलता है । डॉ० माचवे समाज में जो यथार्थ देखते हैं उसी का अपने दृष्टि, ज्ञान और अनुभव के माध्यम से पाठक को बोध कराने हेतु कथात्मक रूप में सृजन करते हैं । इस प्रकार इनके उपन्यास मुख्य घटना या विषय को लेकर पाठक के सामने यथार्थ का बोध कराने आते हैं ।

इनके उपन्यासों की एक और विशेषता यह है कि किसी घटना या समस्या का चित्रण करते हुए उपन्यासकार उस घटना या समस्या का ऐतिहासिक विवरण भी प्रस्तुत करता है । इस प्रकार डॉ० माचवे जी पाठक को हृदय स्पर्श करने वाले यथार्थ से ही नहीं अवगत कराते बल्कि मस्तिष्क को भी उपन्यासों के माध्यम से अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं की सूचनाएं देते हैं । शायद इसीलिए डॉ० माचवे जी को "चिंतन प्रधान उपन्यासकार" कहा जाता है । इस प्रकार अपने तथ्यों को और अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए वे वेद, उपनिषद, पुराण और अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथों से उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । उपन्यासों के बीच में कहीं - कहीं महापुरुषों एवं प्रसिद्ध चिंतकों के विचारों, उद्धरणों का भी उल्लेख किया गया है । इन उपन्यासों में बीच-बीच में विषय वस्तु के अनुकूल कविताएं भी दी गयी हैं । कविताएं कहीं हिंदी की हैं तो कहीं अंग्रेजी या अन्य भाषाओं से अनूदित हैं । इस प्रकार उपन्यास में विषय वस्तु से मेल खाती हुई कविताओं का समावेश करना शायद एक नया प्रयोग है ।

डॉ० प्रभाकर माचवे ने अपने उपन्यासों में वैविध्यपूर्ण विषय वस्तु को लिया है । प्रत्येक उपन्यास में एक रोचक तथा सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण घटना या समस्या को अपने उपन्यासों का केन्द्र बिन्दु बनाया है । इस प्रकार वैविध्य पूर्ण विषय वस्तु का चुनाव करने के पीछे उपन्यासकार की सामाजिक परिप्रेक्ष्य पर गहरी पकड़ है । इस प्रकार उपन्यासकार समाज में व्याप्त सभी समस्याओं तथा वैषम्यों का गहरा अध्ययन किया है । इसी कारण समाज में फैले समस्याओं का चित्रण अपने उपन्यासों में यथार्थ के

साथ करता है । वस्तुत: यथार्थ, यथार्थवाद और यथार्थबोध ये तीनों शब्द दिखने में एक जैसे लगने पर भी इन के अंतर्गत सूक्ष्म भिन्नता है । "यथार्थ" जीवन की सच्ची अनुभूति है जिसमें हम अपने जीवन में घटित होने वाले राग-विराग, सुख-दुख और अन्य भावनाओं का अनुभव करते है । अपनी इन्द्रियों के द्वारा समाज में होने वाले सभी प्रकार के क्रिया कलापों का अनुभव करना ही यथार्थ है । इस यथार्थ की अनुभूति के कारण चिंतक या साहित्यकार में एक विशिष्ट सैद्धांतिक विचारधारा उत्पन्न होती है उसी को यथार्थवाद कहते है । "यथार्थबोध" यथार्थ को ग्रहण करने वाले और उसको दूसरों तक पहुंचाने वाले का होता है । अर्थात लेखक या साहित्यकार समाज में जो देखता है उसको पाठक तक यथातथ्य पहुंचाने का जो प्रयास करता है वह यथार्थबोध कहलाता है । लेखक समाज से यथार्थ को ग्रहण करते समय उसकी दृष्टि विचार और अनुभव का प्रबल प्रभाव रहता है । इसी कारण यथार्थ एक होने पर भी भिन्न भिन्न लेखकों का यथार्थ बोध भिन्न भिन्न होता है ।

ऐसे "यथार्थवाद" जैसी सैद्धांतिक विचारधारा में अनेक प्रकार के यथार्थवादों का विकास हुआ है । इनमें मुख्य है - समाजवादी यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद, प्रकृतवादी यथार्थवाद, अतियथार्थवाद, अतियथार्थवाद, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, पाश्चात्य दर्शन की देन है । कार्ल मार्क्स, काडवेल, एमील जोला, हावर्ड फास्ट, अन्स्ट फिशर, एंगेल्स जैसे विचारकों का यथार्थ के विश्लेषण में महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।

उपन्यास से यथार्थ का संबंध अत्यंत घनिष्ठ है । आधुनिक साहित्य में यथार्थ का चित्रण जितना विस्तार से और सशक्त रूप में उपन्यास साहित्य में होता है उतना अन्य विधा में शायद ही हो । उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसके अन्दर आधुनिक जीवन की सभी अनुभूतियों को विशेषत: विसंगतियों

और विफलताओं को चित्रित कर सकते है । इस प्रकार जीवन का यथार्थ सही अर्थों मे हम उपन्यासों मे देख सकते है ।

हिंदी उपन्यास साहित्य पर एक दृष्टि डालने पर स्पष्ट होता है कि उपन्यास के आरंभिक काल मे यथार्थ का चित्रण अधिक नहीं हो रहा था । इस काल के उपन्यासों का मुख्य ध्येय मात्र पाठकों का मनोरंजन करना था । इस कारण सन् 1915 ई॰वी॰ तक के लगभग सभी उपन्यासों मे मनोरंजन के तत्व प्रधान रूप से रहने लगे थे । विशेषतः ऐयारी और तिलस्मी तत्वों से पूर्ण उपन्यासों की अधिक लोकप्रियता थी । इस कारण इस काल के उपन्यासों मे उपन्यासकार कल्पना लोक मे विचरण करते थे । यद्यपि कुछ समाज सुधार वादी कथा वस्तु के उपन्यास इस काल मे लिखे गये पर भी उनमे रूढिवादिता परंपरागत संस्कार और आदर्शवादिता का आवरण रहने के कारण समाज की वस्तुस्थिति का चित्रण कम हो पाया था । इस प्रकार उपन्यास को आरंभिक काल, जिसे हम शैशव काल कह सकते है - मे यथार्थ का चित्रण पूरा न होने पर भी आंशिक रूप मे हो रहा था ।

हिंदी कथा साहित्य मे प्रेमचन्द के आगमन से उपन्यास विधा का कायाकल्प हो गया । आरंभिक काल मे उपन्यासों मे जो कल्पना लोक का वर्णन होता था उसका यहाँ पर बहिष्कार किया गया । इस प्रकार सन् 1915 ई0 वी॰ के आसपास से सन् 1936 तक हिंदी उपन्यास को प्रेमचन्द ने एक सही दिशा और दृष्टि प्रदान की । प्रेमचन्द के जमाने मे ही उपन्यास को सीधा समाज से जोडने का सफल प्रयास किया गया । इस काल मे समाज का चित्रण जो उपन्यासों मे होता था वह वस्तुस्थिति का यथार्थ चित्रण रहता था । इस प्रकार प्रेमचन्द काल मे उपन्यास ने जीवन की अनुभूतियों को व्याख्यायित करने वाली सशक्त विधा का रूप धारण किया ।

प्रेमचन्दोत्तर काल में उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण विस्तृत फलक पर होने लगा । इस दृष्टि से हम प्रेमचन्दोत्तर युग को दो खंडों में विभाजित करके देख सकते है - एक प्रेमचन्दोत्तर युग (1936 - 1960) और दूसरा साठोत्तरी युग (1960-80) इन दो खंडों में भी उपन्यासों में यथार्थ के अनेक रूपों का चित्रण हुआ है । विशेषत: समाजवादी यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, ऐतिहासिक यथार्थवाद, प्रकृतवाद, अतियथार्थवाद, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद आदि विचारधाराएं इस काल के उपन्यासों में दिखाई देते है । इस संबंध में यह बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि किसी भी उपन्यास में किसी एक यथार्थवाद के रूप को लेकर कथा वस्तु नहीं लिखी जा सकती । वस्तु वस्तु के अनुसार एक ही उपन्यास में एक से अधिक यथार्थवाद के रूपों को परिलक्षित कर सकते है । हाँ, इतना कह सकते है कि किसी उपन्यास में अमुक प्रकार के यथार्थवाद का चित्रण अधिक प्रभावी रहा है । इस प्रकार कह सकते है कि प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण बहुत सूक्ष्मता के के साथ हुआ है और यह जीवन के मानवीय पक्षों का सुंदर चित्रण करने में सक्षम रहा है ।

जब हम इसी उपन्यास साहित्य के परिप्रेक्ष्य में डॉ० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों का विश्लेषण करते है तो स्पष्ट होता है कि उनके उपन्यासों में सामाजिक परिदृश्य का चित्रण अत्यंत यथार्थ के साथ किया गया है । इसी कारण उनके लगभग 16 उपन्यासों में वैविध्य पूर्ण कथा वस्तुओं का यथार्थपरक चित्रण हुआ है । जैसा कि पहले कहा गया है कि रचनाकार को सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण करने के लिए दृष्टि विचार और अनुभव की आवश्यकता होती है । डॉ० माचवे के पास इन तीनों विशेषताओं का अपार भण्डार है । इस कारण वे न सिर्फ देश के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, और राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण कर पाये है बल्कि विदेशी संस्कृति और वहां की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों का भी सक्षम रूप से चित्रण कर सके है । इसका साक्ष्य उनका उपन्यास साहित्य ही है ।

डॉ० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में सबसे पहले यदि सामाजिक वर्गीय पृष्ठभूमि को देखें तो स्पष्ट होता है कि उन्होंने लगभग अपने सभी उपन्यासों में समाज में व्याप्त मध्य तथा निम्न वर्गों का व्यापक स्तर पर विवेचन किया है। प्रत्येक वर्ग की सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण करते हुए उनकी विशेषताओं तथा विसंगतियों पर भी प्रकाश डाला गया है। इनके उपन्यासों में उच्च वर्ग का चित्रण जमींदारों, भूस्वामियों, पूँजीपति, सेठ और मिल मालिकों के माध्यम से हुआ है। इस वर्ग के विशेषताओं के प्रस्तुत करते हुए माचवे जी का कहना है कि यह वर्ग अधिक स्वार्थी रहता है। अधिक लाभ कमाने के लिए निम्न वर्ग का शोषण करता है। सभ्यता और संस्कृति के आड़ में काले कारनामे करता है। विशेषतः अपनी यौन आकांक्षाओं की तृप्ति के लिए निम्नवर्गीय महिलाओं को अपने पाश में बांध लेता है जिसके लिए वह धन का लालच दिखाता है या फिर उनमें समाज में अमर्यादित होने का भय पैदा करता है। इसके अलावा यह वर्ग अपने स्वार्थ के लिए देश या समाज का हित नहीं सोचता। वह अपने लाभ के लिए जो चाहे कर सकता है। इन्हीं विशेषताओं को डॉ० माचवे ने "परन्तु", "एकतारा", "साँचा", "छूत", "दशभुजा" और "लापता" आदि अपने उपन्यासों में उच्च वर्ग के प्रतिनिधि पात्रों के माध्यम से चित्रित किया है।

इस प्रकार उच्च वर्ग का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हुए डॉ० माचवे जी अपने उपन्यासों के माध्यम से कहना चाहते है कि यह वर्ग अपने स्वार्थ के लिए अपनी बहन की मान मर्यादा को भी व्यापार की दृष्टि से देख सकता है। देश का हित भी उसके लिए कोई मायने नहीं रखता, वे अंग्रेजों को माल वितरण करने का ठेका लेते है, उनके विज्ञापन अपने समाचार पत्रों में छापते है और निम्नवर्ग का श्रम और अर्थ का शोषण तो आम बात है।

डॉ० माचवे अपने उपन्यासों में मध्य वर्ग का भी यथार्थ के धरातल पर चित्रण किया है । मध्यवर्ग का ऐसा वर्ग है जिसके पास जीने योग्य सुविधाएं भी पर्याप्त नहीं है उसी की परिपूर्ति के लिए यह वर्ग जीवन पर्यन्त संघर्ष में जूझता रहता है । मध्यवर्ग न उच्च वर्ग वर्ग के समान सकल भोग विलास और सुख सुविधाओं के साथ है और न ही निम्नवर्ग की तरह केवल श्रम को बेच कर जीविका कमाती है । यह इन दो वर्गों के बीच का वर्ग है । इसकी समस्याएं और इसके जीवन विधान में अनेक जटिलताएं और विसंगतियां है । इसी कारण इस का जीवन निर्वाह उच्च तथा निम्न वर्ग के मुकाबले में बहुत ही संश्लिष्ट है । इस वर्ग की सबसे मुख्य समस्या आर्थिक है । आर्थिक अभाव में भी अपनी सभी आकांक्षाओं को यह वर्ग पूरा कर लेना चाहता है । इसी के कारण इसके जीवन में संघर्ष उत्पन्न होता है । मनसिक रूप में कुंठाएं उत्पन्न होती है, हीनता ग्रंथि घर करती है । दूसरों के प्रति ईर्ष्या, द्वेष की भावना जागृत होती है । इसके फलस्वरूप परिवारों में विघटन हो जाता है । पति पत्नी में तनाव पैदा होता है । इन्हीं विसंगतियों और विशेषताओं का माचवे जी ने अपने उपन्यासों "परन्तु, "एकतारा", "द्वाभा", "किशोर", "किसलिए", "कहां स कहा", दशभुजा और "लापता" आदि उपन्यासों में चित्रित किया है । इन उपन्यासों में मध्यवर्ग का एक जीता जागता चित्र प्रस्तुत होता है जिसमें उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का तथा मनोवृत्तियों का यथार्थ रूप सामनेआता है ।

निम्नवर्ग का चित्रण डॉ० माचवे ने लगभग सभी उपन्यासों में किया है । माचवे जी की यह विशेषता है कि उपन्यास का आकार लघु होने के बावजूद सामाजिक समस्याओं का चित्रण संक्षिप्त और सार गर्भित रूप से करते है । निम्नवर्ग के चित्रण के संदर्भ में माचवे जीने यही किया है । उन्होंने अपने उपन्यासों में विशेषतः, "सांचा", "जो", किशोर", "दर्द के पैबन्द", " "किसलिए", "धूल", लक्ष्मीबेन", "कहां से कहां", "दशभुजा" आदि के माध्यम

माध्यम से इस वर्ग के सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है । इस वर्ग की सबसे बड़ी समस्या है अज्ञान और अर्थाभाव ।इसी के कारण समाज में उच्च वर्ग के द्वारा इन वर्गका शोषण हो रहा है । कहीं कोई एकाध निम्नवर्ग का व्यक्ति शोषण के प्रति विद्रोह करने लगता है तो उच्च वर्ग उसे तुरन्त धन या प्रशासन की मदद से कुचल देती है । इस प्रकार निम्न वर्ग का सब कुछ शोषण हो रहा है । इस वर्ग के स्त्रियों की हालत तो और भी दयनीय है । उच्चवर्ग के पुरुष इनको अपनी इच्छाओं की तृप्ति के लिए उपयोग कर लेते है । इस प्रकार डॉ० माचवे जी अनेक विशेषताओं के साथ इस वर्ग का चित्रण यथार्थ रूप से करने में सफल रहे है ।

माचवे जी के उपन्यासों में चित्रित विभिन्न वर्गों की विशेषताओं और विसंगतियों के आधार पर यही कह सकते है कि समाज में वर्ग वैषम्य की भावना के पीछे आर्थिक परिस्थिति मुख्य कारण है । आर्थिक दृष्टि से यदि समानता आ जाती है तो समाज में वर्गीय भेद भाव नहीं रहेगा । विशेषतः निम्नवर्ग में चेतना लाने के लिए औपचारिक समाज सुधार के बदले पूरे मन से समाज सुधार करन वालों की आवश्यकता है ।इसीकारण माचवे जी ने अपने अनेक उपन्यासों में सरकारी अनुदान से समाज सुधार करने वाले समितियों पर व्यंग्य का प्रहार किया है । इस प्रकार माचवे जी ने अपने उपन्यासों में उच्च मध्य तथा निम्न वर्गों की विशेषताओं से पाठक को यथार्थ बोध कराने का सफल प्रयास किया है ।

डॉ० माचवे ने अपने उपन्यासों में एक और समस्या की ओर सभी का दृष्टि आकृष्ट किया है । वह समस्या है औद्योगीकरण की । औद्योगीकरण की प्रक्रिया आरंभ होने के कारण देश विदेश में अभूतपूर्व विकास होने लगा है ।

विशेषतः आर्थिक दृष्टि से अनेक देश सम्पन्न होने लगे है । इस कारण औद्योगीकरण देश के विकास के लिए मेरुदंड बन गया है । औद्योगीकरण की प्रक्रिया भारत मे भी 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से आरंभ हो गई । देश के सामाजिक ढांचे पर इसका प्रभाव पड़ने लगा । इस कारण देश की सामाजिक व्यवस्था मे अभूतपूर्व परिवर्तन आने लगा । विशेषतः देहातों की जनता काम के लिए शहरों की ओर बढ़ने लगी । जिन-जिन शहरों मे मिल कारखाने लगाये गये थे वहाँ पर गंदी बस्तियों का निर्माण होने लगा । इस प्रकार औद्योगीकरण के कारण आर्थिक दृष्टि से देश का हित होने के बावजूद सामाजिक दृष्टि से बहुत क्षति पहुँच गई है । विशेषतः नगरीकरण के कारण गाँवों का पतन, दुर्व्यसनों तथा अपराधों की वृद्धि नैतिक मूल्यों मे परिवर्तन और मिल-कारखानों के कारण उपजे ऊब और अलगाव आदि । प्रवृत्तियाँ विचारणीय है । इन्हीं विशेषताओं के साथ माचवे जीने अपने उपन्यास "साँचा" और "धूल" मे औद्योगीकरण के कारण उत्पन्न सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण किया है ।

डॉ0 माचवे इन उपन्यासों के माध्यम से कहते है कि औद्योगीकरण के परिणाम स्वरूप मनुष्य के व्यक्तित्व का ह्रास हो रहा है । वह अपनी स्वतंत्रता खोते जा रहे है । वह अपने जीवन का विकास करने के बदले उसे संकुचित करता जा रहा है । आधुनिक काल मे मनुष्य का व्यक्तित्व खंडित होते जा रहा है । मशीन का महत्त्व बढ़ते जा रहा है और मनुष्य का घटते जा रहा है । इसके कारण मनुष्य मे अनेक प्रकार के मानसिक तनाव उत्पन्न हो रहे है । उसमे कुंठा, हीनता की भावना घर कर रही है । इसका कारण भी स्पष्ट है कि वह जिस मिल मे काम करता है वहाँ पर उसका शोषण होता है, परिणाम स्वरूप मजदूरी बहुत कम मिलती है । वह अच्छे घरों को किराये पर शहरों मे नहीं ले सकता इस कारण मिल के पास ही गंदी

नाली के कीड़े की तरह अपना जीवन बिताने के लिए विवश होता है । वह जिस झुग्गी - झोपड़ी में रहता है उसमें न तो रोशनी और पानी की व्यवस्था होती है और न ही स्वच्छता का प्रबंध । इसी प्रकार उन मजदूरों के लिए न मनोरंजन का कोई साधन होता है और न ही स्वास्थ्य की देख-भाल के लिए अस्पताल । फिर भी मजदूर अपने गांव और परिवार के सदस्यों को छोड़कर जीविका के लिए एक कोठरी वाली नीची छत की झुग्गी-झोपड़ी में रहने के लिए विवश है ।

माचवे जी ने अपने उपन्यास साँचा और "धूत" के माध्यम से यह भी स्पष्ट किया है कि औद्योगीकरण के कारण मनुष्य के सृजनात्मक एवं स्वस्थ विकास में बाधा उत्पन्न होती है । माचवे जी अपने उपन्यासों में अनेक स्थानों पर यह स्पष्ट कर चुके है कि ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था ही मनुष्य को स्वस्थ सृजनात्मक एवं क्रियाशील बना रखती है और उसके मानवीय विशिष्ट गुणों - दया, प्रेम, ममता, परोपकार आदि को विकसित करती है । ग्रामीण सामाजिक, व्यवस्था का ह्रास होना मानवीयता का हनन है । वे मानवीय गुणों का मनुष्य में लुप्त होने का दोष भी औद्योगी-करण को ही देते है । "धूत" निम्न उपन्यास में माचवे ने अपने कल्पना पूर्ण शक्ति से जो इस्पात नगरी का निर्माण किया है, उसके माध्यम से औद्योगी-करण प्रक्रिया को अतियथार्थ दृष्टि से चित्रित किया है ।

डॉ० माचवे ने अपने उपन्यासों में अनेक ऐसे समस्याओं का चित्रण किया है जो समाज में ज्वलंत रूप से उभर रहे है । इनके उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं विशेषत: नारी जीवन की समस्याएं, विश्व में व्याप्त रंगभेद समस्या और उसके परिप्रेक्ष्य में भारतीय वर्ण भेद समस्या, पीढ़ियों के अंतराल

के कारण उत्पन्न समस्याएं, युवाओं की समस्याएं तथा समाज और राजनीति में फैली अनैतिकता की समस्या का चित्रण यथार्थ के धरातल पर किया गया है। माचवे ने प्रत्येक समस्या को चाहे वह प्रमुख हो या गौण - अतीत के ऐतिहासिक विवेचन के साथ विश्लेषण करने का सफल प्रयास किया है।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि डॉ० प्रभाकर माचवे जी के सोलह उपन्यासों में लगभग आधे उपन्यास मात्र नारी जीवन को केन्द्र में रखकर लिखे गये हैं। "द्वाभा", "एकतारा", "दर्द के पैबन्द", "लक्ष्मीबेन", "दशभुजा", "अनदेखी" आदि उपन्यासों में नारी समस्याओं का विवेचन अधिक विस्तार से किया गया है। माचवे जी ने नारी के समस्याओं को भावनात्मक पक्ष से ज्यादा बौद्धिक पक्ष से अधिक विचार किया है। प्रत्येक समस्या को अतीत से जोड़ कर देखने का प्रयास किया है। इसी कारण उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक धरातल के आधार पर वेद, पुराण तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से समस्या का ऐतिहासिक स्वरूप को स्पष्ट किया है। डॉ० माचवे जी अपने उपन्यासों में नारी के परावलंबी जीवन के प्रति होने वाले भेद भाव तथा अत्याचारों का विस्तृत विवरण उन्होंने अपने उपन्यासों में दिया है। माचवे जी ने अपने उपन्यासों में विशेषतः नारी संबंधी, इन समस्याओं के बारे में यथार्थ चित्रण किया है - प्रेम, दहेज़, विवाह, परित्यक्ता नारी, बलात्कार, सती, तलाक, भ्रूण परीक्षण, कन्याओं की बिक्री, पुरुष प्रधान समाज में समान अधिकारआदि। इन समस्याओं का चित्रण केवल भावनात्मक स्तर पर नहीं किया है बल्कि समकालीन परिस्थितियों के साथ ताल-मेल बिठाते हुए समकालीन समाज में इन समस्याओं का समाधान किस प्रकार होगा ? कानून और संविधान में स्त्रियों के कौन - कौन से अधिकार है ? आदि प्रश्नों का समाधान भी

प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है । इसी प्रकार माचवे जी ने शोषित पीड़ित तथा दमित नारी का वैयक्तिक अनुभवों को भी पाठक के सामने प्रस्तुत करने के लिए उसकी मानसिक स्थिति का तथा मूक हृदय वेदना का यथार्थ चित्रण किया है । इसके लिए लेखक ने सभी प्रकार के ग्रामीण शहरी, शिक्षित - अशिक्षित, गृहणी - कामकाजी, देशी - विदेशी, सम्पन्न-विपन्न, और बालिका, युवती तथा वृद्ध महिलाओं का सामाजिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का चित्रण सफलता पूर्वक किया है । इसप्रकार हम कह सकते हैं कि डॉ० माचवे जी ने नारी जीवन के सभी मुख्य अंशों का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है । वे नारी के समस्याओं के बारे में चित्रित अपने उपन्यासों में किया है । वे नारी के समस्याओं के बारे में चित्रित करते हुए कहते हैं कि वह समाज की एक अंग होते हुए भी समाज उसके प्रति मानवीय संवेदना नहीं दिखा पा रहा है । वह आज के आधुनिक परिस्थितियों में भी पुरुष पर निर्भर होने में विवश है ।

सामाजिक समस्याओं के अंतर्गत माचवे जी ने विश्व में व्याप्त रंग भेद समस्या का चित्रण भी किया है । शायद डॉ० प्रभाकर माचवे हिंदी के पहले उपन्यासकार हैं जिन्होंने इस विषय पर उपन्यास लिखा है । वस्तुत: रंग भेद समस्या विश्व के अनेक देशों में व्याप्त है । अमेरिका में श्वेत और अश्वेत लोगों के बीच चल रहे सामाजिक संघर्ष को स्वयं देखकर लेखक ने इस उपन्यास को लिखा है । इस कारण उपन्यासकार माचवे के उपन्यास "जो" में चित्रित सभी घटनाएं यथार्थ पर आधारित है ।

"जो" उपन्यास के माध्यम से लेखक ने अमेरिका में पूँजीवादी समाज व्यवस्था में अश्वेतों के प्रति होने वाले अन्याय अत्याचार एवं शोषण का

पर्दाफाश किया है ।केवल शारीरिक रंग के आधार पर किसी के प्रति भेद-भाव करना अमेरीका जैसे विकसित देशवासियों के लिए लज्जा का विषय है । इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने जो नामक नीग्रो का चरित्र उभारते हुए नीग्रो जाति की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों का आकलन किया है । इस समस्या के परिप्रेक्ष्य में ही भारत में अनादिकाल से व्याप्त अस्पृश्य समस्या के बारे में भी लेखक ने इस उपन्यास में उल्लेख किया है । इस उपन्यास के पात्र रामन जो लेखक का स्थानापन्न है और उसका मित्र मुरुगन जो दलित है, के माध्यम से भारत में सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त अस्पृश्यता का वर्णन किया है । माचवे इस उपन्यास में यह भी विषय स्पष्ट करते है कि भारत के दलित सोचते है कि अमेरीका जैसे विकसित देशों में नीग्रो जाति की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार आ गई होगी । किन्तु अपने देश में दलितों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया है । अमेरिका के नीग्रो सोचते है कि भारत में ऐसी रंगभेद समस्या नहीं होगी, वहां के सभी लोग एक जैसे होंगे ।किन्तु अमेरीका के नीग्रो को नहीं पता की भारत में भी जाति के नाम पर वही भेदभाव को अपनाया जा रहा है जो अमेरीका में श्वेत अश्वेतों के प्रति अपनाते है ।

इस प्रकार उपन्यासकार एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का चित्रण करते हुए कहते है कि इस समस्या के पीछे एक मात्र कारण शोषण की प्रवृत्ति है ।

आधुनिक समाज की सबसे विकराल समस्या पीढ़ियों के अन्तराल की है । वर्तमान परिस्थितियों में हर नयी पीढ़ी अपनी विचार धारा को ही सही मानती है और अपने से पुरानी पीढ़ी को घोर रूढ़िवादी करार कर देती है। अपने उपन्यास "तीस चालीस पचास" में इस समस्या का चित्रण

किया है । इस उपन्यास के माध्यम से लेखक स्पष्टकरना चाहता है कि पीढ़ियों के अन्तरालके कारण सामाजिक व्यवस्था मे खलबली मच जाती है । प्रत्येक पीढ़ी अपने विचारों पर अड़ा रहना चाहती है । हर पीढ़ी अपने से पुरानी पीढ़ी को रूढ़िवादी और आदर्शवादी मान्यताओं से बंधी समझती है और अपने से आगे वाली पीढ़ी को विद्रोही और अराजकतावादी समझती है । यह परम्परा यों ही चलती रहती है । "तीस चालीस पचास" उपन्यास मे एक ही परिवार के तीनों पीढ़ियों के छः सदस्यों को लेकर उपन्यासकार ने पीढ़ी दर पीढ़ी मे आने वाली वैचारिक भिन्नता पर प्रकाश डाला है । लेखक यह भी स्पष्ट करते है कि पुरानी पीढ़ी हमेशा अपने आदर्श, विश्वास और आस्था पर जीना चाहती है और अपने संतान को भी उसी मार्ग मे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है । "तीस चालीस पचास" उपन्यास मे आचार्य वसुदेव और उनकी पत्नी सरला पुरानी पीढ़ी के प्रतिनिधि पात्र हैं जिनके माध्यम से लेखक ने पुरानी पीढ़ी के रूढ़ियों, मान्यताओं और विश्वासों पर प्रकाश डाला है । इस उपन्यास की दूसरी पीढ़ी है मोहन तथा उसकी पत्नी रूखसाना । यह पीढ़ी समझती है कि पुरानी पीढ़ी अंधविश्वासों और कोरी आदर्शवादिता मे डूब गई है । मोहन स्वयं को आधुनिक समझता है और वह वैज्ञानिक भी है । समाजवाद के प्रति आकृष्ठ होकर मुसलमान लड़की रूखसाना से शादी कर लेता है । किन्तु उसके साथ समाज ने बुरा व्यवहार किया । उसे जाति बाहर कर दिया । पिता ने उसे स्वेच्छाचारी कहा, समाजवादी पीर्टी ने एनर्किस्ट कह कर निकाला । उसमे प्रतिकार की भावना जागृत हुई । मार्क्सवाद विरोधी साहित्य पढ़ने लगा ।

इस उपन्यास मे तीसरी पीढ़ी अनिरूद्ध और उषा की है । इस पीढ़ी के पास कोई कमी नहीं है । इन्हे बचपन से सुख सुविधा मिल गया है । इसी

कारण इस पीढ़ी के लोग क्षणवादी भोग विलास मे विश्वास करते हैं । उन्हे रात-दिन मे कोई फर्क नहीं कहीं चाय की दुकान पर कहीं खेल के मैदान मे घंटों बिताते हैं । सभी चिन्ताओं को एक गोली खाकर दूर करना चाहते है । इनमे न कोई संस्कार है और न कोई आदर्श । यह पीढ़ी अराजकता-वाद की प्रतीक है ।

अंत मे लेखक कहना चाहता है कि पुरानी पीढ़ी अपने आदर्शों और मान्यताओं पर टिकी है और नई पीढ़ी सांसारिक बन्धनों को तोड़ कर क्षण भोग करने मे व्यस्त है, प्रेम को जैविक प्रक्रिया मानती है और अराजकवाद का प्रतीक है । किन्तु जो इन दोनों के बीच की पीढ़ी है वह न पुरानी पीढ़ी मे मिल सकती है और न ही नई पीढ़ी मे मिल सकती है । इस प्रकार इस बीच की पीढ़ी के अपने विशेष समस्याएं है । इस प्रकार माचवे न पीढ़ियों के अन्तराल के माध्यम से बदलते हुए मान्यताओं पर प्रकाश डाला है ।

"किशोर" तथा "लापता" उपन्यासों के माध्यम से उपन्यासकार डा० माचवे जी ने युवावर्ग मे व्याप्त होने वाली असंतोष की भावना का चित्रण किया है । इन उपन्यासों मे युवकों की मानसिक समस्याओं का मनोवैज्ञानिक धरातल पर यथार्थ का चित्रण किया गया है । समाज तथा देश मे मूल भूत परिवर्तन न लाने मे सक्षम युवावर्ग आज निराशा, कुंठा, अलगाव-पन, अकेलापन आदि भावनाओं से ग्रसित है । उसकी अद्भुत कार्य क्षमता व्यर्थ ही चली जा रही है । वह नित्य असंतोष मे रह रही है । उसे न समाज और न ही सरकार दिशा निर्देश दे रहे है । उसके घर मे, समाज मे सभी जगहों पर अपमान हो रहा है । यही अपमान की भावना, यही असंतोष की भावना और यही निराशा की भावना से उसके मन विद्रोह का रूप धारण रही है । इसी के कारण "किशोर" उपन्यास का किशोर तथा

"लापता" उपन्यास का "अरविंद" घर मे नहीं रहना चाहते । किशोर घर से निकल जाने का सहास नहीं कर पाता, वैसे ही अपमान के घूंट पीते हुए रहता है । "लापता" का अरविंद घर से निकल जाता है और पागल की तरह अपनी पहचान मिटाने के प्रयत्न मे दर - दर देश और विदेश मे घूमता है । किन्तु वह अपने आपको अजनबी और अकेला समझने लगता है और अन्तत: घर लौट कर आता है । "किशोर" उपन्यास का किशोर अपने मे स्थित असंतोष आत्महीनता आदि के कारण अन्त:मुखी विद्रोही हो जाता है और यह अन्त:मुखे विद्रोह छात्रान्दोलन के समय अधिक आवेश मे फूट पड़ता है ।जिसके फलस्वरूप किशोर "बस" जला देता है । इस प्रकार इन उपन्यासों के माध्यम से लेखक यही कहना चाहता है कि परिवार मे युवकों के प्रति घृणा द्वेष और ईर्ष्या की भावना से नहीं देखना चाहिए । उनके प्रति सहृदयता स्नेह, ममता, प्यार और सहानुभूति दिखाना चाहिए । परिवार मे उत्पन्न छोटी सी असंतोष की भावना ही उसमे अलगाव की भावना उत्पन्न कर सकती है । अत: युवकों के प्रति आत्मीय भावना रखना आवश्यक है ।

सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों मे व्याप्त अनैतिकता का चित्रण भी डॉ0 माचवे ने अपने उपन्यासों मे किया है । विशेषत: "आंखे मेरी,बाकी उनका" उपन्यास मे समाज मे फैली बेइमानी, भ्रष्टाचार और अन्याय का यथार्थ चित्रण किया है । इस उपन्यास मे इन कुरीतियों का चित्रण दो खंडों मे किया है । पहले खंड मे सामाजिक व्यवस्था के अनेक संस्थाओं मे फैली अनैतिकता का पर्दाफाश किया जाता है । दूसरे खंड मे विभिन्न राजनैतिक व्यक्तियों के चरित्र चित्रण करते हुए उनमे नैतिकता का अंश कितना है, देखने का प्रयास किया गया है । पहले खण्ड मे एकअनाथ शिशु की सामाजिक स्थिति क्या होगी इस प्रश्न पर विचार किया गया है । उस शिशु का पालन-पोषण का भार कोई नहीं उठाते जब एक इसाई "नन" आकर उसे ले जाती है, तब

समाज के लोगों में धर्मांतरण पर व्यर्थ चर्चा शुरू होती है । इसी प्रकार पाठशाला तथा कालेज में विद्यार्थियों तथा प्राध्यापकों की नैतिक मूल्यों पर व्यंग्य किया गया है ।माचवे कहते हैं - दिन-ब-दिन हमारे देश में शिक्षा का स्तर गिरने का कारण अध्यापक ही है । सरकारी कार्यालयों में लापरवाही और आलसी का चित्रण "डाक घर" के माध्यम से किया है । अस्पताल में जहाँ प्राणों की रक्षा होनी चाहिए वहीं पर प्राणों से खेलने का चित्रण भी किया गया है । अस्पताल में फैली घूसखोरी और भ्रष्टाचार का इस उपन्यास में यथार्थ चित्रण किया गया है ।

इस उपन्यास के दूसरे खण्ड के अंतर्गत देश के विभिन्न विचारधारा वाले राजनैतिक और सम्प्रदाय के नेताओं तथा उनके सहकर्मी महिला मित्रों का चरित्र चित्रण किया गया है । इनमें सर्वोदयी नेता दादा जी और उनकी अन्तेवासिनी कान्तिबेन, कामरेड किशनचन्द और उनकी राजनैतिक सह प्रवासिनी झिलमिल, प्रजा समाजवादी के नेता काले और उनकी मानी हुई बहन विजया ताई, कांग्रेस के गोपीनाथ गुप्ता जी और दानवीरा सेठानी सीतादेवी, दक्षिणपंथी पं० कृष्णा जी शुक्ला जी और उनकी पड़ौस की समिति की कार्यकर्ता शशी, मुस्लिम के सैयद अनवर हुसैन और उनकी कालेज की सहसंगिनी हुस्ना तथा पारसी के मि० सोपवाटरवाला और उनकी पार्टी सेक्रेटरी दारूवाला के माध्यम से लेखक ने सभी संस्थाओं तथा सभी व्यक्तियों में फैली स्वार्थपरता, बेइमानी और भ्रष्टाचार का व्यंग्य पूर्ण दृष्टि से चित्रित किया है ।

इस उपन्यास के माध्यम से लेखक का कहना यही है कि समाज में सभी स्थानों पर अनैतिकता पनप रही है । कहीं अनैतिक संबंधों के कारण अवैध संतान पैदा हो रही है और कहीं लापरवाही और आलसी के कारण छात्रों

का भविष्य नाश हो रहा है । देश के कर्णधार माने जाने वाले राजनैतिक नेताओं में स्वार्थपरता, भाई भतीजावाद और भ्रष्टाचार घर कर लिया है । समाज में धीरे धीरे न्याय, धर्म और परोपकार की भावनायें लुप्त होते जा रहे है ।

इस प्रकार समसामयिक यथार्थबोध की दृष्टि से प्रभाकर माचवे के उपन्यासों के सतर्क विवेचन से निम्नलिखित विशेषतायें उभरती है -

1. प्रभाकर माचवे का उपन्यास लेखन समसामयिक यथार्थबोध से संप्रेरित और परिचालित है, फलस्वरूप उपन्यास और यथार्थ जीवन की परस्परावलंबन पुष्ट करता है ।

2. माचवे जी के उपन्यासों में यथार्थ चित्रण ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं भूकाल में तार्किक आधार और संवेदनात्मक ज्ञान के संदर्भ में हुआ है ।

3. उनके उपन्यासों में आज के यथार्थ के प्रमुख विचारणीय मुद्दे उठाये गये है जैसे - नारी जीवन की त्रासदी, औद्योगिकरण और यंत्रीकरण के कारण विकम्पित मानव जीवन, आर्थिक संकट के कारण मूल्यों में गिरावट, और मानवीय संबंधों की एकात्मकता का विघटन, वर्ग विभक्त समाज के वर्गानुभवों का चित्रण, पीढ़ियों के अन्तराल के कारण उत्पन्न समस्यायें तथा राष्ट्रीय स्तर पर अस्पृश्यता तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रंगभेद की पक्षपात पूर्ण प्रवृत्ति का चित्रण ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

मूल ग्रंथ : डा0 प्रभाकर माचवे के उपन्यास

1.	परन्तु	हिंदी प्रचारक संस्थान, पो॰बाक्स नं0 106 पिशाचमोचन, वाराणसी-1 संस्करण : 1964
2.	एकतारा	हिंदी प्रचारक संस्थान, पो॰बाक्स नं0 106 पिशाचमोचन वाराणसी-1 संस्करण: 1964
3.	द्वाभा	किताब घर, गांधी नगर, दिल्ली-110 031 प्रथम संस्करण : 1986
4.	सांचा	-वही-
5.	"जो"	भारतीय ज्ञानपीठ, प्रधान कार्यालय 9 अलीपुर पार्क प्लेस कलकत्ता-27 प्रथम संस्करण: 1964
6.	किशोर	कृष्णा ब्रदर्स, कचहरी रोड, अजमेर, द्वितीय सं0 : 1977
7.	तीस-चालीस-पचास	राजपाल एंड सन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली पहला संस्करण: 1973
8.	दर्द के पैबन्द	साहित्य भवन(प्रा) लिमिटेड के पी कक्कड़ रोड, इलाहाबाद- 211 003. प्रथम संस्करण - 1974
9.	किसलिए	राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली प्रथम संस्करण: 1975
10.	"धूल"	राजपाल एंड सन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली पहला: संस्करण : 1976

11. लक्ष्मीबेन — राजपाल एंड सन्ज़ कश्मीरी गेट, दिल्ली
पहला संस्करण : 1977

12. कहाँ से कहाँ — पूर्वोदय प्रकाशन 718 दरियागंज
नई दिल्ली- 110 002.
प्रथम संस्करण : 1978

13. दशभुजा — विभूति प्रकाशन, के.14, नवीन शाहदरा
दिल्ली- 110 032
प्रथम संस्करण 1981

14. आँखें मेरी, बाकी उनका — विभूति प्रकाशन के.14 नवीन शाहदरा
दिल्ली- 110 032.
प्रथम संस्करण- 1983

15. लापता — राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट,
दिल्ली- 110 006.
प्रथम संस्करण - 1984

16. अनदेखी — पूर्वोदय प्रकाशन प्रा.लि. 718 दरियागंज
दिल्ली- 110 002.
प्रथम संस्करण - 1988

सहायक ग्रंथ सूची

हिंदी ग्रंथ

क्र•सं•	ग्रन्थकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण एवं प्रकाशन वर्ष
1•	अग्रवाल भारत भूषण	हिंदी उपन्यासों पर पाश्चात्य प्रभाव	दिग्दर्शनचरण जैन पुष्पचरण जैन एवं संतति 21 दरियागंज नई दिल्ली- 2 संस्करण : प्रथम
2•	कुमार जैनेन्द्र	समय और हम	पूर्वोदय प्रकाशन 7/8 दरियागंज नई दिल्ली-2 संस्करण: 1985
3•	कुमार, सतीश	आदमी दर आदमी	अक्षर प्रकाशन प्रा•लि• 2/36 अन्सारी रोड दरियागंज दिल्ली-6 प्रथम संस्करण : 1966
4•	देवलिया, मदन	पाश्चात्य साहित्य शास्त्र की भूमिका	अनुराग प्रकाशन जय जयपुर प्रथम संस्करण: 1972
5•	गुप्त, रघुराज	भारत मे समाज कल्याण और सुरक्षा	किताब महल 56 ए जीरो रोड इलाहाबाद चौथा संस्करण: 1883
6•	गुप्त विश्वम्भरदयाल	उपन्यास का समाज शास्त्र	श्री पब्लिशिंग हाउस 4056 अजमेरी गेट दिल्ली- 110 006 प्रथम संस्करण- 1979
7•	गुप्त सूर्य	हिंदी उपन्यास वार्षिकी 1976	सूर्य प्रकाशन, नई सड़क दिल्ली- 110 006 प्रथम संस्करण: 1976

क्र.सं.	ग्रन्थकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण एवं प्रकाशन वर्ष
8.	गोकाककर सुधाकर	मार्क्सवाद और हिंदी कहानी	विद्या विहार 87/40ए आचार्य नगर कानपुर-3 प्रथम संस्करण: 1979
9.	चन्द्र, विमला कृष्ण कुमार	साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना	दिनमान प्रकाशन 3014, चर्खेवालान दिल्ली- 110 006 प्रथम संस्करण: 1984
10.	चुघ सत्यपाल	प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि	इकाई प्रकाशन 16 पुरुषोत्तम नगर हिम्मतगंज, इलाहाबाद-1 प्रथम संस्करण: 1968
11.	जायसवाल अमर प्रसाद गणेश प्रसाद	हिंदी लघु उपन्यास	विद्या विहार 106/154 गांधी नगर कानपुर-12 प्रथम संस्करण: 1984
12.	जैन अरविंद	औरत होने की सजा	विकास पेपर बैक्स 9/221 मेन रोड दिल्ली- 110 031 प्रथम संस्करण: 1994
13.	जैन ज्योतिप्रसाद	भारतीय इतिहास: एक दृष्टि	भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन काशी प्रथम संस्करण : 1961
14.	जैन रविन्द्रकुमार	उपन्यास: सिद्धांत और संरचना	नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23 दरियागंज दिल्ली- 6 प्रथम संस्करण - 1972
15.	टंडन प्रतापनारायण	हिंदी उपन्यास में वर्ग भावना (प्रेमचन्द युग)	लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ प्रथम संस्करण: 1956

क्र.सं.	ग्रंथकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण एवं प्रकाशन वर्ष
16.	तलवार स्वर्णकांता	हिंदी उपन्यास और नारी समस्याएं	जयभारती प्रकाशन, 447 रतील कोटी नई बस्ती कीडगंज इलाहाबाद- 211 003. प्रथम संस्करण- 1992
17.	तिवारी रामपूजन	पाश्चात्य काव्य शास्त्र	राधाकृष्ण प्रकाशन 2, अन्सारी रोड दरियागंज, दिल्ली-6 प्रथम संस्करण - 1971
18.	त्यागी सुमित्रा	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन	साहित्य प्रकाशन, मालीवाडा दिल्ली प्रथम संस्करण: 1978
19.	त्रिपाठी शम्भुरत्न	भारतीय सामाजिक संरचना और संस्कृति	किताब महल 56 ए जीरो रोड इलाहाबाद. प्रथम संस्करण 1962
20.	देसाई राम्कान्त	साठोत्तरी हिंदी उपन्यास	सूर्य प्रकाशन नई सड़क दिल्ली-6 प्रथम संस्करण: 1984
21.	द्विवेदी हजारी प्रसाद	विचार और वितर्क	साहित्य भवन इलाहाबाद तृतीय संस्करण : 1969
22.	-वही-	साहित्य सहचर	लोक भारती प्रकाशन संस्करण 1975
23.	"निर्मल" हेमराज	हिंदी उपन्यासों में मध्यवर्ग(1936 से 1975 ई)	विभु प्रकाशन साहिबाबाद- 201 005 प्रथम संस्करण: 1978
24.	पटेल(स्व) नित्यानंद	प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चेतना	लिपि प्रकाशन 1 अन्सारी रोड दरियागंज नई दिल्ली- 2 प्रथम संस्करण- 1980

क्र.सं	ग्रन्थकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण एवं प्रकाशन वर्ष
25.	पाठक मार्कण्डेनंदन (सं)	डॉ० प्रभाकर माचवे की दृष्टिकोण	पारमिता प्रकाशन अनुग्रहपुरी कालोनी गया (बिहार) 823 001 प्रथम संस्करण: 1988
26.	पोद्दार हनुमान प्रसाद	श्रीमद्भगवद्गीता	गोविन्द भवन कार्यालय गीता प्रेस गोरखपुर-213 005 तृतीय संस्करण : सं 2051
27	प्रसाद शंकर	सामाजिक उपन्यास और नारी मनोविज्ञान	अनुपम प्रकाशन पटना- 6 प्रथम संस्करण: 1978
28.	प्रेमचन्द	साहित्य का उद्देश्य	हंस प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण : 1967
29.	बच्चन हरिवंशराय व अन्य (सं)	समसामयिक हिंदी साहित्य	साहित्य अकादमी रवीन्द्र भवन नई दिल्ली- 1, संस्करण 1967
30.	बडोले भगीरथ	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में मानव मूल्य और उपलब्धियाँ	स्मृति प्रकाशन 124 शहरार भाग इलाहाबाद- 211 003 प्रथम सं: 1983
31.	बांदिवडेकर, चंद्रकांत	आधुनिक हिंदी उपन्यास सृजन और आलोचना	नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23 दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002. प्रथम संस्करण: 1985
32.	बाला, शैल	हिंदी उपन्यास का प्रारंभिक विकास	सत्य सदन, सराफी, बाराबंकी प्रथम सं: 1973

क्र.स	ग्रंथकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण एवं प्रकाशन वर्ष
33.	प्रभाकर कमलकांत व जयसवाल शिव	अंतर-अर्पण (डा० प्रभाकर माचवे का सारस्वत समादर)	आयाम प्रकाशन, हरिद्वार संस्करण 1981
34.	भटनागर प्रेम	हिंदी उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य	अर्चना प्रकाशन 10 आौ जालूपुरा जयपुर प्रथम संस्करण 1968
35.	भदौरिया, भूप सिंह	मध्यवर्गीय चेतना और हिंदी उपन्यास	श्याम प्रकाशन फिल्म कालोनी जयपुर-302 003. प्रथम संस्करण: 1987
36.	माचवे, प्रभाकर	मादलसा की बंदी बंदी	माचवे, ई-180, ग्रेटर कैलाश नई दिल्ली- 110 048. संस्करण- 1992.
37.	मिश्र रामदरश	हिंदी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 8, नेताजी, सुभाष मार्ग नयी दिल्ली- 110 002. द्वितीय संस्करण : 1982.
38.	मिश्र, शिवकुमार	यथार्थवाद	मैकमिलन इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली. प्रथम संस्करण : 1975
39.	*रत्नाकर मोहनलाल	प्रेमचन्द पूर्व हिंदी उपन्यास	दिग्दर्शन चरण जैन प्रकाशन जैन एवं सन्तति 21 दरियागंज नई दिल्ली- 110 003 प्रथम संस्करण: 1979

क्र.सं0	प्रकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण एवं प्रकाशन वर्ष
40.	रवीन्द्रनाथ एन	मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास	वाणी प्रकाशन, 61 एफ कमलानगर दिल्ली - 110 007 संस्करण
41.	रस्तोगी, शैल	हिंदी उपन्यासों में नारी	विभु प्रकाशन साहिबाबाद-201005 प्रथम संस्करण 1977
42.	राठौर रणवीर	हिंदी साहित्यकारों से साक्षात्कार	किताब घर 24/4866 अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1991.
43.	रा. कौशल कुमार	भारतीय समाजशास्त्र	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी प्रथम संस्करण : सं0 2022
44.	रेखा कुमार	प्रभाकर माचवे के हिंदी उपन्यास	विभूति प्रकाशन बी 14, नवीन शाहदरा दिल्ली- 110 032 संस्करण 1985
45.	लोढा महावीर मल	हिंदी उपन्यासों का साहित्य विवेचन	[illegible] बोहरा बोहरा प्रकाशन चौड़ा रास्ता जयपुर संस्करण 1972
46.	वर्मा विजय	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के संदर्भ में महाराष्ट्र की भूमिका	दिग्दर्शन प्रेस एवं संतति 4697/5-21 ए दरियागंज नयी दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1987
47.	वर्मा, जनेश्वर	हिंदी काव्य में मार्क्सवादी चेतना	रामबाग कानपुर- 12 प्रथम संस्करण 1974
48.	वर्मा प्रभा	हिंदी उपन्यास: सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया और स्वरूप (1960 से 1980 तक)	क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी (28 शॉपिंग सेन्टर) करमपुरा नई दिल्ली - 110 015 प्रथम संस्करण 1990

क्र.सं.	ग्रंथकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण एवं प्रकाशन वर्ष
49.	चकोरा आशारानी	नारी शोषण आईने और आयाम	नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरियागंज, नयी दिल्ली प्रथम संस्करण - 1994
50.	-वही-	भारतीय नारी दशा और दिशा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरिया गंज नयी दिल्ली- 2 प्रथम संस्करण - 1983
51.	-वही-	सरोकार	आर्य प्रकाशन गांधी नगर दिल्ली - 110 031 प्रथम संस्करण- 1916
52.	शर्मा जगदीश	पाश्चात्य काव्य शास्त्र	अशोक प्रकाशन नई सड़क दिल्ली- 110 006 प्रथम संस्करण - 1979
53.	शर्मा देवेन्द्रनाथ व गोपाल राय	हिंदी साहित्याब्द कोश 1973	ग्रंथ निकेतन 67/34 राजेन्द्र पटना - 800 016 प्रथम संस्करण - 1973
54.	शर्मा भवदराम	मार्क्सवाद और हिंदी कविता	वाणी प्रकाशन 61-एफ कमलानगर दिल्ली - 110 007 प्रथम संस्करण - 1980
55.	शर्मा मक्खनलाल	हिंदी उपन्यास: सिद्धांत और समीक्षा	प्रभात प्रकाशन 205 चावड़ी बाजार दिल्ली - 6 संस्करण 1970
56.	शर्मा रामविलास	मार्क्स और पिछड़े हुए समाज	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण- 1986
57.	शर्मा रामविलास	मानव सभ्यता का विकास	वाणी प्रकाशन अंसारी मार्ग दरिया गंज नई दिल्ली - 2 तृतीय संस्करण - 1991

क्र०सं०	ग्रंथकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण और प्रकाशन वर्ष
58.	शर्मा शेखर	समकालीन संवेदना और हिंदी नाटक	भावना प्रकाशन 174 पटपड़गंज दिल्ली-2 प्रथम संस्करण 1986
59.	शुक्ल रामचन्द्र	हिंदी साहित्य का इतिहास	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सत्रहवाँ पुनर्मुद्रण सं० 2035
60.	श्रीवास्तव वीना	हिंदी उपन्यास का विकास और मनोवैज्ञानिक चेतना	एस जी वसानी द्वारा मैकमिलन इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1981
61.	सक्सेना सोमवती	प्रेमचन्दोत्तर हिंदी उपन्यासों में वर्ग संघर्ष	सूर्य प्रकाशन मंदिर बिस्सों का चौक बीकानेर प्रथम संस्करण - 1986
62.	सन्धू के० विमल	हिंदी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण	पुस्तक संस्थान 190/50 ए नेहरू नगर कानपुर-208012 संस्करण - 1974
63.	सांकृत्यायन राहुल	दर्शन दिग्दर्शन	किताब महल इलाहाबाद संस्करण 1978
64.	साहनी भीष्म व अन्य (सं०)	आधुनिक हिंदी उपन्यास	जाकिर हुसैन कालिज की ओर से राजकमल प्रकाशन प्रा०लि० 8 नेताजी सुभाष मार्ग नयी दिल्ली- 110 003 प्रथम संस्करण - 1980
65.	सिंह, त्रिभुवन सिंह	हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद	हिंदी प्रचारक पुस्तकालय सी 21/30 पिशाचमोचन वाराणसी -1 चतुर्थ संस्करण - 2022 वि०

क्र.सं.	ग्रंथकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण व प्रकाशन वर्ष
66.	सिंह, दिनेश प्रसाद	प्रेमचन्द: विविध आयाम	अनुपम प्रकाशन पटना-4 प्रथम संस्करण - 1983
67.	सिंह वीरेन्द्र प्रताप पाण्डेय, रवि प्रकाश	समकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति	विजय प्रकाशन मंदिर सी के 15/53 र (गुडिया) वाराणसी प्रथम संस्करण - 1979
68.	सिंह रामगोविन्द प्रसाद	हिंदी उपन्यास: प्रेमचन्दोत्तर काल (1937-1947 ई.)	दिग्दर्शन चरण जैन (व्यवस्थापक जैन एवं सन्तति 4662/21 दरियागंज नई दिल्ली- 2 संस्करण - 1981
69.	शिवकरण	आलोचना के आधुनिक वाद और नयी समीक्षा	संजय बुक सेन्टर के 38/9 गोलघर वाराणसी - 1 प्रथम संस्करण - 1978
70.	सिंह श्रीचन्द्र	आधुनिक हिंदी उपन्यास साहित्य में चित्रित समस्याएं (औद्योगीकरण के संदर्भ में)	राष्ट्रीय साहित्य सदन 36 गौतम बुद्ध मार्ग लखनऊ प्रथम संस्करण 1985
71.	सिंह पृथ्वीर सिंह	समीक्षा के नए प्रतिमान	कालिका प्रकाशन 3/4762 अन्सारी रोड दरियागंज दिल्ली - 2 प्रथम संस्करण - 1980
72.	स्वर्णलता	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि	विवेक पब्लिशिंग हाउस लाल जी सांड का रास्ता जयपुर संस्करण : 1975
73.	हिंदी विभाग (संपादक) पुणे विद्यापीठ, पुणे	साठोत्तर हिंदी साहित्य का परिप्रेक्ष्य	नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23 दरियागंज नयी दिल्ली- 3 प्रथम संस्करण- 1987

अंग्रेजी व अनुदित ग्रंथ

क्र.सं	ग्रंथकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण प्रकाशन वर्ष
74.	कार्पुशिन तथा अन्य	प्रगति: द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद की सरल रूप रेखा	प्रगति प्रकाशन मास्को संस्करण : 1977
75.	चंद्र बिपन अनुवादक: डी आर चौधरी	भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास (दि राइज एंड ग्रोथ ऑफ इकनॉमिक नेशनलिज्म इन इंडिया)	अनामिका प्रकाशन 106 बी एन आई जी अशोक विहार दिल्ली - 110 052 द्वितीय संस्करण - 1993
76.	थापर रोमिला अनुवादक: एम पी सहगल एवं मोहन गुप्त	भारत का इतिहास	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली आठवाँ संस्करण 1987
77.	भारद्वाज ए.एन	अस्पृश्यता एवं मान्यता	किताब घर, मेन रोड, गांधी नगर दिल्ली - 1 प्रथम संस्करण - 1987
78.	मार्क्स कार्ल	ए कान्ट्रीब्यूशन टू द क्रिटिक ऑफ पोलिटिकल इकनॉमी (अंग्रेजी)	प्रगति प्रकाशन मास्को पाँचवा मुद्रण: 1984
79	मार्क्स तथा एंगेल्स	कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र	प्रगति प्रकाशन मास्को संस्करण - 1985
80.	कर्नर मेयस (अनुवाद आर पी सिंह)	अमेरिकी [illegible]	रामलाल पुरी, संचालक आत्माराम एण्ड सन्स कश्मीरी गेट दिल्ली प्रथम संस्करण - 1963

क्र.स	ग्रंथकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण एवं प्रकाशन वर्ष
81.	वाट, आयन अनुवादक शरीन धर्मपाल	उपन्यास का उदय	निदेशक हरियाणा हिंदी ग्रंथ अकादमी चंडीगढ़ प्र.सं. 1974
82.	सेन, सुकोमल (अनुवादक: आर एस यादव)	भारत का मजदूर आंदोलन (1830-1970) (युग और आंदोलन का इतिहास)	बागची एंड कंपनी 286 बी बी गांगुली स्ट्रीट कलकत्ता - 12 प्रथम संस्करण - 1986
83.	सतीश सरकार	भारतीय इतिहास में जाति और मुद्रा	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस झांसी रोड नयी दिल्ली प्रथम संस्करण - 1985

शब्द कोश

84. कश्यप, सुभाष तथा विश्वनाथ गुप्त (सं) राजनीति कोश

85. धीरेन्द्र वर्मा - हिंदी साहित्य कोश

86. नगेंद्र (सं) मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खण्ड)

87. प्रसाद, कालिका (सं) हिंदी वृहत् कोश

पत्र पत्रिकाएं

88. आजकल : अंक 4 अगस्त 1991

89. [illegible] : अंक 13 16-31 जुलाई 1991

90. नवभारत टाइम्स (दैनिक) 23 जून, 1991

91. प्रकर - फरवरी 1985

92. मधुमती - सितम्बर, 1989

93. योजना (तेलुगु) 15 एवं 30 नवम्बर, 1993

94. समकालीन सृजन : संयुक्तांक 7 - 8, जुलाई - दिसंबर, 1990 (जाति भेद और रंग भेद विशेषांक)